मुद्रक—
गोपाल कृष्ण अग्रवाल
हिन्दुस्तान प्रेस, कटरा, प्रयाग।

विषय-सूची

भाग १

चतुर्थ भाग

वाक्य-विश्लेषण तथा वाक्य-संकलन

इस पुस्तक में प्रयुक्त सङ्केतों की सूची

अ० से अध्याय समझना चाहिये

श्लो० से श्लोक-संख्या समझना चाहिये

भर्तृ० से भर्तृहरि समझना चाहिये

"भर्तृ० २" से "भर्तृहरि-नीतिशतक" अभिप्रेत है।

२ के बाद वाले अङ्क से श्लोक-संख्या अभिप्रेत है।

"भर्तृ० ३" से "भर्तृहरि-वैराग्यशतक" अभिप्रेत है।
३ के बाद दिए हुए अंक से श्लोक संख्या अभिप्रेत है।

श्रीमद्० से श्रीमद्भगवद्गीता समझना चाहिए।
भट्टि० से भट्टिकाव्य
अ० रा० से अनर्घ्यराघव
बा० रा० से बालरामायण
चाण० से चाणक्यशतक
दशकु० से दशकुमार-चरित समझना चाहिए तथा 'दशकु० प्र०' से दशकुमार-चरित, प्रथम भाग और 'दशकु० द्वि०' से दशकुमार-चरित द्वितीय भाग और तत्पश्चात् जो संख्या दी जाती है, उससे कहानी-संख्या अभिप्रेत है।
ग० म० से गणरत्न महोदधि " "
हित० से हितोपदेश " "
हर्ष० से हर्षचरित " "
कादम्० से कादम्बरी " "
किरात० से किरातार्जुनीय " "
कुमार० से कुमारसम्भव " "
मालविका० से मालविकाग्निमित्र नाटक " "
मालती० से मालती माधव नाटक " "
मनु० से मनुस्मृति " "
महा० से महाभारत " "
म० भा० से महाभाष्य " "
मेघ० से मेघदूत " "
मृच्छ० से मृच्छकटिक नाटक " "
मुद्रा० से मुद्राराक्षस " "
महावीर० से महावीर-चरित नाटक " "
नागा० से नागानन्द " "
पञ्च० से पञ्चतन्त्र तथा पञ्च० त० से पञ्चतन्त्र तन्त्र-संख्या और पञ्च० क० से पञ्चतन्त्र कथा-संख्या
प्र० रा० से प्रसन्नराघव

रघु० से रघुवंश—सर्ग-संख्या— श्लोक-संख्या
राम० स रामायण
रत्ना० से रत्नावली नाटिका
शा० से शाकुन्तल नाटक
श ० भा० से शाङ्कर भाष्य
शिशु० से शिशुपालवध—सर्ग-संख्या—श्लोक-संख्या
स० कौ० से सिद्धान्तकौमुदी
श ० म० से शंकराचार्य मोहमुद्गर
सुभाषित० से सुभाषितरत्नाकर
उत्तर० से उत्तररामचरित नाटक—अंक-संख्या—श्लोक-संख्या
विक्रमो० से विक्रमोर्वशीय नाटक—अंक संख्या—श्लोक-संख्या
वार्तिक० से कात्यायन-वार्तिक
वासव० से वासवदत्ता
वेणी० से वेणीसंहार नाटक—अंक संख्या—श्लोक संख्या
याज्ञ० स्मृ० से याज्ञवल्क्य स्मृति

— ० —

संस्कृतनिबन्ध-पथ-प्रदर्शक

भाग १

अन्तर्दर्शन

१—अँगरेजी भाषा में 'वाक्यरचना विधि' (Syntax) में वाक्य में प्रयुक्त शब्दों के क्रम का वर्णन किया जाता है और शब्दों के उचित प्रयोग के नियम बताये जाते हैं, परन्तु संस्कृत-जैसी प्रत्यय-प्रधान भाषाओं में "वाक्यरचना विधि" का न तो कोई निश्चित क्षेत्र ही है, न उसका कोई विशेष महत्त्व ही है। प्रत्यय-निष्पन्न पदों से स्वयं ही स्पष्ट हो जाता है कि वाक्य के अन्दर आए हुए एक शब्द का दूसरे शब्द के साथ क्या सम्बन्ध है। इसलिए, यदि वाक्यरचना के साधारण क्रम का पालन न किया जाय, तो भी अँगरेजी के एक वाक्य के विपरीत संस्कृत वाक्य में कोई क्षति अथवा अशुद्धि नहीं हो सकती। उदाहरणार्थ यदि अँगरेजी का एक वाक्य 'Ram saw Govind' लें और उसमें 'Ram' की जगह 'Govind' और 'Govind' की जगह 'Ram' लिखें तो अर्थ में पूर्ण परिवर्तन हो जायेगा। इसके विपरीत हिन्दी का एक वाक्य लीजिए—"राम ने गोविन्द को देखा"। पर यदि शब्दों के विन्यास का स्थान बदल दिया जाय, तब भी अर्थ में कोई अन्तर न पड़ेगा। 'गोविन्द को राम ने देखा' "देखा

स्थल हैं जहाँ शब्दों को एक क्रमविशेष के अनुसार रचना आवश्यक हो जाता है। संस्कृतव्याकरण में रचना और क्रम के नियम बहुत कम दिये जाते हैं। साधारणतया यह समझा जाता है कि सिद्धान्त-कौमुदी के कारक-प्रकरण में वाक्य-रचना का विवेचन किया गया है, परन्तु ऐसा समझना ठीक नहीं। सिद्धान्त-कौमुदी के कारक-प्रकरण में वास्तविक वाक्य-रचना के केवल एक अङ्ग अर्थात् सम्बन्ध (Government) या अन्वय का विवेचन किया गया है। वाक्यों में शब्दों को जोड़ते समय उपसर्गों, अव्ययों और व्याकरणसम्बन्धी रूपों के प्रयोग और अर्थ भी ध्यान में रखने चाहिएँ। संस्कृतव्याकरणों में जहाँ शब्दों की रचना समझाई गई है, वहाँ साथ ही साथ उन शब्दों का प्रयोग भी समझाया और दिया गया है। उदाहरणार्थ "लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे" (पाणिनि ३।२।१२४) सूत्र में यह बताया गया है कि शत्रन्त और शानजन्त शब्द किस प्रकार बनाए जाते हैं और इनका प्रयोग कब होता है। अतः संस्कृतभाषा में 'वाक्य-रचना' पर विचार करते समय प्रधानतः Concord (लिङ्ग, वचन, पुरुष इत्यादि की समानता) और Government (कारक या किसी वाक्य के अन्तर्गत संज्ञाओं का क्रिया से सम्बन्ध) तथा व्याकरण-संगत रूपों और शब्दों के प्रयोग और अर्थ पर विशेष ध्यान देना होगा। इस पुस्तक में पाठों का क्रम इसी विचार से किया गया है।

यह पहिले ही कहा जा चुका है कि संस्कृत में शब्दक्रम का कोई विशेष महत्त्व नहीं होता। परन्तु कतिपय ऐसे स्थल हैं जहाँ शब्द-क्रम पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इस विषय पर चौथे भाग में कुछ नियम दिए जायँगे।

२—संस्कृत में तीन 'पुरुष' और तीन 'लिंग' होते हैं। संस्कृत में 'पुरुषों' का प्रयोग बिलकुल वैसा ही होता है जैसा हिन्दी में। परन्तु संस्कृत में संज्ञाओं के लिंगों का अन्तर समझाने के लिए कोई निश्चित नियम नहीं बताए जा सकते। संस्कृत में लिंग-वर्गीकरण बिलकुल मनमाना है। अलबत्ता, जहाँ पुरुष और स्त्री बिलकुल स्पष्ट मालूम पड़ते हैं और पुरुष तथा स्त्री का अन्तर [illegible] है, वहाँ तो अवश्य कहा जा सकता है कि संज्ञाओं में किन्हीं विशेष नियमों का पालन किया गया है। उदाहरणार्थ 'चटक' (नर गौरैया) 'चटका (मादा गौरैया), इसी प्रकार 'हंस' 'हंसी', 'अज' 'अजा' इत्यादि। [illegible]

[illegible] में कितना मनमानापन है—यह तो इसी से जाना जा सकता है [illegible]

एक ही वस्तु के लिए संस्कृत में तीन विभिन्न लिङ्गों के तीन-तीन शब्द पाये जाते हैं। 'स्त्री' के लिये संस्कृत में 'दार' (पुंलिंग), 'कलत्र' (नपुंसकलिंग) और 'भार्या' स्त्रीलिंग—ये तीन शब्द प्रयुक्त होते हैं। इसी प्रकार 'शरीर' के बोधक 'काय' (पुंलिंग), 'तनु' (स्त्रीलिंग) और 'शरीर' (नपुंसक लिंग)—ये तीन शब्द हैं। इसलिए लिंग का अध्ययन प्रायः कोष से किया जाना चाहिए।

संस्कृत में तीन वचन होते हैं। इनके प्रयोगों की कुछ विशेषताएँ नीचे दी जाती हैं —

३—संस्कृत में तीन वचन होते हैं—एक वचन, द्विवचन, बहुवचन। एक वचन से 'एक' का बोध होता है, परन्तु प्रायः एक वचन से 'सम्पूर्ण जाति' का भी बोध होता है, जैसे 'नरः'—एक आदमी। **'सिंहः सर्वश्वापदेषु बलिष्ठः'**—सिंह सब जानवरों से बली होता है।

टिप्पणी —'सम्पूर्ण जाति या 'वर्ग' का बोध कराने के लिए एक वचन अथवा बहुवचन दोनों में से किसी का भी प्रयोग हो सकता है। 'ब्राह्मणों की पूजा की जानी चाहिए' इसे 'ब्राह्मणः पूज्यः' अथवा 'ब्राह्मणाः पूज्याः' किसी एक से व्यक्त कर सकते हैं।

४—द्विवचन से 'दो' का बोध होता है, 'अश्विनौ' का अर्थ हुआ 'दो अश्विन', 'दम्पती' का अर्थ हुआ 'जोड़ा'—अर्थात् 'स्त्री और पुरुष'। परन्तु 'द्वय', 'द्वितय', 'युगल', 'युग', 'द्वन्द्व' इत्यादि 'दो' या 'जोड़ा' का अर्थ देने वाले शब्द सर्वदा एकवचन में रक्खे जाते हैं, जैसे **'बाहुद्वयम्'** जिसका अर्थ है 'एक जोड़ा भुजाएँ, अर्थात् दो भुजाएँ', **'सुकुमारचरणयुगलम्'** जिसका अर्थ है 'एक जोड़ा कोमल-कोमल चरण अथवा दो कोमल-कोमल चरण।' परन्तु जब कई जोड़ों का बोध कराना होता है तो उक्त शब्दों का प्रयोग द्विवचन या बहुवचन में होता है।

(क) कभी-कभी द्विवचन जो कि एकशेषद्वन्द्वसमास के रूप में आता है एक ही वर्ग के स्त्री तथा पुरुष दोनों का बोधक होता है, जैसे 'जगतः **पितरौ वन्दे पार्वती-परमेश्वरौ**'(रघु० प्र० १)—मैं विश्व के माता-पिता पार्वती तथा परमेश्वर (शिव) को प्रणाम करता हूँ।

५—हिन्दी में बहुवचन में प्रयुक्त होने वाले कुछ शब्दों का अनुवाद संस्कृत में द्विवचन में होना चाहिये, जैसे, 'उसने अपने हाथ पाँव धोए' का अनुवाद 'हस्तौ पादौ च प्राक्षालयत्' होगा 'उसने आँखें मूँद लीं' का अनुवाद 'नयने न्यमीलयत्' होगा।

६—बहुवचन 'दो' से अधिक का बोध कराता है और एकवचन के समान 'सम्पूर्ण वर्ग या जाति' का भी प्रतीक हो सकता है, जैसे, खग (चिड़ियाँ अथवा (चिड़ियों का समूह) । परन्तु संस्कृत में कुछ ऐसे शब्द हैं जो आकार अथवा स्वरूप में तो बहुवचनान्त हैं परन्तु अर्थ में 'एक' ही के बोधक हैं, जैसे, दाराः (स्त्री), इसी प्रकार, अप्, वर्षा, सिकता, अक्षता, असु, प्राण इत्यादि ।

(अ) कभी-कभी बहुवचन का प्रयोग आदर दिखलाने के लिए होता है, जैसे, 'इति श्री शङ्कराचार्याः' श्री पूज्य शंकराचार्य जी का ऐसा मत है ।

(ब) यदि वक्ता उच्चकोटि का व्यक्ति हो, तो एकवचन के स्थान पर भी उत्तम पुरुष बहुवचन का प्रयोग होता है, जैसे, 'वयमपि भवत्यो सखीगत किमपि पृच्छामः' (शा० १) हम भी—अर्थात् मैं—आप दोनों से आपकी सखी के विषय में कुछ पूछते हैं । इसी प्रकार 'वयमपि स्वकर्मण्यभियुज्यामहे' (मुद्रा०३) हम भी—अर्थात् मैं—अपने कार्य में तत्पर होंगे । परन्तु यह विधि सर्वथा आवश्यक अथवा अनिवार्य नहीं है, जैसे, किल्वरण्यसदो वयमन-भ्यस्तरथचर्या (उत्तर०५) ।

७—संस्कृत में देशों के नाम सर्वदा बहुवचनान्त होते हैं क्योंकि वे वहाँ के निवासियों के नाम पर बने होते हैं, जैसे, 'अहं गतः कदाचित् कलिंगान्' (दशकु० द्वि०७)—एक बार मैं कलिंगदेश गया अर्थात् कलिंग लोगों के देश गया ।

टिप्पणी—जब देशों के नाम के साथ 'देश' 'विषय' इत्यादि शब्द लगे रहें तो एकवचन का ही प्रयोग होना चाहिए, जैसे 'मगधदेशे पाटलिपुत्रं नाम नगरम्'—मगध देश में पाटलिपुत्र नाम का एक नगर है ।

८—व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का बहुवचन प्रायः वंश अथवा परिवार का बोध कराता है, जैसे, "रघूणामन्वयं वक्ष्ये' (रघु० प्र० ।९)—मैं रघुवंशियों का परिवार वर्णन करूँगा । 'जनकानां रघूणां च सम्बन्धः कस्य न प्रियः' (उत्तर०१)—जनकवंशियों और रघुवंशियों का सम्बन्ध किसे प्रिय नहीं लगता ।

प्रथम पाठ

६—"जब दो सम्बद्ध शब्द एक ही लिंग, वचन, पुरुष अथवा काल के होते हैं, तब वे एक दूसरे के अन्वयी अथवा परस्पर समन्वित कहे जाते हैं। किसी एक पुरुष अथवा स्त्री के विषय में हम 'वह' का प्रयोग करेंगे, परन्तु जब बहुत से पुरुष अथवा स्त्रियों के विषय में बोलना होगा तब 'वे' का प्रयोग करेंगे"—बेन।

संस्कृत में तीन प्रकार के समन्वयों पर ध्यान देना चाहिये :—

(१) कर्त्ता और क्रिया का समन्वय,(२) संज्ञा और विशेषण का समन्वय और

(३) सम्बन्धी और सम्बन्धवान् का समन्वय ।

कर्त्ता और क्रिया का समन्वय

१०—जिसके विषय में कुछ कहा जाता है उसे वाक्य का कर्त्ता कहते हैं और उसे प्रथमा विभक्ति में रखते हैं। क्रिया का वचन और पुरुष कर्त्ता के अनुसार होता है अर्थात् जिस वचन और जिस पुरुष का कर्त्ता होगा उसी वचन और उसी पुरुष की क्रिया भी होगी, जैसे, 'आसीद्राजा शूद्रको नाम' (कादम्० ४)—शूद्रक नाम का एक राजा था। 'साधयामो वयम् (शा० १)—हम लोग जाते हैं (अपना रास्ता लेते हैं।)

६—बहुवचन 'दो' से अधिक का बोध कराता है और एकवचन के समान 'सम्पूर्ण वर्ग या जाति' का भी प्रतीक हो सकता है, जैसे, खग. (चिड़ियाँ) अथवा (चिड़ियों का समूह)। परन्तु संस्कृत में कुछ ऐसे शब्द हैं जो आकार अथवा स्वरूप में तो बहुवचनान्त हैं परन्तु अर्थ में 'एक' ही के बोधक हैं, जैसे, दारा. (स्त्री), इसी प्रकार, अप्, वर्षा, सिकता, अक्षता, असु, प्राण इत्यादि।

(अ) कभी-कभी बहुवचन का प्रयोग आदर दिखलाने के लिए होता है, जैसे, 'इति श्री शङ्कराचार्याः' श्री पूज्य शंकराचार्य जी का ऐसा मत है।

(ब) यदि वक्ता उच्चकोटि का व्यक्ति हो, तो एकवचन के स्थान पर भी उत्तम पुरुष बहुवचन का प्रयोग होता है, जैसे, 'वयमपि भवत्यौ सखीगत किमपि पृच्छामः' (शा० १) हम भी—अर्थात् मैं—आप दोनों से आपकी सखी के विषय में कुछ पूछते हैं। इसी प्रकार 'वयमपि स्वकर्मण्यभियुज्यामहे' (मुद्रा०३) हम भी—अर्थात् मैं—अपने कार्य में तत्पर होंगे। परन्तु यह विधि सर्वथा आवश्यक अथवा अनिवार्य नहीं है, जैसे, किल्वरण्यमदो वयमनभ्यस्तरथचर्याः (उत्तर०४)।

७—संस्कृत में देशों के नाम सर्वदा बहुवचनान्त होते हैं क्योंकि वे वहाँ के निवासियों के नाम पर बने होते हैं, जैसे, 'अहं गतः कदाचित् कलिंगान्' (दशकु० द्वि०७)—एक बार मैं कलिंगदेश गया अर्थात् कलिंग लोगों के देश गया।

टिप्पणी—जब देशों के नाम के साथ 'देश' 'विषय' इत्यादि शब्द लगे हों तो एकवचन का ही प्रयोग होना चाहिए, जैसे 'मगधदेशे पाटलिपुत्रं नाम नगरम्'—मगध देश में पाटलिपुत्र नाम का एक नगर है।

८—व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का बहुवचन प्रायः वंश अथवा परिवार का बोध कराता है, जैसे, "रघूणामन्वयं वक्ष्ये' (रघु० प्र० ।९)—मैं रघुवंशियों का परिवार वर्णन करूँगा। 'जनकानां रघूणां च सम्बन्धः कस्य न प्रियः' (उत्तर०१)—जनकवंशियों और रघुवंशियों का सम्बन्ध किसे प्रिय नहीं लगता।

प्रथम पाठ

९—"जब दो सम्बद्ध शब्द एक ही लिंग, वचन, पुरुष अथवा काल के होते हैं, तब वे एक दूसरे के अन्वयी अथवा परस्पर समन्वित कहे जाते हैं। किसी एक पुरुष अथवा स्त्री के विषय में हम 'वह' का प्रयोग करेंगे, परन्तु जब बहुत से पुरुषों अथवा स्त्रियों के विषय में बोलना होगा तब 'वे' का प्रयोग करेंगे'—बेन।

संस्कृत में तीन प्रकार के समन्वयों पर ध्यान देना चाहिये —

(१) कर्त्ता और क्रिया का समन्वय, (२) संज्ञा और विशेषण का समन्वय और (३) सम्बन्धी और सम्बन्धवान् का समन्वय।

कर्त्ता और क्रिया का समन्वय

१०—जिसके विषय में कुछ कहा जाता है उसे वाक्य का कर्त्ता कहते हैं और उसे प्रथमा विभक्ति में रखते हैं। क्रिया का वचन और पुरुष कर्त्ता के अनुसार होता है अर्थात् जिस वचन और जिस पुरुष का कर्त्ता होगा उसी वचन और उसी पुरुष की क्रिया भी होगी, जैसे, 'आसीद्राजा शूद्रको नाम' (कादम्०४)—शूद्रक नाम का एक राजा था। 'साधयामो वयम् (शा०१)—हम लोग जाते हैं (अपना रास्ता लेते हैं।)

है।] 'ककुद वेदविदाम्' (मृच्छ०१)—जो कि वेद जानने वालों के मुकुट (अग्रणी) हैं।

(विशेषण का समन्वय द्वितीय पाठ मे दिया जायगा)

(क) ऐसी दशाओं मे क्रिया सर्वदा कर्त्ता (उद्देश्य) की अनुगामिनी होती है, जैसे, तस्मात्सखा त्वमसि (उत्तर०५)—इसलिए तू मित्र है।

(ख) जब पात्र, आस्पद, स्थान, पद, प्रमाण, और भाजन इत्यादि शब्द विधेय के तौर पर प्रयुक्त होते हैं, तब ये सर्वदा एक वचन और नपुसकलिंग में होते हैं चाहे कर्त्ता (उद्देश्य) किसी भी लिंग या वचन मे हो, और क्रियापद कर्त्ता का अनुगामी होता है, न कि विधेयस्थानीय सज्ञा का, चाहे यह विधेयस्थानीय सज्ञा जिस भी स्थान पर हो, जैसे 'गुणा पूजास्थान गुणिषु (उत्तर० ४)—गुणी पुरुषो में गुण ही पूजा का हेतु होता है, 'आर्यमिश्रा प्रमाणम्' (मालविका० १)—आप (श्रीमान्) प्रमाण हैं अर्थात् आपकी सम्मति मान्य है, सम्पद. पदमापदाम् (हित० १)—धन विपत्तियो का घर है, 'त्वमसि महसा भाजनम्' (मालती०१)—आप तेज के आधार हैं, 'विविधमहमभूव पात्रमालोकितानाम्' (मालती०१)—मै अनेक प्रकार से उस (स्त्री) की दृष्टि का विषय हुआ।

यहाँ पर 'गुणा पूजास्थानमस्ति' और 'अह पात्रमभूत्' कहना अशुद्ध होगा•यद्यपि 'स्थानम्' और 'पात्रम्' शब्द वाक्य म।किसी भी स्थान पर [illegible] जा सकते हैं।

१२—'होना' 'मालूम पडना' 'दिखाई पडना' इत्यादि अपूर्ण-विधेय वाली क्रियाओं का अर्थ पूरा करने के लिए जो सज्ञा अथवा विशेषण शब्द प्रयुक्त होता है वह प्रथमा विभक्ति मे रक्खा जाता है, जैसे 'यदि [illegible]' (रघु० ३।५१)—यदि आप का यह सकल्प है। 'प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य' (शिशु० १।४६)—तीनों लोकों का स्वामी होने की इच्छा करता था। 'मदनक्लिष्टेयमालक्ष्यते (शा० ३)।

(क) 'पुकारना', 'नाम रखना' 'बनाना', 'सोचना', 'पाना', '[illegible] करना' इत्यादि अपूर्ण विधेय वाली सकर्मक क्रियाओं के [illegible] [illegible] उक्त ही नियम लगता है, जैसे '[illegible] व्याघ्र भूत' ([illegible])—

कुत्ता बाघ बना दिया गया। 'नाय मूर्खो मन्तव्य'—वह मूर्ख नही समझा जाना चाहिए इत्यादि।

१३—"और' द्वारा जुड़े हुए दो या दो से अधिक संज्ञापद जब कर्ता होते हैं, तब क्रिया कर्तृपदो के संयुक्तवचन की अनुगामिनी होती है, जैसे, 'तयोर्जगृहतु पादान् राजा राज्ञी च मागधी' (रघु० १।५७)—राजा और रानी मागधी—दोनो ने उनके पांव पकड़े।

(क) जब संज्ञाएँ इकट्ठा नहीं मानी जातीं, बल्कि प्रत्येक पृथक् पृथक् समझी जाती हैं, अथवा वे सब एक साथ मिलकर केवल एक विचार-विशेष की वाचक होती हैं तब क्रिया एकवचन की होती है, जैसे, 'न मां त्रातु तात प्रभवति न चाम्बा न भवती' (मालती० २)—मुझे न तो मेरे पिता बचा सकते हैं, न मेरी माता, न आप ही। 'पटुत्व सत्यवादित्व कथायोगेन बुध्यते' (हितो०१)—निपुणता और सत्यवादिता वार्तालाप से प्रकट होती है।

(ख) कभी-कभी क्रिया आसन्नतम कर्तृपद के अनुरूप होती है और शेष कर्तृपदो के साथ समझ लिए जाने के हेतु छोड़ दी जाती है, 'अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मोऽपि जानाति नरस्य वृत्तम्' (पञ्च० १।४)—दिन और रात, दोनो गोधूलियाँ, और धर्म भी मनुष्य के कार्य को जानते हैं।

लैटिन भाषा में भी ऐसा ही होता है। इन वाक्यों को देखिए, '*Tempus necessitaque postulat*' समय और आवश्यकता की माँग '*Filia et unus e filiis captus est*' एक पुत्री को और पुत्रों में से एक को कारागार में भर दिया।

१५—जब भिन्न-भिन्न पुरुषों के दो या दो से अधिक कर्त्ता "और" द्वारा जुड़े होते हैं तब क्रिया उनके संयुक्त वचन के अनुरूप होती है तथा उत्तम मध्यम एवं अन्य (प्रथम) पुरुष के योग में उत्तम पुरुष की क्रिया, और मध्यम तथा अन्य के योग में मध्यम पुरुष की क्रिया होती है। जैसे, त्वं चाहं च पचाव (महाभाष्य)—तू और मैं पकाता हूँ। इसी प्रकार 'ते किंकरा अहं च श्वो ग्रामं प्रतिष्ठेमहि'—वे नौकर और मैं कल गाँव को चल दूँगा। त्वं चैव सोमदत्तिश्च कर्णश्चैव तिष्ठत (महा० ७।८७।१२)—तू और सोमदत्ति और कर्ण रहें।

१६—जब भिन्न-भिन्न पुरुषों के दो या दो से अधिक कर्त्ता 'अथवा' या 'वा' द्वारा जुड़े होते हैं तब क्रिया का वचन और पुरुष आसन्नतम पद के अनुरूप होता है, जैसे, उसने अथवा तुम लोगों ने यह काम किया है—स वा यूयं वा एतत् कर्म अकुरुत। या तो वे लोग या हम लोग इस कठिन कार्य को कर सकते हैं—ते वा वयं वा इदं दुष्करं कार्यं सम्पादयितुं शक्नुमः।

१७—जब दो या दो से अधिक कर्तृपद किसी संज्ञा या सर्वनाम के समानाधिकरण होते हैं, तब विधेय संज्ञा अथवा सर्वनाम के अनुरूप होता है, जैसे, माता मित्रं पिता चेति स्वभावात् त्रितयं हितम् (हित० १)—माता, मित्र और पिता—ये तीनों स्वभाव से ही हितैषी होते हैं।

अभ्यास

१—उर्वशी सुकुमारं प्रहरणं महेन्द्रस्य। प्रत्यादेशो रूपगर्वितायाः श्रियः। अलंकारः स्वर्गस्य। (विक्रमो० १)

२—सर्वत्रौदरिकस्याभ्यवहार्यमेव विषयः। (विक्रमो० ३)

३—हा कथं महाराजदशरथस्य धर्मदाराः प्रियसखी मे कौशल्या। क एतत् प्रत्येति सैवेयमिति। (उत्तर० ४)

४—सार्थवाहस्यार्थपतेर्विमर्दको वहिश्चराः प्राणाः (मृच्छ० ७।८)

५—ममापि दुर्योधनस्य शकास्थानं पाण्डवाः। (वेणी० २)

६—त्वं चाहं च वृत्रहन्तुभौ सम्प्रयुज्यावहै। (महा०)

७—प्रवृद्धं यद्वैरं मम खलु शिशोरेव कुरुभि-
र्न तत्रार्यो हेतुर्न भवति किरीटी न च युवाम्। (वेणी० १)

८—त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयम्
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे। (उत्तर० ३)

९—बलवानपि निस्तेजाः कस्य नाभिभवास्पदम्। (हितोप० २)
निःशङ्कं दीयते लोकैः पश्य भस्मचये पदम्।

१०—तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः। (उत्तर० १)

११—इक्ष्वाकुवंश्यः ककुदं नृपाणां ककुत्स्थ इत्याहितलक्षणोऽभूत्। (रघु० ६।७१)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—चरितं तावदेतत् प्रस्तावे कथित एव मया माधवाभिधानः कुमारो। यस्त्वामिव मामकीनस्य मनसो [illegible] निबन्धनम् (मालती० ३)।

२—एकस्मिन् जीर्णकोटरे जायया सह निवसतः पश्चिमे वयसि वर्तमानस्य कथमपि पितुरहमेवैको विधिवशात्सूनुरभवम् (कादम्० २५)।

३—देव काचिच्चाण्डालकन्यका शुकमादाय देवं विज्ञापयति। सकलभुवनतलसर्वरत्नानामुदधिरिवैकभाजनं देव विहङ्गमश्चायमाश्चर्यभूतो निखिलभुवनतलरत्नमिति कृत्वा देवपादमूलमानीतोऽमिच्छामि देवदर्शनसुखमनुभवितुमिति (कादम्० ८)।

४—आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च, पञ्चैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः (हितो० १)।

५—[illegible] च [illegible] च [illegible]। क्रोधो निःसत्यता द्यूतमेतन्मित्रस्य दूषणम् (हितो० १)।

६—[illegible] नृपते [illegible] छत्रमुभे च चामरे (रघु० ३। १६)।

७—[illegible] सरस्वती च (रघु० ६। २९)।

८—[illegible]
[illegible]।
[illegible]
[illegible]॥ ([illegible]० २)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए

३—ऐ गोविन्द, तुम मेरे प्राण, मेरे आनन्द, मेरे गौरव के पात्र, और मे सारे ससार हो।

४—वे लोग बिना अपराध के ही सन्देह के पात्र हो गए।

५—अच्छी पत्नियाँ सा धार्मिक कृत्यो के मूल कारण होती ।

६—ऐ राजन्, भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, तू, बलशाली भोज, शकुनि, द्रौरि और मे आप की सेना हूँ।

७—जब वह घोडे पर से गिरा, उस समय राम, गोपाल और हम दोनं उपस्थित थे।

८—तुम और कृष्ण इस काम को पूरा करने का प्रयत्न क्यो नहीं करते ? क्य यह बहुत कठिन है ?

९—आज्ञाकारिता, सत्यवादिता, अभिमान का अभाव, अपने काम मे परिश्रमशीलता—ये नौकर के गुण हैं।

१०—तुमने, राम ने और मै ने दण्डकारण्य मे सुखपूर्वक समय बिताया।

११—इस ससार मे धन असख्य विपत्तियो का कारण है।

१२—हरि का पुत्र परशुराम अपनी कक्षा का रत्न तथा अपने कुल का आभूषण है।

१३—चाहे वह आदमी, चाहे ये लड़के इस फल को ले लें।

१४—उस आदमी को अथवा उन बच्चो को यह फल ले लेने दो।

१५—हरि और मै, अथवा तुम और कृष्ण इस काम को कर सकते हो, न तो गोपाल, न उसके छोटे भाई इसे कर सकते हैं।

१६—तुम दोनो को, पुष्पमित्र के तीनो भृत्यो को और दो और आदमियो को राज-दरबार (राज सभा) मे जाना चाहिए।

———

द्वितीय पाठ

विशेष्य और विशेषण का समन्वय

अंग्रेजी भाषा में विशेषण का प्रयोग बिना किसी रूप-परिवर्तन के किसी भी लिंग, वचन और कारक में सर्वदा समान रूप से होता है। परन्तु संस्कृत में विशेषण का वही लिंग, वही वचन और वही कारक होगा जो विशेष्य का [illegible]ा, चाहे विशेषण कृत्प्रत्ययनिष्पन्न हो, चाहे सार्वनामिक हो, चाहे साधारण हो, जैसे गच्छन्ती नारी, का तृप्ति, तत् सुखम्, शोभनानि गृहाणि, 'सुन्दर घर'। शोभनेभ्यो गृहेभ्य'—'सुन्दर घरो से'। शोभनाभ्यो वापीभ्य —सुन्दर कुओं से'। हरि पश्यन् मुच्यते। तात्पर्य यह कि संस्कृत में विशेषणों के रूप ठीक उसी प्रकार लिंग, वचन और कारक के कारण परिवर्तित होते हैं जैसे कि संज्ञा अथवा सर्वनाम के।

विशेष—संख्याबोधक विशेषण साधारण विशेषणों से भिन्न होते हैं। उनके प्रयोग के विशेष नियम हैं जो व्याकरण की पुस्तकों में मिलेंगे।

१६—जब विशेषणों का प्रयोग समानाधिकरण अथवा बहुव्रीहि समास में होता है, तब उनका मौलिक तथा अविकृत रूप ही प्रयुक्त होता है, जैसे कृष्ण-मृग —काला हिरन, रक्तनेत्रा—लाल नेत्र वाली, रूपवद्भार्या—खूबसूरत पत्नी, गृहीतधनु —लिया हुआ धनुष अन्यसक्तहृदयो नर —ऐसा मनुष्य जिसका हृदय किसी दूसरी (स्त्री) में लगा हो।

(क) उपर्युक्त नियम के कुछ अतिरेक भी हैं। जब स्त्रीलिंग विशेषण 'पारिभाषिक' या 'नाम' माना जाता है अथवा जब पूरणी-संख्या-वाचक स्त्रीलिंग विशेषण किसी समास का पूर्वपद होता है, अथवा जब पूर्वपद किसी वर्गविशेष [illegible] होता है तब स्त्रीलिंग का प्रत्यय लुप्त नहीं होता, बल्कि बना रहता [illegible] दत्ताभार्य, पञ्चमीभार्य, शूद्राभार्य सुकेशीभार्य, ब्राह्मणीभार्य।

है, तब कृत्प्रत्ययनिष्पन्न विशेषण उद्देश्य के अनुसार होता है (११ अनुच्छेद देखिए), जैसे 'मालविका उपायन प्रेषिता' (मालविका० १)—मालविका उपहार के तौर पर भेज दी गई।

२१—जब एक ही विशेषण दो या अधिक विशेष्यों की विशेषता बतलाता है तो विशेषण का वही वचन होता है जो कि सब विशेष्यों का इकट्ठा मिलकर होता है। रही लिंग की बात, जब विशेष्य पुलिंग और स्त्रीलिंग होंगे, तब विशेषण पुल्लिंग होगा। परन्तु जब विशेष्यों में पुलिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिङ्ग सभी मिले रहेंगे, तब विशेषण नपुंसकलिंग होगा, जैसे, 'पक्षपातिनौ अनयो अह देवी च' (मालविका० १)—मैं और रानी इन दोनों के पक्षपाती हैं। 'तस्मिन सत्य धृति ज्ञान तप शौच दम शम । ध्रुवाणि पुरुषव्याघ्रे लोकपालसमे नृपे' (महा० ३।५८।१०)—लोकपालों की समता करने वाले तथा मनुष्यों में श्रेष्ठ उस राजा में सत्य, साहस, ज्ञान, तपस्या, पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह, और शान्ति दृढ़ (रूप से वर्तमान) हैं।

विशेष—यह नियम पाणिनीय सूत्र १।२।७२ 'त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम्' के आधार पर बना है। इस पर एक यह वार्तिक है—"त्यदादित शेषे पुनपुम कतो लिंगवचनानि, सा च देवदत्तश्च तो, तच्च देवदत्तश्च यज्ञदत्ता च तानि, तच्च देवदत्तश्च ते।"

लैटिनभाषा में भी उपर्युक्त नियम की समता पाई जाती है। इस वाक्य को देखो '*Patermihi et mater mortui sunt*'—मेरे पिता और माँ मर गए।

२२—प्राय संस्कृत में विशेषण निकटतम विशेष्य के अनुरूप होता है जैसे, 'यस्य वीर्येण कृतिनो वयं च भुवनानि च' (उत्तर० २)—जिसकी वीरता से हम तथा तीनों लोक सुखी हैं, (यदि भुवनानि समीप होता तो 'भुवनानि कृतीनि' होता)। कामश्च जृम्भितगुणो नवयौवनं च (मालविका० ?)—कामदेव तथा नई युवावस्था दोनों ने अपनी-अपनी शक्ति प्रदर्शित की। यहां हम लोगों को "लिंगविपरिणाम" की विधि स्मरण रखनी चाहिए। लिंगविपरिणाम विधि का अर्थ यह हुआ कि जो दूसरा विशेष्य प्रयोग में आता है उसके अनुसार विशेषण का लिंग समझकर लगा लेना चाहिए।

सम्बन्धवाचक तथा सम्बन्धी का समन्वय

२३—संस्कृत में सम्बन्धवाचक सर्वनाम तथा उसके सम्बन्धी के सम्बन्ध में कोई विचित्र विशेषताएँ नहीं हैं। सम्बन्धवाचक सर्वनाम के लिंग, वचन और कारक उसके सम्बन्धी के लिंग, वचन और कारक के अनुसार होते हैं और सम्बन्धवाचक का जैसा भी सम्बन्ध उसके उपवाक्य के साथ होगा उसी सम्बन्ध द्वारा अथवा उसी सम्बन्ध के आधार पर सम्बन्धवाचक का कारक निर्णीत होगा। संस्कृत के अन्य सर्वनामों की भाँति सम्बन्धवाचक अकेला भी आ सकता है अथवा विशेषण के तौर पर भी। सम्बन्धवाचक सर्वनाम का जिस संज्ञा के साथ सम्बन्ध होता है, प्राय उसके पहिले ही वह आता है। अथवा सम्बन्धवाचक सर्वनाम अकेला आ सकता है और उससे सम्बन्ध रखने वाली संज्ञा संकेतवाचक सर्वनाम के साथ आ सकती है। कभी-कभी तो सम्बन्धवाचक से सम्बन्ध रखने वाली संज्ञा बिलकुल प्रकट ही नहीं की जाती, 'अन्तर्यो मृग्यते स स्थाणुर्वे नि श्रेयसायास्तु' (विक्रमो० १)—वह स्थाणु जो अन्त करण में खोजे जाते हैं तुम लोगों को सर्वोच्च सुख दें। 'बुद्धिर्यस्य बल तस्य' (पंच०१।६)—जिसके पास बुद्धि होती है उसके पास बल होता है। धिगस्मान् सर्वान् ये एकाकिना बहुना सह युध्यामहे—हम सबों को धिक्कार है जो अकेले लडके के साथ लड़ रहे हैं।

२४—जब सम्बन्धवाचक सर्वनाम का विधेय कोई ऐसा संज्ञा शब्द होता है जिसका लिंग उसके सम्बन्धी के लिंग से भिन्न होता है, तब सम्बन्धवाचक सर्वनाम साधारणतया विधेय के अनुरूप होता है, जैसे, 'शैत्य हि यत् सा प्रकृतिर्जलस्य' (रघु०५।५४)—क्योंकि जो शीतलता है वह जल का स्वाभाविक धर्म है। इसी प्रकार—मातुस्तु यौतक यत् स्यात् कुमारीभाग एव स (मनु०९।१३१)।

मेतद्विजयते द्विषतो यदस्य पक्ष्या (विक्रमो० १)—क्या वस्तुत: यह इन्द्र की वीरता नहीं है कि उसके मित्र पक्षवाले अपने शत्रुओं को हरा देते हैं। मम तु यदियं याता लोके विलोचन-चन्द्रिका। नयनविषयं जन्मन्येक: स एव महोत्सव (मालविका० १)—लेकिन मेरे नेत्रों की चाँदनी वह कन्या (या स्त्री) मेरे नेत्रों के विषय मे आई—यह बात मेरे सारे जीवन का एकमात्र सर्वश्रेष्ठ उत्सव है।

ऐसे प्रयोगों मे, प्रधान वाक्य मे सकेतवाचक सर्वनाम का लिग वही होता है जो कि सम्बन्धी सज्ञा (महोत्सव:) का। यदि यह कहा जाय कि 'यत्' नपुसक लिंग है इसलिए सकेतवाचक सर्वनाम भी नपुसकलिंग होना चाहिए तो ऐसा कहना ठीक नहीं।

अभ्यास

(क)

१—तयैव देवतया तयो कुशलवाविति नामनी प्रभावश्चाख्यात।
(उत्तर० २)।

२—यदेते चन्द्रसरोरक्षकास्त्वया नि:सारितास्तदनुचितं कृतम् (हित० ३)।

३—यस्मिन्नेवाधिक चक्षुरारोपयति पार्थिव।
अकुलीन कुलीनो वा स श्रियो भाजन नर (पच० १।८)।

४—कृता शरव्यं हरिणा तवासुरा।
शरासन तेषु विकृष्यतामिदम् (शा० ६)।

५—स सुहृद् व्यसने य स्यात् स पुत्रो यस्तु भक्तिमान्।
स भृत्यो यो विधेयज्ञ सा भार्या यत्र निर्वृति ॥ (पच० १।१५)

६—पाण्डवाश्च महात्मानो द्रौपदी च यशस्विनी।
कृतोपवासा कौरव्य प्रययु प्राङ्मुखास्तत ॥(महा० १७।१।२६)

७—धर्म कामश्च दर्पश्च हर्ष क्रोध सुख वय।
अर्थादेतानि सर्वाणि प्रवर्तन्ते न सशय ॥ (राम० ६।६२।३७)

८—उभावुमापार्वती शरजन्मना यथा यथा जयन्तेन शचीपुरन्दरौ।
तथा नृप सा च सुतेन मागधी ननन्दतुस्तत्सदृशेन तत्समौ (रघु० ३।२३)।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—धन्या सा याऽऽर्यपुत्रेण बहु मन्यते या चार्यपुत्र विनोदयत्याशानिबन्धन जाता [illegible]वन्दिन्द (उत्तर० ३) ।

२—सोऽयं पुनस्तव मन्नुचा वारणाना विजेता ।
दत्तान्तर वदनि तरणे भाजन तस्य जात (उत्तर० ३) ।

३—न प्रसाद[illegible] पादिर्दोत्ये बालेन पीडित ।
नाद न जनको नाग्निर्नानुवृत्तिर्न नतति (उत्तर० ७)

४—[illegible] देवी वाक्यैवानुवर्तने ।
उत्तर रामचरित तत्प्रणीत प्रयुज्यते ॥ (उत्तर० १) ॥

५—[illegible] रदना मोनकर्नयान् ।
[illegible] रणे हता ॥ (उत्तर० ७) ॥

६—[illegible] परावनथरादो ।
[illegible] नोऽस्य विभान ॥ (हित० १) ॥

७—[illegible] नयनयोरानन्दद चेतन
[illegible] सदो [illegible] तद्दुलमन् ।
[illegible] भन्नयदे प्रव्यानिनापावुना-
[illegible] तत्वनिकपग्रावा तु नेषा विपद् ॥ (हित० १) ।

८—[illegible] दत्तार्थस्तस्य बान्धवा ।

३—कल मैंने तीन सुन्दर झील, छः गहरे कुएँ, और छप्पन विशाल बगीचे देखे ।

४—जो अपने अपराध को छिपाने के लिये असत्य बोलता है वह दो अपराध करता है ।

५—तुम ऐसी बात कह रहे हो—यह आश्चर्य है ।

६—मनुष्य को सर्वदा पुण्यात्मा होना चाहिये—यह प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी दार्शनिकों का मत है ।

७—ये मीठे आम मेरे छोटे भाई द्वारा उपहार के तौर पर भेजे गये हैं (कृत्प्रत्ययनिष्पन्न विशेषण का प्रयोग कीजिये) ।

८—दुष्ट लोग पुण्यात्माओं से घृणा करें—यह तो उनका जन्मसिद्ध स्वभाव है ।

९—जो लोग प्रत्युत्पन्नमति होते हैं वे कठिनाइयों को पार कर सकते हैं ।

१०—इस घटना के कारण मैं उनकी ईर्ष्या का पात्र बन गया (जन् धातु-निष्पन्न विशेषण का प्रयोग कीजिये) ।

११—धैर्य, परिश्रम, और ईमानदारी सर्वदा प्रशंसनीय हैं, परन्तु जल्दबाजी, आलस्य, और विश्वासघात निन्दनीय हैं ।



द्वितीय भाग

कारक

तृतीय पाठ

कर्म कारक

२६—वाक्यों में शब्दों के व्याकरणात्मक मेल के नियामक सिद्धान्त को 'सम्बन्ध' कहते हैं। इस पाठ में इसी 'सम्बन्ध' का निरूपण होगा। किसी भी शब्द की उस शक्ति को सम्बन्ध कहते हैं जिसके द्वारा वह किसी संज्ञा या सर्वनाम शब्द के कारक की व्यवस्था करता है। इस भाग में जितने पाठ दिए जावेंगे उनमें इसी शक्ति की व्याख्या की जायगी और इसके उदाहरण दिए जावेंगे।

२७—किसी भी वाक्य में संज्ञा तथा क्रिया के बीच जो सम्बन्ध होता है उसे कारक कहते हैं। जिन शब्दों का क्रिया के साथ कोई भी सीधा सम्बन्ध नहीं होता उनके बीच चाहे जो भी सम्बन्ध हो, वह कारक नहीं कहलावेगा। संस्कृत में छः कारक होते हैं—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। "सम्बन्ध" को कारक नहीं कहते, इसीलिये इस सूची में 'सम्बन्ध' को स्थान नहीं दिया गया है। इन कारकों का बोध कराने वाली क्रमशः प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी और सप्तमी विभक्तियाँ हैं। परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि संस्कृत में 'कारक' और 'विभक्ति' पर्यायवाची शब्द नहीं हैं, प्रत्युत 'कारक' और 'विभक्ति' में बड़ा अन्तर है। साधारणतया लोग समझते हैं कि कर्ताकारक सर्वदा प्रथमाविभक्ति में रक्खा जाता है और जो शब्द प्रथमाविभक्ति में रक्खा दिखाई पड़े वह आवश्यक ही कर्ता कारक होगा। पर ऐसा समझना ठीक नहीं है।

कर्ताकारक होगा। उदाहरणार्थ, **रावणो रामेण हत**। यहाँ हननक्रिया का करनेवाला 'राम' है, पर वह प्रथमाविभक्ति में नहीं रक्खा गया है, बल्कि तृतीयाविभक्ति में रक्खा गया है। इसी प्रकार, हननक्रिया का वास्तविक कर्म 'रावण' है, पर वह द्वितीयाविभक्ति में नहीं रक्खा गया है, बल्कि प्रथमा विभक्ति में रक्खा गया है।

'कर्ता' का अर्थ है 'करने वाला'। सस्कृत में **प्रथमाविभक्ति** केवल नाम बताने के लिए प्रयोग में लाई जाती है। पाणिनीय सूत्र २। ३। ४६। **'प्रातिपदिकार्थलिंग-परिमाणवचनमात्रे प्रथमा'** के अनुसार प्रथमा का प्रयोग केवल किसी शब्द का मूलरूप, लिंग, वजन, और वचन बतलाने के लिये होता है; जैसे, **नीचैं, कृष्ण, श्री, ज्ञानम्, तट, तटी, तटम्, द्रोणो, व्रीहि, एक, द्वौ वहव, इत्यादि**।

टिप्पणी—सस्कृत में अनेक अव्यय शब्द ऐसे हैं जिनके योग में किसी न किसी विभक्ति का प्रयोग होता है। ऐसी दशा में उन विभक्तियों को **उपपदविभक्ति** अर्थात् अव्ययसम्बद्ध विभक्ति कहते हैं। ये **उपपदविभक्तियाँ** **कारकविभक्तियों** से भिन्न हैं। **कारकविभक्ति** उसे कहते हैं जो किसी सज्ञा या सर्वनाम का सीधा सम्बन्ध किसी क्रिया के साथ बतावे। **उपपदविभक्ति** के उदाहरण **"नमो नृसिंहाय, मामन्तरा, ग्रामादुत्तरम्"** इत्यादि हैं। जहाँ दोनों प्रकार की विभक्तियाँ प्रयुक्त हो सकती हैं वहाँ उपपदविभक्ति न आकर कारक-विभक्ति ही प्रयोग में आती है (**उपपदविभक्ते कारकविभक्तिर्बलीयसी**)।

२८—जिस पुरुष या वस्तु के ऊपर किसी क्रिया का फल या प्रभाव पड़ता है वह उस क्रिया का कर्म कहलाता है। कर्मवाच्य को छोड़कर शेष सभी स्थलों पर कर्म द्वितीयाविभक्ति में रक्खा जाता है, जैसे, *स हरिमपश्यत्*—उसने हरि को देखा। **ओदन बुभुक्षु विष भुङ्क्ते** (सि० कौ०)—भात खाने की इच्छा करता हुआ जहर खाता है। यहाँ 'अपश्यत्' क्रिया का कर्म *हरिम्* तथा 'भुङ्क्ते' क्रिया का कर्म *विषम्* है, परन्तु *हरि मेव्यते* में मेव्यने पद क्रिया और कर्म के उस सम्बन्ध को बता रहा है जो कि हरि और सेव्य के बीच में है। इसीलिए हरि को द्वितीयाविभक्ति में रखने की आवश्यकता नहीं। परन्तु *हरि सेव्यते* में कर्मवाच्य का प्रत्यय नहीं है, इसलिए सज्ञाशब्द हरि द्वितीयाविभक्ति में रक्खा गया है।

२६—नाम धराना, चुनना, बनाना, नियुक्त करना, निर्वाचित करना, पुकारना, जानना, समझना इत्यादि अर्थों का बोध कराने वाली क्रियाएँ दो कर्म लेती हैं जिनमें एक प्रत्यक्ष कर्म होता है और दूसरा अप्रत्यक्ष, जैसे त्वामामनन्ति प्रकृतिम् (कुमार० २।१३)—वे लोग तुम्हें प्रकृति समझते हैं। कामपि गणिकामवरोधमकरोत्—किसी वेश्या को अपनी स्त्री बना लिया (दशकु० २।६)। जानामि त्वा प्रकृतिपुरुषम् (मेघ० ६)—मैं तुम्हें प्रधान पुरुष समझता हूँ।

३०—गत्यर्थक धातुओं के योग में द्वितीया होती है, जैसे, गतोऽहं कामदेवायतनम् (मालती० १)—मैं कामदेव के मन्दिर में गया था। अहमपि महीमटन् (दशकु० २।२)—मैं भी पृथ्वी पर भ्रमण करता हुआ। यमुनाकच्छमवतीर्णः (पञ्च० १।१)—यमुना के तट को गया। इसी प्रकार विचचार दावम् (रघु० २।८)। परन्तु जहाँ वास्तविक गति नहीं होती, केवल गति की कल्पना की जाती है, वहाँ गति का भाव अनेक मुहावरों द्वारा व्यक्त किया जाता है। जैसे 'परं विषादमगच्छत्' (पञ्च० १।१)—महान् शोक को प्राप्त हुआ। अश्वत्थामा किं न यातः स्मृतिं ते (वेणी० ३)—क्या अश्वत्थामा तुम्हारे द्वारा स्मरण नहीं किया गया था। पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम (कुमार० १।२६)—सुन्दर मुखड़े वाली वह भी पीछे से उमा नाम से विख्यात हुई। ऐसे ही नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके (पञ्च० १।२), न धर्षणमायया (रघु० ३।३)।

३१[1]—अधि उपसर्गपूर्वक 'शी' 'स्था' तथा 'आस्' धातुओं के योग में आधारवाचक स्थान या वस्तु में द्वितीया होती है, जैसे, चन्द्रापीडो मुक्ताशिलापट्टमधिशिश्ये (कादम्० २०६)–चन्द्रापीड मोती की पटरी पर सो गया। अर्धासन गोत्रभिदोऽधितष्ठौ (रघु० ६।७३)—इन्द्र के आधे आसन पर बैठता था। अध्यास्य पर्णशालाम् (रघु० १।९५)—पत्तियों की बनी हुई झोपड़ी में लेटकर।

(क)[2] अभि तथा नि पूर्वक 'विश' धातु का आधार कर्मकारक होता है, जैसे, अभिनिविशते सन्मार्गम्—(सि० कौ०) वह अच्छे मार्ग का आश्रय लेता है। भय तावत्सेव्यादभिनिविशते सेवकजनम् (मुद्रा० ५)।

३२[3]—उप, अनु, अधि अथवा आ पूर्वक 'वस्' (निवास करना धातु का) आधार कर्मकारक होता है, जैसे, उपवसति वैकुण्ठ हरि, अनुवसति वैकुण्ठ हरि., आवसति वैकुण्ठ हरि, अधिवसति वैकुण्ठ हरि (सि० कौ०)—हरि वैकुण्ठ में रहते हैं।

३३[4]—उभयत, सर्वत, धिक्, उपर्युपरि, अधोध, अध्यधि, इन शब्दों की जिससे सन्निकटता पाई जाती है उसमे द्वितीया होती है, जैसे, उभयत. कृष्ण गोपा (सि० कौ०)—कृष्ण के दोनो तरफ ग्वाले हैं। सर्वत कृष्णम्—कृष्ण के सब तरफ। उपर्युपरि लोक हरि —हरि ससार के ठीक ऊपर हैं। अधोऽधो लोकम्—ससार के ठीक नीचे। धिग्जाल्मान् (उत्तर० ५)—बदमाशों को धिक्कार है। न मे मशीतिरस्या दिव्यता प्रति (कादम्० १३२)—उस स्त्री के स्वर्गीय होने के विषय मे मुझे बिल्कुल सन्देह नहीं है। इसी प्रकार, बुभुक्षित न प्रतिभाति किञ्चित् (म० भा०)। जब सन्निकटता नहीं पायी जाती तब षष्ठी का प्रयोग किया जा सकता है, जैसे, उपर्युपरि सर्वेषामादित्य इव तेजसा (महा०)—सूर्य के समान अपनी कान्ति के कारण सब से बढ़कर अथवा सब मे ऊँचे।

(क) कभी-कभी धिक् के योग में प्रथमा अथवा सम्बोधन का प्रयोग

१—अधिशीङ्स्थासां कर्म (१।४।४६)

२—अभिनिविशश्च (१।४।४७)

३—उपान्वध्याङ्वसः (१।४।४८)

४—उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।
द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ॥ (वार०)

होता है, जैसे, धिङ् मूढ—ऐ मूर्ख, धिक्कार है। धिगिय दरिद्रता (पञ्च० २)—इस गरीबी को धिक्कार है।

३४[1]—अभितः (चारों ओर), परितः (चारों ओर), समया, निकषा (पास या सन्निकट), हा (धिक्कार है या विपत्ति पड़े) और प्रति (तरफ या ओर) के योग में द्वितीया होती है, जैसे, परिजनो राजानमभितः स्थितः (मालविका० १)—नौकर राजा के चारों ओर खड़े हो गए। रक्षांसि वेदी परितो निरास्थत् (भट्टि० १।१२)—वेदी के चारों ओर बैठे हुए राक्षसों को नष्ट कर दिया। ग्रामं समया—निकषा (सि० कौ०)—गांव के निकट। ऐसे ही निकषा सौधभित्तिम् (दशकु०), पयोधिं विलङ्घ्य लङ्कां निकषा हनिष्यति (शिशु० १।६८)। हा कृष्णाभक्तम् (शिशु०)—जो कृष्ण का भक्त नहीं है उसके ऊपर विपत्ति पड़े।

कभी-कभी 'हा' के योग में सम्बोधन का प्रयोग होता है, जैसे, 'हा भगवत्यरुन्धति' (उत्तर० १)—हाय भगवती अरुन्धती।

३५[2]—अन्तरेण (जिस का अर्थ होता है 'बिना' 'छोड़कर', 'बारे में) के योग में भी द्वितीया आती है, जैसे, कोऽन्यस्त्वामन्तरेण शक्तः प्रतिकर्तुम् (वेणीसं० ३)—तुम्हें छोड़कर दूसरा कौन बदला लेने में समर्थ है। भवन्तमन्तरेण कीदृशोऽस्या दृष्टिरागः (शा० २)—आप के बारे में इसके नेत्रों का प्रेम कैसा है?

(क) इसी प्रकार अन्तरा (बीच में) के योग में भी द्वितीया होती है; जैसे अन्तरा त्वां च मां च कमण्डलुः (महा०)। पाञ्चालास्तव पश्चिमेन त इमे वामा गिरा भाजना, त्वद्दृष्टेरतिथीभवतु यमुना त्रिस्रोतसं चान्तरा (बा० रा० १०)।

३६—जितने समय तक अथवा जितनी दूरी तक कोई क्रिया होती रहे या कोई [illegible] लगातार किसी विशेष प्रकार की हो तो समय-वाचक तथा मार्गवाचक [illegible] में द्वितीया होती है, जैसे, न ववर्ष वर्षाणि द्वादश दशशताक्षः (दशकु०

१—अभितः परितः समया निकषा हा प्रति योगेऽपि। (वार्तिक)
२—अन्तरान्तरेण युक्ते २।३।४।

२।६)—सहस्र नेत्रवाले इन्द्र बारह वर्ष तक नहीं बरसे। क्रोश कुटिला नदी (सिद्धान्त०)—नदी कोस भर टेढ़ी-मेढ़ी बही है। सभा वैश्रवणी राजन् शतयोजनमायता (महा० २।१०।८)—हे राजन्, विश्रवण की सभा १०० योजन लम्बी है।

३७—कभी कभी अनु (पीछे, फलस्वरूप, किसी के द्वारा प्रकट की हुई, मिलती-जुलती हुई अर्थ में) के योग में द्वितीया होती है, जैसे, जपमनु-प्रावर्षत् (सिद्धान्त०)—जप के बाद वर्षा हुई। सर्वं मामनु ते (विक्रमो० ४) —तेरी प्रत्येक वस्तु मुझसे मिलती-जुलती है।

विशेष—पाणिनि ने अभि, उप, अनु और अति को कर्मप्रवचनीय कहा है। कर्मप्रवचनीय का अर्थ है 'ऐसे उपसर्ग जो स्वतः अर्थात् किसी भी क्रिया के साथ में आए बिना ही प्रयोग में आते हैं और जिनके योग में द्वितीया आती है।' अभि—पूर्व, पेश्तर, बिल्कुल समीप में। उप—निकट, घट कर। अनु—बगल में, किनारे-किनारे, घटिया। अति—बढ़ कर। जैसे, भक्तो हरिमभि (भक्त हरि के बिल्कुल समीप है)। उप हरिं सुरा (देवता लोग हरि से घट कर हैं अथवा हरि के समीप हैं)। अति देवान् कृष्णः (कृष्ण देवताओं से बढ़कर हैं)। नदीमन्ववसिता सेना (सेना नदी के किनारे टिकी है)। अनु हरिं सुराः (सिद्धान्त०) देवता लोग हरि से छोटे हैं।

अभ्यास

१—वारिणीभूतवारिण्योर्भव भर्ता शरच्छतम् (मालविका० ५)।

२—बिन्दूत्क्षेपान् पिपासुः परिपतति शिखी भ्रान्तिमद्वारियन्त्रम् (मालविका० २)।

३—मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरगमनं प्रति (शा० १)।

४—एषा मे मनोरथप्रियतमा सकुसुमास्तरणं शिलापट्टमधिशयाना सखीभ्यामन्वास्यते (शा० ३)।

५—सागरं वर्जयित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति। क इदानीं सहकार-मन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लविनीं सहते (शा० ३)।

६—स राजर्षिरिमानि दिवसानि प्रजागरकृशो लक्ष्यते (शा० ३)।

७—धिङ् मामुपस्थितश्रेयोऽवमानिनम् (शा० ३)।

८—धिगिमां देहभृतामसारताम् (रघु० ८।५१)।

९—इष्टान् देशान् विचर जलद प्रावृषा सम्भृतश्री (मेघ० ११८)।

१०—कृतकार्यमिदं दुर्गं वनं व्यालनिषेवितम्।
यदभ्यास्ते महाराजो रामः शस्त्रभृतां वरः (रामा० २।६८)।

११—धिक् प्रहसनम्। अयमृष्यशृङ्गाश्रमादरुन्धतीपुरस्कृतान् महाराज-दशरथस्य दारानधिष्ठाय भगवान् वसिष्ठः प्राप्तः। तत्किमेवं प्रलपसि (उत्तर० ४)।

१२—तत्र च निखिलधरणितलपर्यटनखिन्नस्य निजबलस्य विश्रामहेतोः कतिपयान् दिवसानतिष्ठत्। (कादम्० ११६)।

१३—अन्यां वेलायां किं नु खलु मामन्तरेण चिन्तयति वैशम्पायन इति चिन्तयन्नेव स निद्रां ययौ (कादम्० १७८)।

१४—अमी वेदीं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्ण-दर्भाः।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धैर्वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु (शा० ४)।

१५—शक्रस्य दिव्या सभा—
विस्तीर्णा योजनशतं शतमध्यर्धमायता।
वैहायसी कामगमा पञ्चयोजनमुच्छ्रिता (महा० २।७।३)।

१६—रक्ष्या रघुप्रतिनिधिः स नवोपकार्याम्।
बाल्यात्परामिव दशां मदनोऽध्युवास (रघु० ५।६३)।

१७—तस्य पुत्रो महातेजाः सम्प्रत्येष पुरीमिमाम्।
आवसत्परमप्रख्यः सुमतिर्नाम दुर्जयः (रामा० १।४७।१७)

१८—तेन तामनु सन्निवेश सुप्तोत्थिता प्रातरनूदतिष्ठत्। (रघु० २।२४)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

३—भावप्रेषिता हि स्वगृहान्महाराजेन लङ्कासमरसुहृदो महात्मानः प्लवगराक्षसा नानादिग्गतागता ब्रह्मर्षयो राजर्षयश्च येषामाराधनायैयतो दिवमानुत्सव आसीत् (उत्तर० १)।

४—विवक्षता दोषमपि च्युतात्मना त्वयैकमीशं प्रति साधु भाषितम् (कुमार० ५।८१)

५—धिग्विधातारमसदृशसंयोगकारिणम् (कादम० १२)।

६—आर्य, आर्य, प्रणिपत्य देवश्चन्द्रगुप्तो विज्ञापयति क्रियान्तरान्तरायमन्तरेणार्यं द्रष्टुमिच्छामीति (मुद्रा० ३)।

७—मन्दोऽप्यमन्दतामेति संसर्गेण विपश्चितः ।
पङ्कच्छिदः फलस्येव निकषेणाविलं पयः ॥ (मालविका०) २।

८—भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहम् (मेघ० १०२।)

९—अथाधिशिश्ये प्रयतः प्रदोषे रथं रघुः कल्पितशस्त्रगर्भम् (रघु० ५।२८)।

१०—मनुष्यवाह्यं चतुरस्रयानमध्यास्य कन्या परिवारशोभि
विवेश मञ्चान्तरराजमार्गं पतिंवरा क्लृप्तविवाहवेषा (रघु० ६।१०)।

११—अभिन्यविक्षथास्त्वं मे यथैवाव्याहतं मनः ।
तथाप्यव्यावमन्ता मा मा रौत्सीर्हृदयं तथा (भट्टि० ८।८०)।

१२—अर्थानामर्जने दुःखमर्जितानां च रक्षणे ।
आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थाः कष्टसंश्रयाः (पञ्च० १।४)।

१३—हा हा धिक् परगृहवासदूषणं यद्वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः । एतत् तत्पुनरपि दैवदुर्विपाकादालर्कं विषमिव सर्वतः प्रसृतम् (उत्तर० १)।

१४—यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बन्धवो मे
यानि प्रियासहचरश्चिरमध्यवात्सम् ।
एतानि तानि बहुनिर्झरकन्दराणि
गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि (उत्तर० ३)।

१५—को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशस्तथा
यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम् ।
यद् दंष्ट्रानखलाङ्गुलप्रहरणः सिंहो वनं गाहते
तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्ररुधिरैस्तृष्णां छिनत्त्यात्मनः (पञ्च० १)।

१६—धिक् सानुजं कुरुपतिं धिगजातशत्रुं
धिग्भूपतीन् विफलशस्त्रभृतो धिगस्मान् ।
केशग्रहः खलु तदा द्रुपदात्मजाया
द्रोणस्य चाद्य लिखितैरिव वीक्षितो यैः ॥
(वेणी० ३)।

१७—[illegible] सा तामरसानि [illegible]
(रघु० १०।८२)।

१८—प्रमदामनु संस्थितः शुचा नृपतिः सन्निति वाच्यदर्शनात् ।
न चकार शरीरमग्निसात् सह देव्या न तु जीविताशया ॥
(रघु० ८ । ७२) ।

संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

१—पत्नी को सदा पति की इच्छानुगामिनी होना चाहिए ।

२—यह एक दूसरा पुरुष एक दूसरे कार्य के विषय में हम लोगों की सेवा करने के लिए आ रहा है ।

३—जब उस कन्या से बहुत जोरों से अनुरोध किया गया तब उसने उस स्त्री से तुम्हारी अशिष्टता (वैधात्य) बता दी ।

४—पुष्पपुर शहर के चारों ओर एक सुन्दर उद्यान है ।

५—हाय मेरा दुर्भाग्य ! कहा जा रहा है कि मेरा इकलौता पुत्र भी मर गया ।

६—उसने तीन वर्ष और पचहत्तर दिन न्याय पढ़ा और अब उसमें निपुण हो गया ।

७—अवन्ती के चारों ओर दो मील तक सुन्दर बगीचे दिखाई पड़ते हैं ।

८—क्या वह अभी तक होश में नहीं आई ? मैं समझता हूँ कि उत्कृष्टतर उपचार के प्रयोग के बिना यह असम्भव है ।

९—मेरे अतीत साहसपूर्ण वृत्तान्तों के बारे में मणिपुर के निवासी क्या सोचेंगे ?

१०—हम लोगों को उचित जान पड़ता है कि अब हम लोग अपने वादविवाद के विषय की ओर फिर आवें ।

११—जो लोग स्वार्थ के बिना ही दूसरों को सताना चाहते हैं उन्हें धिक्कार है ।

१२—जो लोग अनीति के मार्ग का अनुसरण करते हैं उनके ऊपर विपत्ति पड़े ।

१५—जब वह फिर से होश में आ गई तब उसने अपने मरे हुए भाई का शरीर जला दिया और सारी रात एक चटाई पर सोई रही।

१६—नाग अब पाताल में रहती है (अधि+स्था) जिसके दरवाजे बड़े-बड़े साँपों द्वारा सुरक्षित हैं।

१७—आम्रमंजरियों के अस्तित्व के बिना वसन्त ऋतु सुन्दर नहीं प्रतीत होता।

१८—उस युवा ऋषि के प्रस्थान के अनन्तर तुमने मुझसे जो कुछ कहा था वह मुझे स्मरण नहीं।

१९—क्या तुम लोग कहते हो कि तुम्हारे महाराज को छोड़ कर कोई क्षत्रिय नहीं है। तुम सबों को धिक्कार है। देखो मैं तुम्हारा झंडा अपहरण कर रहा हूँ। यदि इसे बचा सकते हो तो बचाओ।

———

शब्द को भी जिस पर क्रिया का प्रभाव पड़ता है द्वितीया विभक्ति में रखते हैं जैसे, गां दोग्धि पयः (सि० कौ०)—गाय से दूध दुहता है। बलिं याचते वसुधाम् (सि० कौ०)—बलि से पृथ्वी माँगता है। इसी प्रकार तण्डुलान् ओदनं पचति, गर्गान् शतं दण्डयति, व्रजमवरुणद्धि गाम्, माणवकं पन्थानं पृच्छति, वृक्षमवचिनोति फलानि, माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति, शतं जयति देवदत्तम्, सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति, देवदत्तं शतं मुष्णाति, ग्रामम् अजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा अन्य द्विकर्मक धातुओं के क्रमशः उदाहरण ये हैं—माणवकं धर्मं भाषते वक्ति वा। बलिं वसुधां भिक्षते। तां त्वा संवरणस्यार्थे वरयामि विभावसो (महा० १। १७१।२१) इसी प्रकार के कर्म कारक के उदाहरण हैं, क्योंकि भाष या वच् और भिक्ष् या वृ के वही अर्थ हैं जो उपरोक्त कारिका में दिये गए ब्रू और याच् धातुओं के दिए गए हैं।

विशेष—चि, मुष्, पच्, मथ्, रुध्, जि, कृष्, हृ और वह् धातुएँ संस्कृत साहित्य में द्विकर्मक के रूप में बहुत कम प्रयोग में आती हैं।

४०—ऊपर लिखी हुई धातुएँ तथा उनके समान अर्थ रखने वाली धातुएँ दो कर्म लेती हैं। उनमें से एक मुख्य कर्म कहलाता है और दूसरा गौण। पहिली बारह धातुओं (दुह् से लेकर मुष् तक) के योग में जो पयः, वसुधाम् फलानि, सुधाम् इत्यादि आए हैं वे मुख्य कर्म हैं। गाम, बलिम, वृक्षम क्षीरनिधिम् इत्यादि गौण कर्म हैं क्योंकि वे वक्ता की इच्छा के अनुसार दूसरे कारकों में रक्खे जा सकते हैं। अन्तिम चार धातुओं के योग में जो अजाम् और ग्रामम् आए हैं उनमें अजाम् मुख्य कर्म है और ग्रामम् गौण कर्म है। सारांश यह कि जो शब्द क्रिया का अर्थ पूरा करने के लिए अनिवार्य रूप से द्वितीया में रक्खा जाता है वह मुख्य कर्म है और जो वक्ता की इच्छा के अनुसार द्वितीया में रक्खा जाता है वह गौण कर्म है।

४१[1]—ऊपर कही हुई द्विकर्मक धातुओं का कर्मवाच्य बनाने में दुह् से लेकर मुष् तक की प्रथम बारह धातुओं के गौण कर्म और अन्तिम चार [illegible]

१—गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम्। [illegible] ॥ ([illegible])
(विभक्ति प्रथमा [illegible])

अर्थात् नी, हृ, कृष्, वह् के प्रधान कर्म प्रथमा में रक्खे जाते हैं, शेष कर्म वैसे ही रहते हैं जैसे कर्तृवाच्य में,

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
स धेनु पयो दोग्धि।	तेन धेनु· पयः दुह्यते।
देवा समुद्र सुधा ममन्थु।	देवै समुद्र. सुधा ममन्थे।
सोऽजा ग्राम नयति, हरति, कर्षति, वहति वा।	तेन अजा ग्राम नीयते, ह्रियते, कृष्यते, उह्यते वा।

अभ्यास

१—आज्ञप्तास्मि देव्या धारिण्या अचिरप्रवृत्तोपदेश चलित नाम नाट्यमन्तरेण कीदृशी मालविकेति नाट्याचार्यमार्यगणदास प्रष्टुम्। (मालविका० १)।

२—एतत्र भवतीरावती देवी सुख प्रष्टुमागता। (मालविका०४)।

३—महाश्वेता कादम्बरीमनामय पप्रच्छ। (कादम्० १६२)।

४—हिमालय सर्वशैला वत्स परिकल्प्य
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च।
पृथूपदिष्टा दुदुहुर्धरित्रीम्। (कुमार० १। २)

५—सकल्पितार्थे विवृतात्मशक्तिमाखण्डल काममिद बभाषे। (कुमार० ३।११)

६—सोऽर्थं तृष्णातुरैर्वृष्टि विद्युत्वानिव चातकै।
अरिविप्रकृतै देवै पसूति प्रति याचित ॥ (कुमार० ६।२७)

७—किमत्र चित्र यदि कामसूर्भूर्वृत्ते स्थितस्याधिपते. प्रजानाम्।
अचिन्तनीयस्तु तव प्रभावो मनीषित द्यौरपि येन दुग्धा ॥
(रघु० ५। ३३)।

८—अथ रम्यमना रघोन्मुख शिरसा वेष्टनशोभिना सुत।
पितर प्रणिपत्य पादयोरपरित्यागमयाचतात्मन ॥
(रघु० ८। १२)।

९—अथ देवा सुरा सर्वे देवसार्थन्दिदीर्षया।

शैलेन्द्र वरयामासुर्गंगा त्रिपथगां नदीम् ॥

(रामा० १ । ३५ । १६)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—तमातिथ्यक्रियाशान्तरथ-क्षोभ-परिश्रमम् ।
पप्रच्छ कुशलं राज्ये राज्याश्रममुनिं मुनिः ॥ (रघु० १ । ५८)

२—स क्रमेण जन्मभूमिं जातिं विद्यां कलत्रमपत्यानि विभवं वयः प्रमाणं प्रव्रज्याकारणं च स्वयमेव पप्रच्छ चन्द्रापीडः (कादम्० २२८)।

३—कौशिकेन स किल क्षितीश्वरो राममध्वरविघातशान्तये ।
काकपक्षधरमेत्य याचितस्तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते ॥ (रघु० ११ । १)

४—तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ (श्रीमद्० २ । १)

५—भर्तुस्तथा कलुषिता बहुवल्लभस्य
मार्गं कथञ्चिदवतार्य तनुभवन्तीम् ।
सर्वात्मना रतिकथाचतुरेव दूती
गङ्गां शरन्नयति सिन्धुपतिं प्रसन्नाम् । (…)

६—तामायुष्मन्मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं
ब्रूया एवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः ।
अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तः
पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव ॥ (मेघ० १०१)

७—सोऽपृच्छल्लक्ष्मणं सीतां याचमानः शिवं सुरान् ।
राम यथास्थितं सर्वं भ्राता ब्रूते स्म विह्वलः ॥
मन्दस्य शरणं गन्तुं भिन्नगात्रो वनं प्रियाम् ॥
प्राणान्दुदुह्विवात्मानं शोकं चित्तमवारुधत् ।
गता स्यादवचिन्वाना कुसुमान्याश्रमद्रुमान् ।
आ यत्र तापसान् धर्मं सुनाद्दग शान्ति तत्र सा ॥ (भ० …)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए :—

१—मैंने उससे दस प्रश्न पूछे परन्तु उसने उनमें से एक का भी उत्तर न दिया ।

२—जो वर्णी पुरुष बहुत उदार कहा जाता था उससे भिखारी ने रुपए माँगे ।

३—राजा ने अपराधी पर तीन सौ साठ रुपए जुर्माना किये ।

४—[illegible] इन शिष्यों को न्याय और व्याकरण के सिद्धान्त सिखाता है ।

५—नौकर का अपराध क्षमा करने के लिए मन्त्री द्वारा राजा से प्रार्थना की गई ।

६—वह मुझसे कहता है (ब्रू) कि गोपाल ने अपनी गाएँ दुह ली हैं ।

७—महाशय जी, मेरे द्वारा आप से आप का नाम और वंश पूछा गया था, न कि यह कि आप के पास कितना धन है ।

८—क्षीरसागर से चौदह रत्न मथे गए थे ।

९—गड़रिया सब भेड़ों को बाजार ले गया और उन्हें बेच दिया ।

१०—कल गाएँ मेरी सबसे छोटी पुत्री द्वारा दुही गई थीं ।

११—जनता लोग ब्रह्मा के पास गए और उनसे एक ऐसा पुरुष माँगा जो तारकासुर से उनकी रक्षा करे ।

पञ्चम पाठ

प्रेरणार्थक (णिजन्त)

४२—"किसी धातु का प्रेरणार्थक रूप यह द्योतित करता है कि कोई व्यक्ति या वस्तु किसी दूसरे व्यक्ति या वस्तु से वह कार्य कराता है जो कि उस धातु से सूचित होता है"—डाक्टर कीलहोर्न का व्याकरण (सेक्शन ४१६)। उदाहरणार्थ—गम्-'जाना'--गच्छति—'जाता है। गमयति—'जाने को प्रेरित करता है।
अश्-'खाना'—अश्नाति—'खाता है'—आशयति—खाने को प्रेरित करता है।

४३—धातु की सादी दशा में जो कर्ता होता है, वह प्रेरणार्थक दशा में तृतीया में रक्खा जाता है, और कर्म म कोई परिवर्तन नहीं होता, जैसे—

सादी दशा	प्रेरणार्थक दशा
देवदत्त ओदन पचति	(स) देवदत्तेन ओदन पाचयति।
(देवदत्त भात पकाता है)	(वह देवदत्त से भात पकवाता है)
रामो भार्यां त्यजति	(स) रामेण भार्यां त्याजयति।
(राम अपनी पत्नी को छोड़ते हैं)	(वह राम से उनकी स्त्री छुड़वाता है)

४४[1]—गत्यर्थक, बुद्ध्यर्थक या ज्ञानार्थक या कुछ भक्षणार्थक तथा इसी अर्थ को व्यक्त करने वाली अन्य धातुओं में, जिनका कर्म कोई 'शब्द' या 'साहित्यिक विषय' हो, उन धातुओं में, और अकर्मक धातुओं में, जो सादी दशा में कर्ता रहता है वह प्रेरणार्थक अथवा णिजन्त दशा में कर्म हो जाता है, परन्तु कर्म में कोई परिवर्तन नहीं होता, जैसे,

---

१—गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ।
[[illegible] वेदार्थ [illegible]। [illegible]]।
२—ये उदाहरण निम्न [illegible]।

सादारूप	प्रेरणार्थक रूप
शत्रव स्वर्गमगच्छन्	शत्रून् स्वर्गमगमयन्
ने वेदार्थम् अविदु	स्वान् वेदार्थमवेदयत्
देवा अमृतमाश्नन्	देवानमृतमाशयन्
विधिर्वेदमध्यैत	विधिं वेदमध्यापयत्
पृथ्वी सलिले आसत	पृथ्वी सलिले आसयत्

परन्तु गमयति रामो गोविन्दम् में यदि कोई दूसरा व्यक्ति (विष्णुमित्र) राम से ऐसा कराने की प्रेरणा करता है, तब वाक्य यों होगा—विष्णुमित्रो रामेण गोविन्द गमयति—विष्णुमित्र राम को प्रेरित करता है कि वह गोविन्द को जाने के लिए कहे। यहाँ राम द्वितीया में नहीं रक्खा गया, क्योंकि वह प्रेरणार्थक क्रिया का कर्ता है, न कि सादी क्रिया का।

टिप्पणी—गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ सूत्र में आए हुए 'शब्दकर्म' का अर्थ करते हुए महाभाष्यकार पतञ्जलि ने यह व्याख्या लिखी है। 'शब्दकर्म' का अर्थ या तो यह हो सकता है कि 'शब्दो येषा क्रिया' "शब्दो येषा कर्म।" यदि पहला अर्थ लिया जाय तो ह्वयति (ह्वे), क्रन्दति (क्रन्द्) और शब्दायते (शब्द से निष्पन्न नामधातु) धातुएँ इस नियम में से निकल जायँगी, जैसे ह्वयति देवदत्त—ह्वाययति देवदत्तेन। क्रन्दति-शब्दायते-देवदत्त—क्रन्दयति शब्दाययति देवदत्तेन। साथ ही, 'श्रु' धातु, वि पूर्वक 'ज्ञा' धातु तथा उप पूर्वक 'लभ्' धातु इस नियम में आ जायँगी, जैसे, शृणोति-विजानाति-उपलभते-देवदत्त—श्रावयति-विज्ञापयति-उपलम्भयति-देवदत्तम्। यदि दूसरा अर्थ को अपनाया जावे तो 'जल्प्' धातु, आ पूर्वक 'भाष्' धातु और वि पूर्वक 'लप्' धातु आदि इस नियम के अन्तर्गत आवेंगी। जल्पति-विलपति-आभाषते-देवदत्त—जल्पयति-विलापयति-आभापयति-देवदत्तं।

१५—इस नियम के अनेक अपवाद और प्रतिप्रसव हैं जो बहुत ही [illegible]—

(क)[1] 'नी' रास्ता दिखाना, ले जाना और 'वह्' ढोना या ले जाना धातुओं का 'कर्ता' प्रेरणार्थक अथवा णिजन्त प्रयोग द्वितीया में नहीं रखा जाता प्रत्युत तृतीया विभक्ति में रखा जाता है जैसे,

भृत्यो भार नयति वहति वा | भृत्येन भार नाययति वाहयति वा।
नौकर भार ले जाता है [सिद्धान्त] (वह) नौकर से भार ढोवाता है,

लेकिन 'वह्' के योग में यदि णिजन्त कर्ता ऐसा कोई शब्द हो जिसका अर्थ वाहक हो तो सामान्य नियम ही लागू होगा, जैसे,

वाहा रथ वहन्ति	सूतो वाहान रथ वाहयति। (सिद्धान्त)
घोड़े रथ खींचते हैं।	सारथी घोड़ो को रथ खींचने को प्रेरित करता है।
वहन्ति यवान् बलीवर्दा।	वाहयति यवान बलीवर्दान (म० भा०)

(ख)[2] 'अद्' धातु और 'खाद्' धातु के प्रेरणार्थक प्रयोग मे णिजन्तकर्ता तृतीया विभक्ति मे होती है, जैसे,

वटुरन्नमत्ति खादति वा | वटुनाऽन्नमादयति खादयति वा
लड़का अन्न खाता है। (वह) लड़के से अन्न खिलवाता है।

(ग)[3] जब भक्ष् धातु का अर्थ 'हिंसा करना' नहीं होता तो उसके योग में तृतीया होती है, जैसे, भक्षयति पिंडीं देवदत्त, भक्षयति पिंडीं देवदत्तेन परन्तु भक्षयन्ति यवान् बलीवर्दा, भक्षयति बलीवर्दान यवान (म० भा०)

(घ) विशिष्ट प्रकार के ज्ञान या अनुभूति को बोध कराने वाली 'स्मृ' और 'घ्रा' जैसी धातुओं का प्रयोग द्वितीया के साथ नहीं होता, जैसे, स्मरति-जिघ्रति देवदत्त., स्मारयति-घ्रापयति देवदत्तेन।

परन्तु कभी-कभी 'स्मृ' धातु के योग मे द्वितीया का भी प्रयोग होता है विशेषकर उस दशा मे जब कि 'स्मृ' का अर्थ होता है 'किसी के विषय में सोचना" या "पश्चात्तापपूर्वक किसी को याद करना', जैसे, अपि चन्द्रगुप्तो।

---

१ नीवह्योर्न (वार्तिक) नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः।
२—आदिखाद्योर्न (वार्तिक)
३—भक्षेरहिंसार्थस्य न (वार्तिक)

अतिक्रान्तपार्थिवगुणान् स्मारयन्ति प्रकृती (मुद्रा० १), शिशु० ६ । ५६ भी देखिए।

(ङ)[1] दृश् का प्रेरणार्थक रूप द्वितीया के साथ प्रयुक्त होता है, जैसे, भक्ता हरिं पश्यन्ति, दर्शयति भक्तान् हरिम् (सि० कौ०)।

विशेष—संस्कृत साहित्य में 'दृश्' का प्रयोग कभी-कभी द्वितीया की जगह चतुर्थी के साथ मिलता है, जैसे, प्रत्यभिज्ञानरत्नं च रामायादर्शयत् कृती (रघु० १२ । ६४)।

(च)[2] हृ, कृ धातुओं के साधारण रूपों का कर्ता, और अभिवद् तथा दृश् के आत्मनेपद के रूपों का कर्ता, प्रेरणार्थक में द्वितीया अथवा तृतीया में रक्खा जाता है, जैसे, भृत्य कटं करोति हरति वा (नौकर चटाई बनाता है या ले जाता है)।

भृत्यं भृत्येन वा कटं कारयति हारयति वा—वह नौकर से चटाई बनवाता है या ढोवाता है। (सि० कौ०)

इसी प्रकार, अभिवादयते—दर्शयते देवं भक्तं-भक्तेन वा (सि० कौ०) वह भक्त से देवता को प्रणाम करवाता है या भक्त को प्रेरित करता है कि देवता को प्रणाम करे।

४६—धारा ४४ में जिन अकर्मक धातुओं का उल्लेख किया गया है उनमें ऐसी धातुओं का अभिप्राय है जो स्वभावतः कालवाची, स्थानवाची इत्यादि कर्मों के अतिरिक्त अन्य कोई कर्म ले ही नहीं सकतीं। धारा ४४ में उल्लिखित अकर्मक धातुओं में ऐसी धातुएँ अभिप्रेत नहीं हैं जो सकर्मक होते हुए भी कभी कभी वक्ता की इच्छा के अनुसार अकर्मक के तौर पर प्रयुक्त कर दी जाती हैं, अथवा जिनका बिना कर्म के अर्थ बिल्कुल स्पष्ट रहता है, जैसे किंकरः पचति। यहाँ 'पचति' सकर्मक होते हुए भी बिना कर्म के प्रयुक्त हुई है क्योंकि यह बड़ी सरलता से समझी जा सकती है। अतएव 'किंकरेण पाचयति' होगा, न कि "किंकरं पाचयति' परन्तु 'मासमासयति देवदत्तम्' होगा।

४७—[1]प्रेरणार्थक क्रियाओं का कर्मवाच्य बनाने में प्रेरणार्थक का प्रधान कर्म जो कि मौलिक (साधारण) दशा में क्रिया का कर्ता रहता है प्रथमा विभक्ति में रक्खा जाता है, और दूसरा (गौण) कर्म ज्यों का त्यों रह जाता है, उदाहरणार्थ—

साधारण दशा	प्रेरणार्थक कर्तृवाच्य	प्रेरणार्थककर्मवाच्य
रामो ग्रामं गच्छति। राम गाँव को जाता है।	रामं ग्रामं गमयति (वह) राम को गाँव जाने की प्रेरणा करता है।	रामो ग्रामं गम्यते राम उसके द्वारा गाँव जाने को प्रेरित किया जाता है।
भृत्यः कटं करोति। नौकर चटाई बनाता है।	भृत्येन भृत्यं वा कटं कारयति। (वह) नौकर से चटाई बनवाता है।	भृत्यः कटं कार्यते। नौकर उसके द्वारा चटाई बनाने के लिए प्रेरित किया जाता है।
गोविन्दोमासमास्ते गोविंद महीने भर बैठता है।	गोविन्दं मासमासयति (वह) गोविन्द को महीने भर बैठाता है।	गोविन्दोमासमास्यते। गोविन्द उसके द्वारा महीने भर बैठाया जाता है।

(क) परन्तु बुद्ध्यर्थक, भक्षार्थक तथा शब्दकर्मा धातुओं का कर्मवाच्य बनाने में, प्रधान कर्म प्रथमा विभक्ति में रक्खा जाता है और गौण [illegible] में अथवा प्रधान कर्म द्वितीया में और गौण कर्म प्रथमा में, [illegible], माणवकं धर्मं बोधयति (वह माणवक को उसका कर्तव्य समझाता है)। [illegible] इस प्रकार होगा—माणवको धर्मं बोध्यते अथवा माणवकं धर्मो बोध्यते (माणवक को उसका कर्तव्य समझाया जाता है अथवा [illegible])।

१—[illegible] च निर्देष्टव्या ॥
[illegible] ॥ ([illegible])

रखवाया जाता है)। इसी प्रकार बटुमोदन भोजयति—वह लड़के को भोजन कराता है। इसका कर्मवाच्य यों होगा—बटुरोदन भोज्यते अथवा बटुमोदनो भोज्यते (सि० कौ०)।

४८—चुरादिगण की धातुओं के प्रेरणार्थक के रूप ठीक वैसे ही होते हैं जैसे साधारण रूप। इसलिए प्रकरण से अर्थ का निर्णय किया जाना चाहिए, जैसे रामो धन चोरयति—राम धन चुराता है। रामो गोविन्देन धन चोरयति राम गोविन्द से धन चुरवाता है या राम गोविन्द को धन चुराने के लिए प्रेरित करता है। राम शिव पूजयति (राम शिव को पूजता है) रामो गोविन्देन शिव पूजयति (राम गोविन्द से शिव को पुजवाता है)। यहाँ दूसरा वाक्य प्रेरणार्थक है।

३—कामं इदानीं सकामो भवतु येनासत्यसंधे जने सखी पदं कारिता।
(शा० ४)।

४—महेन्द्रभवनं गच्छतोपाध्यायेन त्वमासनं प्रतिग्राहित ।
(विक्रमो० ३)।

५—तौ कुशलवौ भगवता वाल्मीकिना धात्रीकर्मवस्तुतः परिगृह्य पोषितौ परिरक्षितौ च। वृत्तचूडौ च त्रयीवर्जमितरा विद्याः सावधानेन परिपाठितौ। समनन्तरं च गर्भैकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय गुरुणा त्रयीविद्यामध्यापितौ।
(उत्तर० २)।

६—नलिनिके पायय कमलमधुरसं कलहंसान्। पल्लविके भोजय मरिचाग्रपल्लवदलानि भवनहारीतान्। (कादम्० १८४)।

७—आर्यो दापयतु मे वैशम्पायनानयनाय गमनाभ्यनुज्ञां तातेन। नान्यथा मे दोषशुद्धिर्भवति। (कादम्० २०२)।

८—तौ दंपती स्वां प्रति राजधानीं
प्रस्थापयामास वशी वसिष्ठः। (रघु० २।७०)।

९—ततो द्रोणोऽर्जुने भूयो रणशिक्षामशिक्षयत्।
(महा० १।१३०।७४)।

१०—तौ दंपती बहु विलप्य शिशोः प्रहर्त्रा
शल्यं निखातमुदहारयतामुरस्तः। (रघु० ९।७८)।

११—वाल्मीकिस्तौ कुशलवौ
साङ्गं च वेदमध्याप्य किंचिदुत्क्रान्तशैशवौ।
स्वकृतिं गापयामास कविप्रथमपद्धतिम्। (रघु० १५।३३)।

१२—स सेतुं बन्धयामास प्लवगैर्लवणाम्भसि।
तेनोत्तीर्य पथा लङ्कां रोधयामास पिङ्गलैः।
द्वितीयं हेमप्राकारं कुर्वद्भिरिव वानरैः॥ (रघु० १२।७०)।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—एवं क्रियते युष्मदादेशः। [illegible]
[illegible] । ([illegible] १)।

२—जब स्वतन्त्रता की इच्छा मन्त्री के हृदय में घुस जायगी, तब वह राज को भी स्वयं प्राण छोड़ देने को प्रेरित करेगा(त्यज्)।

३—युद्ध में अपने शत्रु को हराकर उसने अपने भाटों से अपने वीरकृत्य का यश गवाया (गै)।

४—उसने अपने नौकरों से बाजार से इन्धन मँगवाया (नी अथवा हृ)।

५—यह कोई आश्चर्य नहीं है कि कर देने वाले राजों से सम्राट् अपनी आज्ञा पालन करवाता है।

६—इन पुरुषों से कह दिया गया था कि उन नौकरानियों से मालाएँ तैयार करा लें।

७—जब छात्र को किसी विषय के सिद्धान्त समझा दिये जाते हैं तब उसका अभ्यास सिखाया जाता है।

८—अपने शत्रुओं को पराजित करो और उनसे कर दिलाओ (दा)।

९—उसने अपने पुत्र के विवाह के लिए अपने नौकरों से एक विशाल मण्डप बनवाया (कृ)।

१०—उसने लड़के को उसकी इच्छा के प्रतिकूल खवाया (अद् व खाद्)।

११—मैंने अपने सम्भ्रान्त अतिथि को अपना पुस्तकालय दिखाया (दृश् का प्रेरणार्थक)।

१२—वह राम से यात्रियों से काशी का मार्ग पुछवाता है।

१३—भेड़ें स्वामी द्वारा नौकर से गाँव में पहुँचाई गईं।

१४—भृत्य को चाहिए कि छन्दोऽनुवर्तन द्वारा वह अपने स्वामी को पारितोषिक देने के लिए प्रेरित करे।

१५—मैंने उन लोगों को राजा के चारों ओर खड़ा कराया और उनसे उसको प्रणाम करवाया (अभि+वद् प्रेरणार्थक)।

(ग) गत्यर्थक धातुओं के योग में वाहन साधन (करण) होता है, जैसे, आत्मनः पदं विमानेन विगाहमानः (रघु० १३।१) अपने स्थान को विमान द्वारा विचरते हुए।

(घ) वहनार्थक अथवा न्यासार्थक धातुओं के योग में, जिस पर कोई वस्तु ढोई जाती है अथवा रक्खी जाती है वह तृतीया में रक्खा जाता है, जैसे, स श्वानं स्कन्धेनोवाह (हित० ४) वह कुत्ते को कन्धे पर ढोता था। भर्तुराज्ञां मूर्ध्ना आदाय (कुमार० ३।२२) अपने स्वामी की आज्ञा को सिर पर धारण कर।

(ङ) शपथ बोधक शब्दों के योग में, जिसके नाम से शपथ ली जाती है वह साधन (करण) होता है, जैसे, जीवितेनैव शपामि ते (कादम्० २३३) मैं तुमसे अपने प्राणों की कसम खाकर कहता हूँ।

(च) किसी स्थानविशेष तक जाने के लिए जिस मार्ग का अनुसरण किया जाता है उसकी दिशा साधन (करण) होती है, जैसे, कतमेन दिग्भागेन गतः स जाल्मः (विक्रमो० १)—वह शठ किस दिशा में गया ?

५२—उत्कर्षार्थक तथा सादृश्यार्थक धातुओं के योग में जिन गुणों की उत्कृष्टता होती है, अथवा जिन बातों में सादृश्य पाया जाता है, उनमें तृतीया होती है, जैसे, पूर्वान् महाभाग तयातिशेषे (रघु० ५।१४)—हे महाभाग, तुम उस (श्रद्धा) के कारण अपने पूर्वजों से बढ़ कर (उत्कृष्टतर) हो। स्वरेण रामभद्रमनुहरति (उत्तर० ४)—आवाज में राम से मिलता जुलता है।

विशेष—कभी-कभी इसी अर्थ में सप्तमी का प्रयोग होता है, जैसे, धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः (राम० १।२९)—दानशीलता में कुबेर के समान और सत्यवादिता में दूसरे धर्म के समान।

(छ) पृथक्त्वद्योतक शब्दों का प्रयोग साधारणतः तृतीया के साथ होता है, जैसे, अयमेकपदे तया वियोगः उपनतः (विक्रमो० ४)—यह उससे वियोग एकाएक आ पड़ा। इसी प्रकार मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः (मेघ० ११८)।

(ख) सादृश्यार्थ बोधक तथा समानता-बोधक शब्द तृतीया विभक्ति के साथ प्रयुक्त होते हैं, जैसे, धनदेन समस्त्यागे—दानशीलता में कुबेर के समान। अस्य मुखं सीताया मुखचन्द्रेण संवदति (उत्तर० ४)—इसका मुख सीताजी के चन्द्रतुल्यमुख से मिलता-जुलता है। षष्ठी विभक्ति का भी प्रकरण देखिए।

५३१—अभीष्ट फल की प्राप्ति अथवा अभीष्ट कार्य की सिद्धि का बोध कराने में कालवाची तथा मार्गवाची शब्दों में तृतीया होती है, अर्थात् जितने "समय" में या जितना "मार्ग" चलते-चलते कोई कार्य सिद्ध हो जाता है उस "समय" और "मार्ग" में तृतीया होती है, द्वादशवर्षैर्व्याकरणं श्रूयते। (पञ्च० १)—व्याकरण बारह वर्ष में अध्ययन किया जाता है। क्रोशेन पाठस्तेनाधीत. (सि० कौ०)—उसके द्वारा कोस भर में पाठ पढ़ लिया गया।

५५[1]—शरीर के जिस अग में विकार होता है उसमे तृतीया होती है, जैसे, **अक्ष्णा काणः** (सि० कौ०)—एक आंख का काना । इसी प्रकार **पादेन खञ्ज, कर्णेन बधिर** इत्यादि ।

५६[2]—किसी दशा या अवस्था विशेष की सत्ता का बोध कराने वाला गुण तृतीया में रक्खा जाता है, जैसे, **जटाभिस्तापस** (सि० कौ०)—जटाओ से वह तपस्वी प्रतीत होता है ।

५७—"बस" या "पर्याप्त हो चुका" का बोध कराने वाले **अलम्** तथा **कृतम्** के योग मे तृतीया होती है, जैसे, **अलमतिविस्तरेण** (वेणी० १) बहुत विस्तार मत करो । **कृतमश्वेन** (उत्तर० ४) घोड़े से बाज आए, घोड़ा हटाओ । **तस्मात् कृत चरणपातविडम्बनाभि** (पञ्च० ४।१)

(क) इस अर्थ मे **अलम्** शब्द प्राय क्त्वा प्रत्ययान्त के साथ प्रयुक्त होता है, जैसे, **अलमन्यथा गृहीत्वा** (मालविका० १) उलटा-पुलटा न समझ लें । ऐसे प्रसङ्गों मे **अलम्** शब्द निषेधार्थवाचक होता है ।

५८[3]—"सह, साक, सार्धं, समम् प्रभृति शब्दो का अर्थ होता है "साथ" । इनके प्रयोग मे उस शब्द मे तृतीया होती है जो किसी वाक्य के प्रधान कर्ता का साथ देता है, जैसे, **त्वया सह निवत्स्यामि वनेषु** (उत्तर० २) म आप के साथ जगलों मे रहूँगी । **अमरसिन्धु सार्धमस्मद्विधाभि** (उत्तर० ३) हम जैसे पुरुषों के साथ देव नदी । **आस्स्व साकं मया सौधे** (भट्टि० ८।७६) मेरे साथ महल मे बैठो ।

५९—किं, कार्यं, अर्थ, प्रयोजन, गुण इत्यादि "लाभ" अथवा "आवश्यकता" वाचक शब्दो का, तथा इसी अर्थ का बोध कराने वाले "किम्" पूर्वक "कृ" धातु का जब प्रयोग होता है, तब जिससे लाभ होना अथवा आवश्यकता पाई जाती है उसमे तृतीया होती है और जिसको लाभ होने वाला होता है अथवा जिसे आवश्यकता पड़ती है वह षष्ठी मे रक्खा जाता है, जैसे, **देवपादाना सेवकेन प्रयोजनम्** (हित० १) श्रीमान् को

१—येनाङ्गविकार । २।३।२० ।

२—इत्थभूतलक्षणे २।३।२१ ।

३—सहयुक्तेऽप्रधाने । २।३।१९

नौकरों की आवश्यकता नहीं है। तृणेन कार्यं भवतीश्वराणाम् (पञ्च० १।१) धनी लोगों का कोई-कोई काम तिनके से भी सध जाता है। किं तया क्रियते धेन्वा (पञ्च० १) उस गाय से क्या करना है? किं तया दृष्ट्वा (शा० २) उसे देखने से क्या लाभ? अप्राज्ञेन सानुरागेण भृत्येन को गुणः (मुद्रा० १) अनुरागयुक्त परन्तु मूर्ख नौकर से क्या लाभ?

विशेष—पाणिनि के नीचे लिखे हुए दो सूत्र हैं:—(१) दिवः कर्म च १।४।४३। अर्थात् "खेलना" अर्थवाचक दिव् धातु के योग में द्वितीया अथवा तृतीया होती है, जैसे, अक्षैरक्षान्वा दीव्यति—वह कौड़ी खेलता है।

(२) संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि २।३।२२, पित्रा पितरं वा सञ्जानीते—वह अपने पिता के साथ मेल से रहता है।

अभ्यास

१—अलमलं बहु विकत्थ्य। राज्ञः समक्षमेवावयोरधरोत्तर-व्यक्तिर्भविष्यति (मालविका० १)।

२—देवेन देव्या च परिगृहीतोऽहममुना हरदत्तेन प्रधान-पुरुषसमक्षमयं न मे पादरजसा तुल्य इत्यधिक्षिप्तः (मालविका० १)।

३—शापितासि मम लवङ्गिकायाश्च लोकितयोर्जीवितेन यदि वाचा न कथयसि (मालती० ८)।

४—आगन्तुकतयाऽश्रुतपूर्व आवाभ्यामेष वृत्तान्तः (शा० ६)।

५—भगवति त्वमस्य (करिकलभक) तावदीदृशः सम्पन्नः। ततः पुनर्न जाने कुशलावेतावता कालेन कीदृशाविव भवतः

९—अलमुपालम्भ्य। आर्य दैवेनेदमनुष्ठितं किमत्रार्यस्य (मुद्रा० ३)।

१०—अयि पाञ्चालतनये अलं विषादेन। किं बहुना। यत्करिष्ये तच्छ्रूयताम्। अचिरेणैव कालेन सुयोधनशोणितशोणपाणिस्तव कचान् भीम उत्तंसयिष्यति (वेणी० १)।

११—स्वहृदयेनापि विदितवृत्तान्तेनामुना जिह्नेमि (कादम्० २३३)।

१२—प्रवातशयने निषण्णा देवी परिजनहस्तगृहीतेन चरणेन परिव्राजिकया कथाभिर्विनोद्यमाना तिष्ठति (मृच्छ० ४)।

१३—मदनमपि गुणैर्विशेषयन्ती
रतिरिव मूर्तिमती विभाति सेयम् (मृच्छ० ४)

१४—शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य।
दूरीकृता. खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभि (शा० १)।

१५—शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन सालक्ष्यत लोध्रपाण्डुना -
तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी।

१६—यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढ. स मर्त्येषु सर्वपापै प्रमुच्यते (श्रीमद्० १०।३)।

१७—किं तया क्रियते धेन्वा या न सूते न दुग्धदा।
कोऽर्थ पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न भक्तिमान (पञ्च० १)।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—अधुनाऽन्या गतिर्नास्ति। अकथ्यमाने च महाननर्थोपनिपातो जायते प्राणपरित्यागेनापि रक्षणीया सुहृदसव इति कथयामि। (कादम्० १५२)।

२—तेषु तेषु रम्यतरेषु स्थानेषु तया सह तानि तान्यपरिसमाप्तान्यपुनरुक्तानि न वेद्मि चन्द्रमा कादम्बर्या सह कादम्बरी महाश्वेतया सह महाश्वेता तु पुण्डरीकेण सह पुण्डरीकोऽपि चन्द्रमसा सह परस्परावियोगेन सर्व एव सर्वकालमवंसुखान्यनुभवन्त परं कोटिमानन्दस्याध्यगच्छन् (कादम्० ३६६)।

३—अवधृतप्रणिपाता पश्चात्सन्तप्यमानमनसोऽपि।
निभृतैर्व्यपत्रपन्ते दयितानुनयैर्मनस्विन्य ॥ (विक्रमो० ३)।

४—कष्टं जनः कुलधनैरनुरंजनीयस्तन्नो यदुक्तमशिवं न हि तत्क्षमं ते।
नैसर्गिका सुरभिण कुसुमस्य सिद्धा मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि ॥
(उत्तर० १)।

५—अथ दुर्लभ्यशाननतया भगवतो मनोभुवो मदजननतया च मधुमासस्यातिरमणीयतया च तस्य प्रदेशस्याविनयबहुलतया चाभिनवयौवनस्य चञ्चलप्रकृतितया चेन्द्रियाणां दुर्निवारतया च विषयाभिलाषाणां तथा भवितव्यतया च तस्य तस्य वस्तुन तमपि तरलतामानयन्ना । (कादं० १४२)

६—दिनाप्यर्थैदार स्पृशति दद्रुमाबोनतिपर
समायुक्तोऽप्यर्थैः परिभवपद याति कृपण ।
स्वभावादुक्ता गुणसमुदयावाप्तिविषया
द्युति सैंहीं कि श्वा धृतकनकमालोऽपि लभते ॥ (हित० १)

७—अलं महीपाल तव श्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात् ।
न पादपोन्मूलनशक्ति रंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य (रघु० २।३४) ।

८—कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानैः ।
त्वमात्मनस्तुल्यममुं वृणीष्व रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन (रघु० ६।७९) ।

९—लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।
सौजन्यं यदि किं गुणैः स्वमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः ।
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥ (भर्तृ० २।५५) ।

१०—अथराजनारायणवर्णितप्रति—
यो नन्दनीयरूपयो परिभूय लोक-
मारोदभा प्रतिदिशमदिभिप्रकालन् ।

२—सदाचार कहता है कि अपने प्राण को सङ्कट में डालकर भी मित्र की रक्षा करे।

३—यह लोभ का अवतार है, यह कितना भी धन-सञ्चय करे, पर कभी तृप्त न होगा।

४—क्या तुम अज्ञान से लजाते नहीं हो, और क्या अपने विद्याविहीन उच्चकुल का अभिमान करते हो?

५—प्रजा को सन्तुष्ट रखने की कामना, तथा ज्ञान और पराक्रम में यह राजा अन्य सबों से बढ़कर है।

६—अन्य राजाओं द्वारा आप की आज्ञा सिर पर धारण की जाती है यह आपकी महिमा का बहुत बड़ा चिह्न है।

७—वह मनुष्य अजशावक को कन्धे पर ले कर इस मार्ग से कमाई-खाने गया।

८—मैं अपने इष्ट देव की शपथ खाकर कहता हूँ कि मैंने इसके पहिले आपकी अँगूठी कभी नहीं देखी।

९—मैं जानता हूँ कि मेरे नौकर पन्द्रह दिन में लौट आवेंगे, क्योंकि उनके वहाँ अधिक ठहरने से क्या लाभ?

१०—उत्कट श्रद्धा के साथ केवल एक बार भी ओंकार कहने से पापी भी अपने तमाम पापों से मुक्त हो जाता है।

११—इस आदमी के साथ टहलने से क्या लाभ? वह दाहिने पाँव का लँगड़ा है और शीघ्रतापूर्वक नहीं चल सकता।

१२—इस विषय में शङ्का न कीजिए (अलम्),। मेरे बहनोई द्वारा यह मामला स्वीकार कर लिया गया है।

१३—तुझ मूर्ख को धिक्कार है। यदि तू पुस्तकों को नहीं पढ़ता तो तुझे इनके बोझ से क्या लाभ?

१४—मेरी निन्दा न कीजिए (अलम्), यह मुझसे नहीं किया गया।

१५—बच्चे मत रोओ (अलम्), जब तेरी माता यहाँ आवेगी तो [illegible] तुझे खिलाऊँगा।

१६—अपने प्रेमी के विषय में सोचते रहने के कारण शकुन्तला [illegible] आगमन नहीं देखा।

१७—ऐ अन्धे आदमी, तुझे इस दीपक से क्या लाभ?

सप्तम पाठ

चतुर्थी

६०—जिसको कोई वस्तु दी जाती है उसे सम्प्रदान कहते हैं। सम्प्रदान में चतुर्थी होती है, जैसे, किं वस्तु विद्वन् गुरवे प्रदेयम् (रघु० ५।१८)—हे विद्वान् पुरुष, गुरु जी को क्या देना है? जिस पुरुष या वस्तु के लिए अथवा जिसके उद्देश्य से कोई कार्य किया जाता है, वह भी सम्प्रदान होता है, जैसे, युद्धाय सन्नह्यते (म० भा०)—युद्ध के लिए तैयारी करता है। तां नन्दनाय प्रार्थयते (मालती०)—वह उसे नन्दन के लिए माँग रहा है।

(क) १'यज्' धातु (यज्ञ करना) के योग में, जिस व्यक्ति को यज्ञ अर्पण किया जाता है वह द्वितीया में रक्खा जाता है, और जिस वस्तु या साधन द्वारा यज्ञ किया जाता है वह तृतीया में रक्खा जाता है, जैसे, पशुना रुद्रं यजते (सि० कौ०)—वह रुद्र को एक पशु चढ़ाता है।

६१—रुच् धातु तथा रुच् के समान अर्थ रखने वाली धातुओं के योग में प्रसन्न होने वाला चतुर्थी में रक्खा जाता है, जैसे, यत् प्रभविष्णवे रोचते (मा० ७)—जो श्रीमान् को भावे। यज्ञदत्ताय स्वदतेऽपूपः (काशिका)—यज्ञदत्त को अपूप अच्छा लगता है।

विशेष—'स्पृह्' धातु से प्रत्यय लगाकर बने हुए शब्दों के योग में कभी-कभी चतुर्थ्यन्त पद का प्रयोग होता है, जैसे, **भोगेभ्यः स्पृहयालवः** (भर्तृ० ३। ६४)—भोगों (आरामों) के इच्छुक। **कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहाम्** (वेणी० ३)। साधारणतया स्पृह् धातु से प्रत्ययनिष्पन्न शब्दों के योग में सप्तम्यन्तपद का प्रयोग होता है, जैसे, **स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी** (रघु० ३।५)।

६३[1]—क्रुध् (गुस्सा होना,) द्रुह् (द्रोह करना, वैर करना), ईर्ष्य (डाह या जलन करना), असूय् (डाह या जलन करना)—इन धातुओं तथा इनके समान अर्थ रखने वाली अन्य धातुओं के योग में, जिसके ऊपर क्रोध किया जाता है, या जिससे घृणा या डाह इत्यादि की जाती है वह चतुर्थी में रक्खा जाता है, जैसे, **हरये क्रुध्यति, द्रुह्यति ईर्ष्यति असूयति वा** (सि० कौ०)—वह हरि से गुस्सा होता है, द्रोह करता है अथवा डाह करता है।

परन्तु उपसर्गयुक्त क्रुध् तथा द्रुह् धातुएँ द्वितीयान्त पद लेती हैं, जैसे **मच्छरीरमभिद्रोग्धुं** (मुद्रा० १)—मेरे शरीर पर आघात पहुँचाने के लिए। **न खलु तामभिक्रुद्धो गुरुः** (विक्रमो० ३)—क्या गुरु जी उस पर गुस्सा नहीं हुए?

६४[2]—प्रतिपूर्वक या आपूर्वक श्रु धातु का अर्थ होता है "प्रतिज्ञा करना" उसके योग में जिस पुरुष से प्रतिज्ञा की जाती है वह चतुर्थी में रक्खा जाता है, जैसे, **प्रतिशुश्राव काकुत्स्थस्तेभ्यो विघ्नप्रतिक्रियाम्** (रघु० १५।४)—काकुत्स्थ ने उन लोगों से विघ्नों को हटाने की प्रतिज्ञा की।

६५[3]—जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाता है, या जिसको बनाने के लिए कोई दूसरी वस्तु कायम रहती है या प्रयुक्त होती है वह चतुर्थी में रक्खा जाता है, जैसे, **काव्यं यशसे** (काव्य प्रकाश)—काव्य यश के लिए होता है। **यूपाय दारु** (म० भा०)—खम्भा (बनाने) के लिए लकड़ी। **कुण्डलाय हिरण्यम्** (म० भा०)—सुवर्ण कुण्डल बनाने के काम आता है। **अवहननाय उलूखलम्** (म० भा०)—कूटने के लिए अनाज काटने के लिए ओखली।

१—क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म (१।४।३७-३८)।
२—प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता। १।४।४०।
३—तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या (वार्तिक)।

(क)[1] जब किसी वाक्य में तुमुनन्त धातु का अर्थ या भाव छिपा या दबा-सा रहता है, तब तुमुनन्त का कर्म चतुर्थी में रक्खा जाता है, जैसे, फलेभ्यो याति=फलान्याहर्तुं याति—वह फलों के लिए जाता है अर्थात् फलों को लाने के लिए जाता है। वनाय गां मुमोच=वनं गन्तुं गां मुमोच—उसने गाय को जङ्गल के लिए छोड़ दिया अर्थात् जङ्गल को जाने के लिए छोड़ दिया। यहाँ 'आहर्तुम्' का कर्म "फल" और "गन्तुम्" का कर्म 'वन' चतुर्थी में रक्खा गया है।

(ख) किसी धातु में तुमुन् प्रत्यय जोड़ने से जो अर्थ निकलता है, वही अर्थ पाने के लिए, उस धातु से बनी हुई भाववाचक संज्ञा में चतुर्थी प्रयुक्त होती है, जैसे, यागाय याति—यष्टुं याति—वह यज्ञ करने के लिए जाता है। समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम् (शा० १)। यतिष्ये च सखीप्रत्यानयनाय (विक्रमो० [illegible])

९६—क्लृप् (समर्थ होना या पैदा करना) के योग में तथा उसी प्रकार का अर्थ रखने वाली सम्पद्, भू, जन् सरीखी अन्य धातुओं के योग में, जो परिणाम निकलता है वह चतुर्थी में रक्खा जाता है, जैसे, कल्पसे रक्षणाय (शा० ४)—तुम प्रजाओं की रक्षा करने में समर्थ हो। मूत्राय कल्पते-जायते सम्पद्यते यवागूः (म० भा०)—माण्ड पेशाब पैदा करता है। इसी अर्थ में, [illegible] प्रयुक्त न रहने पर भी प्रायः चतुर्थी प्रयुक्त होती है, जैसे, यतस्तौ स्वल्पदुःखाय (पञ्च० १)—चूँकि वे दोनों बहुत कम दुःख देते हैं।

(ग)[2] किसी अशुभसूचक घटना द्वारा जिस वस्तु का पूर्वरूप दिखाई देता है वह चतुर्थी में रक्खी जाती है, जैसे, वाताय कपिला विद्युत् (म० भा०)—[illegible] बिजली तूफान की द्योतक है। मांसोदनाय व्याहरति मृगः (म० भा०)—[illegible] भात के भोजन की प्राप्ति सूचित करता है।

णाय हितम्-सुखम् (सि० कौ०)—ब्राह्मण के लिए हितकर वा सुखकर।
हितमामयाविने (म० भा०)—रुग्ण पुरुष के लिए हितकर अथवा सुखकर।

विशेष—हित का प्रयोग सप्तमी तथा षष्ठी के साथ भी होता है।

६७[१]—नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् (जोड़, काफी) और वषट् शब्दों के योग में चतुर्थी होती है, जैसे, नमो विश्वसृजे तुभ्यम् (रघु० १०।१६) —विश्व के रचने वाले आप को नमस्कार है। स्वस्ति भवते (मालविका०२)—आप का कल्याण हो। अग्नये स्वाहा (सि० कौ०)—अग्नि को यह बलि। इसी प्रकार पितृभ्यः स्वधा, इन्द्राय वषट्, दैत्येभ्यो हरिरलम् (सि० कौ०) —हरि दैत्यों के जोड़ के हैं। अलमेषा क्षुधितस्य (मे) तृप्त्यै (रघु० २। ३९)—मुझ भूखे को सन्तुष्ट करने के लिए यह गाय पर्याप्त है।

(क) अलम् (पर्याप्त, करने के लिए समर्थ) के अर्थवाचक 'प्रभु' और 'शक्त' शब्द के योग में तथा 'प्र' पूर्वक 'भू' धातु के योग में चतुर्थी होती है, जैसे, प्रभुर्मल्लो मल्लाय, शक्तो मल्लो मल्लाय, प्रभवति मल्लो मल्लाय (म० भा०) —पहलवान का जोड़ पहलवान होता है। विधिरपि न येभ्यः प्रभवति (भर्तृ० २।९४)—जिनके ऊपर ब्रह्मा का भी जोर नहीं चलता।

(ख) 'नमः' पूर्वक कृ धातु के साथ साधारणतया द्वितीया आती है, परन्तु कभी-कभी चतुर्थी भी, जैसे, मुनित्रयं नमस्कृत्य (सि० कौ०)—तीनों मुनियों को नमस्कार करके। परन्तु नमस्कुर्मो नृसिंहाय (सि० कौ०)—हम लोग नृसिंह को नमस्कार करते हैं।

(ग) "प्रणाम करना"—इस अर्थ का बोध कराने वाली प्रणिपत और प्रणम् इत्यादि धातुओं के साथ द्वितीया अथवा चतुर्थी आती है, जैसे, धातारं प्रणिपत्य (कुमार ० २।३)—ब्रह्मा को प्रणाम कर। तस्मै प्रणिपत्य नन्दी (कुमार० ३।६०)। आर्यं प्रणिपत्य (मुद्रा० १)। इसी प्रकार भक्ति प्रवणेन चेतसा प्रणनाम (कादम्० २२८)। ता कुलदेवताभ्यः प्रणमय्य (कुमार० ७।२७)। प्रणम्य त्रिलोचनाय (कादम्० २३१)।

टिप्पणी—संस्कृत-लेखक इन धातुओं से बने हुए संज्ञाशब्दों का भी प्रयोग समय समय पर चतुर्थी के साथ करते हैं, जैसे, वृषभ्रं प्रणाम वृषभध्वजाय चकार (कुमार० ३।६२)। अस्मै प्रणाममकरवन् (कादम्० १/२)। तस्मै दण्डप्रणाममकरवन् (दश० १।२)

१—नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च। २।३।१६।

(ग) आशीर्वाद प्रकट करने तथा स्वागत करने में 'स्वागतम्' 'कुशलम्' आदि शब्दों के साथ चतुर्थी आती है, जैसे, देवदत्ताय कुशलम् (म० भा०); स्वागत देव्यै (मालविका० १)—रानी का स्वागत। 'कुशलम्', 'भद्रम्' 'सुखम्' इत्यादि शब्द षष्ठी के साथ भी आते हैं। दशम पाठ देखिए।

६८—'कहना'—इस अर्थ का बोध कराने वाली कथ्, ख्या, शस्, और चक्ष् तथा 'नि' पूर्वक विद् धातु का प्रेरणार्थक और इसी अर्थ का बोध कराने वाली अन्य धातुओं के योग में वह व्यक्ति सम्प्रदान कहलाता है जिससे कुछ कहा जाता है, जैसे, आर्ये कथयामि ते भूतार्थम् (शा० १)—ऐ आर्ये, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ। स्वागत देव्यै (मालविका० १)—रानी का स्वागत। एहि इमां वनस्पतिसेवां काश्यपाय निवेदयाव (शा० ४)—आओ, चलो वृक्षों की इस सेवा को हम लोग काश्यप को बतला दें। यस्मै ब्रह्मपारायणं जगौ (उत्तर० ४)—जिससे उन्होंने वेद गाया (वेद का उद्घाटन किया)। यस्मै मुनिर्ब्रह्म परं विवव्रे (महावीर० २)।

६९—'भेजना'—अर्थ का बोध कराने वाली धातुओं के योग में वह व्यक्ति सम्प्रदान में होता है जिसे कोई वस्तु भेजी जाती है, पर जिस स्थान पर वह वस्तु भेजी जाती है वह कर्म-संज्ञक होता है जैसे भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः (रघु० ५। ३९)—रघु के पास भोजद्वारा एक दूत भेजा गया। माधवं पद्मावतीं परिस्थता देवरातेन (मालती० १)—पद्मावती के पास माधव को भेजने वाले देवरात द्वारा।

७१[1]—जब गत्यर्थक धातुओं का कर्म मार्ग नहीं रहता और क्रिया के निष्पादन में शरीर से व्यापार करना पड़ता है, तो उस कर्म में द्वितीया या चतुर्थी होती है, जैसे, ग्राम ग्रामाय वा गच्छति। यहाँ पर 'ग्राम' मार्ग नहीं है, बल्कि स्थान है, और गाँव जाने में हाथ, पैर, तथा शरीर के और अंगों को हिलाना डुलाना पड़ता है, अर्थात् शारीरिक व्यापार करना पड़ता है, अतएव 'ग्रामम्' 'ग्रामाय' दोनों होता है।

परन्तु यदि गत्यर्थक धातु का कर्म "मार्ग" हो तो कर्म में केवल द्वितीया होगी, जैसे, पन्थान गच्छति।

जहाँ शारीरिक व्यापार नहीं करना पड़ता वहाँ केवल द्वितीया होती है, जैसे, मनसा हरिं भजति। यहाँ हरि के पास जाने में मन से काम लेता है न कि शरीर के अवयवा से, इसमें जाने वाले को हाथ,पेर अथवा शरीर का और कोई अग हिलाना डुलाना नहीं पड़ता। इसलिए 'हरि" मे केवल द्वितीया हो सकती है, चतुर्थी कदापि नहीं।

इसी प्रकार—

नरपतिहितकर्ता द्वेष्यता याति लोके।
तदानन मृत्सुरभि क्षितीश्वरो रहस्युपाघ्राय न तृप्तिमाययौ।
विद्या ददाति विनय, विनयाद् याति पात्रताम।
अश्वत्थामा किं न यात स्मृतिं ते।
पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम।

टिप्पणी[2]—जिस पुरुष के विषय में कुशल-विषयक अथवा शुभ सौभाग्य-विषयक प्रश्न किए जाते हैं, वह राध् धातु (आराधना करना या तुष्ट करना) तथा ईक्ष् धातु (कल्याण कामना करना) के योग में चतुर्थी में रक्खा जाता है, जैसे कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा गर्ग अर्थात् पृष्टो गर्ग शुभाशुभं पर्यालोचयति—पूछे जाने पर गर्ग जी श्री कृष्ण के शुभाशुभ का विचार कर रहे हैं।

१—गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि ।२।३।१२। गत्यर्थक धातु उसे कहते हैं जिनका अर्थ हो 'जाना'—जैसे, गम, चल, इण, या इत्यादि।

२—राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः ।१।४।३९।

जिस[1] मूल्य या बँधी हुई मजदूरी पर कोई पुरुष नियुक्त किया जाता है वह मूल्य या मजदूरी तृतीया अथवा चतुर्थी में रक्खी जाती है, जैसे, शतेन शताय वा परिक्रीतोऽयं दास —यह नौकर सौ रुपये में खरीद लिया गया है।

अभ्यास

१—नैतन्न्याय्यम्। सर्वज्ञस्याप्येकाकिनो निर्णयाभ्युपगमो दोषाय। (मालविका० १)

२—चपलोऽयं बटु कदाचिदस्मत्प्रार्थनामन्तःपुरेभ्य कथयेत्। [शा० २]

३—अहमपि वैतानिकं शान्त्युदकमस्यै गौतमीहस्ते विसर्जयिष्यामि (शा० ३)

४—अनुशयामि खलु दुर्ललितायास्मै। मृगतृष्णिकेव नाममात्रप्रस्तावो मे विषादाय कल्पते। [शा० ७]

५—भद्र नैष तव दोष। साधो शिक्षा गुणाय सपद्यते नासाधोः। [पञ्च० १।१८]

६—प्रसीद भगवति वसुधरे शरीरमसि ससारस्य। तत्किमसविदानेव जामात्रे कुप्यसि। [उत्तर० ७]

७—कि[illegible] यामाहात्म्यगर्वनिर्भरा न प्रणमति देवताभ्यो, न मानयंति मान्यानात्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयति सचिवोपदेशाय, कुप्यति हितवादिने। [कादम्० १०८]

८—प्रतिश्रुतं तेन तस्मै स्वसुरवन्तिसुन्दर्या प्रदानम्। [दशकु० २।१]

९—चन्द्रापीड समुपसृत्य पूर्ववदेव तां महाश्वेताप्रणामपुर.सर दर्शितविनय प्रणनाम। [कादम्० २१६]

१०—प्रणिपत्य सुरास्तस्मै शमयित्रे सुरद्विषाम्।

१३—चरत. किल दुश्चरं तपस्तृणबिंदो' परिशङ्कित. पुरा ।
प्रजिघाय समाधिभेदिनीं हरिरस्मै हरिणीं सुराङ्गनाम् [रघु० ८।७६]

१४—वाताय कपिला विद्युदातपायातिलोहिनी ।
पीता भवति सस्याय दुर्भिक्षाय सिता भवेत् ॥ [म० भा०]

१५—स्वस्त्यस्तु ते निर्गलिताम्बुगर्भम् ।
शरद्घन नार्दति चातकोऽपि । [रघु० ५।१७]

१६—ताभ्या तथागतमुपेत्य तमेकपुत्र-
मज्ञानत: स्वचरित नृपति. शशास । [रघु० ६।७७]

१७—परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे [श्रीमद्० ४।८]

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—तदाकर्ण्य तामह दण्डवत्प्रणम्य तस्यै मदुदन्तमखिलमाख्याय विस्मयविकसिताक्षं जनकमदर्शयम् । (दशकु० १।४)

२—सखि वासन्ति दु खायैदानीं रामस्य दर्शन सुष्ठाम् । नतिकियच्चिरं त्वां रोदयिष्यामि तदनुजानाहि मा गमनाय । (उत्तर०६)

३—स्वयमेवोत्पद्य त एवंविधा कुलपांसवो नि स्नेहा पशवो येषां क्षुद्राणा प्रज्ञा परामिसंधानाय न ज्ञानाय । पराक्रम प्राणिनामुपघाताय, नोपकाराय, धनपरित्याग कामाय, न धर्माय । किं बहुना सर्वमेव येषा दोषाय न गुणाय । (कादम्० २८८)

४—श्रोत्रियायाभ्यागताय वत्सतरीं महोक्ष वा निर्वपन्ति गृहमेधिन (उत्तर० ४)

५—दुदोह गां स यज्ञाय सस्याय मघवा दिवम् ।
सम्पद्विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम् । (रघु० १।२६)

६—नमस्त्रिमूर्तये तुभ्य प्राक्सृष्टे केवलात्मने ।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे ॥ (कुमार० २।४)

७—स स्थाणु स्थिरभक्तियोगसुलभो नि श्रेयसायास्तु व (विक्रमो० १)

८—सर्वं कल्ये वयसि यतते लब्धुमर्थान्कुटुम्बी
पश्चात्पुत्रैरपहृतभर कल्पते विश्रमाय । (विक्रमो० ३)

९—यदेवोपनत दु खात्सुख तद्रसवत्तरम् ।
निर्वाणाय तरुच्छाया तप्तस्य हि विशेषत (विक्रमो० ३)

१०—शुद्धान्तसंभोगनितान्ततुष्टे न नैषधे कार्यमिद निगाद्यम् ।
अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादु सुगन्धि स्वदते तुषार (नैष० ३ ९३)

११—किमित्यपास्याभरणानि यौवने धृतं त्वया वार्धकशोभि वल्कलम् ।
वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका विभावरी यद्यरुणाय कल्पते (कुमार० ५।४४)

१२—पुंसामसमर्थानामुपद्रवायात्मनो भवेत्कोपः ।
पिठरं क्वथदतिमात्रं निजपार्श्वानेव दहतितराम् ॥ (पञ्च० १।१४) ।

१३—पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्द्धनम् ॥
उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये ॥ (हित० ३)

१४—प्रतिवाचमदत्त केशवः शपमानाय न चेदिभूभुजे ।
अनुहुङ्कुरुते घनध्वनिं न हि गोमायुरुतानि केसरी ॥ (शिशु० १६।२५) ।

१५—सन्तानकामाय तथेति कामं राज्ञे प्रतिश्रुत्य पयस्विनी सा ।
दुग्ध्वा पयः पत्रपुटे मदीयं पुत्रोपभुङ्क्ष्वेति तमादिदेश ॥ (रघु० २।६५) ।

१६—तस्याः प्रसन्नेन्दुमुखः प्रसादं गुरुर्नृपाणां गुरवे निवेद्य ।
प्रहर्षचिह्नानुमितं प्रियायै शशंस वाचा पुनरुक्तयेव ॥ (रघु० २।६८)

१७—ततो यथावद्विहिताध्वराय तस्मै स्मयावेशविवर्जिताय ।
वर्णाश्रमाणां गुरवे स वर्णी विचक्षणः प्रस्तुतमाचचक्षे ॥ (रघु० ५।१९)

१८—वसन् स तस्यां वसतौ रघूणां पुराणशोभामधिरोपितायाम् ।
न मैथिलेयः स्पृहयाम्बभूव भर्त्रे दिवो नाप्यलकेश्वराय ॥ (रघु० १६।४२)

१९—तस्य स्तूयमानोऽसौ वचः प्रियमभाषत ।
मातुलानिश्च सीतायै नाम्नुध्यन्नाप्यसूयत ॥
न मृष्यसि मृषा किं त्वं दिदृक्षुः सा मृगेक्षणे ।
ईक्षितं द परस्त्रीभ्यः स्वधर्मो रक्षसामयम् ॥
राक्षसानगरस्यां स्यात् सीते स्वस्ति ते ध्रुवम् ।
स तथा प्रातराशाय कुर्याम त्वामतः वयम् ॥ (भट्टि० ८।७५।७६।९८)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

७—मैंने अपने भाई द्वारा उनसे कहला दिया (आ + ख्या) कि आपके दर्शन से मुझे कोई प्रयोजन नहीं।

८—ऐ वृद्धे, ऐसे शोकप्रद विचारों से और भी अधिक दुःख पैदा होंगे, अत: थोड़ी देर तक ढाढ़स रक्खो।

९—इस ससार में विषयों का उपभोग केवल खेद पैदा करता है।

१०—मेरी प्रजा मुझसे घृणा करती है (असूय्) और मेरे प्राण लेने के लिए षड्यन्त्र रचती है (द्रुह्)।

११—पहिले अपने गुरु को प्रणाम करो (प्रणम्), तब अपना पाठ आरम्भ करो।

१२—अपने तीसरे नेत्र की आग से कामदेव को भस्मसात् कर देने वाले त्रिनेत्र भगवान् को नमस्कार है।

१३—जब मनुष्य के पुत्र उत्पन्न होता है, तब वह अपने पूर्वजों (पितरों) के ऋण से उऋण (अनृणी) हो जाता है।

१४—शत्रु की सम्पूर्ण सेना को हराने के लिए तुम अकेले ही समर्थ हो (अलम्)।

१५—छोटा सा भी कारण दुर्भाग्यग्रस्त मनुष्य के नाश के लिए पर्याप्त होता है।

१६—विदेहराज के पास दूत भेजकर यह शुभ समाचार उनको बताऊँगा।

अष्टम पाठ

पंचमी

७२—पञ्चमी विभक्ति का मुख्य अर्थ होता है 'अपादान'। जिस पुरुष, स्थान या वस्तु से मन कल्पित अथवा प्रत्यक्ष वियोग (पृथक्त्व) होता है, वह 'अपादान' होता है और पञ्चमी में रक्खा जाता है, जैसे, ग्रामादायाति—वह गाँव से आता है। यहाँ पर "ग्राम" से वियोग या पृथक्त्व पाया जा रहा है क्योंकि आने वाला पुरुष 'ग्राम' से अलग हो रहा है।

७३ पञ्चम्यन्त संज्ञा प्रायः किसी कार्य का कारण बताती है और "कारण से" इस अर्थ का बोध कराती है, जैसे, सौहृदादपृथगाश्रयाम् (उत्तर० १)—स्नेह के कारण अलग न रहने वाली को। जो संज्ञा स्त्रीलिंग न हो और किसी कार्य का कारण बताती हो वह तृतीया या पञ्चमी में रक्खी जाती है, जैसे—जाड्येन जाड्यात् वा बद्धः (सि० कौ०)—वह अपनी जड़ता (मूर्खता) के कारण बँधा गया। बुद्ध्या मुक्तः (सि० कौ०)—वह अपनी बुद्धि (चतुरता) के कारण छूट गया। भक्त्या गुरौ मय्यनुकम्पया च प्रीतास्मि ते (र० २।६३)—मेरे ऊपर तूने जो कृपा तथा गुरु के प्रति जो श्रद्धा दिखाई उसके कारण मैं तुझसे प्रसन्न हूँ।

७४—तरप् और ईयसुन् प्रत्ययान्त शब्दों तथा तुलनार्थक शब्दों के योग में, वह शब्द पञ्चमी में रक्खा जाता है जिससे तुलना की जाती है, जैसे सत्या दप्यनृतं श्रेय (वेणी० ३)—असत्य सत्य से भी बढ़ कर है। मोहादभूत्कष्टतर प्रबोधः (रघु० १४।५६)—चेतनावस्था मूर्च्छा से भी अधिक कष्टदायक हुई। चैत्ररथादनूने वृन्दावने (रघु० ६।५०)—जो वृन्दावन चैत्ररथ से किसी प्रकार भी घट कर नहीं है उसमें। अश्वमेधसहस्रेभ्यः सत्यमेवातिरिच्यते (हित० ४)—सत्य सहस्रों अश्वमेध यज्ञों से कहीं बढ़कर है। श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते (मनु० ३।२७८)—श्राद्ध के लिए पूर्व पहर की अपेक्षा दोपहर अधिक अच्छा है।

७५[1]—जब ल्यप् अथवा क्त्वा प्रत्ययान्त क्रिया वाक्य में प्रकट नहीं की जाती, किन्तु छिपी रहती है, तो उस क्रिया के कर्म और आधार पञ्चमी में रक्खे जाते हैं, जैसे, प्रासादात् प्रेक्षते (सि० कौ०)—प्रासादमारुह्य प्रेक्षते—महल से देखती है अर्थात् महल पर चढ़कर देखती है। इसी प्रकार श्वशुराज्जिह्रेति (सि० कौ०)—श्वशुरं वीक्ष्य जिह्रेति—ससुर से लजाती है। अर्थात् ससुर को देखकर लजाती है।

(क) जिस स्थान पर कोई कार्य सम्पादित किया जाता है उस स्थान को भी उपरोक्त दशाओं में पञ्चमी में ही रखते हैं जैसे, आसनात् प्रेक्षते—आसने उपविश्य प्रेक्षते—आसन से देखता है अर्थात् आसन पर बैठकर देखता है।

(ख) प्रश्न और उत्तर में भी पञ्चमी आती है, जैसे, कुतो भवान्—पाटलिपुत्रात् (म० भा०)—आप कहाँ से आ रहे हैं—पाटलिपुत्र से (आ रहा हूँ)।

७६[2]—जुगुप्सा (घृणा), विराम (बन्द हो जाना, अलग हो जाना, छोड़ देना, हटना), प्रमाद (भूल)—इनका बोध कराने वाले तथा इनके समान अर्थ रखने वाले शब्दों के साथ पञ्चमी आती है। (जिस से घृणा करे, जिससे हटे अर्थात् जिसे दूर कर दे, जिस काम में भूल करे, उन सबों में पञ्चमी होती है)। जैसे, पापात् जुगुप्सते (म० भा०)—पाप से घृणा करता है। स्वाधिकारात् वत्सैतस्माद् विरम (उत्तर० १)—बेटा, इस से दूर हटो। ...

१—ल्यब्लोपे कर्मण्युपसंख्यानम्। अधिकरणे च प्रश्नाख्यानयोश्च (वार्तिक)

२—जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् (वार्तिक)

प्रमत्त (नैष० १)—अपने कर्त्तव्य से पराङ्मुख होकर के। प्राणाघातात् निवृत्तिः (भर्तृ० ३।२६)—जीवहिंसा से अलग हटे रहना। धर्मात् प्रमाद्यति (म० भा०)

विशेष—"किसी के विषय में असावधान रहना"—इस अर्थ में 'प्रमद्' धातु सप्तमी के साथ आती है, जैसे, न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः (मनु० २।२१३)—बुद्धिमान् लोग अपनी स्त्रियों के विषय में असावधानी नहीं करते।

७७—जिस गुरु या अध्यापक या मनुष्य से कोई चीज नियमपूर्वक पढ़ी जाती है, अथवा मालूम की जाती है, वह गुरु या अध्यापक या अन्य मनुष्य अपादान होता है, जैसे, उपाध्यायादधीते (सि० कौ०)—गुरु से पढ़ता है। मया तीर्थादभिनयविद्या शिक्षिता (मालविका० १)—मैंने अभिनय करने की विद्या अध्यापक से सीखी।

जन (जन्म लेना) धातु के कर्ता का मूलकारण अपादान होता है, जैसे, गोमयाद् वृश्चिको जायते (म० भा०)—गोबर से बिच्छू पैदा होता है। (कामात् क्रोधोऽभिजायते—काम से क्रोध उत्पन्न होता है।) प्राणाद् वायुरजायत (ऋग्वेद १०।९०)—श्वास से हवा पैदा हुई।

भू धातु के कर्ता का उद्गमस्थान अथवा प्रादुर्भावस्थान अपादान होता है, जैसे, हिमवतो गङ्गा प्रभवति (म० भा०)—गङ्गा हिमालय से निकलती है, अर्थात् गङ्गा का उद्गमस्थान हिमालय पर्वत है। लोभात् क्रोधः प्रभवति (हितो०)—लालच से क्रोध का प्रादुर्भाव होता है।

७८[1]—'भय' और "आपत्ति से रक्षा' अर्थों का बोध कराने वाली धातुओं के योग में, भय या आपत्ति के उद्भवस्थान का बोध कराने वाली संज्ञा अपादान होती है, जैसे—न भीतो मरणादस्मि (मृच्छ० १०)—मैं मृत्यु से भयभीत नहीं होता। कपेरत्रासिषुर्नादात् (भट्टि० ६।११)—बन्दर के नाद से (वे लोग) डर गए। तीक्ष्णादुद्विजते (मुद्रा० ३)—उग्रप्रकृति पुरुष से डरता है। भीमाद् दुःशासनं त्रातुम् (वेणी०३)—भीम से दुःशासन को बचाने के लिए। इसी प्रकार लोकापवादाद् भयम् (भर्तृ० २।६२)। तृणबिन्दोः परिशङ्कितः (रघु०८।७६)।

(क)[2] जिससे कोई पुरुष दूर किया जाता है अथवा मना किया जाता है वह अपादान होता है, जैसे, पापान्निवारयति (भर्तृ० ७२)।

७९[3]—"परा" पूर्वक "जि" धातु के योग में जो वस्तु या मनुष्य असहनीय होता है, वह अपादान होता है, जैसे, अध्ययनात् पराजयते (म० भा०)—अध्ययन से हार रहा है अर्थात् अध्ययन असहनीय हो रहा है।

८०[4]—जिस स्थान से या जिस समय से किसी दूसरे स्थान या समय की दूरी नापी जाती है उस स्थान या समय में पञ्चमी विभक्ति लगती है। 'स्थान की दूरी' व्यक्त करने वाले शब्द में प्रथमा या सप्तमी विभक्ति लगती है और 'कालान्तर या समय की दूरी' व्यक्त करने वाले शब्द को सप्तमी विभक्ति में रखते हैं। प्रयागात् प्रतिष्ठानपुरं क्रोशोऽस्ति अथवा प्रयागात् प्रतिष्ठानपुरं क्रोशेऽस्ति—प्रयाग से प्रतिष्ठानपुर (झूसी) एक कोस है। यहाँ जिस स्थान से दूरी दिखाई गई है वह "प्रयाग" है, इसलिए 'प्रयाग' पञ्चमी विभक्ति में रक्खा गया है, और जितनी दूरी दिखाई गई है वह "कोस" है, इसलिए 'कोस' प्रथमा में अथवा सप्तमी में रक्खा गया है। कोस स्थानवाचक दूरी [illegible] है, इसलिए इसमें प्रथमा या सप्तमी दोनों हो सकती हैं। इसी प्रकार [illegible] भी उदाहरण हो सकते हैं। जैसे गवीधुमतः सांकाश्यं चत्वारि योजनानि चतुर्

१—भीत्रार्थानां भयहेतुः १।४।२५।

२—वारणार्थानामीप्सितः १।४।२७।

३—पराजेरसोढः १।४।२६।

४—यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पञ्चमी। तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ। कालात् सप्तमी च वक्तव्या (वार्तिक)

योजनेषु वा (म०भा०)—गवीधूम से साकाशी चार योजन दूर है। कार्तिक्या आग्रहायणी मासे (म०भा०)—कार्तिकी पूर्णिमा से अगहन की पूर्णिमा एक महीने पर होती है। इसी प्रकार समुद्रात्पुरी कोशो या कोशयो.

८१)—"भिन्न" अथवा "अतिरिक्त" अर्थ बोध कराने वाले 'अन्य' 'पर' 'इतर' शब्द 'समीप' या 'दूर'—वाचक 'आरात्' शब्द, 'बिना' या 'छोड़कर' का अर्थ देने वाला 'ऋते' शब्द, कालवाचक तथा दिशावाचक शब्द 'अञ्च्' धातु से निष्पन्न 'प्रत्यक्' और 'प्राक्' जैसे दिशावाची शब्द, और 'आ' तथा 'आहि' में अन्त होने वाले शब्द—इन सबों के योग में पञ्चमी विभक्ति आती है, जैसे कृष्णादन्यो भिन्न इतरो वा (सि० कौ०—कृष्ण से भिन्न। आरात् वनात् (सि० कौ०)—वन के समीप अथवा वन से दूर। 'विविक्ताद् ऋतेऽन्यच्छरणं नास्ति (विक्रमो० २)-एकान्त स्थान को छोड़कर दूसरा कोई आश्रय नहीं। ग्रामात् पूर्वम् उत्तरो वा—गाँव के उत्तर अथवा पूर्व। चैत्रात् पूर्वः फाल्गुनः (सि० कौ०)—फागुन का महीना चैत से पहिले होता है। प्राक् प्रत्यक् वा ग्रामात् (सि० कौ०) गाँव के पूर्व अथवा पश्चिम। दक्षिणा दक्षिणाहि वा ग्रामात् (सि० कौ०)—गाँव के दक्खिन अथवा गाँव के दक्खिन दिशा में। प्राङ् नाभिवर्धनात् (मनु० २।२९)—नाभि काटने के पहिले।

विशेष–(क) 'प्रभृति' और 'आरभ्य' शब्द प्राय इसी अर्थ में कालवाचक क्रियाविशेषण अव्ययों के साथ आते हैं, जैसे, यत प्रभृति—तत प्रभृति (शा० ३)। अद्यप्रभृति तवास्मि दास. (कुमार० ५।८६)।

(ख) कभी कभी 'अनन्तरम्' 'परम' इत्यादि का अर्थ परोक्ष रहता है, जैसे, बहोर्दृष्ट कालात् (उत्तर० २)—बहुत समय के बाद देखा हुआ।

८३[1] पृथक् (अलग, भिन्न), विना और नाना शब्दों के साथ द्वितीया तृतीया तथा पचमी विभक्तियो में से कोई एक आ सकती है, जैसे रामात् -रामेण, राम वा विना पृथग्, नाना वा (सि० कौ०) जीवितु नोत्सहे—राम के विना मैं नहीं जी सकता। नाना नारीं निष्फला लोकयात्रा (बोपदेव)।

८४—'तक' 'जहाँ तक' तथा 'से' अर्थ मे 'आ' के योग मे पचमी विभक्ति लगती है, जैसे, आपरितोषात् विदुषाम् (शा० १)—विद्वानो को सन्तोष हो जाने तक। आमूलाच्छ्रोतुमिच्छामि (शा० १)—प्रारम्भ से सुनना चाहता हूँ। आकैलासात् (मेघ० ११)—जहाँ तक कैलास है।

अव्ययीभाव समास बनाने के लिये भी कभी कभी 'आ' को संज्ञा शब्दो के साथ जोड़ते हैं, जैसे, आमेखल सचरता घनानाम् (कुमार० १।५)—मेखला (करधनी या मध्यभाग) तक घूमते फिरते हुए बादलो के।

८५[2]—'छिपना' या 'छिपाना' अर्थ वाली धातुओं के योग मे वह व्यक्ति जिससे कोई आँख बचाना चाहता है या जिससे कोई छिपाना या छिपना चाहता है अपादान होता है जैसे, मातुर्निलीयते कृष्ण (सि० कौ०)—कृष्ण माता से छिपता है।

८६[3]—"किसी के बदले में" या 'प्रतिनिधि' के अर्थ मे प्रयुक्त 'प्रति' उपसर्ग के साथ, जिसके बदले में कोई चीज दी जाती है या जिसका प्रतिनिधि दिखाया जाता है, वह पचमी मे रक्खा जाता है, जैसे, प्रद्युम्न कृष्णात् प्रति (सिद्धान्त०)—प्रद्युम्न कृष्ण के प्रतिनिधि हैं। तिलेभ्य प्रतियच्छति माषान् (सिद्धान्त०)—तिलों के बदले में उर्द देता है।

१—पृथग्विनानानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम् २।३।३२,

२—अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति। १।४।२८।

३—प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्। २।३।११।

अभ्यास

१—अनुष्ठितनिदेशोऽपि सत्क्रियाविशेषादनुपयुक्तमिवात्मान समर्थये (शा० ७)।

२—अलमलमाक्रन्दितेन। सूर्योपस्थानात् प्रतिनिवृत्त पुरूरवस मानुपेत्य कथ्यता कुतो भवत्यः परित्रातव्या इति (विक्रमो० १)।

३—राम—एवमेतत्। एते हि हृदयमर्मभिद ससारभावा येभ्यो बीभत्समाना सत्यज्य सर्वान् कामान् मनीषिणोऽरण्ये विश्राम्यति (उत्तर० १)।

४—नास्ति जीवितादन्यदभिमततरमिह जगति सर्वजन्तूनाम् (कादम्० ३५)।

५—नैव जानासि त देवमैक्ष्वाक यदेव वदसि। तद् विरम्यतामतिप्रसगात् (उत्तर० ५)।

६—कृतातिशयया महाश्वेतया परिपृष्टो दिग्विजयादारभ्य किन्नरमिथुनानुसरणप्रसगेनागमनमात्मन सर्वमाचचक्षे (कादम्० १३४)।

७—वत्से मालति जन्मन प्रभृति वल्लभा ते लवगिका। तत् किमुज्झिहान जीविता वराकी नानुकम्पसे (मालती० १०)।

८—चाणक्य—वृषल वृषल अलमुत्तरोत्तरेण। यद्यस्मत्तो वरीयान् राक्षसोऽवगम्यते तदिद शस्त्र तस्मै दीयताम् (मुद्रा० ३)।

९—आसा चतुर्दश कुलानि—एक भगवत कमलयोनेर्मनस समुत्पन्नम्। अन्यद्वेदेभ्य सभूतम्। अन्यदग्नेरुद्भूतम्। अन्यत् पवनात्प्रसूतम्। अन्यदमृतादुन्मथ्यमानादुत्थितम्। अन्यज्जलाज्जातम्। अन्यदर्ककिरणेभ्यो निर्गतम्। अन्यत्सोमामिनीत प्रवृत्तम्।

(कादम्० १३६)।

१२—प्रजां संरक्षति नृपः सा वर्द्धयति पार्थिवम्।
वर्द्धनाद्रक्षणं श्रेयस्तदभावे सदप्यसत् (हितो० ३)।

१३—त्वचं स मेध्यां परिधाय रौरवी-
मशिक्षतास्त्रं पितुरेव मन्त्रवत्। (रघु० ३।३१)।

१४—अनम्राणां समुद्धर्तुस्तस्मात्सिन्धुरयादिव।
आत्मा संरक्षितः सुह्मैर्वृत्तिमाश्रित्य वैतसीम्।
(रघु० ४।३५)।

१५—ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥ (श्रीमद्० २।६३)।

१६—हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः॥ (मनु० २। २१)।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—जन्मकमतो मलिनतरजन जनतो निस्त्रिंशतरलोकहृदयं लोकहृदयेभ्यो निर्घृणतरमेव व्यवहारमपुण्यकर्मैकापणं पक्वणमदृश्यम्। (कादम्० ३५६)।

२—मां कुसुमघटितशिलीमुखमनोहरान्मदनचापादिव प्रमदवनाद्बिभेति जानकीव पानरक्त-रजनिचरेभ्य इव चंपकाशोकेभ्यो बिभेति (कादम्० २२५)।

३—तं नृपं वसुरक्षितो नाम मन्त्रिवृद्ध एकदाऽभाषत। तात अत्रभवति [illegible] अभिजनात्प्रभृत्यन्यूनैव लक्ष्यते। बुद्धिश्च निसर्गपट्वी [illegible] प्रतिविराध्यते।
(दशकु० २।८

४—अहो दुराराध्या राजलक्ष्मीरात्मवद्भिरपि राजभिः—
तीक्ष्णादुद्विजते मृदौ परिभवत्रासान्न सन्तिष्ठते
मूर्खान् द्वेष्टि न गच्छति प्रणयिनामत्यन्तविद्वत्स्वपि।
शूरेभ्योऽप्यधिकं बिभेत्युपहसत्येकान्तभीरूनहो।
श्रीर्लब्धप्रसरेव वेशवनिता दुःखोपचर्या नृणाम्। (मुद्रा० ३)।

५—सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम्।
अहार्यत्वादनर्घ्यत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा॥ (हितो० १)।

६—प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥ (रघु० १।२४)।

७—न नवः प्रभुराफलोदयात् स्थिरकर्मा विरराम कर्मणः ।
न च योगविधेर्नवेतरः स्थिरधीरापरमात्मदर्शनात् ॥ (रघु० ८।२२)

८—रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा न भेजिरे भीमविषेण भीतिम् ।
सुधां विना न प्रययुर्विरामं न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः ॥ (भर्तृ० २।८०)

९—श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः (श्रीमद् ३।३५)

१०—लोभान्मोहाद्भयान्मैत्र्यात् कामात्क्रोधात्तथैव च ।
अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते ॥ (मनु० ८।११८)

११—[illegible] परिभ्रमन्रावणाद्बिभ्यतो भृशम् ।
[illegible] जनकात्मजाम् ॥
[illegible] न प्राने रचया [illegible]शाननात् ।
[illegible] रक्षोभ्यो मलिना ध्याममूर्धजाम् ॥ (अपश्यत्) (भट्टि० ८।७०,७१)

१२—[illegible]वदभाति भावाद्दाराधि स्तुवन् ।
[illegible] विश्वासयितु तु किम् ॥
[illegible] रायवानुचरो यदि ।
[illegible] निर्मितानि प्राक् प्रमामात्तनो मम ॥ (भट्टि० १०५, १०६)

१३—एतद्वोऽयं भृगुः शास्त्रं श्रावयिष्यत्यशेषतः ।
एतद्धि मत्तोऽधिजगे सर्वमेषोऽखिलं मुनिः ॥ (मनु० १।५९)

१४—एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामाः परं तपः ।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते ॥ (मनु० २।८३)

———

६—जो अपने मित्र के मन को पाप से हटाकर, सत्कर्म में प्रवृत्त करता है, व सच्चा मित्र है।

७—क्या तुम नहीं जानते कि दुष्टों के पदचिह्नों पर चलने से नाना प्रकार के दुःख पैदा होते हैं?

८—तुम्हारी यह बीमारी तुम्हारे कल के कड़े परिश्रम के कारण पैदा हुई है। क्या इस समय तुम्हारी दशा में कुछ उत्तम परिवर्तन हुआ है?

९—हिमालय प्रदेश तक फैले हुए अपने राज्य को इस पराक्रमी राजा के अतिरिक्त और कौन बचा सकता है?

१०—अध्ययन प्रारम्भ करने के पहले वह व्याकरण और शब्दकोश अपने पास रख लेता है।

११—पाँच वर्ष हुए मैंने इसी रमणीय वन को देखा था, परन्तु इस समय इसमें बड़ा परिवर्तन हो गया है।

१२—जिस दिन मैंने उस स्त्री को देखा था, उसी दिन से मेरा मन उद्विग्न हो गया है, और उसके विषय में निरन्तर चिन्तन करते रहने के कारण मैं भोजन तक करने की नहीं सोचता।

१३—कल सभापति के उत्कृष्ट भाषण के अनन्तर (ऊर्ध्वम्, अनन्तरम् ...) तुमने जो व्याख्यान दिया उसे मैं अनुमोदित नहीं करता।

१४—सीता जी राम को (षष्ठी का प्रयोग कीजिए) प्राणों से भी प्यारी थीं।

१५—ईमानदारी अन्य सभी गुणों से बढ़कर है। ईमानदारी के बिना मनुष्य किसी के भी हृदय में विश्वास नहीं पैदा कर सकता।

१६—भय के मारे अंगों के सिकुड़ जाने के कारण छोटे मुर्गे को ... ने नहीं देखा।

१७—भगवन्, हम लोग आप से इस मुर्गे का वृत्तान्त आदि ... सुनना चाहते थे।

१८—मुम्बई पूना से १२० मील दूर है।

६१—शब्द-कोषों में सप्तमी का प्रयोग "के अर्थ में" का भाव दिखलाने के लिए होता है, जैसे, वाणो वलिसुते शरे (अमर०)—"बाण" शब्द "बलि के पुत्र" तथा 'तीर' के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

६२—जिस प्रयोजन या अभिप्राय से कोई कार्य किया जाता है उसका बोध कराने के लिए सप्तमी का प्रयोग होता है, जैसे, चर्मणि द्वीपिन हन्ति दन्तयो हन्ति कुजरम्। केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हत (म० भा०) मनुष्य बाघ को (उसके) चमड़े के लिए, हाथी को (उसके) दाँतों के लिए चमरी को (उसके) बाल के लिए, और कस्तूरी-मृग को कस्तूरी के लिये मारता है।

६३—करना, व्यवहार करना, बर्तना या बर्ताव करना अर्थ रखने वाली धातु के योग में सप्तमी विभक्ति लगती है, जैसे, आर्योऽस्मिन विनयेन वर्तताम् (उत्तर० ८)—श्रीमान् जी इस पुरुष के प्रति विनयपूर्वक व्यवहार करें। कथं कार्यविनिमयेन व्यवहरति मय्यनात्मज्ञ (मालविका० १)—और, क्या यह मूर्ख मेरे साथ कार्य की अदल-बदल के लिए व्यवहार करता है। कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने (शा० ४)—सवतों के प्रति प्रिय मित्र का सा बर्ताव करो।

६४—स्निह्, अभिलष्, अनुरज् इत्यादि 'स्नेह', 'आसक्ति' तथा 'सम्मान'-वाचक शब्दों के साथ, जिसके लिए स्नेह, आसक्ति अथवा सम्मान प्रदर्शित किया जाता है वह सप्तमी में रक्खा जाता है, जैसे, किंतु खलु बाले ऽस्मिन् स्निह्यति मे मन. (शा० ७)—मेरा मन इस लड़के को क्यों प्यार करता है। न तापसकन्यकाया शकुंतलाया ममाभिलाष (शा० २) मुनिकन्या शकुंतला में मेरा स्नेह नहीं है। स्वयोषिति रति —(भर्तृ० श०) —अपनी पत्नी में आसक्ति। दण्डनीत्या नात्यादृतोऽभूत (दश०) —राजनीति के प्रति (उसके हृदय में) कोई महान सम्मान नहीं था। चन्द्रगुप्ते दृढमनुरक्ता प्रकृतय (मुद्रा० १)—श्रीचन्द्रगुप्त के प्रति प्रजा का बहुत बड़ा अनुराग है। अग्नि में सोदरस्नेहोऽप्येतेषु (शा० १)—इनके प्रति (मेरे हृदय में) सगी-बहिन जैसा प्रेम है।

विशेष—'अनुरज्' से प्रत्यय लगाकर बने हुए शब्द कर्म कर्ता के साथ प्रयुक्त होते हैं, जैसे एषा भवन्तमनुरक्ता (शा० ३) और ...

मनुरन्ना प्रकुनय (मुद्रा० १)। ऐसे स्थलों पर 'अनु' को बिल्कुल अलग मानकर 'कर्मप्रवचनीय' समझना चाहिए, 'कर्मप्रवचनीय' हो जाने पर उसके साथ द्वितीया आवेगी। (नियम ३७ देखिए)।

९५—जब कारण-वाची शब्द का प्रयोग होता है, तब कार्य सप्तमी में रक्खा जाता है जैसे दैवमेव हि नृणा वृद्धौ क्षये कारणम् (भ० २।८४)—भाग्य ही मनुष्य की उन्नति तथा अवनति का कारण है।

९६—'युज्' धातु के साथ तथा 'युज्' से प्रत्ययद्वारा निष्पन्न शब्दों के साथ सप्तमी आती है जैसे असाधुदर्शी तत्रभवान् काश्यपो य इमामाश्रमधर्मे नियुक्ते (शा० १)—पूज्यपाद काश्यपजी महाराज बुद्धिमान् नहीं हैं जिन्होंने इसे आश्रम के कामों में नियुक्त कर रक्खा है।

(क) 'योग्यता' अथवा 'उपयुक्तता' इत्यादि अर्थों का बोध कराने वाले शब्दों के योग में, उस व्यक्ति का वाचक शब्द सप्तमी में रक्खा जाता है जिसके विषय में योग्यता अथवा उपयुक्तता प्रकट की जाती है। जैसे, युक्तरूपमिदं त्वयि (शा० २)—यह तुम्हारे लिए योग्य है। त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्वं तस्मिन् युज्यते (हित० २)—तीनों लोकों का भी राज्य उसके लिए उपयुक्त है। अथवोपपन्नमेतदृषिकल्पेऽस्मिन् राजनि (शा० २)—अथवा इस ऋषितुल्य राजा के लिए यह सर्वथा उचित है। ते गुणाः परस्मिन् ब्रह्मण्युपपद्यन्ते ([illegible])—ये गुण परब्रह्म के लिए उपयुक्त हैं।

टिप्पणी—वि+तृ का प्रयोग चतुर्थी के साथ भी होता है, जैसे, मह्यं तद्व्यतरत् (दश० १।१)—उसको मुझे दे दिया। इसी प्रकार—मारीचस्ते दर्शनं वितरति (शा० ७)।

(क) ग्रहणार्थक तथा प्रहारार्थक धातुओं के योग में पकड़ा जाने वाला या प्रहार किया जाने वाला सप्तमी में होता है। जैसे, आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि (शा० १)—आप का शस्त्र दुःखितों की रक्षा करने के लिए है, न कि निरपराधों पर प्रहार करने के लिए। केशेषु गृहीत्वा—बाल पकड़ कर।

६८—'फेंकना' या 'किसी पर झपटना'—इस अर्थ का बोध कराने वाली 'क्षिप्', 'मुच्' और 'अस्' धातुओं के योग में, जिस पर कोई चीज फेंकी जाती है या झपटती है, वह सप्तमी में रक्खा जाता है, जैसे, मृगेषु शरान् मुमुक्षो (रघु० ६।५८)—हिरनों पर बाण छोड़ने की इच्छा करने वाले का। न बाणः सन्निपात्योऽस्मिन् मृगशरीरे (शा० १)—हिरन के इस शरीर पर बाण नहीं छोड़ा जाना चाहिए।

(क) 'विश्वास' 'भरोसा' अर्थबोधक शब्दों के साथ, प्रायः जिसका विश्वास किया जाता है वह सप्तमी में रक्खा जाता है, जैसे, पुंसि विश्वसिति कुत्र कुमारी—भला, कुमारी कन्या कब पुरुष का विश्वास करती है?

विशेष—"श्रद्धा"के साथ द्वितीया आती है, जैसे, कः श्रद्धास्यति भूतार्थम् (मृच्छ० ३)—वास्तविक बातों का कौन विश्वास करेगा?

६९—'अधीतिन्' (पढ़ चुकने वाला) और 'गृहीतिन्' (समझ चुकने वाला) के योग में इनका कर्म सप्तमी में रक्खा जाता है, जैसे अधीती चतुर्ष्वाम्नायेषु (दशकु० २।५)—चारों वेदों को पढ़ चुकने वाला। गृहीती षट्स्वङ्गेषु (दशकु० २।५)—छहों अंगों को पूर्णरूप से पढ़ चुकने वाला, छहों अंगों का प्रकाण्ड विद्वान्।

'साधु'[२] और 'असाधु' शब्दों के योग में जिसके प्रति साधुता अथवा असाधुता दिखाई जाती है, वह सप्तमी में रक्खा जाता है, जैसे मातरि साधुः असाधुर्वा (सि० कौ०)—अपनी माता के प्रति सद्व्यवहार करता है अथवा दुर्व्यवहार।

१—क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम् (वार्तिक)
२—साध्वसाधुप्रयोगे च (वार्तिक)

१००—'संलग्न' या 'तुला हुआ' या 'कटिबद्ध'—इस अर्थ के बोध कराने वाले 'व्यापृत' 'आसक्त' 'व्यग्र' 'तत्पर' इत्यादि शब्दों के साथ सप्तमी विभक्ति आती है, जैसे, गृह-कर्मणि व्यापृता व्यग्रा वा (पञ्च० २)—अपने घर के कामों में संलग्न।

'चतुर' या 'होशियार'—अर्थवाचक 'कुशल', 'निपुण' 'शौण्ड' 'पटु', 'प्रवीण', 'पण्डित' इत्यादि शब्दों के योग में, और 'धूर्त' और 'कितव' (ठग, बदमाश, (छलिया) शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति आती है, जैसे रामोऽक्षद्यूते निपुणः प्रवीणो वा (सि० कौ०)—राम जुआ खेलने में होशियार है।

(ख) 'प्रसित' (अत्यन्त इच्छुक) और 'उत्सुक' (अत्यन्त इच्छुक) शब्दों के साथ सप्तमी अथवा तृतीया विभक्ति आती है, जैसे, निद्रायां निद्रया वा उत्सुकः (सि० कौ०)—निद्रा के लिए अत्यन्त इच्छुक। मनो नियोगक्रियायोत्सुकं मे (रघु० ५ । ११)।

टिप्पणी—अप+राध् (अपराध करना) धातु के कर्म में सप्तमी प्रयुक्त होता है, और कभी कभी षष्ठी, जैसे, कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शकुन्तला (शा० ४)—शकुन्तला ने किसी सम्माननीय व्यक्ति का अपराध किया है। इसी प्रकार अपराद्धोऽस्मि तत्रभवतः कण्वस्य (शा० १)।

अभ्यास

४—एष देवो रघुपतिस्तिष्ठति । स च स्निह्यत्यावयोरुत्कण्ठते च युष्मत्सन्निकर्षस्य (उत्तर० ६) ।

५—दुर्जनत्वं च भवतो वाक्यादेव विज्ञातं यदनयोर्भूपालयोर्विग्रहे भवद्वचनमेव निदानम् (हित० ३) ।

६—एष धृष्टद्युम्नेन द्रोणः केशेष्वाकृष्यासिपत्रेण व्यापाद्यते (वेणी० ३) ।

७—न जानामि केनापि कारणेनापहस्तितसकलसखीजनं त्वयि विश्वसिति मे हृदयम् (कादम्० २३३) ।

८—उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः ।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते ॥ (हित० २) ।

९—न मातरि न दारेषु न सोदर्ये न चात्मनि ।
विश्वासस्तादृशः पुंसां यावन्मित्रे स्वभावजे ॥ (हित० १)

१०—क्षमा शत्रौ च मित्रे च यतीनामेव भूषणम् ।
अपराधिषु सत्त्वेषु नृपाणां सैव दूषणम् ॥ (हित० २) ।

११—वाञ्छा सज्जनसंगमे गुणिगणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद्भयम् ।
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले-
ष्वेते येषु वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः ॥ (भर्तृ० २।६२)

१२—संतानार्थाय विधये स्वभुजादवतारिता ।
तेन धूर्जगतो गुर्वी सचिवेषु निचिक्षिपे ॥ (रघु० १।३४) ।

१३—भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः ।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ (मनु० १।९६) ।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१४—अवैमि ते सारमतः खलु त्वां कार्ये गुरुण्यात्मसमं नियोक्ष्ये ।
व्यादिश्यते भूधरतामवेक्ष्य कृष्णेन देहोद्वहनाय शेषः ॥ (कुमार० ३।१३) ।

१५—मधुरमपि शशिनं जनता नानुरज्यते । (पञ्च० १।२२) ।

१६—जनकानां रघूणां च यत्कृत्स्नं गोत्रमङ्गलम् ।
यस्मिन्नकरुणे पापे वृथा वः करुणा मयि ॥ (उत्तर० ३)

१७—निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ।
न हि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनः ॥ (हित० १) ।

१८—इत्युक्तवन्तं जनकात्मजायां नितान्तरूक्षाभिनिवेशमीशम् ।
न कश्चन भ्रातृषु तेषु शक्तो निषेद्धुमासीदनुमोदितुं वा ॥ (रघु० १४।४३) ।

१९—परकर्मापहः सोऽभूदुद्यतः स्वेषु कर्मसु ।
आवृणोदात्मनो रन्ध्रं रन्ध्रेषु प्रहरन् रिपून् ॥ (रघु० १७।६१) ।

२०—भगवति कमलालये भृशमबुध्यमाने
ध्यानदहेतुमपि देवमपास्य नन्दं
रक्तासि किं कथय वैरिणि मौर्यपुत्रे (मुद्रा० २) ।

२१—साक्षात्प्रियामुपगतामपहाय पूर्वं
चित्रार्पितां पुनरिमां बहु मन्यमानः ।
स्रोतोवहां पथि निकाममजलामतीत्य
जातः सखे प्रणयवान्मृगतृष्णिकायाम् ॥ (शा० ६) ।

२२—पीतो दुस्तरवारिराशिरबला दीर्घोऽधकारागम
निर्याते स्वजने सदापकारिणा दर्पोपशान्त्यै शुचा ।
[illegible] तदपि नास्ति यस्य विधिना नोपायचिन्ता कृता
मन्ये दुर्जनचित्तवृत्तिहरणे धातापि भग्नोद्यमः ॥ (हित० २) ।

२३—निरस्तानुग्रहा प्रोक्ता प्रतिपक्षपराङ्मुखी ।
न मार्गे प्रतिपन्नासि मा मे मतासि मैथिलि ॥ (भट्टि० ८।९५)

२४—एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
मा कौलीनादसितनयने मय्यविश्वासिनी भूः । (मेघ० ११५)

२५—[illegible] पौर [illegible] राघवे ।
[illegible] दाशरथि [illegible] ॥ (रघु० ११।८२)



४—ऋषि लोग इस सांसारिक जीवन के सुख तथा दुःख के प्रति निःस्पृह हो जाते हैं।

५—इस लड़के की शिक्षा के विषय में ज़रा भी चिन्ता न कीजिए।

६—कुटुम्ब का भार अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंप कर और मित्रों तथा सम्बन्धियों से विदा हो उसने अरण्यनिवास का आश्रय लिया।

७—बाल पकड़ कर वह नीचे खींच लिया गया, तब सारे दर्शकों ने उसके ऊपर पत्थर फेंके।

८—जो कुछ उस स्त्री के आस पास हो रहा था उस पर उसने अन्यमनस्का होने के कारण दृष्टि तक न डाली।

९—यह वृत्तान्त सर्वत्र विदित हो गया है। क्या यह आप के कानों तक नहीं पहुँचा कि राजा का प्रेम सागरिका पर लगा हुआ है?

१०—कैकेयी राम के चौदह वर्ष के वनवास का प्रधान कारण थी।

११—जो लोग द्यूतकला में निपुण हैं उनके साथ जुआ खेलने में वह सदा अपना समय बिताता है।

१२—इस बगीचे के सब वृक्षों से यह वृक्ष लम्बा है।

१३—मनुष्यों में सब से प्रशंसनीय वही है जो परोपकार में तत्पर रहता है।

१४—भारतीय कवियों में कालिदास और भवभूति सब से अधिक प्रसिद्ध हैं।

१५—राक्षस अपना कुटुम्ब ऐसे पुरुषों को नहीं सौंपेगा जो गौरव में उसी के समकक्ष नहीं हैं।

दशम पाठ

षष्ठी

१०१—जैसा कि तीसरे पाठ में बताया गया है षष्ठी विभक्ति कारक नहीं है। वस्तुत यह विभक्ति किसी वाक्य में प्रयुक्त एक संज्ञा शब्द का दूसरे संज्ञा शब्द के साथ सम्बन्ध बतलाती है।

इस पाठ मे दिए हुए नियमों मे षष्ठी का एक ही मुख्य अर्थ है, और वह है "सम्बन्ध" का अर्थ। जहाँ कहीं षष्ठी के साथ क्रियापदका प्रयोग किया जाता है, वहाँ भी यही समझना चाहिए कि षष्ठी "सम्बन्ध" अर्थ में आई है। परन्तु कई स्थलों पर इस विभक्ति का शिथिल प्रयोग उन सम्बन्धों को व्यक्त करने के लिये किया जाता है जो वास्तव में दूसरे कारकों द्वारा प्रकट होते हैं। संस्कृत-साहित्य के लेखकों ने भी ऐसे शिथिल या अशुद्ध प्रयोग किये हैं, जैसे (१) त प [illegible]सृजद्भरतस्य (उत्तर० ४)—उसको भरत के पास भेजा। यहाँ 'भरताय' की जगह 'भरतस्य' का प्रयोग हुआ है। (२) जयसेनायास्तावत्सवेद्य गन्ध (मा० विवा० [illegible])—यहाँ "जयसेनायै" की जगह 'जयसेनायाः' का शिथिल प्रयोग हुआ है।

विशेष—ध्यान रहे कि संस्कृत में षष्ठी उन सभी सम्बन्धों और अर्थों का
बोध नहीं करा सकती जिन्हें दिखाने के लिए हिन्दी में 'का की, के,' प्रयुक्त
किए जाते हैं। उदाहरणार्थ, विशेषण का अर्थ अथवा समानाधिकरण का अर्थ
दिखाने के लिए, जैसे, (१)"सोने का बर्तन" का अनुवाद प्राय समस्तपद
'हैमपात्रम्" अथवा प्रत्ययनिष्पन्न पद "हैम" द्वारा "हैम पात्रम्" होता है। परन्तु
"हेम्नः पात्रम्" कभी नहीं होता (२)। मिट्टी का बर्तन—मृद्भाण्डम् अथवा मृण्मयं
भाण्डम् परन्तु "मृदः भाण्डम्" नहीं होगा। (३) बड़े मूल्य की मुक्ता—महार्घम्
मुक्ताफलम्,(४) शक्ति वाला पुरुष—सबलो नरः, न कि बलस्य नरः। इसी प्रकार
(५) वैशाख के महीने में—वैशाखे मासे या वैशाखमासे न कि वैशाखस्य मासे।
(६) बम्बई का शहर—मुम्बापुरी अथवा मुम्बा नाम पुरी। "मुम्बायाः पुरी" नहीं
होता। "मुम्बा" और "पुरी" में समानाधिकरण सम्बन्ध है।

१०३—षष्ठी विभक्ति से "रखने वाले" का अथवा "स्वामी" का बोध होता
है। जो चीज़ रक्खी जाती है अथवा जिस पर स्वामित्व होता है वह प्रथमा में
रक्खी जाती है, यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा (पंच०)—जिसके स्वयं बुद्धि नहीं
होती अथवा जो स्वयं बुद्धि नहीं रखता। इमे नो गृहा (मृच्छ० ?)—ये हमारे
घर हैं। स्खलनं मनुष्याणां धर्मः—गलती करना मनुष्य का धर्म (स्वभाव,
गुण) है, अर्थात् मनुष्यों से गलती होती ही है।

विशेष— यह अर्थ प्राय प्रत्ययनिष्पन्न शब्दों द्वारा सूचित किया जाता है।
जैसे, पैतृकं रिक्थम्—बाप-दादों की सम्पत्ति। इसी प्रकार, अस्मदीयं गृहम्
इत्यादि।

१०४—जिनके सम्पूर्ण या समष्टि का बोध कराने के लिए एक अंश मात्र
का नाम ले लिया जाता है उन विशेष्यों के साथ षष्ठी आती है, और उस
अंशवाची षष्ठी (Partitive genitive) कहते हैं, जैसे, जलस्य
बिन्दु—जल की बूँद। अयुतं शरदां ययौ (रघु० १०।?)—दस हज़ार वर्ष
बीत गए। इसी प्रकार गवां शतसहस्राणि—हज़ारों गायें।

(क) पूरणीसंख्यावाचक सर्वनामों और विशेषणों के साथ तथा सं... (?)
सर्वनामों और विशेषणों के साथ 'अंशवाची षष्ठी' (Partitive
Genitive) आती है, जैसे, त्वमेव कन्यानां तयोर्मृतीया (रघु० ३।१२)—

ऐ व्रतमाणि, तुम्हीं उनकी तीसरी हो। गृह्यतामनयोरन्यतरा (मालविका० ५)—दो में से एक स्वीकार कर ली जाय। तासामन्यतमा (मालती० १)—उन (लड़कियों) में से एक।

(ख) इसी प्रकार, तमप् प्रत्ययान्त, इष्ठन् प्रत्ययान्त विशेषणों के साथ, तथा तमवन्त और इष्ठन्नन्त शब्दों-जैसा अर्थ बोध कराने वाले शब्दों के साथ भी "प्रशवाची षष्ठी" आती है, जैसे, द्विजाना ब्राह्मण श्रेष्ठ। धौरेयः साहसिकानामग्रणीर्विदग्धानाम् (कादम्० ५)—साहसी तथा बुद्धिमानों में सब से आगे।

विशेष—षष्ठी के इस प्रयोग की विवेचना सेक्शन ८९ में पहिले हो चुकी है।

(ग) कभी कभी "में," या "में से" के अर्थ में षष्ठी के साथ "मध्ये" शब्द का प्रयोग होता है जैसे, एतेषा मध्ये केचिद्रे कोपदडाभ्यामर्थिन. (मुद्रा० ५)—इनमें से कुछ लोग शत्रु के कोष और सेना के इच्छुक हैं।

९४—जब किसी कार्य के घटित होने की तिथि से किसी निश्चित अवधि का व्यतीत होना दिखाया जाता है या वर्णित किया जाता है तो कार्य अथवा घटना को व्यक्त करने वाले शब्दों में षष्ठी विभक्ति लगती है, जैसे, अद्य दशमो मासस्तातस्योपरतस्य (मुद्रा० ६)—पिता जी को मरे हुये आज दस महीने हो गए। कतिपये सवत्सरास्तस्य तपस्तप्यमानस्य (उत्तर० ४)—जब से उन्होंने तपस्या करना शुरू किया तब से कई वर्ष गुजर गये।

१०७[1]—तव्यत, तव्य, अनीयर्, यत्, ण्यत्, क्यप्, और केलिमर्—ये कृत्यप्रत्यय हैं। जिन शब्दों के अन्त में ये प्रत्यय लगे रहते हैं उनका प्रयोग होने पर, उनके कर्ता में तृतीया अथवा षष्ठी होती है, जैसे, नास्ति असाध्य नाम मनोभुव (कादम्० १५७)—निश्चय ही, कामदेव के लिए कोई चीज असाध्य नहीं है। इसी प्रकार न वयमनुग्राह्या प्रायो देवतानाम् (कादम्० ६१)। न वञ्चनीया प्रभवोऽनुजीविभि (किरात० १।४)। राक्षसेन्द्रस्य सरक्ष्यं मया लव्यमिदं वनम् (भट्टि० ८।१२६—राक्षसाधिपति रावण के द्वारा रक्षणीय यह जङ्गल मुझसे अवश्य काट डाला जाना चाहिए।

१०८[2]—जब 'हेतु' शब्द का प्रयोग होता है तो जो शब्द कारण या प्रयोजन रहता है वह और 'हेतु' शब्द—दोनों षष्ठी में रक्खे जाते हैं, जैसे. अल्पस्य हेतो र्बहु हातुमिच्छन् (रघु० २।४७)—थोड़े से के लिए बहुत के त्यागने की इच्छा करता हुआ। विस्मृत कस्य हेतो (मुद्रा० १)—किस कारण यह भुला दिया गया।

विशेष पतञ्जलि का मत है कि 'निमित्त', 'कारण', 'हेतु' इत्यादि कारण वाचक शब्दों के योग में किसी भी विभक्ति और वचन का सर्वनाम आ सकता है, पर जिस विभक्ति और वचन में सर्वनाम रहेगा उसी विभक्ति और वचन में 'निमित्त' या 'कारण' या 'हेतु' भी रहेगा। परन्तु संस्कृतकाल के कवियों और गद्यलेखकों के लेखों से इस कथन की पुष्टि नहीं होती। केन निमित्तेन—कारणेन—हेतुना तथा कस्मात् निमित्तात्—कारणात—हेतो—ऐसे प्रयोग 'कारण'—अर्थ में साधारणतया मिलते हैं। परन्तु इसी अर्थ में 'को हेतु वसति' या 'क हेतु वससि'—ये प्रयोग नहीं मिलते। 'कस्मै हेतवे वससि'—यह प्रयोग भी 'कारण'—अर्थ में नहीं आता, वरन् इसका अर्थ है—"किस प्रयोजन के लिए रहते हो।" अलबत्ता 'किंनिमित्त—किंप्रयोजनम्—किंकारणम्—किमर्थम्'—ये प्रयोग साधारणतया मिलते हैं। इसलिए पतञ्जलि का नियम केवल [illegible] स्थलों में ही व्यवहृत किया जाना चाहिए।

१—कृत्यानां कर्तरि वा। २। ३। ७१।

२—षष्ठी हेतुप्रयोगे। २।३। २६

१०९—धातुओं में ति, तृ, अ, अन, इत्यादि 'कृत्' प्रत्यय लगाकर जो संज्ञाएँ बनाई जाती हैं उनका प्रयोग होने पर उनके कर्त्ता और कर्म में षष्ठी का प्रयोग होता है, जैसे, क्रियामिमां कालिदासस्य (विक्रमो० १)—कालिदास की यह कृति, अर्थात् कालिदास का यह ग्रन्थ। भर्तु प्रणाशात् (रघु० १४।१)—पति की मृत्यु के कारण। शास्त्राणां परिचय (कादम्० १८)—शास्त्रों का ज्ञान। आहर्ता क्रतूनाम् (कादम्० ५)—यज्ञों का करने वाला। दुःखायेदानीं रामस्य सुहृदां दर्शनम् (उत्तर० ३)—श्रीरामचन्द्र जी को मित्रों का देखने से केवल दुःख ही पैदा होगा।

नोट—द्विकर्मक धातुओं के योग में उनके गौण कर्म में षष्ठी अथवा द्वितीया होती है, जैसे, नेता अश्वस्य स्रुघ्नं स्रुघ्नस्य वा (म० भा०)—स्रुघ्न के पास घोड़े को ले जाने वाला। परन्तु ऐसा प्रयोग बहुत कम मिलता है। साधारणतया प्रधान तथा गौण—दोनों कर्मों में षष्ठी विभक्ति ही आती है, जैसे गवां दुग्धस्य दोहनम्, सागरस्य अमृतस्य मन्थनम्। इन दोनों प्रयोगों में 'गवाम्' और 'सागरस्य'—इन दोनों पदों में षष्ठी पञ्चमी के अर्थ में प्रयुक्त हुई है।

११०—जब किसी वाक्य में, कृत्-प्रत्यय-निष्पन्न संज्ञाओं द्वारा बोधित क्रिया के कर्त्ता और कर्म दोनों आते हैं तब केवल कर्म में षष्ठी होती है, कर्ता में नहीं होती, जैसे, आश्चर्य गवां दोहोऽगोपेन (सि० कौ०)—ग्वाले के सिवा और का दूहा जाना आश्चर्य है।

१११[1]—आशीर्वाद देने में 'आयुष्मन्,' 'भद्रम्' 'भद्रम्', 'कुशलम्,' 'सुखम्', 'अर्थः' और 'हितम्' के योग में चतुर्थी या षष्ठी होती है, जैसे, कृष्णस्य कृष्णाय वा कुशल, हित, भद्रं, भूयात् (सि० कौ०)—कृष्ण के सुख होवे अथवा सौभाग्य प्राप्त होवे।

११२[2]—दिशावाची 'तस्' प्रत्ययान्त शब्दों के योग में तथा 'तस्' प्रत्ययान्त-शब्दों-जैसे अर्थ रखने वाले 'उपरि' 'अधः' 'पुर.' 'पश्चात्' 'अग्रे' 'पुरस्तात्' इत्यादि के योग में वह शब्द षष्ठी में रक्खा जाता है जिसको लक्षित करके दिशा बताई जाती है, जैसे ग्रामस्य दक्षिणत –उत्तरत (सि० कौ०)—गॉव के दक्खिन या उत्तर, गतमुपरि घनानाम् (शा०७)–बादलों के ऊपर गया हुआ। तरूणामधः (शा० १)—पेड़ों के नीचे। तिष्ठन् भाति पितु पुरो भुवि यथा (नागा०१)–जैसे कोई पिता के सामने जमीन पर खड़ा हुआ सुन्दर लगता है। य पुरस्ताद्यतीनाम् (मालविका०१)–जो संन्यासियों में सर्वश्रेष्ठ है।

विशेष—'उपरि' शब्द प्रायः समास मे जोड़ दिया जाता है, जैसे, प्रत्यारोपय रथोपरि राजपुत्रम् (उत्तर०५)। चाणक्योपरि पक्षपात (मुद्रा०३)।

(क)[3] 'दक्षिणेन', 'उत्तरेण' इत्यादि दिशावाची 'एनप्' प्रत्ययान्त शब्दों के योग मे उस स्थान-बोधक शब्द मे द्वितीया या षष्ठी होती है जिसका नाम लेकर दिशा बताई जाती है, जैसे, दक्षिणेन तु श्वेतस्य निषधस्योत्तरेण तु (म० भा० ६।८।२)—श्वेत के दक्खिन और निषध के उत्तर। दक्षिणेन वृक्षवाटिकाम् (शा० १)—बगीचे के दक्खिन। धनपतिगृहादुत्तरेण (मेघ० ७८)—कुबेर के घर के उत्तर।

(ख)[4] 'दूर' और 'अन्तिक' (समीप) तथा इनके समान अर्थ वाले शब्दों के योग में षष्ठी अथवा पञ्चमी होती है, जैसे, ग्रामात् ग्रामस्य वा

दूर-निकट-समीपम् इत्यादि (सि० कौ०)। जंगल गाँव के समीप अथवा गाँव से दूर है।

विशेष—अधिकतर षष्ठी का ही प्रयोग होता है, जैसे, तस्याश्रमपदस्य नातिदूरे (कादम्० २२)। अत. समीपे परिणेतुरिष्यते (शा० ५)। प्रयामि तस्या सकाशम् (कादम्० १५८)।

११३१—ईश्, प्र+भू, दय्, स्मृ तथा अधिपूर्वक इ धातुओं का अर्थ क्रमशः 'मालिक होना' 'प्रभुता पाना' या 'समर्थ होना' 'दया करना' या 'अनुकम्पा करना', 'अफसोस' करना या 'चिन्ता करना' होता है, इनके योग में उक्त क्रियाओं के कर्म में षष्ठी लगती है। जैसे, ननु प्रभवत्यार्य शिष्यजनस्य (मालविका०१)—क्यों, श्रीमान् अपने शिष्यों के ऊपर प्रभाव रखते हैं अर्थात् शिष्यों के ऊपर पूरा-पूरा जोर रखते हैं। प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य महाराजः (मालती० ४)। यदि प्रभविष्यामि आत्मन (शा० १)। नायं गात्राणामीष्टे (कादम्० २१२)—वह अपने अंगों को वश में नहीं रख सकता है। रामस्य दयमानोऽसावध्येति तव लक्ष्मणः (भट्टि० ८।११९)—राम के ऊपर दया करते हुए लक्ष्मण तुम्हारी याद करते हैं। स्मर्तु दिशति न दिव सुरसुन्दरीभ्यः (किरात० ५।२८)—अप्सराओं को स्वर्ग की सुधि नहीं करने देते। अस्मार्षीज्जलनिधिमथनस्य शौरि (शिशु० ८।६४)—भगवान् कृष्ण ने समुद्र-मंथन को याद किया।

विशेष—(क) 'प्र'-पूर्वक 'भू' धातु का जब 'योग्य होना' अर्थ होता है तब वह तुमुन् प्रत्ययान्त शब्द के साथ प्रयुक्त होती है (षोडश पाठ देखिए)। जब 'प्र'-पूर्वक 'भू' धातु का "काफी" या "पर्याप्त" अर्थ होता है तब उसके योग में [illegible] आती है। सेक्शन ६७(ब) देखिए।

(ख) जब 'स्मृ' धातु अपने साधारण अर्थ 'याद करना' 'स्मरण करना' में [illegible] होती है तो इसके कर्म में द्वितीया ही आती है, जैसे, स्मरन्ति तान्यहानि—[illegible] गोदावरी का (उत्तर० १)। ऊपर के प्रयोग में कर्म का [illegible] किया जाना [illegible] है। [illegible] कर्म [illegible] भवति तदा षष्ठी न भवति [illegible]]

[illegible] "जानने वाला" या "परिचित" या सावधान—इन अर्थों का बोध [illegible] [illegible] तथा इनके उलटे अर्थों का बोध कराने वाले

[illegible]

विशेषणों के योग में कर्म में षष्ठी होती है, जैसे, अनभिज्ञो गुणानां य भृत्यैर्नानुगम्यते (पञ्च० १।१)—जो पुरुष गुणों को नहीं समझता या पहचानता उसका, भृत्य लोग, अनुसरण नहीं करते। इसी प्रकार अनभ्यन्तरा आवां मदनगतस्य वृत्तांतस्य (शा० ३)। कभी-कभी सप्तमी का भी प्रयोग होता है, जैसे, यदि त्वमीदृशः कथायामभिज्ञः (उत्तर० ४)। तत्राप्यभिज्ञो जनः (उत्तर० ५)।

११४[1]—'बार-बार' या 'अनेक बार' का अर्थ प्रकट करने वाले द्वि, त्रि शब्दों अथवा अष्टकृत्वः, शतकृत्वः संख्या-बोधक क्रियाविशेषण अव्यय शब्दों के योग में समयवाची शब्द में षष्ठी विभक्ति लगती है यद्यपि सप्तमी का भाव प्रकट होता है, जैसे, द्विरह्नो भोजनम् (सि० कौ०)—दिन में दो बार भोजन। शतकृत्वस्तवैकस्याः स्मरत्यह्नो रघूत्तमः (भट्टि० ८।१२२)—रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी दिन में केवल तुम्हें सौ बार याद करते हैं।

११५[2]—जब 'क्त'-प्रत्ययान्त शब्द वर्तमानकाल के अर्थ में प्रयुक्त होते तो वे षष्ठ्यन्त पदों के साथ आते हैं, जैसे, अहमेव मतो महीपतेः (रघु० ८।८)—राजा मुझे ही मानते हैं। विदितं तप्यमानं च तेन मे भुवनत्रयम् (रघु० १०।३९)—मैं जानता हूँ कि तीनों लोक उससे या उसके द्वारा सताये या परितप्त किये जा रहे हैं। राज्ञां पूजितः (सि० कौ०)—राजाओं द्वारा पूजा जाता है।

(क) परन्तु जब भूतकाल विवक्षित होता है तब केवल तृतीया आती है, जैसे, न खलु विदितास्ते चाणक्यहतकेन (मुद्रा० २)—क्या दुष्ट चाणक्य द्वारा उन लोगों का पता नहीं लगा लिया गया।

(ख) जब 'क्त' प्रत्ययान्त शब्द भाववाचक नपुंसकलिङ्ग संज्ञा के रूप में प्रयुक्त होते हैं तब उनके योग में षष्ठी होती है, जैसे, मयूरस्य नृत्तम् (म० भा०)—मोर का नाचना। कोकिलस्य व्याहृतम्, नटस्य भुक्तम्, छात्रस्य हसितम् (म० भा०)।

१—कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे। २। ३। ६४

२—क्तस्य च वर्तमाने। २। ३। ६७।

११६—'कृते' का हिन्दी में अर्थ 'लिए', 'के लिए,' या 'वास्ते' होता है, तथा 'समक्ष' का अर्थ 'सामने' 'उपस्थिति में' होता है। इनके योग में षष्ठी होता है। जैसे अमीषां प्राणानां कृते (भर्तृ० ३।३६)—इस जीवन के लिए। राज्ञः समक्षमेव (मालविका० १)—राजा के ही सामने।

विशेष—'कृते' शब्द का प्राय दूसरे शब्दों के साथ समास कर दिया जाता है, जैसे, काव्यम् अर्थकृते (काव्यप्रकाश १)।

११७—'बराबर' 'समान' या 'की तरह' अर्थवाची 'तुल्य', 'सदृश,' 'सम' 'प्रकार' इत्यादि शब्दों के योग में वह शब्द तृतीया में रक्खा जाता है जिससे किसी की तुलना की जाती है, जैसे, कृष्णस्य तुल्यः सदृशः प्रभृति (सि० कौ०)। तृतीया विभक्ति के प्रयोग के लिए अनुच्छेद ५२ (ख) देखिये।

विशेष—पाणिनि का मत है कि 'तुला' और 'उपमा' शब्द तृतीया के साथ नहीं आ सकते। परन्तु यह बात अच्छी लेखन-प्रणाली के विरुद्ध है, जैसे, तुलां यदारोहति दन्तवाससा (कुमार० ५।३४)—जब वह इन्द्र की समता को प्राप्त होती है। गगनेन तुलां समारुरोह (रघु० ८।१५)—आकाश की समता को प्राप्त हो गया। स्फुटोपमं भूतिसितेन शम्भुना (शिशु० १।४)—भस्म (लगाने) से सफेद शम्भु के समान स्पष्ट उपमा वाला। मल्लिनाथ ने इन उदाहरणों का पाणिनि सूत्र के साथ सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया

२।८)— जिसका साधारण स्वभाव विद्वानों का आदर करना और शत्रु को नीचा दिखाना है। परन्तु 'जगतो निर्माता' और 'घटस्य कर्ता' आदि इ नियम के अपवाद हैं।

(क) 'अनु' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु का अर्थ 'नकल करना' या 'मिलना जुलना' होता है। इस धातु का प्रयोग होने पर प्रायः इसके कर्म में ष होती है, जैसे, ततोऽनुकुर्यात् तस्या स्मितस्य (कुमार० १।४४)—त कदाचित् यह उसकी मुसकुराहट से मिल-जुल जाय। श्यामतया भगवतो हरेरिवानुकुर्वतीम् (कादम्० १०)—कालिमा में भगवान् हरि से मिलती जुलती हुई सी। सर्वाभिरन्याभिः कलाभिरनुचकार त वैशंपायनः (कादम्० ७६)—वैशम्पायन अन्य सभी कलाओं में उससे मिलता-जुलता था। इ प्रकार शैलाधिपस्यानुचकार लक्ष्मीम् (भट्टि० २।८)।

११६[१]—'सौदा का लेन-देन करना' 'जुआ में लगा देना'—इन अर्थों का बोध कराने वाली 'व्यवहृ' और 'पण' धातुओं के योग में इनके कर्म षष्ठी होती है, जैसे, शतस्य व्यवहरण-पणनम् (सि० कौ०)—सैकड़ों का लेन देन करना। इसी प्रकार, प्राणानामपणिष्टासौ (भट्टि० ८।१२१)—उ प्राणों की बाजी लगा दी। परन्तु द्वितीया का प्रयोग बहुत ज्यादा मिलता है जैसे, कृष्णा पणस्व पाचालीम् (महा० २। ६५। ३२)।

(क) जब 'दिव्' धातु का उपर्युक्त अर्थ में प्रयोग होता है, तो उसके योग में भी कर्म में षष्ठी होती है, जैसे, शतस्य दीव्यति (सि० कौ०)। परन्तु ज 'दिव्' धातु उपसर्गपूर्वक रहती है तब षष्ठी या द्वितीया कोई भी ह सकती है, जैसे, शतस्य शत प्रतिदीव्यति (सि० कौ०)।

अभ्यास

१—तस्या पडितकौशिक्या महिताया समनमो न्याय्यो [illegible]
(मालविका० १)।

२—श्वापदानुसरणैर्मम गात्राणामनीशोऽस्मि संवृत्त (शा० २)।

१—व्यवहरणो सनयया। दिवस्तदर्थस्य। विभाषोपसर्गे। २। ३। ५८ [illegible]

३—क्थं मामेकाकिनीं त्यक्त्वार्यपुत्रो गतः । भवतु कोपिष्यामि यदि तं प्रेक्षमाणात्मनः प्रभविष्यामि । (उत्तर० १) ।

४—अयि, भागीरथीप्रसादाद्वनदेवतानामप्यदृश्यास्मि संवृत्ता । (उत्तर०३) ।

५—हा देवि, स्मरसि वा तस्य प्रदेशस्य तत्समयविस्रम्भातिशयप्रसंगसाक्षिणः । (उत्तर० ६) ।

६—एवमवस्थिते यदत्रावसरप्राप्तमीदृशस्य चानुरागस्य सदृशमस्मदागमनस्य चानुरूपमात्मनि समुचितं तत्र प्रभवति देवीत्यभिधाय सन्नुन्नासस्तदृष्टि कपिंजलस्तूष्णीमासीत् । (कादम्०१५८) ।

७—अहं सा दुष्कृतकारिणी यस्याः कृते तवेयमीदृशी दशा वर्तते । (कादम्०१६७) ।

८—मा दयित माधव परलोकगतोपि स्मर्तव्यो युष्माभिरयं जनः । न तु न उपरतो यस्य वल्लभो जनः स्मरति । (मालती०५) ।

९—कापि महती वेला वर्तते तवादृष्टस्य । तदनया सहैवागच्छ । (कादम्०२४१) ।

—अहं हि भमतो रातो य एव मन्यते कुधीः ।
लोके स विशेषो विषाणपरिवर्जितः ॥ (पञ्च० १। १०) ।

—शरीरस्य गुणानां च दूरमत्यन्तमन्तरम् ।
शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः ॥ (हित०१) ।

—भोगिनामोषधि ... वयमपि च गिरामीश्महे यावदर्थम् । (भर्तृ०३।३०) ।

... चरणचञ्चुप्रमूना-
... दोष्पद वीरपोत (किरवि) । (उत्तर०५) ।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

३—उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं, घनोदयः प्राक् तदनन्तरं पयः ।
निमित्तनैमित्तिकयोरयं क्रमः, स्तव प्रसादस्य पुरस्तु संपदः ॥ (शा० ७)

४—शंबूको नाम वृषलः पृथिव्यां तप्यते तपः ।
शीर्षच्छेद्यः स ते राम तं हत्वा जीवय द्विजम् ॥ (उत्तर ०२)

५—अपीप्सितं क्षत्रकुलाङ्गनानां
न वीरसूशब्दमकामयेताम् । (रघु० १४।४)

६—वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम् ।
मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य ॥ (रघु० १४।६१)

७—देव्या शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः ।
प्रनष्टमिव नामापि न च रामो न जीवति ॥ (उत्तर०३)

८—अथ मैथिल्यभिज्ञानं काकुत्स्थस्याङ्गुलीयकम् ।
भवत्याः स्मरतात्यर्थमर्पितं सादरं मम ॥ (भट्टि० ८।११८)

९—पुरं प्रवेशमाश्चर्यं बुद्धा शाखामृगेण सा ।
चूडामणिमभिज्ञानं ददौ रामस्य संमतम् ॥
रामस्य शयितं भुक्तं जल्पितं हसितं स्थितम् ।
प्रक्रान्तं च मुहुः पृष्टा हनूमन्तं व्यसर्जयत् ॥ (भट्टि०८।१२४,१२५)

१०—तं दृष्ट्वाऽचिन्तयत्सीता हेतोः कस्यैष रावणः ।
अवरुह्य तरोरारादेति वानरविग्रहः ॥
उत्तराहि वसन् रामः समुद्राद्रक्षसां पुरम् ।
अवैल्लवणतोयस्य स्थितां दक्षिणतः कथम् । (भट्टि०८।१०५,१०७)

संस्कृत में अनुवाद कीजिये—

१—नवयुवक को बड़े गौर से देखती हुई भी ... ॥
अपने वश में कर सकीं (ईश्) ।

६—मेरे गुरुजनों की आज्ञा केवल मेरे शरीर पर काबू कर पावेगी (प्र+भू), परन्तु मेरे मन तथा उसके कार्यों पर नहीं।

७—बहुत दिनों तक माता से दूर हटाए जाने के कारण बच्चा बारबार उसे याद करता है।

८—इस पर्वत के उत्तर (उत्तरत) हरी घास से ढका हुआ एक विस्तृत प्रदेश है जो कि दर्शकों के नेत्र को करीब-करीब मोहित कर लेता है।

९—समस्त राजमन्त्रियों के सामने (समक्ष) अनुचर ने राजा से जो कहानी कही उसने उस (राजा) के हृदय में स्थान प्राप्त कर लिया।

१०—इधर मैं सामने (पुरः) हड्डियों की एक बड़ी राशि, और उधर पैरों के तले (अध.) मांस के अनेक टुकड़े देखता हूँ। यह क्या हो सकता है?

११—सुदर्शन के राज्य में प्रजा का हर एक आदमी समझता था कि मैं राजा से पूजा (पूज्) तथा माना (मन्) जाता हूँ।

१२—प्रजाओं को अच्छे लगने वाले गुणों के कारण आप अपने पिता के सदृश हैं।

१३—मालविका को देखने के लिए गई हुई देवी जी को बहुत समय हो गया।

एकादश पाठ

भावे षष्ठी तथा सप्तमी

१२०—'जब शत्रन्त अथवा शानजन्त पद का लिंग, वचन और कारक,
क्रिया के कर्ता से भिन्न किसी अन्य कर्ता के अनुरूप होता है, तब
वह वाक्यांश (Phrase) 'भावे' कहलाता है'—वेन। जिस उपवाक्य
में स्वतन्त्र वाक्यांश रहता है, उसकी साधारण रचना से उस (स्वतन्त्र) वाक्यांश
का कोई सम्बन्ध नहीं रहता, जैसे, वायु के अनुकूल होने के कारण जहाज ने
प्रस्थान कर दिया। 'भावे' वाली विभक्ति भिन्न-भिन्न भाषाओं में भिन्न भिन्न
होती है। अँगरेजी में भाव विभक्ति प्रथमा होती है, लेटिन भाषा मे पञ्चमी
होती है; और संस्कृत मे षष्ठी तथा सप्तमी यदि आश्रित उपवाक्य का कर्ता
प्रधान उपवाक्य में संज्ञापद के रूप में अथवा उस संज्ञाके स्थानापन्न सर्वनामपद
के रूप में न आता हो तो स्वतन्त्र-वाक्यांश (भावे) का प्रयोग किया
जा सकता है। इस वाक्य को लीजिए—लंका को ले लेने पर राम
अयोध्या को लौटे। यहाँ दोनों उपवाक्यों का कर्ता एक ही है, इसलिए
यहाँ स्वतन्त्र-वाक्यांश (भावे) का प्रयोग नहीं हो सकता। इस वाक्य का
अनुवाद इस प्रकार होगा— लंका।गृहीत्वा (गृहीतलंकः वा) रामोऽयोध्या
निववृते। परन्तु 'बन्दरों के लंका ले लेने पर, राम अयोध्या को लौटे' इस वाक्य
का अनुवाद कपिभिर्गृहीतायां लंकायां रामोऽयोध्यां निववृते अथवा कपिषु
लङ्कां गृहीतवत्सु रामोऽयोध्या निववृते हो सकता है।

टिप्पणी—इन भाव-वाक्यांशों को बनाने के लिए शत्रन्त तथा शान-
जन्त पदों के कर्ता को षष्ठी अथवा सप्तमी में रखना चाहिए और शत्रन्त
तथा शानजन्त पद का लिंग और वचन वही होना चाहिए जो [illegible] का
हो।

१२१[१]—जिस कार्य-विशेष के होते रहने पर या हो चुकने पर किसी दूसरे कार्य का होना पाया जाता है, वह सप्तमी में रक्खा जाता है। ऐसी दशा में पहिले कार्य का समय ज्ञात रहता है, परन्तु दूसरे कार्य का समय ज्ञात नहीं रहता, इस दूसरे कार्य का समय पहिले के आधार पर निर्धारित किया जाता है, जैसे, क पौरवे वसुमतीं शासति अविनयमाचरति (शा० ६)—पौरव के शासन करते हुए कौन धृष्टता-पूर्ण आचरण कर रहा है। वचस्यवसिते तस्मिन् ससर्ज गिरमात्मभूः (कुमार० २।५३)—उस वचन के समाप्त हो जाने पर आत्मभू (ब्रह्मा) ने शब्दों का उच्चारण किया। क एष मयि स्थिते चन्द्रगुप्तमभिभवितुमिच्छति (मुद्रा० १)—मेरे जीते जी चन्द्रगुप्त को कौन परास्त करना चाहता है।

विशेष—संस्कृत में भावे सप्तमी का प्रयोग उसी अर्थ में होता है जिस अर्थ में अंग्रेजी में Nominative absolute का प्रयोग होता है।

१२२[१]—जिसका अनादर या तिरस्कार करके कोई कार्य किया जाता है उसमें षष्ठी होती है, जैसे, नन्दाः पशव इव हताः पश्यतो राक्षसस्य (मुद्रा० ३।)—राक्षस के देखते-देखते नन्दवंशवाले पशुओं के समान मार डाले गए। इस प्रकार जो कोई वाक्य या वाक्यांश 'बावजूद इसके' 'ऐसा होते हुए' तथा 'यद्यपि' या 'हालांकि' इत्यादि अर्थ या भाव प्रकट करने वाले शब्दों से युक्त हो तो षष्ठी भावे-वाक्यांश का प्रयोग किया जा सकता है, जैसे 'मेरे देखते हुए भी या यद्यपि मैं देख रहा था तथापि बच्चा एक बाज द्वारा छीन लिया गया।' इस वाक्य का संस्कृत में अनुवाद होगा- पश्यतोऽपि मे श्येनेनापहृतः शिशुः। (पञ्च० १।२२)।

जब वे दोनों इस प्रकार बातें कर रहे थे, तब राजा अपने (पञ्च० १।६)----जब वे दोनों इस प्रकार बातें कर रहे थे, तब राजा अपने शयन पर आकर सो गया।

विशेष----जब किसी स्वतंत्र-वाक्यांश में 'रहते' आता है, तो संस्कृत में उसका अनुवाद नहीं किया जाता, वह छोड़ दिया जाता है और उसकी जगह दो विशेष्य (Substantives) अथवा एक विशेष्य और एक विशेषण साथ-साथ स्वतंत्र रूप से 'भावे'-विभक्ति (Absolute Case) में रक्खे जाते हैं, जैसे, नाथे कुतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम् (रघु० ५।१३) तुम्हारे राजा रहते हुए, प्रजाओं का कोई भी अनिष्ट कैसे हो सकता है ?

१२४---सेक्शन १२२ में बताया गया है कि 'अनादर' में षष्ठी का प्रयोग किया जाता है। परन्तु कभी-कभी षष्ठी अथवा सप्तमी----दोनों में से कोई भी आ सकती है, जैसे, रुदति पुत्रे रुदतो वा पुत्रस्य पिता प्राव्राजीत् (सि० कौ०)---पुत्र के रोते रहने पर भी पिता सन्यासी हो गया।

(क) 'ज्योंही' 'ऐसा हुआ नहीं था कि' 'मुश्किल से ऐसा हुआ था कि इतने ही में' 'जिसी क्षण'-- इन अर्थों का बोध कराने के लिए भावे सप्तमी आती है और सप्तमी के बाद में 'एव' जोड़ दिया जाता है, अथवा शत्रन्त, शानजन्त पद को 'मात्र' के साथ समस्त करके, मात्रान्त पद को सप्तमी में रखते हैं और उसके साथ कभी 'एव' जोड़ देते हैं, और कभी-कभी नहीं भी जोड़ते, जैसे, अनयस्तनिवचन एव मयि महानागोऽपि उदैरयत् शिरः (दशकु०७।४)----जिसी क्षण मेरी बात समाप्त हुई, [illegible] बड़े साँप ने अपना सिर उठाया। अप्रभातायामेव रजन्याम् (महा०४)---मुश्किल से अभी प्रातःकाल हो पाया था कि, प्रविष्टमात्र एव तत्रभवति निरुपप्लवानि नः कर्माणि संवृत्तानि (शा० ३)---ज्योंही श्रीमान ने प्रवेश किया, त्योंही हम लोगों के सारे कार्य विघ्नरहित हो गए।

(ख) कभी-कभी शत्रन्त अथवा शानजन्त शब्दों का एवम्, इत्थम्, तथा, इति—इत्यादि अव्ययों के साथ संयोग हो जाता है, जैसे, एवं गते (शा० ५)—ऐसी परिस्थिति में, ऐसी परिस्थिति होने पर। तथानुष्ठिते (हित० २)—ऐसा कर लिए जाने पर।

१२५—स्वतंत्र वाक्यांशों (absolute phrases) में कर्ता या कर्म को भी प्रधान उपवाक्य में, षष्ठी के अतिरिक्त और किसी विभक्ति में न तो संज्ञारूप में, न सर्वनामरूप में, दुबारा आ सकता है। जब कर्ता या कर्म या उनके स्थानापन्न सर्वनाम को प्रधान वाक्य में दुहराना अभीष्ट हो, तब स्वतन्त्र वाक्यांश नहीं बनाना चाहिये, प्रत्युत सारे वाक्य को एक मान कर उसका अनुवाद शत्रन्त अथवा शानजन्त शब्दों द्वारा करना चाहिये, जैसे, 'गोषु दुह्यमानासु ता जलमपाययत' न कह कर 'दुह्यमाना गा जलमपाययत्' कहना चाहिये। ऐसे ही 'आगतेषु विप्रेषु तेभ्यो दक्षिणा देहि' इतना मुहावरेदार प्रयोग नहीं है जितना 'आगतेभ्यो विप्रेभ्यो दक्षिणा देहि'। 'आपणात् पात्रे समानीते तस्मिन्नन्नं पचामि'—यह इतना अच्छा प्रयोग नहीं है जितना 'आपणात् समानीते पात्रे अन्नं पचामि'।

इसी प्रकार 'सारगे एव विचारयति स (सारग) व्याधेन हत '— यह प्रयोग उतना मुहावरेदार नहीं है जितना 'एव विचारयन् सारगो व्याधेन हत '। इसी प्रकार 'ताडयतोऽपि स्वामिनस्तस्मै भृत्या न कुप्यन्ति' बुरा प्रयोग है, और 'ताडयतेऽपि स्वामिने भृत्या न कुप्यन्ति' अच्छा प्रयोग है। परन्तु 'मदने हरेण दग्धे तस्य पत्नी विवशा बभूव', अथवा 'मृतेऽस्मिन राज्ञि तस्य पुत्रो राज्यमधिगमिष्यति' सर्वथा सुन्दर प्रयोग है।

अभ्यास

१—अलमलमुपालम्भेन। पत्तने विद्यमानेऽपि ग्रामे रत्नपरीक्षा (मालविका० १)।

२—इदमवस्थातर गते तादृशेनुरागे कि वा स्मारितेन (शा० ५)।

३—मा तावदनात्मज्ञे देवेन प्रतिषिद्धे वसतोत्सवे त्वमाम्रकलिकाभग किमारभसे (शा० ६)।

४—अभिव्यक्ताया चन्द्रिकाया कि दीपिकापौनरुक्त्येन। (विक्रमो० ३)।

५—आर्ये आत्रेयि, अथ तस्मादरण्यात् परित्यज्य गते लक्ष्मणे सीतादेव्या. किं वृत्तमित्यस्ति काचित् प्रवृत्ति। (उत्तर० २)।

जिस प्रकार 'महाबली' कहना अनुचित है, और 'महाबल' कहना ठीक है, उसी प्रकार "दुह्यमाना गा जलमपाययत्" 'गोषु दुह्यमानासु ता जलमपाययत्' की अपेक्षा अधिक संक्षिप्त और शुद्ध है और इसीलिए अधिक मुहावरेदार है।

—हा कष्टमरुन्धति वसिष्ठाधिष्ठितेषु, रघुकदम्बकेषु जीवतीषु च प्रवृद्धासु राज्ञीषु, कथमिदमापतितम्। (उत्तर० २)।

—अत्रान्तरे शक्तिखड्गमर्पितेन गाण्डीविनैव भणितम्। अरे दुर्योधनप्रमुखा कुरुबलसेनाप्रभव, अरे अविनयनदीकर्णधार कर्ण, युष्माभिर्मम परोक्ष एकाकी पुत्रकोऽभिमन्युर्व्यापादित। अहं पुनर्युष्माकं प्रेक्षमाणानामेन कुमारवृषमेनं स्मर्तव्यशेषं नयामि। वेणी० ४)।

८—छन्नो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रक्षितरि त्वयि।
तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति॥ (शा० ५)।

९—मनोरथस्य यद्बीजं तद्दैवेनादितो हृतम्।
लतायां पूर्वलूनायां प्रसूनस्यागमः कुतः॥ (उत्तर० ५)।

१०—सा सीतामङ्कमारोप्य भर्तृप्रणिहितेक्षणाम्।
मामेति व्याहरत्येव तस्मिन्पातालमभ्यगात्॥ (रघु० १५।८४)।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१०—सर्वत्र नो वार्तमवेहि राजन्नाथे कुतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम् ।
सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा (रघु० ५।१३)

११—तस्मिन् ह्रदे स हितमात्र एव क्षोभात्समाविद्धतरङ्गहस्ते ।
रोधांसि निघ्नन्नवपातमग्नः करीव वन्यः परुषं ररास ॥ (रघु० १६।७८)

१२—जीवत्सु तातपादेषु नवे दारपरिग्रहे ।
मातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसा गताः ॥ (उत्तर० १)

१३—त्वय्युत्कृष्टबलेऽभियोक्तरि नृपे नन्दानुरक्ते पुरे
चाणक्ये चलिताधिकारविमुखे मौर्ये नवे राजनि ।
स्वाधीने मयि मार्गमात्रकथनव्यापारयोगोद्यमे
त्वद्वाञ्छान्तरितानि सम्प्रति विभो तिष्ठन्ति साध्यानि वः (मुद्रा० ४)

१४—अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेरन्तरौर्वायमाणे
सेनानाथे स्थितेऽस्मिन्मम पितरि गुरौ सर्वधन्वीश्वराणाम् ।
कर्णालं सम्भ्रमेण व्रज कृप समरं मुञ्च हार्दिक्य शङ्कां
ताते चापद्वितीये वहति रणधुरं को भयस्यावकाशः ॥ (वेणी० ३)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

[ध्यान रहे कि "भावे सप्तमी" या "भावे षष्ठी" के द्वारा ही अनुवाद होना चाहिए ।]

१—देवताओं के देखते रहने पर भी लोग दुष्कर्म करते हैं ।

२—दरिद्रता रूपी हाथी के द्वारा आत्म-सम्मान-रूपी वृक्ष के काट दिये जाने पर गुणरूपी सारे पक्षी उड़ जाते हैं ।

३—जब विपत्तियाँ बिल्कुल समीप आ जाती हैं तो मित्र भी शत्रु हो जाते हैं ।

४—ज्योंही चित्रकार चित्र को समाप्त कर ले, त्योंही मुझे बुलाने के लिए आ जाना ।

५—ज्योंही ऋषि ने इन शब्दों का उच्चारण किया, त्योंही क्षणभर में वह अप्सरा पत्थर में परिणत हो गई ।

९—इन्हीं तथा इन्ह जैसे व्यथाकर विचारों से मन के व्याप्त रहने के कारण उसने निद्राहीन रात्रि व्यतीत की।

१०—ज्योंही उस चीज पर बाण छोड़ा गया त्योंही उसने उस दिशा में एक करुण क्रन्दन की आवाज सुनी।

११—द्युतिमान् दिक्पालों के रहते हुये भी दमयन्ती नल को ही पतिरूप में चाहती है।

१२—रे, बढ़कर डींग मारने वाले अधमो, तुम्हें धिक्कार है। हम सौ भाइयों के जीते जी कौन हमारे भाई की परछाईं भी लाँघ सकता है?

१३—उदय होते हुए चन्द्रमा के द्वारा तमोराशि (तम पुञ्ज) हटा दिये जाने पर पूर्व दिशा मेरे नेत्रों को आकृष्ट कर रही है।

१४—नैर्दी (नन्दी) के प्राणों की रक्षा के लिये मेरे प्रार्थना करने पर भी राजा ने उसके वध की आज्ञा दी।

१५—जब मृत्यु निश्चित है तो भाग कर (भगदड़ का आश्रय लेकर) क्यों अपनी कीर्ति को मलिन करते हो।

तृतीय भाग

व्याकरण-सम्बन्धी रूपों और शब्दों का प्रयोग एवं अर्थ

द्वादश पाठ

सर्वनाम

पुरुषवाचक सर्वनाम

१२६—पुरुषवाचक सर्वनामों के प्रयोग के विषय में कोई विशेष बात नहीं होती। क्रियाओं और उपसर्गों के योग में पुरुषवाचक सर्वनामों में वे ही नियम लागू होते हैं जो संज्ञाओं में, जैसे, अहं त्वां प्रार्थये—मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ। त्वया विना सोऽपि समुत्सुको भवेत् (विक्रमो० १)।

१२७[1]—परन्तु 'अस्मद्' और 'युष्मद्' के संक्षिप्त या लघु रूपों मा, मे, नौ, नः, त्वा, ते, वां और वः की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। इनका प्रयोग (अ) वाक्य के प्रारम्भ में, (आ) च, वा, एव, हा, अह, ह के ठीक पूर्व में, (इ) छन्द के चरण के प्रारम्भ में कभी नहीं होता है। जैसे, 'मे मित्रम्', 'नः पाहि' 'वा सख्यम्'—ये प्रयोग अशुद्ध हैं। तस्य च मम (न कि 'मे') च वैरमासीत्—उसकी और मेरी शत्रुता है। तस्य मम वा गृहम् (न कि 'मे वा')। इदं पुस्तकं ममैव (न कि 'मे एव')। हा मममन्दभाग्यम् (न कि 'मे')। वेदैश्शेषैः संवेद्योऽस्मान् (न कि 'नः') कृष्णः सर्वदाऽवतु (सि० कौ०)—समस्त वेदों के द्वारा ज्ञातव्य श्रीकृष्ण भगवान हम लोगों की सर्वदा रक्षा करें।

(क) जब ये वैकल्पिक रूप 'च' 'वा' 'एव' इत्यादि से युक्त होते नहीं, तो इनका प्रयोग इन अव्ययों के साथ हो सकता है, जैसे हरो हरिश्च मे स्वामी

१—न च वाहा हैवयुक्ते। (८ । १ । २४), [illegible]। युष्मदस्मदोः [illegible] द्वितीयास्थयोर्वांनावौ (८ । १ । १७ । १८ । २०)

(सि० कौ०)—हर और हरि मेरे स्वामी हैं। किंवा मे पुत्री करोतु—मेरी पुत्री क्या करे?

(ख) सम्बोधन के ठीक अनन्तर ये वैकल्पिक रूप नहीं आ सकते, जैसे, बालक, मम गृहमेतत् (न कि 'मे'), देवास्मान् (न कि 'नः') पाहि सर्वदा (सि० कौ०)—"हे भगवन्, सर्वदा हम लोगों की रक्षा कीजिये।" वास्तव में, सम्बोधन एक संक्षिप्त वाक्य है।

(ग) यदि सम्बोधनपद के परे उसका विशेषण लगा रहे तो ये वैकल्पिक रूप प्रयोग में आ सकते हैं, जैसे हरे दयालो, नः पाहि (सि० कौ०)—ऐ दयालु हरि मेरी रक्षा करो।

६८—जिसको सम्बोधित करके बातचीत की जाती है उसके प्रति, शिष्टाचार दर्शाने के लिये 'भवत्' शब्द प्रयोग में लाया जाता है। ऐसे प्रयोग में यह आवश्यक नहीं है कि सम्बोधित व्यक्ति के प्रति आदर दिखाया जा रहा है। इस दशा में 'भवत्' शब्द प्रथमपुरुष (अन्य पुरुष) होता है और उसके साथ प्रथमपुरुष की क्रिया आती है, जैसे, अथवा कथं भवान् मन्यते (मालविका० १)—या आप क्या समझते हैं? वयमपि भवत्यो किमपि पृच्छामः—हम भी आप लोगों से कुछ पूछना (पूछती) हैं।

उदाहरण दिया गया है उसमें 'स॰' को 'भवान्' से अलग समझना और पढ़ना चाहिए।

संकेतवाचक सर्वनाम

१३०—संकेतवाचक सर्वनाम तीन होते हैं, 'इदम्' या 'एतद्' (यह), 'तद्' (वह), 'अदस्' (यह या वह)। ये जिन संज्ञाओं से सम्बद्ध होते हैं उनके भी प्रयुक्त होते हैं और अकेले भी, जैसे, एष नृप, स पुरुष, तद् गृहम्, स साथ आह, एष मे किंकर, इद नो गृहम्, असौ विद्याधर।

१३१—"यह देखिए, मैं आता हूँ", "वह देखिए, लड़का आता है"—इस प्रकार के वाक्यों में इदम् और एतद् के रूप "यह देखिये" और "वह देखिये" के अर्थ में प्राय. उत्तम पुरुष और अन्य पुरुष के साथ प्रयुक्त होते हैं और जैसे सामान्य विशेषणों के लिंग, वचन, कारक—विशेष्य के अनुरूप होते हैं उसी प्रकार इनका लिंग, वचन और कारक वाक्य के कर्ता के अनुरूप होता है, जैसे, आर्यपुत्र इयमस्मि (शा० १)—'प्रभो, यहाँ मैं हूँ'। इयमहमारोहामि (उत्तर० १)—'यह मैं चढ रहा हूँ', अयमागच्छामि (शा०३)—यह देखिये मैं आता हूँ, इयं सा जाति परित्यक्ता (वेणी०३)।

१३२—तद् के रूपों का प्रयोग प्राय "प्रसिद्ध" या "सुविख्यात" के अर्थ में होता है, जैसे, सा रम्या नगरी (भट्टि० २।३७)—वह प्रसिद्ध रमणीय नगरी। सामन्तचक्र च तत् (भट्टि०)—सामन्तों (करद राजाओं) का वह सुप्रसिद्ध मडल।

(क) तद् का प्रयोग प्राय. 'एव' के साथ "वही" या "उसी" के अर्थ में होता है, 'एव' साधारणतया प्रत्यक्षरूप में और कहीं-कहीं पर अप्रत्यक्ष रूप में रहता है, जैसे, तानिन्द्रियाणि सकलानि (भर्तृ० २।४०)—सारे शरीर के अवयव वेही रहते हैं। तदेव नाम (भर्तृ०)—नाम वही है। एते त एव गिरय (उत्तर० ३)—ये वेही पर्वत हैं। तदेव पञ्चवटीवनम (उत्तर० ३)—पञ्चवटी का वन वही है।

(ख) जब तद् के रूप दुहरा कर प्रयुक्त होते हैं तो उसका अर्थ होता है 'कई' अथवा "भिन्न भिन्न", जैसे, तेषु तेषु स्थानेषु (क[illegible])—भिन्न भिन्न स्थानों में।

सम्बन्धवाचक सर्वनाम

१६२—जब सम्बन्ध-वाचक सर्वनाम (यद्) का दोहरा प्रयोग होता है तो उसका अर्थ होता है—सब, सम्पूर्ण, जो कुछ, और उस (यत्) का सम्बन्धी सर्वनाम भी दुहराया जाता है जैसे—क्रियते यद्यदेषा कथयति (उत्तर० १)—जो कुछ भी यह कहती है, वह सब मैं करूँगा। यो यः शस्त्रं बिभर्ति क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमिह जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम् (वेणी० ३)—जो कोई भी शस्त्र धारण करते हैं, उन सबों का, मैं संहारकर्ता हूँ, चाहे वह संसार के नष्ट करने वाला यमराज ही क्यों न हो। इसी प्रकार यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः (भर्तृ० २।५१)।

(ख) अपि, चित्, चन के सहित अथवा इनसे रहित किम् के रूपों के साथ यद् के रूपों को जोड़कर "जो कोई भी" या "जिस किसी भी" का अर्थ प्रकट करते हैं, जैसे, एतादृशी रूपवती कन्या यस्मै कस्मैचिन् न दातव्या—ऐसी सुन्दर लड़की जिस किसी को भी नहीं दे देना चाहिए। यो वा को वा भवाम्यहम् ([illegible])—चाहे जो कोई भी होऊँ। यत्रकुत्रापि स्वपिति—जहाँ कहीं भी सो जाता है।

(क) 'अपि' का कभी कभी "अवर्णनीय, अनिर्वाच्य" अर्थ होता है, नै: कोऽपि हेतुः (उत्तर० ६)—कोई अनिर्वचनीय कारण। इसी प्रकार न-न किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जन. (उत्तर० २)।

(ख) क्वचित्-क्वचित् और कदाचित्-कदाचित् का प्रयोग क्रमश. 'एक जगह दूसरी जगह', 'कहीं-कहीं' 'यहाँ-वहाँ' और 'एक समय दूसरे समय' 'कभी-कभी' के अर्थ में होता है, जैसे क्वचिद्वीणा वाद्य, क्वचिदपि च हाहेति रुदितम् (भर्तृ० ३।१२)—कहीं (एक जगह) तो वीणा बज रही है, कहीं (दूसरी जगह) हाय, हाय का विलाप हो रहा है। कदाचित् कानन जगाहे, कदाचित् कमलवनेषु रेमे (कादम्० ४८)—कभी (एक समय) तो वह किसी जङ्गल में घुस जाता था और कभी (दूसरे समय) वह कमल-वनों में रमण करता था।

(ग) किसी किसी विरले स्थल पर 'कचित् कचित्' का अर्थ 'कभी कभी' भी होता है, जैसे, क्वचिद् घनानां पतता क्वचिच्च (रघु० १३।१९)—किसी समय बादलों का, किसी समय चिड़ियों का।

१३६—'अन्य-अन्य' या 'पर-पर', 'एक दूसरे' के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं जैसे, अन्य करोति, अन्यो भुक्ते—एक करता है, दूसरा भोगता है। मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् (पच० १)—दुष्ट के मन में [illegible], [illegible] बात होती है, वाणी में कुछ दूसरी और कर्म (काम) में कुछ दूसरी।

१३७—पूर्वकथित या वर्णित किन्हीं दो चीजों या व्यक्तियों [illegible] अधिकतर 'एक—अपर' या 'एक—अन्य' का प्रयोग होता है, जैसे, एको ययौ चैत्ररथप्रदेशान् सौराज्यरम्यानपरो विदर्भान् (रघु० ५।६०)—एक [illegible] प्रदेश चला गया, दूसरा उस विदर्भ देश को चला गया, जो कि [illegible] के कारण प्रसन्न था।

(क) इसी अर्थ में कभी-कभी "एके" की जगह पर 'केचित्' का प्रयोग होता है, जैसे, मदुक्त केचिदन्वमन्यन्त। अपरे पुनर्निनिन्दु (दशकु० २१४) —कुछ लोगों ने मेरी बात का अनुमोदन किया, पर कुछ लोगों ने निन्दा की।

१३९—'स्व', 'स्वकीय', 'आत्मीय', और 'निज'—ये निजवाचक के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, जैसे, स्वं नाम कथय—अपना नाम बताओ। निजं धैर्यमदर्शयत्—उसने अपना धैर्य दिखलाया।

(ख) 'स्वयम्' निजवाचक क्रियाविशेषण अव्यय है, जैसे, सा स्वयमेव तत्र जगाम—वह स्वयं ही वहाँ गई।

१४०—निजवाचक सर्वनाम के तौर पर 'आत्मन्' शब्द का प्रयोग अधिकतर होता है। 'आत्मन्' से बोध होने वाली संज्ञा चाहे जिस वचन और जिस लिंग की हो, पर 'आत्मन्' शब्द सदा पुंलिंग और एकवचन में ही आता है, जैसे, का स्त्री अनेन प्रार्थ्यमानमात्मानं न विकत्थते (विक्रमो० २)—इसके द्वारा चाही जाती हुई कौन सी स्त्री अपने आप को गौरवान्वित समझती है अथवा अपने आप पर गर्व करती है। आत्मानं बहु मन्यामहे वयम् (कुमार० [illegible])—हम लोग अपने आप को बहुत कुछ समझते हैं। इसी प्रकार गुण [illegible]रात्मानं मत्वा [illegible]प्रेषु वासवं (रघु० १०।६०)।

अभ्यास

६—तदेव पञ्चवटीवनम्। सैव प्रियसखी वासती। त एव जातनिर्विशेषा. पादपा.। मम पुनर्मन्दभाग्याया सर्वमेवैतद् दृश्यमानमपि नास्ति (उत्तर० ३)।

७—आयुष्मन्नेष वाग्विषयीभूत स वीर· (उत्तर० ५)।

८—राजा—आर्य बहु प्रष्टव्यमत्र। चा०—वृषल विश्रब्ध ब्रूहि ममापि बह्वाख्येयमत्र। रा०-एष पृच्छामि। चा०—अहमप्येष कथयामि (मुद्रा०३)।

९—अमुना व्यतिकरेण कृतापराधमिव [illegible]त्मानमवगच्छति कादम्बरी (कादम्० २०३)।

१०—केचित् सपद्भि प्रलोभ्यमाना रागावेशेन बाध्यमाना [illegible]लता-मुपयाति। अपरे तु धूर्तै· प्रतार्यमाणा सर्वजनस्योपहास्यता-मुपयाति (कादम्० १०८)।

११—साहसकारिण्यस्ता कुमार्यो या स्वय [illegible] मुपसर्पति [illegible] (कादम्० [illegible])।

१२—अनयत्प्रभुशक्तिसपदा वशमेको नृपतीननतरान्।
अपर प्रणिधानयोग्यया मरुत पञ्चशरीरगोचरान्॥
(रघु० ८।१९)।

१३—कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञाना प्रपद्यन्तेऽन्यदेवता।
त त नियममास्थाय प्रकृत्या नियता स्वया। (श्रीमद्० ७, २०)।

अभ्यासार्थ अनिश्चित वाक्य

१—अयमसौ मम ज्यायानार्य कुशो नाम [illegible] प्रतिनिवृत्त (उत्तर० [illegible])। [illegible]
२—उदग्योन्मादिता [illegible]
पतितमप्यात्मान नावगच्छन्ति (कादम्० [illegible])। [illegible]
३—तस्य तरुषण्डस्य मध्ये [illegible]
विषाणकोटि [illegible]
सरो दृष्टवान् (कादम्० [illegible])।
४—इति नरपतिरस्त [illegible]।
[illegible] मुरारि [illegible]। ([illegible])।

६—उस विपत्तिकाल में उन लोगों ने बड़ी कठिनता से अपने को बचाया।

७—ये दोनों लड़के मेरे द्वारा अपने ही बच्चों की तरह पाले-पोसे गये, एक तो बहुत बुद्धिमान् था, पर दूसरा अत्यन्त मन्दबुद्धि।

८—उस समाचार को सुनने पर उस स्त्री ने अपने आपको सबसे अधिक भाग्यहीन समझा।

९—कहा जाता है कि भद्रकाली के मन्दिर में एक बुड्ढी औरत रहती है। कभी तो वह बड़बड़ाने लगती है और कभी ठिकाने से बोलने लगती है।

१०—कुछ दर्शनशास्त्रवेत्ता लोगों का विश्वास है कि ईश्वर ने सारा विश्व बनाया, कुछ लोग यह मानते हैं कि विश्व स्वय ही पैदा हुआ।

११—कुछ लोग अपना ही हित साधते हैं, कुछ लोग दूसरों का ही हित साधते हैं और कुछ लोग दोनों साधते हैं।

१२—यज्ञदत्त के पुत्र भिन्न-भिन्न कलाओं और शास्त्रों में निपुण हो गए हैं।

१३—जिस आदमी को मैंने सड़क पर फटे-चीथड़े पहिने हुए देखा था यह वह आदमी है।

१४—वह कहीं भी अध्ययन कर लेता है, किसी के भी साथ बाहर चला जाता है, किसी के भी घर में खा लेता है और कहीं भी सो जाता है।

१५— जो दृढ़चित होता है वह अपने प्रति किए हुये अपमान का बदला लेने का प्रयत्न करता है।

१६—जो लोग तुम्हारे घर पर आयें उनसे कोमलतापूर्वक बोलो।

———

त्रयोदश पाठ

शतृ, शानच्, क्त, क्तवतु

स्यतृ, स्यमान, क्वसु, कानच

तव्य, अनीयर्, ण्यत्

क्त्वा, ल्यप्

१४१—शतृ, शानच्, क्त, क्तवतु, स्यतृ, स्यमान, क्वसु, कानच्, तव्य, अनीयर्, ण्यत् प्रत्ययों को लगाकर जितने शब्द बनते हैं वे सब विशेषण होते हैं और उनके लिंग, वचन और कारक उनके विशेष्य के लिंग, वचन और कारक के अनुसार होते हैं। जिन धातुओं में ये जोड़े जाते हैं उन धातुओं के योग में जो विभक्ति आती है वही विभक्ति इन प्रत्ययों से निष्पन्न शब्दों के योग में भी आती है। इस पाठ में शतृ, शानच्, स्यतृ, स्यमान और क्वसु, कानच् का निरूपण किया जायगा।

शतृ, शानच्

विशेष (क) यदि अंग्रेजी से संस्कृत में अनुवाद करना पड़े और अंग्रेजी के ऐसे वाक्यों में gerund अर्थात् क्रिया में ing लगाकर बनाई हुई संज्ञा आदि का प्रयोग हो तो उसे संस्कृत के शत्रन्त और शानजन्त शब्दों के समकक्ष नहीं समझना चाहिये और ऐसे वाक्यों के अनुवाद में शत्रन्त और शानजन्त का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

(ख) जब कार्य की समानाधिकरणता या समकालीनता न पाई जाती हो तो इन शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। जैसे, वे लोग पर्वत पर चढ़ कर कुछ काल के लिये विश्राम करने लगे—इसका संस्कृत अनुवाद होगा "पर्वतमारुह्य ते कञ्चित् कालं व्यश्राम्यन्" "पर्वतमारोहन्त." आदि प्रयोग नहीं होगा। अलबत्ता, यदि वाक्य का अर्थ यह है कि दोनों कार्य एक साथ ही किये जाते हैं तब तो अवश्य 'पर्वतमारोहन्त. ते' इत्यादि प्रयोग ठीक होगा।

(ग)शत्रन्त और शानजन्त शब्द विधेय के स्थान पर विशेषण बनकर कर्त्ताकारक में कदापि नहीं आ सकते। उदाहरणार्थ स कुर्वन्नस्ति का प्रयोग नहीं किया जाता यद्यपि "कार्यं कुर्वन् स क्रीडति" ऐसा प्रयोग किया जाता है।

१४३—प्राय शानजन्त शब्दों का प्रयोग 'स्वभाव' या 'मनोवृत्ति' या 'आयु का कोई मापदण्ड', अथवा 'योग्यता' या 'किसी कार्य के करने की क्षमता', इत्यादि अर्थों का बोध कराने के लिये होता है, जैसे, भोगं भुञ्जान (सि० कौ०)—भोगने का अभ्यस्त। कवचं बिभ्राणः (सि० कौ०)—कवच पहने हुए यानी जिस उम्र में, कवच पहिना जाता है उस उम्र का। शत्रुं निघ्नान. (सि० कौ०)—शत्रु को मारने में समर्थ।

उपर्युक्त द्वितीय उदाहरण के साथ निम्नलिखित उदाहरण की तुलना कीजिये। सम्यग् विनीतमथ वर्महरं कुमारम् (रघु० ८.९४)। यहाँ वर्महर = कवचधारणार्हवयस्क ।

यवन लोग लेटे-लेटे भोजन करते हैं। इसी प्रकार तिष्ठन् मूत्रयति (म० भा०), गच्छन् भक्षयति (म० भा०), हरिं पश्यन् मुच्यते (सि० कौ०)—हरि का दर्शन करने के कारण वह मुक्त हो जाता है। "शयाना भुंजते यवना" उत्तर है "कथ भुञ्जते" का और 'हरिं पश्यन्' उत्तर है 'केन मुच्यते' का।

(घ) शत्रन्त और शानजन्त शब्द किसी क्रिया के कर्ता की विशेषता भी बताते हैं, जैसे, योऽधीयान आस्ते स देवदत्त' (म० भा०)—जो पढ़ रहा है वह देवदत्त है।

विशेष—जिस प्रकार अंग्रेजी के पार्टिसिपल से "सीमित या नियन्त्रित कर देने" का बोध होता है ठीक उसी प्रकार शत्रन्त और शानजन्त शब्दों से भी सीमित या नियन्त्रित कर देने का बोध होता है, जैसे, Students preparing their lessons will be rewarded का अनुवाद होगा पाठानधीयाना शिष्या पारितोषिकाणि लप्स्यन्ते।

(ङ) किसी साधारण सत्य का बोध कराने के लिये भी शत्रन्त और शानजन्त शब्दों का प्रयोग होता है, जैसे, शयाना वर्धते दूर्वा (म० भा०)—दूब लेटी हुई या पड़ी हुई दशा में उगती है। आसीन वर्धते बिसम् (म० भा०)—(जिसे माने पसलदाय,) कमलनाल सीधा खड़े रहने की दशा में बढ़ता है।

१४७—'धिक्कार' अर्थ का बोध कराने के लिये कभी-कभी शतृन्त और शानजन्त शब्दों का प्रयोग 'मा' के साथ होता है, जैसे, माजीवन् यः परावज्ञा दुःखदग्धोऽपि जीवति (शिशु० २।४५)—जो दूसरो के तिरस्कार के दुःख से आहत होने पर भी जीता है उसे धिक्कार है याना उसे जीवित नहीं रहना चाहिये बल्कि मर जाना चाहिये।

स्यतृ, स्यमान

१४८—स्यतृ और स्यमान से बने हुए शब्द यह बतलाते हैं कि कोई व्यक्ति अमुक कार्य करने जा रहा है, या करने वाला है, जैसे, करिष्यन्—करने जा रहा है या करने वाला है। मोक्ष्यन्—छूटने जा रहा है। करिष्यमाण—इसके ऊपर किया जाने वाला है।

(क) सामान्यभविष्य काल का बोध कराने के अतिरिक्त ये शब्द अभिप्राय या इच्छा भी प्रकट करते हैं, जैसे, वन्यान् विनेष्यन्निव दुष्टसत्त्वान् दाव विचचार (रघु० २।८)—उसने जगल मे इसलिये भ्रमण किया मानो जगली जानवरों को शिक्षा देना चाहता है, मानो उसका अभिप्राय यह था कि मैं जगली पशुओं को शिक्षाद्वारा वश मे कर लूँ। करिष्यमाणः सशरं शरासनम् (रघु० ३।५२)—अपने धनुष पर बाण चढ़ाने की इच्छा करता हुआ।

टिप्पणी—'प्रयाण करने के पहिले उसने थोड़ा सा जल पिया'—ऐसे वाक्यों का अनुवाद करने के लिये स्यतृ और स्यमान द्वारा निष्पन्न शब्दों को काम मे लाना चाहिये, जैसे, प्रयाणं करिष्यन् स किंचिज्जलं पपौ।

क्वसु और कानच्

१४९—क्वसु और कानच् का प्रयोग बहुत कम होता है। इनका अर्थ होता है "जो कर चुका है" या "किया जा चुका है", जैसे, श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषस्ते (रघु० ५।३४)—जो पुरुष सारी अच्छी-अच्छी वस्तुए प्राप्त कर चुका है उसका। निषेदुषीमासनबन्धधीरः (रघु० २।६)—जब वह बैठ जाती थी तब जम कर वह (भी) बैठ जाया करते थे।

अभ्यास

१—मा टिट्टिभी स्वाऽडमगाभिभूता प्रलापान कुर्वाणा न ... (पच० १।१४)।

२—अथ द्वावपि तौ पुष्पितपलाशप्रतिमौ परस्परवधाकाङ्क्षिणौ दृष्ट्वा करटको दमनकमाह। भो मूढमते अनयोर्विरोधं वितन्वता त्वया न साधु कृतम् (पंच १।१६)।

३—राजा विस्फारितेन स्निग्धेन चक्षुषा पिबन्निवालपन्निव स्पृशन्निव मनोरथसहस्रप्राप्तदर्शनं सस्पृहमीक्षमाणस्तनयाननं मुमुदे कृतकृत्यं चात्मानं मेने (कादम्० ७२)।

४—साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्॥
(भर्तृ० २१२)।

५—सज्जीभूतं साधनम्। प्रयाणाभिमुखं सकलं स्कन्धावारस्त्वां प्रतिपालयन्नास्ते। तत्किमद्यापि विलम्बितेन (कादम्० २७७)।

६—राजाधिराजनन्दन नगरप्रगतस्य ते गतिं जानन्नहं च गत मा[illegible]त्वालिङ्गन (दशकु० ८७)।

७—स्थानाद्[illegible]मुनितनया सा[illegible] विनयेन वारितप्रसरः।
स्थानादनुच्चलन्नपि गत्वेव पुनः प्रतिनिवृत्तः॥ (शा० १)।

८—[illegible] तत परं पावनं श्रुतमृषेरुपेयिवान्।
[illegible] पूर्वजन्मचेष्टितान्यस्मरन्नपि बभूव राघवः॥
(रघु० ११। २२)।

६—आदिदेशाथ शत्रुघ्नं तेषां क्षेमाय राघवः ।
करिष्यन्निव नामास्य यथार्थमरिनिग्रहात् ॥ (रघु० १५।६) ।

७—कदा वाराणस्याममरतटिनी-रोधसि वसन्
वसानः कौपीनं शिरसि निदधानोऽञ्जलिपुटम् ।
अये गौरीनाथ त्रिपुरहर शम्भो त्रिनयन
प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ (भर्तृ० ३।२०) ।

८—तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे तदागमारूढगुरुप्रहर्षः ।
प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्रश्चन्द्रं प्रवृद्धोर्मिरिवोर्मिमाली ॥ (रघु० ५। ६१) ।

संस्कृत में अनुवाद किजिए—

निम्नलिखित वाक्यों का अनुवाद शतृ, शानच्, स्यतृ, स्यमान, क्वसु, कानच् इत्यादि द्वारा कीजिये ।

१—एक दूसरे से वार्तालाप करते हुये, धीरे धीरे चलते हुये और अपने सिर प[र] अन्न का बोझ ढोते हुए बहुत से आदमियों को मैंने सड़क पर देखा ।

२—जहाज में इङ्गलैण्ड जाता हुआ मनुष्य बहुत से सुन्दर दृश्य देख सकता है

३—इस चित्र में क[ला] ही सौन्दर्य है । भिन्न भिन्न-अंशों को [illegible] नेत्राक[र्षक] बनाकर चित्रकार ने अपनी पूर्ण कला दिखलाई है ।

४—तुम्हारे द्वारा मेरे पास इस प्रकार का सन्देश भेजकर [illegible] नहीं शरमाता ?

५—अपने पति के शव को देखती हुई तथा उसके अनेक सद्गुणों को स्मरण करती हुई रति चिरकाल तक रोती रही ।

६—जब चन्द्रापीड का यौवराज्याभिषेक होने जा रहा था त[ब] [illegible] बातों की ओर उसका ध्यान आकृष्ट करते हुए शुकनास [illegible] मन्त्रणा दी ।

७—न्यायशास्त्र में निपुण होने की इच्छा करता हुआ [illegible] वहाँ बहुत दिनों तक पढ़ता रहा ।

८—[illegible] पुरस्कार देने के लिये मैंने गोपाल को [illegible] मैंने उससे पूछा कि क्या आप हमें अपने [illegible]

९—बलशाली शत्रु के सामने झुक जाने वाले बेत के पौधे बच जाते हैं, पर गर्वसहित खड़े हुये विशालकाय बलूत के वृक्ष जल के प्रवाह से बह जाते हैं।

१०—सिंह जङ्गल के पशुओं को उनकी पारी पर मारता रहा।

११—चारों शास्त्रों में पारगत हुए, छहों अगों में पूर्णरूप से निष्णात, और चारों वेदों को पढ़ चुके हुए इस ब्राह्मण से तुम्हें द्रोह न करना चाहिये।

१२—जनक जी ने अपनी कन्या सीता शिव के धनुष को तोड़ देने वाले तथा अपने असाधारण पराक्रम और चातुर्य से दर्शकों के मन को आकृष्ट कर लेने वाले राम को दे दी।

———

चतुर्दश पाठ

क्त, क्तवतु

१५०—भूतकालवाची क्रियार्थक विशेषण दो प्रकार के होते हैं एक कर्मवाच्य में होता है और "क्त" लगाकर बनाया जाता है। दूसरा कर्तृवाच्य में होता है और "क्तवतु" लगाकर बनाया जाता है, जैसे, तेन इदमुक्तम्—यह बात उससे कही गई। स इदमुक्तवान्— उसने यह बात कही। ये दोनों प्रत्यय भूतकाल के अर्थ में प्रयोग में लाए जाते हैं। प्राचीन काल की संस्कृत में क्रियार्थक विशेषणों का प्रयोग क्रियाओं के प्रयोग की अपेक्षा अधिक चलनसार हो गया। "मया तत् कृतम्" अथवा "अहं तत् कृतवान्" का प्रयोग "अहं तदकरवम्" की जगह अधिकतर मिलता है। इस क्रियार्थक विशेषण के द्वारा विधेय के बहुत से काम चलते हैं।

१५१—बहुत सी अकर्मक क्रियाओं में भूतकालिक कर्मवाच्य विशेषण होते हैं। इनका प्रयोग तृतीया के साथ होता है और किसी भी कर्ता या कर्म से कोई भी सम्बन्ध नहीं रहता। अकर्मक के तौर पर प्रयुक्त सकर्मक धातुओं के क्रियार्थक विशेषणों का भी प्रयोग इसी प्रकार होता है, जैसे, प्रतिबुद्धमिदानीं मकरन्दपूर्णचन्द्रेण (मालती० ८)—पूर्णचन्द्रतुल्य मकरन्द ने अब चेतनाशक्ति प्राप्त कर ली। जितम् अपत्यस्नेहेन (उत्तर० ७)—अपत्यस्नेह ने जीत लिया।

विशेष—केवल भूतकालिक क्रियार्थक विशेषण ही नहीं इस प्रकार प्रयोग में लाये जाते, अपितु लकारों के रूप भी इस प्रकार कर्मवाच्य में आते हैं, जैसे, मध्याह्नेऽपि वनराजिषु आहिण्ड्यते (दश० २)—दोपहर में भी वनपंक्तियों में होकर मैं भ्रमण करता हूँ।

आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः।
तज्जयः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम्॥ (भाग०)।

अर्थात् इन्द्रियों का अनियमन विपत्तियों का मार्ग है। इन्द्रियों पर विजय ऐश्वर्य का मार्ग है। जिस रास्ते से इच्छा हो उससे जाओ।

११२१—[illegible] धातुओं, अकर्मक धातुओं, श्लिष् (आलिंगन करना), शी (लेटना, सोना), स्था (ठहरना), आस् (बैठना), वस् (रहना), [illegible] और जॄ (बुड्ढा होना या पुराना होना)—में क्त प्रत्यय कर्तृवाच्य [illegible] होता है [illegible] गतोऽहं कलिंगान् (दश० २)—मैं कलिंग चला गया। [illegible] पातुं [illegible]मवतीर्णः (पञ्च० १।१)—वह पानी पीने के लिए [illegible] चला गया। लक्ष्मीमाश्लिष्टो हरिः (सि०कौ०)—हरि ने [illegible] किया। शेषमधिशयितः—शेषनाग के ऊपर शयन किया। [illegible]—[illegible] शुश्रूषा या उपासना की। विश्वमनुजीर्णः—[illegible] हो गया। उपरते भर्तरि (कादम्० १७३)—पति के मर [illegible] हरिदिनमुपोषितः वृक्षमारूढः, सुतो जातः [illegible]।

१५४[1]—मन्, बुध्, पूज् धातुओ मे, तथा इन्हीं के समान अर्थ रखने वाली धातुओं मे क्त प्रत्यय वर्तमान काल के अर्थ में प्रयुक्त होता है और ष के साथ आता है। (सेक्शन ११५ भी देखिये।)

विशेष—और भी दूसरे शब्द हैं जो कि इसी प्रकार प्रयुक्त होते हैं। ये निम्नलिखित श्लोको में दिये हुये हैं—

शीलितो रक्षित. क्षान्त आक्रुष्टो जुष्ट इत्यपि ।
रुष्टश्च रुषितश्चोभावभिव्याहृत इत्यपि ।
हृष्टतुष्टौ तथा कान्तस्तथोभौ मयतोद्यतौ ।
कष्ट भविष्यतीत्याहुरमृता. पूर्ववत् स्मृता ॥ (म० भा०)

कृत्य प्रत्यय

तव्य अनीय यत् ण्यत्

१५५—संस्कृत मे कृत्य प्रत्यय द्वारा potential passive participles बनते हैं। ये तीन प्रकार से बनाये जाते हैं—प्रथम तव्य द्वारा, दूसरे अनीय द्वारा और तीसरे यत् ण्यत् लगाकर (इनके बनाने का नियम जानने के लिए डाक्टर कीलहोर्नकृत व्याकरण का सेक्शन ५२६-५३८ देखिये), जैसे, कर्तव्य, करणीय और कार्य। संस्कृतभाषा में लाघव लाने मे ये कृत्यप्रत्यय बहुत काम के हैं, और अंग्रेजी या हिन्दी में जिन विचारों को प्रकट करने के लिये [illegible] शब्दो की आवश्यकता होती है उन्हें संस्कृत मे कृत्य प्रत्यय द्वारा [illegible] प्रकट कर सकते हैं, जैसे, वह मार डाला जाना चाहिये—हन्तव्य । [illegible] यह बतलाते हैं कि धातुद्वारा बोधित कार्य अथवा दशा आरम्भ की जानी चाहिये जैसे वक्तव्यम्, वाच्यम्, वचनीयम्—जो कि अवश्य कहा जाना चाहिये। इस प्रकार कृत्यप्रत्यय से 'योग्यता, धर्म अथवा आवश्यकता' [illegible] होता है, उदाहरणार्थ, मुझे वहां जाना है—मया तत्र गन्तव्यम्। [illegible] मेरा धर्म है—मया तत् कर्तव्यम्।

मेरे बच्चे ने राजा जी से यह बात तुम्हारे द्वारा कह दी जानी चाहिए। अजा ग्राम नेतव्या—भेड़ें गाँव पहुँचाई जानी चाहियें। इसी प्रकार, असौ दुहितु पत्या परिग्रहप्रियसमाचारमाभि श्रावयितव्य (शा० ७)—पति द्वारा (उनकी) कन्या के स्वीकार किए जाने का प्रिय समाचार उन्हें सुना दिया जाना चाहिये। इन प्रत्ययों के योग में धातुओं द्वारा सूचित कार्य का कर्ता षष्ठी अथवा तृतीया में आता है। (१०८ सेक्शन देखिये।)

२४७—ये प्रत्यय क्रिया के स्थान में नपुंसकलिंग एकवचन में स्वतन्त्र रूप से (impersonally) भी प्रयोग में आते हैं अर्थात् इस प्रकार प्रयोग में आते हैं कि किसी भी संज्ञा या सर्वनाम से किसी भी प्रकार सम्बद्ध नहीं होते, जैसे, अभिज्ञानशाकुन्तलाख्येन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभि (शा० १)—हमें शकुन्तला नाम नाटक द्वारा (श्रोताओं की) सेवा करनी चाहिये, (भाव यह है कि हमें शकुन्तला नाटक खेलना चाहिये)। तत्रभवता तपोवन गन्तव्यम् (विक्रमो० ५)—उन पूज्य पुरुष को तपोवन चला जाना चाहिये।

(ख) कभी-कभी ये प्रत्यय भविष्यकाल में निश्चयात्मक अर्थ बोध कराने के लिए प्रयुक्त होते हैं, जैसे, लुब्धकेन मृगमांसार्थिना गन्तव्यम् (हि० १)—मृग के मास का इच्छुक बहेलिया अवश्य ही जायगा। ततस्तेनापि शब्दः कर्तव्यः (हितो० ३)—तब वह भी अवश्य ही शोर करेगा।

(ग) कभी-कभी कृत्यप्रत्यय-निष्पन्न शब्द केवल भविष्यकाल का बोध कराते हैं, जैसे, युवयो पक्षबलेन मयापि सुखेन गन्तव्यम् (हितो० ४)—तुम्हारे दोनों के बल से मैं भी सुखपूर्वक (सरलता से) चला जाऊँगा।

अभ्यास

१—अत्रभवतो. परस्परेण ज्ञानसवर्षो जात। तदत्रभवत्या प्राश्निकपदमध्यासितव्यम् (मालविका० १)।

२—तयोर्वद्धयो. किंनिमित्तोऽयं मोक्ष., किं देव्या परिजनमतिक्रम्य भवान् सदिष्ट इत्येवमनया प्रष्टव्यम् (मालविका० ४)।

३—विश्रान्तेन भवता ममाप्येकस्मिन्ननायासे कर्मणि सहायेन भवितव्यम् (शा० २)।

४—नास्मि भवत्योरीश्वरनियोगप्रत्यर्थी। स्मर्तव्यस्त्वय जन (विक्रमो० [illegible])।

५—तत्किं मन्यसे, राजपुत्रि, मृषोद्य तदिति। न [illegible] मतव्यम्। भवितव्यमेव तेन [उत्तर० ४]।

६—सर्वथा निष्प्रतीकारेयमापदुपस्थिता। किमिदानीं कर्तव्य, क्व [illegible] गतव्यमित्येते चान्ये च विषण्णहृदयस्य मे सकला प्रादुरासन्। [कादम्ब० [illegible]]।

७—सततमतिगर्हितेनाकृत्येनापि परिरक्षणीयान्यसूनि [illegible]। [illegible]कर्तव्यम[illegible]तदस्मात्[illegible]कर्तव्यतामापतित[illegible]। [कादम्ब० [illegible]]।

९—आः क्षुद्राः, समरभीरवः, कथमेव प्रलपतां वः सहस्रधा न दीर्णमनया जिह्वया [वेणी० ३] ।

१०—आपदि येनोपकृतं येन च हसितं दशासु विषमासु ।
उपकुर्वदपकुर्वदपि च तयोर्यस्तं पुरुषं परं मन्ये ॥ [पञ्च० १।१५] ।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—आपन्नस्य विषयवासिनो जनस्यार्तिहरेण राज्ञा भवितव्यमित्येष वो धर्मः (शा० ३) ।

२—अन्तरिते तस्मिन् शबरसेनापतौ स जरच्छबरस्तं वनस्पतिमामूलादपश्यत् । उत्क्रान्तमिव तस्मिन् क्षणे भयालोकभीतानां शुककुलानामसुभिः (काद० २२) ।

३—मा तथाकृत्वा चेतस्यकरवम् । मयाधुना म्लेच्छजातिभिरपि दूरतः परिहृतप्रवेशः पक्कणं द्रष्टव्यम् । चण्डालैः सहैकत्र स्थातव्यम् । चण्डालबालकजनस्य च क्रीडनीयेन भवितव्यमिति । (काद० ३५५) ।

४—कार्यव्यग्रत्वात् मनसः प्रभूतत्वाच्च प्रणिधीनां कोऽयमिति विस्मृतम् । इदानीं स्मृतिरुपलब्धा । न्यस्तमाहितुण्डिकच्छद्मना कुसुमपुरादागतेन विराधगुप्तेन भवितव्यम् । (मुद्रा० २) ।

५—आः दुरात्मन्, वृथा कुलपांसुल, एनमतिक्रान्तमर्यादे त्वयि निमित्तमात्रेण पाण्डवकोपेन भवितव्यम् । (वेणी० १) ।

६—वत्स, साम्प्रतिकमेवैतत् । कर्तव्यानि दुःखितैर्दुःखनिर्वापणानि । (उत्तर० ३)

७—पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया ।
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते । (उत्तर० ३)

संस्कृत में अनुवाद कीजिये—

[क्त, क्तवतु, तव्य, अनीय, यत्, ण्यत् का प्रयोग कीजिये]

१—शक्तिशाली सेनाओं से रक्षित होने पर भी तारक को कार्तिकेय ने हरा दिया।

२—ऐ वत्स, ऐसा करके तुमने जामदग्न्य का अपराध ही किया है, न कि उनका कोई उपकार किया है।

३—शत्रु द्वारा उसकी सेना के पराजित हो जाने पर, उसके कुछ सैनिक पहाड़ों पर चढ़ गये (अधि+रुह्), कुछ समुद्र तीर पर उतर गये (अव तृ) और कुछ शून्य गुफाओं में घुस गये।

४—यदि तुम अपने घनिष्ठ मित्रों का तिरस्कार करोगे तो तुम अवश्य घृणा के पात्र बन जाओगे।

५—यह कौन हो सकता है जो कि मेरा नाम लेकर मुझे पुकार रहा है। हाँ, हाँ, यह अवश्य ही मेरे पुराने मित्र मित्रवर्मा हैं।

६—थोड़ी देर तक मेरे लिये प्रतीक्षा करो। मुझे भी सभा में उपस्थित होना आवश्यक है।

७—ज्योंही वह जागता है, त्योंही, अध्ययन प्रारम्भ करने के स्थान पर खेलने के लिये निकल जाता है।

८—शोक को स्थान न दो, तुम्हारा बच्चा अब तक अवश्य घर आ गया होगा।

९—अनेक कष्टों को सहन करता हुआ मैं बहुत से देशों में घूम आया हूँ परन्तु मैंने अपना अभिलषित मनोरथ नहीं पाया।

१०—वह तुम्हें नष्ट करने पर तुला हुआ मालूम पड़ता है, परन्तु मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि उसके प्रयत्न अवश्य निष्फल जायँगे।

११—यदि तुम सहायता न करोगे तो वह उस देश में [illegible] धारण करेगा।

१४—इस महान पुरस्कार से सूचित होता है कि अँगूठी राजा द्वारा बहुत ही पसन्द की गई होगी (मन् धातु)।

१५—बुद्धिमान पुरुषों के लिये कुछ भी दुस्साध्य नहीं है।

१६—चूँकि उसके पास बहुत धन था, इसलिये उसके बहुत सी पत्नियाँ रही होंगी।

१७—हम लोग अपनी सेनाओं के साथ कितनी देर तक युद्ध के लिये तैयार खड़े रहें।

पञ्चदश पाठ

प्रथम भाग

अव्ययार्थक प्रत्यय—क्त्वा, ल्यप्

१५८—जब कोई क्रिया पहिले हो चुकी रहती है और उसके बाद दूसरी क्रिया होती है तो पहिले हो चुकी हुई क्रिया का बोध कराने के लिये धातुओं में क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय जोड़ दिये जाते हैं। जैसे, प्रतीहारी समुपसृत्य सविनयमब्रवीत् (कादम्० ८)—समीप में आकर प्रतीहारी [illegible] (ड्योढ़ी पर चौकसी रखने वाली स्त्री) बोली। वैशम्पायनो मुहूर्तमिव ध्यात्वा सादरमब्रवीत् (कादम्० ८)—मानो कुछ देर तक ध्यान कर वैशम्पायन [illegible] आदरपूर्वक कहा।

परन्तु 'गाँव जाता हुआ वह रास्ते में तृण छूता जाता है" का [illegible] "ग्राम गच्छन् पथि तृणं स्पृशति" होगा।

१५९—क्त्वा प्रत्यय सभी धातुओं में जोड़ा जा सकता है। [illegible] ल्यप् प्रत्यय उन्हीं धातुओं में जुड़ता है जिनके पहिले उपसर्ग लगा रहता है। इनके बनाने के नियमों को समझने के लिये [illegible] की [illegible] करण के सेक्शन ५०५ से ५२६ तक देखिये।

मिलित्वा सिंहो विज्ञप्त (हित० २)—सब पशुओं ने एक साथ मिलकर सिंह से प्रार्थना की। स एव दोष प्रख्याप्य नगरान्निर्वास्यताम् (मुद्रा० १)—इस अपराध की घोषणा करके (आप के द्वारा) वह नगर से निकाल दिया जाय।

१६०—घटनाओं के वर्णन करते समय क्रिया के रूपों और समुच्चय-बोधक अव्ययों के प्रयोग में लाघव लाने के लिये क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय बहुत काम आते हैं। 'ऐसा करने या किये जाने के बाद' 'जब' और 'बाद' से प्रारम्भ होने वाले प्रयोगों के अनुवाद में 'जब' अथवा 'बाद' इत्यादि शब्दों का संस्कृत अनुवाद करने की कोई आवश्यकता नहीं, प्रत्युत 'क्त्वा' अथवा 'ल्यप्' से काम चल जाता है, जैसे, रावणं हत्वा—रावण को मार चुकने के बाद। जब वह वहाँ गया तो उसने कुछ भी नहीं पाया—स तत्र गत्वा न किमपि लेभे।

यदि किसी अँग्रेजी वाक्य में 'having' से प्रारम्भ होने वाले कई उपवाक्य जुड़े हुए हों तो वह वाक्य बड़ा भद्दा लगेगा। परन्तु संस्कृत में कई क्त्वान्त अथवा ल्यबन्त शब्द बड़ी सुन्दरता से लाये जा सकते हैं, जैसे, मा [illegible]परिश्लेषणालिप्य वृक्षस्याध प्रक्षिप्य गम्यतां पर्वतमृष्यमूक प्रति (पञ्च० ३)—मुझे खून से पोत कर और वृक्ष के नीचे फेंक कर ऋष्यमूक पर्वत पर चले जाओ। इसी प्रकार, अथ स ब्राह्मणस्त पशु राक्षस मत्वा भयाद् भूमौ [illegible] [illegible] निर्भर्त्स्य गृहमुद्दिश्य प्रस्थित (हित० ४)—तब उस पशु [illegible] राक्षस समझ कर ब्राह्मण ने डर के मारे उसे जमीन पर फेंक दिया और [illegible] को कोस कर घर को रवाना हो गया। अँग्रेजी के जिन वाक्यों में Cumulative assertions किये गये हों उनके संस्कृत अनुवाद में क्त्वा [illegible] प्रत्यय का प्रयोग बड़ी सुगमता से किया जा सकता है।

[illegible]—क्त्वान्त और ल्यबन्त शब्दों के प्रयोग में स्वाभाविक क्रम का [illegible] रखना चाहिये जैसे पक्त्वा भुक्त्वा स्वपिति—वह [illegible] सोता है। पर भुक्त्वा पक्त्वा स्वपिति कहना [illegible] होगा।

[illegible] क्त्वान्त और ल्यबन्त [illegible] [illegible] जैसे, मुद्रा [illegible] [illegible] [illegible]—[illegible] [illegible]। [illegible]—[illegible]।

द्वितीय भाग

'अम्' में अन्त होने वाले कृदन्त

१६२—धातुओं तथा प्रत्ययान्त धातुओं में 'अम्' लगाकर भी "क्त्वा" के अर्थ का बोध कराया जाता है। जब यह प्रत्यय जोड़ा जाता है तो वे ही परिवर्तन होते हैं जो कर्मवाच्य के सामान्यभूत की 'इ' के पूर्व होते हैं।' (डाक्टर कीलहोर्नकृत व्याकरण का सेक्शन ५२६ देखिये)। उदाहरणार्थ, क्षेपम्—फेंककर (क्षिप् से)। वादम्—बोलकर (वद् से)। भोजम्—खाकर (भुज् से)।

१६३—जब यह रूप दो बार आता है तो धातु द्वारा बोधित दशा अथवा क्रिया का पौन:पुन्य द्योतित होता है। "पौन:पुन्य" का अर्थ है "फिर फिर होना"। जैसे, स्मार स्मार नमति शिवम् (मि० कौ०)—वह बारम्बार शिव जी को स्मरण करके उन्हें नमस्कार करता है।

कलिङ्गनाथो मयि बद्धवैर इति श्राव श्राव चण्डवर्मा युद्धायोद्यतो बभूव (दशकु २ । ३)—'कलिंगनाथ मुझसे वैर मानता है इस बात को बार बार सुनकर चण्डवर्मा युद्ध के लिए तैयार हो गया। इसी प्रकार, पाय पायम्—बार बार पीकर। दर्शं दर्शम्—बार बार देखकर।

१६४[1]—अग्रे, प्रथमम् और पूर्वम् के साथ यह रूप प्रायः क्त्वा रूप प्रयोग में आता है, जैसे, अग्रे-प्रथम-पूर्वं भोजं व्रजति। अर्थात्—पहिले खाकर वह चलता है।

भुक्ते (सि० कौ०)—इस प्रकार खाता है। कथंकार भुङ्क्ते—किस प्रकार खाता है। परन्तु शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते।

(ग)[1] जब क्रोधपूर्ण उत्तर दिया जाता है तब यथा और तथा के अनन्तर कृ+णमुल् जोड़ देते हैं, जैसे, तथाकारं भोक्ष्ये किं तवानेन (सि० कौ०)—मैं इसी प्रकार खाऊँगा, तुम्हें इससे क्या मतलब?

१६५[1]—मीठा या स्वादिष्ठ अर्थ का बोध कराने वाले शब्दों के अनन्तर कृ+णमुल्=कारम् जोड़ दिया जाता है, जैसे, स्वादुंकारं लवणंकारं भुङ्क्ते—वह अपने भोजन को मीठा (स्वादिष्ठ) या नमकीन बनाकर खाता है।

१६६[2]—दृश् धातु और विद् (जानना) धातु के कर्म के अनन्तर दृश् + णमुल्="दर्शम्" और विद्+णमुल्='वेदम्' जोड़ दिया जाता है जब कि उस कर्म की सारी जाति का बोध कराना अभीष्ट होता है, जैसे, कन्यादर्शं वरयति (सि० कौ०)—जितनी कन्याओं को देखता है उन सब को वरण कर लेता है। ब्राह्मणवेदं भोजयति—जितने ब्राह्मणों को जानता है उन सबों को खिलाता है।

१६७[1]—शुष्क, चूर्ण और रूक्ष शब्दों के अनन्तर पिष् (पीसना) + णमुल् = 'पेषम्' जोड़ दिया जाता है और साथ ही साथ पिष् धातु भी किसी न किसी लकार में प्रयोग में आती है, जैसे, चूर्णपेषं पिनष्टि—वह यहाँ तक पीसता है कि बिल्कुल चूर-चूर हो जाता है। इसी प्रकार, शुष्कपेषं पिनष्टि अथवा रूक्षपेषं पिनष्टि।

(क)[2] समूल, अकृत और जीव के अनन्तर हन् + णमुल् = 'घातम्', कृ + णमुल् = 'कारम्' और ग्रह् + णमुल् = 'ग्राहम्' जोड़ दिए जाते हैं और साथ ही साथ हन् धातु, तथा कृ धातु तथा ग्रह् धातु भी किसी न किसी लकार में प्रयुक्त होती है, जैसे, समूलघातं हन्ति—वह बिल्कुल जड़ से नाश करता है। अकृतकारं करोति—वह कभी भी न की हुई चीज को कर डालता है। जीवग्राहं गृह्णाति—वह उसको जीता जागता पकड़ लाता है।

(ख) इसी प्रकार हन् + णमुल् = 'घातम्' और पिष् + णमुल् = 'पेषम्' संज्ञा के अनन्तर जोड़े जाते हैं और यह सूचित करते हैं कि वह संज्ञा हन् और पिष् क्रिया के सम्पादन में करणभूत या साधनभूत है, जैसे, पादघातं हन्ति = पादेन हन्ति – वह पाँव से मारता है। उदपेषं पिनष्टि = उदकेन पिनष्टि – वह पानी से पीसता है। तं हस्तग्राहं गृह्णाति – वह उसे हाथ से पकड़ता है। इसी प्रकार, पाणिग्राहम्, करग्राहम् आदि भी प्रयोग में आते हैं।

हस्तवर्तं वर्तयति = हस्तेन वर्तयति। जीवनाशं नश्यति – इस प्रकार नष्ट हो जाता है कि उसका जीवन ही नष्ट हो जाता है अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। ऊर्ध्वशोषं शुष्यति वृक्षः—पेड़ ऊपर खड़ा खड़ा ही सूख जाता है। इसी प्रकार ऊर्ध्वपूरं पूर्यते।

१६८[3]—जिस तुल्यता या सादृश्य का बोध साधारणतः 'इव' शब्द से किया जा सकता है उसका बोध कराने के लिए कभी कभी णमुल् प्रत्यय उस संज्ञा के अनन्तर होता है जिससे सादृश्य दिखलाना होता है, जैसे, अजनाशं नष्टः—वह बकरे के समान नष्ट हो गया। पार्थसचारं चरति—... के समान चलता है। घृतनिधायं निहितं जलम्—घी के समान ...

९६९[1]—हन्, तड् इत्यादि हिंसार्थक धातुओं का णमुलन्त रूप संज्ञाओं के अनन्तर प्रयोग में आता है यदि णमुलन्त का तथा प्रधान क्रिया का कर्म समान हो और णमुलन्त का प्रयोग करने की दशा में वह संज्ञा तृतीया में प्रयुक्त होती हो, जैसे दण्डोपघातं गाः कालयति—गायों को डण्डे से मारकर वह उन्हें एकत्र करता है।

(ब) इसी प्रकार व्रजोपरोधं गाः स्थापयति—वह गायों को इस प्रकार रखता है कि सब की सब बाड़े में आ जाती हैं। पार्श्वोपपीडं शेते = पार्श्वाभ्यामुपपीडयन् शेते।

(ग) आसन्नतम सान्निध्य (Immediate Contiguity) सूचित करने के लिए हस्त, केश, इत्यादि शब्दों के अनन्तर ग्रह्+णमुल्='ग्राहम्' का प्रयोग होता है, जैसे केशग्राहं (=केशेषु गृहीत्वा) युध्यन्ते—वे लोग एक दूसरे के बाल जोरों से पकड़कर युद्ध करते हैं। हस्तग्राहम्=हस्तेन गृहीत्वा। यष्टिग्राहम् (=यष्टिं गृहीत्वा)—लाठी या छड़ी लेकर। इसी प्रकार लोष्टग्राहम्।

नाम बताकर कहता है। नामग्राह मामाह्वयति—वह मेरा नाम लेकर मुझे पुकारता है।

विशेष—समस्त पद बनाने के लिये णमुलन्त रूप संज्ञाओं के साथ भी प्रयुक्त होते हैं, जैसे, ब्राह्मणवेदम् (न कि ब्राह्मणान वेदम्)। जीवग्राहम् (न कि जीवम् ग्राहम्)।

अभ्यास

१—स दुष्टाशयो वक. क्रमेण तान् पृष्ठमारोप्य, जलाशयस्य नातिदूरे शिला समासाद्य, तस्यामाक्षिप्य स्वेच्छया भक्षयित्वा, भूयोऽपि जलाशय समासाद्य, जलचराणां मिथ्यावार्तासन्देशकैर्मनांसि रञ्जयन् आहारवृत्तिमकरोत् (पञ्च १।७)।

२—ततो भ्रातृशरीरमग्निसात् कृत्वा पुनर्नवीकृतवैधव्यदु खया मया त्वदीय देशमवतीर्येमे काषाये गृहीते (मालविका० ५)।

३—प्रवृत्ते प्रदोषसमये चन्द्रापीडश्चरणाभ्यामेव राजकुल गत्वा पितु समीपे मुहूर्त स्थित्वा दृष्ट्वा च विलासवतीमागत्य स्वभवने शयनतलमधिशिश्ये (कादम्० ६८)।

४—ते हिमालयमामन्त्र्य पुन प्राप्य च शूलिनम्।
सिद्ध चास्मै निवेद्यार्थं तद्विसृष्टा समुद्ययु ॥ (कुमार० ६।९४)

५—अह येनेष्टिपशुमार मारित सोऽनेन स्वागतेनाभिनन्द्यते।
(शा० ६)

६—सा कुबेरभवनान्निवर्तमाना समापन्नितप्टेन केशिना दानवेन चित्रलेखाद्वितीया वन्दीग्राह गृहीता (विक्रमो० १)।

७—मगधराज प्रक्षीणसकलसैन्यमण्डल मालवराज जीवग्राहं गृह्य दयालुतया पुनरपि स्वराज्य प्रतिष्ठापयामास।
(दशकु० ११)

८—मत्तकालो नाम लाटेश्वरो वीरकेतोस्तनया वामलोचना नाम तरुणीरत्नमसामान्यलावण्य श्रुत्वा ... तस्य पाटलिनाम्नी नगरीमगमत्। (दशकु० ११३)।

९—अनन्तर सूत्रधारो दारुवर्मा वैरोधकपुरसरैः पदातिलोकैर्लोष्ठ-
घात हत (मुद्रा० २)।

१०—सप्राप्य राक्षससभा चक्रन्द क्रोधविह्वला ।
नामग्राहमरोदीत्सा भ्रातरौ रावणान्तिके ॥

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—स्तनानुपान कुसुमान्यगृह्णात् न नयवस्कान्दमुपास्त्राच्च ।
कुमारलाच्चारुदितोपवेश काकस्य ईप स्मयमान आस्त । (भट्टि० २।११) ।

२—स्नेहात् सभाजयितुमेत्य दिनान्यमूनि
नीत्वाश्रमेण वनभोऽन्य गतो विहाय ।
दृष्ट्वास्ततो विमनस परिसान्त्वनाय

स्तेषां वैरिभिरुद्धृत. कथममी संधास्यते तानयं ।
इत्थ वस्तुविवेकमूढमतिना म्लेच्छेन नालोचितम्
दैवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा पूर्वं विपर्यस्यति ॥ (मुद्रा० ६) ।

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

(णमुलन्त, क्त्वान्त तथा ल्यबन्त शब्दों का प्रयोग कीजिये)

१—अपनी तरफ बहेलिए को आता हुआ देखकर सारे पशु भयभीत होकर भिन्न भिन्न दिशाओं में भाग गए ।

२—वङ्गाधिपति से यह समाचार निवेदन करके तुम कब लौट आए ?

३—एकचित्त होकर और प्रारब्ध कार्य को बन्द न करने का दृढ़ संकल्प करके अपना कार्य आरम्भ करो ।

४—किसी नगर के अड़ोस-पड़ोस में भ्रमण करता हुआ सियार अकस्मात नील के बर्तन में गिर पड़ा और उठने में असमर्थ होकर अपने को मरा हुआ प्रदर्शित कर वहीं ठहर रहा ।

५—शठ की बातें सुनकर ब्राह्मण ने बकरे को जमीन पर रख दिया, उसे [illegible] देखा, फिर अपने कन्धे पर रख लिया और शठ की बातों को सोचता हुआ घर की ओर चल दिया ।

६—उसे दरबार में बुलाकर, उपयुक्त उपहारों से उसका सम्मान कर और उस राजा का सन्देश निवेदन कर मन्त्री द्वारा वह आदरपूर्वक [illegible] दिया गया ।

७—जितनी कन्याओं को उसने अपने योग्य देखा उन सभी का [illegible] (कन्यादर्शम् प्रयोग कीजिए) ।

८—उसने दवाई को चूर-चूर पीसकर उसे घाव पर रखा और [illegible] लिया (चूर्णपेषं पिष्ट्वा) ।

९—उनके स्वामी का वध कर डालने के कारण राजा के अनुयायियों द्वारा पत्थरों से मार डाला गया (पाषाणघातम्) ।

१७३—तुमुनन्त शब्द कर्ता या कर्म के तौर पर प्रयोग में न[illegible] सकता। वाक्य के किसी भी शब्द से इसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। [illegible] अंग्रेजी में नाउन् इनफिनिटिव कर्ता या कर्म के तौर पर आता है, वहाँ स[illegible] में भाववाचक संज्ञा लानी पड़ती है, जैसे, To get up early in t[illegible] morning is wholesome का अनुवाद होगा—प्रातरेव उत्था[illegible] (न कि उत्थातुम्) आरोग्यवहम्। I learn to sing का अनुवाद हो[illegible] अहं गानमधीये।

(क) Seeing (देखना), hearing (सुनना) इत्यादि [illegible] आने वाले इनफिनिटिव् का अनुवाद शत्रन्त और शानजन्त द्वारा होगा, I heard him speak का अनुवाद होगा-भाषमाणं तम[illegible] इसी प्रकार, अधीयानं ददर्श तम्-He saw him study।

१७४—संस्कृत इनफिनिटिव् का वास्तविक अर्थ है किसी [illegible] प्राय या निमित्त दिखलाना। परन्तु कुछ स्थल ऐसे आते हैं जहाँ [illegible] संज्ञा और विशेषण के साथ आता है, जैसे कि अंग्रेजी में, [illegible] to able to go, time to read ऐसे प्रयोगों का [illegible] संस्कृत में कतिपय मुहावरों का प्रयोग होता है [illegible] दिखाये जाते हैं।

१७६—'शक् (सकना), धृष् (धृष्ट होना, हिम्मत करना), ज्ञा (जानना), [illegible] (थक जाना, मुरझा जाना), घट् (प्रयत्न करना), रभ् (आरम्भ [illegible]ना), लभ् (पाना), क्रम् (आरम्भ करना), सह् (सहना), अर्ह्, [illegible]् (होना)—इन धातुओं का प्रयोग होने पर तुमुन् प्रत्यय आता है, जैसे, [illegible]शक्नोमि हृदयमवस्थापयितुम् (उत्तर० ४)—मैं अपने हृदय को थाँम [illegible] सकता। वक्तु मिथ प्राक्रमतैवमेनम् (कुमार० ३।२)—इस प्रकार [illegible] एकान्त में बोलने चला। जानासि देवीं विनोदयितुम् (उत्तर० १)—[illegible]ी का मनोरञ्जन करना जानते हो। अस्ति-भवति-विद्यते-वा भोक्[illegible]न्नम् ([illegible])—खाने को भोजन है। न विषहे विपत्तिमवलोकयितुम् [illegible])—मैं विपत्ति नहीं सहन कर सकता।

१७७—'पर्याप्त समर्थ, योग्य इत्यादि अर्थ रखने वाले शब्दों के साथ [illegible] योग्यता, शक्ति अथवा नैपुण्य या प्रावीण्य अर्थ बोध कराने वाले [illegible] के साथ भी तुमुन् का प्रयोग होता है, जैसे, लिखितमपि ललाटे [illegible] समर्थः (हितो० १)—ललाट (मस्तक) पर लिखे हुए को [illegible] कौन समर्थ है? लोकानलं दग्धुं तत्तप (कुमार० २।५६)—[illegible] लोकों को जला देने के लिये पर्याप्त है। अस्ति मे विभव नर्व

परिज्ञातुम् (विक्रमो० २)—मुझमें सब कुछ जानने की शक्ति है। को हुतवहाद्दग्धुं प्रभविष्यति (शा० ४)—अग्नि के अलावा और कौन ज में समर्थ होगा ? भोक्तुं प्रवीणः कुशलः पटुर्वा (सि० कौ०)—खा निपुण (या खाने के लिये निपुण) ।

१७८—[1]समय, काल, वेला, अवसर इत्यादि कालवाची शब्द साथ समान कर्ता न होने पर भी तुमुनन्त शब्द प्रयोग में आता है, अवसरोऽयमात्मानं प्रकाशयितुम् (शा० १)—अपने आपको प्रक देने का अब यह अवसर है। समयः खलु स्नानभोजने सेवितुम् (वि २)—यह नहाने और खाने का समय है।

नोट—जैसे लैटिन भाषा में है, वैसे ही संस्कृत भाषा में भी कुछ क्रि ऐसी हैं जो स्वरूपतः तो कर्मवाच्य में हैं परन्तु अर्थतः कर्तृवाच्य में हैं शक्, युज्, अर्ह् तथा इनमें प्रत्यय लगाकर बने हुए शब्द, जैसे, न शक्यन्ते दोषा समाधातुम् (हित० ३)—वे दोष ठीक नहीं किये जा सकते। न युक्तम् अशोको वामपादेन ताडयितुम् (मालविका० ३)—अशोक को बाएँ पाँव से मारना उचित नहीं।

१७९—संस्कृत में तुमुन् का कर्मवाच्य में कोई अलग रूप नहीं है एक ही रूप कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य दोनों में प्रयुक्त होता है। तुमुनन्त वाक्यों का कर्मवाच्य बनाने में तुमुनन्त के कर्म या उससे सम्बन्ध रखने शब्द ज्यों का त्यों बना रहता है, जैसे,

करना ठीक न होगा क्योंकि यह प्रयोग भाव में हो जायगा, और भावप्रयोग यहाँ हो नहीं सकता यद्यपि इष् धातु अकर्मक नहीं है।

सेक्शन १७८ के नोट में उल्लिखित धातुओं के योग में दोनों प्रयोग शुद्ध होंगे, पवनमालिंगितु शक्यते अथवा पवन आलिंगितु शक्यते, यद्यपि बादवाला प्रयोग अधिक समीचीन और साहित्यिक जान पड़ता है।

१८०—अर्ह् धातु का प्रयोग विशेष ध्यान देने योग्य है। प्राय यह तुमुनन्त के साथ 'प्रार्थना' वा 'अभ्यर्थना' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अथवा यह उन वाक्यों में प्रयुक्त होता है जहाँ अंग्रेजी में Be Pleased (कृपया), अथवा I Pray (मै प्रार्थना करता हूँ) आते हैं, इस अर्थ में तुमुनन्त मध्यम पुरुष तथा प्रथम पुरुष के साथ आता है, जैसे, न मा परं सम्प्रतिपत्तुमर्हसि (कुमार० ५।३६)—मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मुझे अजनबी (पराया) न समझिये। अवहितस्तावच्छ्रोतुमर्हति कुमार (मुद्रा० ४)—ऐ राजकुमार, कृपया इसे ध्यानपूर्वक सुनिये। प्रिये जानकि, न मामेवंविध परित्यक्तुमर्हसि (उत्तर० ३)—ऐ प्यारी जानकी, कृपया इस प्रकार विपत्ति में पड़े हुए मुझको मत छोड़ो।

१८१—तुमुनन्त शब्द हलन्त मकार से विहीन "काम" और "मन" शब्दो के साथ 'इच्छुक' के अर्थ में, प्रयोग में आता है, और यह प्रकट करता है कि कर्ता धातु द्वारा सूचित कार्य करने का इच्छुक है, जैसे, पुनरपि वक्तुकाम इवार्यो लक्ष्यते (शा० १)—श्रीमान् जी फिर बोलने के इच्छुक जान पड़ते हैं।

४—न शक्यं दैवमन्यथा कर्तुमभियुक्तेनापि। यावत्तु मानुष्यके शक्य
मुपपादयितुं तावत्सर्वमुपपाद्यताम् (कादम्० ६२)।

५—का गणना सचेतनेषु। अपगतचेतनान्यपि सघट्टयितुमलमय मदन
(कादम्० १५)।

६—अचिराधिष्ठितराज्य शत्रु. प्रकृतिष्वरूढमूलत्वात्।
नवसरोहणशिथिलस्तरुरिव सुकर समुद्धर्तुम् ॥ (मालविका० १)।

७—घातयितुमेव नीचः परकार्यं वेत्ति न प्रसाधयितुम्।
पातयितुमेव शक्तिर्नाखोरुद्धर्तुमन्नपिटम् ॥ (पच० १।१५)

८—शब्दादीन्विषयान् भोक्तु चरितुं दुश्चरं तप.।
पर्याप्तोसि प्रजाः पातुमौदासीन्येन वर्तितुम् ॥ (रघु० १०।२५)

९—वृत्तं रामस्य वाल्मीके. कृतिस्तौ किन्नरस्वनौ।
किं तद्येन मनो हर्तुमल स्याता न शृण्वताम्। (रघु० १५।६४)

१०—व्यपदेशमाविलयितुं किमीहसे जनमिम च पातयितुम्।
(शा० ५)

११—व्याल बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते।
छेत्तु वज्रमणीन् शिरीषकुसुमप्रतिन सन्नह्यते।
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षीराम्बुधेरीहते।
नेतुं वांछति य. खलान् पथि सता सूक्तै. सुधास्यन्दिभि।
(भर्तृ० २।६)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

ुदनांधपनिर्दलावस्थोऽप्यल परिरक्षितु

न म्न दना जान्येवाय स्वकार्यमहो भर ॥ । विक्रमो० ५) ।

६—ननोऽप्र किंचिर भवनी दृष्टदर्मा द्विजातिभावादुपपन्नचापल ।

नन जन ।प्रष्टुमनारतपोधने न चेद्रहस्य प्रतिवक्तुमर्हसि ॥ (कुमा र० ५।४०)

—नायमिन मारत्या नुतया योक्तुमर्हसि ।

पत्नोष्या रि पितु कन्या मञ्कर्तुं प्रतिपादिता ॥ (कुमार० ६।७६) ।

—न पृथ जनवच्छुचा वश वशिनामुत्तम गन्तुमर्हसि ।

नानुमता किम न(यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चन, । (रघु० ८।९०) ।

—प्राय तुपरागमानामर्,—

धर्मा नन प्रति यौ च कथैव नास्ति

नादे पृकोदरकिरीटमनोर्दलेन ।

धोऽपि दिग्गुरिमरतचापचत्र

स मिगुराज्यभिपयितु समर्थ ॥ (वेणी० ३) ।

११—गरीबों की तो बात ही क्या है, दुर्भिक्ष में सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करना धनियों के लिये भी मुश्किल हो जाता है।

१२—इसके अपराधों के कारण इस दुष्ट को दण्ड देना उचित है (युज्यते)

१३—इस शुभ अवसर पर सब कैदी छोड़ दिये जायँ।

१४—विपत्तियों से आहत होकर घर में आलसी बन कर बैठे रहने की अपेक्षा अपने आप को संकट में डालना कभी कभी अच्छा होता है।

१५—अलका में, वे विशाल प्रासाद उन भिन्न-भिन्न विशेषों में तुम्हारी तुलना करने के लिये समर्थ हैं (अलम्)।

१६—यह दूसरों का उपकार करने का इच्छुक था, पर अपने मनोरथ को साधने में जरा भी समर्थ नहीं हुआ है।

१७—मैं श्रीमान् से इस प्रार्थना को स्वीकार करने की विनती करता हूँ। इसे सर्वदा कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करना मेरा परम धर्म होगा।

सप्तदश पाठ

काल और वृत्तियाँ

१८७—संस्कृत में काल और वृत्तियाँ सब मिलाकर १० होते हैं—

१—वर्तमानकाल	लट्	Present tense
२—आज्ञा	लोट्	Imperative Mood
३—विधि	विधिलिङ्	Potential Mood
४—अनद्यतनभूत	लङ्	Imperfect Tense
५—परोक्षभूत	लिट्	Perfect Tense
६—सामान्यभूत	लुङ्	Aorist
७—अनद्यतन भविष्य	लुट्	First future
८—सामान्य भविष्य	लृट्	Simple future
९—आशी:	आशीर्लिङ्	Benedictive
१०—क्रियातिपत्ति	[illegible]	

केवल संस्कृत में ही होती हैं। इस पाठ में तथा अगले तीन पाठों में उनके प्रयोग और अर्थ बतलाए गए हैं। इस पाठ में वर्तमान, आज्ञा और आशीर्लिङ् का निरूपण किया गया है।

वर्तमान काल

१८५—वर्तमान काल का प्रयोग वर्तमान समय में होने वाले कार्य, अथवा वर्तमान समय में अस्तित्व रखने वाली किसी वस्तु स्थिति का बोध कराने के लिए किया जाता है, जैसे, जगतः पितरौ वन्दे (रघु० १।१)—मैं विश्व के माता-पिता की वन्दना करता हूँ।

विशेष—वस्तुतः, संस्कृत का वर्तमानकाल प्रगतिशील वर्तमान अर्थात् उत्तरोत्तर होते चलने वाले वर्तमान या अपूर्ण वर्तमानरूप का बोधक होता है जो किसी प्रारम्भ किए हुए कार्य का जारी होना सूचित करता है। पतञ्जलि ने लिखा है, प्रवृत्तस्याविरामे शासितव्या भवती—जिसका अर्थ यह है कि वर्तमानकालिक क्रिया द्वारा सूचित कार्य अभी चल रहा है और अभी बन्द नहीं हुआ है, जैसे, वहति जलमियम्, पिनष्टि गन्धानियम् (मुद्रा०१)—यह स्त्री जल लाती है (ला रही है), यह (दूसरी) सुगन्धित द्रव्य (पदार्थों) को पीसती है (पीस रही है)। एतास्तपस्विकन्यका इत एवाभिवर्तन्ते (शा० १)—ये तापस-कन्याएँ इसी तरफ आती हैं (आ रही हैं)। इस जारी रहने वाले कार्य का बोध कराने के लिए संस्कृत में कोई अलग रूप नहीं है।

वर्तमान काल द्वारा बताई जाती है, जैसे, सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् (भर्तृ० २३)—बताइए, सत्संगति क्या नहीं कर देती। अस्त्युत्तरस्यां दिशि हिमालयो नाम नगाधिराजः (कुमार० १।१)—उत्तर दिशा में पर्वताधिपति हिमालय है। नास्ति जीवितादन्यदभिमततरमिह सर्वजन्तूनाम् (कादम० ३५)। ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति (उत्तर०१)। न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते (मालती १)।

१८६—उपरोक्त साधारण अर्थों के अतिरिक्त संस्कृत का वर्तमानकाल, निम्नलिखित अर्थों का बोध कराने में प्रयुक्त होता है—

(क) कभी कभी यह तात्कालिक भविष्य (Immediate Future) के अर्थ का बोध कराता है, जैसे, अयमहमागच्छामि (शा०३)—यह, मैं आता हूँ (आऊँगा)। कदा गमिष्यसि, एष गच्छामि (सि० कौ०)। नन्वयं न भवामि (मालती० ५)।

(ख) जब कोई कार्य अभी ही हो चुका रहता है, तो हाल के (आसन्न) हुए कार्य का बोध कराने के लिए वर्तमानकाल का प्रयोग होता है, जैसे, कदा त्वं नगरादागतोऽसि—अयमागच्छामि (सि०कौ०) तुम गाँव से कब आए हो? —मैं आता हूँ (अर्थात् मैं अभी आया हूँ)।

१८७—हेतुसूचक या दशासूचक (Conditional) वाक्यों में भविष्य का बोध कराने के लिए कभी-कभी वर्तमानकाल का प्रयोग होता है, जैसे, योऽन्नं ददाति (दाता दास्यति वा), स स्वर्गं याति (याता यास्यति वा (सि० कौ०)—जो अन्न देता है (देगा), वह स्वर्ग जाता है (जायगा)।

१८८—वर्तमान के साथ जब स्म जोड़ दिया जाता है, तब वह भूतकाल का अर्थ देता है, जैसे, कस्मिंश्चिद् वने भासुरको नाम सिंहः प्रतिवसति स्म (पंच० १।८)—जंगल में भासुरक नामक एक सिंह रहता था। क्रीणाति स्म प्राणमूल्यैर्यशांसि (शिशु० १७।१५)—अपने प्राण देकर उन लोगों ने यश खरीदा।

१८९—प्रश्नवाचक शब्दों के साथ इच्छा के संदर्भ में वर्तमानकाल प्रायः भविष्य का अर्थ सूचित करता है, जैसे, किं करोमि क्व गच्छामि (उत्तर० १)—क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? क्व भोजयसि (सि० कौ०), इसी प्रकार, किं गच्छामि तपोवनम् (मुद्रा० ६)।

(क) जब किसी प्रश्न का उत्तर देना होता है, तब वर्तमानकाल ननु के साथ भूतकाल के अर्थ में प्रयुक्त होता है, जैसे कटमकार्षीः किम्—ननु करोमि भोः (सि० कौ०)।

१९०[१]—क्रियाविशेषण पुरा और यावत् के साथ वर्तमानकाल निश्चयात्मक भविष्य का अर्थ देता है, जैसे, आलोके ते निपतति पुरा (मेघ० ८८)—अवश्य ही (निश्चय ही) तुम्हारी आँखों के विषय में पड़ेगा अर्थात् अवश्य ही तुम्हें दिखाई पड़ेगा। यावदस्य दुरात्मनः समुन्मूलनाय शत्रुघ्नं प्रेषयामि (उत्तर० १)—इस शठ का नाश करने के लिए मैं अवश्य ही (निश्चय) शत्रुघ्न को भेजूँगा।

विशेष—निश्चयात्मकता का बोध अनिवार्य नहीं है।

आज्ञा (लोट्)

रे पुरवासियो, सुनते जाओ। परित्रायध्वम्, परित्रायध्वम्—बचाओ, बचाओ। हा प्रियसखि, कासि, देहि मे प्रतिवचनम् (उत्तर०)—हाय मेरी प्यारी, कहाँ हो। उत्तर दो। तृष्णां छिन्धि, भज क्षमा, जहि मदम् (भर्तृ० २)—लालच छोड़ो, क्षमा धारण करो, घमण्ड त्यागो।

(क) जब बड़ी विनम्रतापूर्वक कोई बात कहनी होती है तो आज्ञा के कर्मवाच्य का रूप प्रयोग में आता है, जैसे, एतदासनमास्यताम् (विक्रमो० २) —यह आसन है, कृपया बैठ जाइये।

१६२—आज्ञा के प्रथम पुरुष (अन्य पुरुष) और मध्यम पुरुष का रूप बहुधा आशीर्वाद का बोध कराने के काम में आता है, जैसे, प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीश (शा० १)—इन आठ प्रत्यक्ष रूपों से युक्त शिव भगवान् तुम्हारी रक्षा करें। पर्जन्यः कालवर्षी भवतु जनमनोनन्दिनो वान्तु वाता (मृच्छ० १०)—भगवान करे, समय पर मेघ बरसें, लोगों के मन को अच्छी लगने वाली हवायें बहें। पुत्रमेवंगुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि (शा० १)—भगवान करे, तुम इन गुणों से युक्त चक्रवर्ती पुत्र पाओ। पुत्र लभस्वात्मगुणानुरूपम् (रघु० ५।३४)—भगवान् करे, तुम अपने ही अनुरूप पुत्र पाओ। तात मे चिरञ्जीव (उत्तर० ४)। इत्यादि।

विशेष—संस्कृत से उत्पन्न मराठी आदि भाषाओं की आज्ञा Imperative mood से उक्त प्रयोग मिलता-जुलता है। जैसे, 'हा गृहस्थ [illegible] खातों', 'बोल-बोल बोलतो'; 'पतोजी नें मुलाना मार-मार मारिले।'

(क) इसी प्रकार जब एक ही व्यक्ति द्वारा कई कार्य किये जाते हुए दरशाये जाते हैं, तब आज्ञा का प्रयोग होता है (दोहरा प्रयोग नहीं), जैसे सक्तून् पिब, धाना. खादेत्यभ्यवहरति (सि० कौ०)—भूना हुआ दाना चबाता हुआ, जौ खाता हुआ वह भोजन करता है।

मराठी भाषा के निम्न वाक्यों की तुलना करो—शेंगा खा, दाणे चाव, पाणी पी, अशारीतीनें हा सकालीं चरत असतो, कुठें भाकरी [illegible], [illegible] फोड, फुलेंच तोड, फायाच मोड, असा त्या दुष्टाने बागेचा [illegible] नाश [illegible] सोडिलो।

आशीर्लिङ्

१६५—आशीर्लिङ् (भूयात्—भविषीष्ट) हमेशा आशीर्वाद देने में आता है और उत्तम पुरुष में वक्ता की इच्छा प्रकट करता है, जैसे, [illegible] [illegible]न्द्राशास्महे, केवल वीरप्रसवा भूया (उत्तर० १)—तो हम लोग और क्या आशा करें? ईश्वर करे तुम वीर पुत्र पैदा करो। विधेयासुर्देवा परम रमणीया परिणतिम (मालती० ६)—देवता लोग अन्त को रमणीक [illegible] कृतार्था भूयासम् (मालती०)—ईश्वर [illegible] इच्छा [illegible]

४—तारापीडो देवीमवदत्। अफलमिवाखिलं पश्यामि जीवितं राज्यं च।
अप्रतिविधेये धातरि किं करोमि। तन्मुच्यतां, देवि, शोकानुबन्धः।
आधीयतां धैर्ये च धर्मे च धीः (कादम्० ६५)।

५—शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नी-जने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥ (शा० ४)।

६—पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥ (शा० ४)।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

संस्कृत में अनुवाद कीजिये—

१—वृक्ष पर चढ़कर साँप कौओं के बच्चों को खा जाता था।

२—अपना धनुष चढ़ा कर अर्जुन कर्ण से कहते हैं, "क्या अब तुम मुझसे लड़ने को तैयार हो।"

३—दो पक्षियों द्वारा कन्धों पर एक कच्छप ढोया जा रहा है।

४—तुम मुझे यहाँ क्यों छोड़ते हो? मैं क्या करूँगी? मैं किसकी शरण में जाऊँगी?

५—इस वृक्ष की छाया के नीचे बैठा हुआ मैं उस स्त्री की प्रतीक्षा करूँगा (यावत् का प्रयोग कीजिये)।

६—मैं अभी एक लम्बी यात्रा से लौटा हूँ, क्या तुम मुझे इतनी जल्दी [illegible] करने के लिये कहते हो।

७—भगवान् करे, तुम दोनों अपने सद्‌गुणों के अनुरूप पुत्र पाओ।

८—माता पिता की आज्ञा मानो, विद्वानों का आदर करो, दूसरों की निन्दा में एक शब्द भी न बोलो, और अपनी स्थिति से सन्तुष्ट रहो।

९—ईश्वर करे गाएँ खूब दूध दें, समय पर जल बरसाने वाले बादलों के कारण पृथ्वी सब प्रकार के धान्य से पूर्ण होवे।

१०—उसके राज्य की वास्तविक दशा का पता लगाने के लिये [illegible] गुप्तचर उसके राज्य भर में भेजे जावें।

११—घरों को तहस-नहस करता हुआ, निवासियों को [illegible] हुआ और उनकी सम्पत्ति को जलाता हुआ, वह [illegible] करने लगा।

———

कौन इस बात की सम्भावना कर सकता था कि मौर्यराज गहने बेच डालेगा। जेतार कार्तिकेयस्य विजयेय (महावीर० ३)—क्या मैं कार्तिकेय के जीतने वाले को जीत लूँगा? मनसिजतरुः कुर्यान्मा फलस्य रसज्ञाम् (मालविका० ४)—कामदेव-वृक्ष मुझे अपने फल का स्वाद चखावे। कुर्यां हरस्यापि पिनाकपाणेर्धैर्यच्युतिम् (कुमार० ३।१०)—मैं पिनाकपाणि महादेव जी का भी धैर्य छुड़ा सकता हूँ। भो भोजन लभेय (सि० कौ०)—प्रार्थना करता हूँ, चाहता हूँ कि भोजन पा जाऊँ।

(क) विधिलिङ् अधिकतर इन बातों का बोध कराने के लिए प्रयुक्त होता है— आज्ञा देने में, उपदेश अथवा पथप्रदर्शनार्थक नियमों के विधान में, धर्म अथवा कर्तव्य का भार दिखलाने में, जैसे, ऊनद्विवर्षं निखनेत् (याज्ञ० ३।) —दो वर्ष से कम उम्र वाले बच्चे को गाड़ देना चाहिए। आपदर्थं धनं रक्षेत् (चाण० २६)—विपत्ति के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए। सहसा विदधीत न क्रियाम् (किरात० २।३०)—एकाएक (बिना सोचे विचारे) कार्य नहीं कर बैठना चाहिए।

विशेष—विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्।

१९९—जब योग्यता दिखाना अभीष्ट होता है तब कृत्यप्रत्यय (तव्य, अनीयर् यत्, एयत्) अथवा विधिलिङ् प्रयुक्त होता है और कभी कभी सामान्य भृत, जैसे, त्वं कन्यां वहेः, त्वं कन्याया वोढा, अथवा त्वया कन्या वोढव्या (सि० कौ०)—तुम कन्या को व्याहने योग्य हो।

(क) जब क्षमता दिखलानी होती है तब विधिलिङ् अथवा कृत्य प्रत्यय (तव्य, अनीय, यत्, एयत्) प्रयुक्त हो सकते हैं, जैसे, भारं त्वं वहेः अथवा भारस्त्वया वोढव्यः (सि० कौ०)—तुम बोझा ढोने में समर्थ हो।

(२००)[१]—किम्, कतर, इत्यादि प्रश्नवाचक शब्दों के साथ विधिलिङ् अथवा सामान्यभविष्यत् निन्दा दिखलाने में प्रयुक्त होता है जैसे, कतरो वा हरिं निन्देत् निन्दिष्यति वा—कौन हरि की निन्दा करेगा?

(क)[१] जब आश्चर्य दिखलाना होता है और "यदि" शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता तब विधिलिङ् की अपेक्षा सामान्यभविष्यत् का प्रयोग अधिक होता है, जैसे, आश्चर्यमन्धो नाम कृष्णं द्रक्ष्यति (सि० कौ०)—आश्चर्य है कि अन्धा भी कृष्ण को देख ले। परन्तु जब "यदि" शब्द का प्रयोग होता तब तो विधिलिङ् ही आवेगा, जैसे, आश्चर्यं यदि सोऽधीयीत—यदि वह पढ़े तो आश्चर्य है।

२०२—आश्रित वाक्यों में प्रायः परिणाम अथवा अभिप्राय का बोध कराने के लिए विधिलिङ् का प्रयोग होता है, जैसे, दोष तु मे कश्चित् कथय येन स प्रतिविधीयेत (उत्तर० १)—मेरा कोई दोष बतलाओ ताकि वह सुधारा जाय।

२०३[१]—जहाँ आशा प्रकट की जाती है, पर कच्चित् शब्द द्वारा नहीं, वहाँ विधिलिङ् का प्रयोग होता है, जैसे, कामो मे भुञ्जीत भवान्—यह मेरी आशा है कि आप खायेंगे। परन्तु जब कच्चित् का प्रयोग होगा तब वाक्य इस प्रकार होगा—कच्चिज्जीवति—आशा करता हूँ कि वह जिन्दा है। कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति (मेघ० ८८)—ऐ रसिके, आशा करता हूँ कि तुम अपने स्वामी को याद करती हो क्योंकि तुम उनकी बड़ी प्यारी हो।

(क[२]) 'यद्' शब्द का प्रयोग किए बिना यदि सम्भावय्, अपि, अपि नाम शब्दों द्वारा आशा का बोध कराना होता है तो विधिलिङ् अथवा सामान्यभविष्य का प्रयोग होता है, जैसे, सम्भावयामि भुञ्जीत भोक्ष्यते वा भवान् (सि० कौ०)—आशा करता हूँ कि आप भोजन करेंगे। अपि नाम भगवतीनीतिर्विजेष्यते (मालती०७)—चाहता हूँ कि श्रीमती जी की नीति सफल होवे। अपि जीवेत् स ब्राह्मण-शिशुः (उत्तर० २)—क्या आशा है कि ब्राह्मणबालक जीवित हो जायगा। परन्तु जब यद् शब्द का प्रयोग होता है तो इस प्रकार का वाक्य बनता है—सम्भावयामि यद् भुञ्जीथास्त्वम्।

(ग)

२०५—जिन वाक्य में एक कार्य का होना दूसरे कार्य पर आश्रित दरशाया जाता है उसे हेतुबोधक या समयुक्त या सोपाधिक (Conditional) वाक्य कहते हैं। ऐसे सोपाधिक वाक्यों में पूर्वगामी उपवाक्य (antecedentl) तथा अनुवर्ती या आनुषगिक उपवाक्य (Consequent) दोनों में विधिलिङ् का प्रयोग होता है। पूर्वगामी उपवाक्य (Conditional) में हेतु का उल्लेख रहता है और आनुषगिक उपवाक्य (Consequent) में फल का निर्देश रहता है। "अगर" के स्थान पर "यदि" या "चेत्" का प्रयोग किया जाता है, जैसे, यद्यत्र तात सन्निहितो भवेत् तत किं भवेत् (शा० १)—यदि आज पिता जी यहाँ होते तो क्या होता? दैवात् पश्येर्जगति विचरन्निच्छया मत्प्रिया चेद्, आश्वास्यादौ तदनु कथये माधवीयामवस्थाम् (मालती० ६)—संसार भर में स्वेच्छानुसार घूमते घामते यदि तुम मेरी प्यारी को देखना तो पहिले आश्वासन देना, तब फिर माधव की अवस्था का वर्णन करना। कृत्य घटेत सुहृदो यदि तत्कृत स्यात्।

विशेष—ध्यान दीजिएगा कि "चेत्" कभी भी वाक्य के आरम्भ में नहीं प्रयुक्त होता।

भवेत् (कादम्० १६)—यदि उसकी मृत्यु हो जाय तो वह भी एक बड़ा पाप होगा। इसी प्रकार, क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ (भवेत्,)—(रघु० ८ । ८७) ।

(ख) जब आदरपूर्वक या विनम्रतापूर्वक बोलना होता है तो आनुषंगिक वाक्य (Consequent) में विधिलिङ् के स्थान पर आज्ञा का प्रयोग होता है, जैसे, न चेदन्यकार्यातिपातो गृह्यतामातिथेयसत्कार (शा० १)—यदि ऐसा करने से किसी दूसरे कार्य में क्षति न पहुँचे तो कृपया आतिथ्य सत्कार स्वीकृत कर लीजिए ।

(ग) जब समययुक्त अथवा सोपाधिक (Conditional) उपवाक्य बिल्कुल स्वीकारसूचक (Affirmative) तथा निश्चयात्मक होते हैं अथवा जब पूर्वगामी उपवाक्य तथा आनुषंगिक उपवाक्य दोनों ही में किन्हीं वास्तविक वस्तुस्थितियों का उल्लेख रहता है तो विधिलिङ् का प्रयोग न होकर वर्तमानकाल का ही प्रयोग होता है, जैसे, यदि बरसेगा तो हम लोग बाहर नहीं जा सकेंगे।—यदि देवः वर्षति तर्हि वयं बहिर्गन्तुं न शक्नुमः । यहाँ पर देवो वर्षेत नहीं होगा।

अभ्यास

६—परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्॥ (चाण० १८)।

७—अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेदवक्षयात्।
रक्षितं वर्द्धयेत्सम्यग् वृद्धं तीर्थेषु निक्षिपेत्। (हित० २)।

८—उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥
(श्रीमद्० ३।२४)

९—भवेदभीष्ममद्रोणं धृतराष्ट्रबलं कथम्।
यदि तत्तुल्यकर्मात्र भवान् धुर्यो न युज्यते॥ (वेणी० ३)।

१०—सान्त्वो देया निवेद्यास्तु येन रावणरक्षयम्।
सम्पन्नाः साधिजीयास्म संग्रामे च गृभीमहि॥ (भट्टि० १९।२)।

११—आनीय मार्गाणि तत्र पान्थानि सत्वरा।
उद्धुनीयात सनतून् निर्गतामयचन्दनम्॥ (भट्टि० ४)।

१२—नावपत्स्यामहे ग्लायेयत्कार्येषु भवानपि।
न च सज्जनवचनात्तु प्रमुह्येत पण्डितो जनः॥ (भट्टि० १९।१७)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

५—किं वा तवात्यन्तवियोगमोघे कुर्यामुपेक्षां हतजीवितेऽस्मिन् ।
स्याद्रक्षणीयं यदि मे न तेजस्त्वदीयमन्तर्गतमन्तरायः ॥ (रघु० १४।६५)।

६—प्रसह्य मणिमुद्धरेत् मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्
समुद्रमपि संतरेत् प्रचलदूर्मिमालाकुलम् ।
भुजगमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद् धारयेत्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ (भर्तृ० २।४)।

७—अप्राज्ञेन च कातरेण च गुणः स्याद्भक्तियुक्तेन कः
प्रज्ञाविक्रमशालिनोऽपि हि भवेत् किं भक्तिहीनात् फलम् ।
प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भूतये
ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे संपत्सु चापत्सु च ॥ (मुद्रा० १)।

८—स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।
विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेद् अमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥ (रघु० ८।४६)।

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—अपना अभीष्ट मनोरथ किस प्रकार सिद्ध करूँ—यह सोचते ही
सारी रात बीत गई ।

२—इस महान् शोकसागर में निमग्न वह सम्भवतः किस प्रकार जीते
होंगे ।

८—लोभी आदमी को द्रव्य देकर तथा मूर्ख को उसकी मर्ज़ी के अनुसार आचरण करके वश में करना चाहिए।

९—सूर्य के अतिरिक्त और कौन आकाश के नैशान्धकारमालिन्य को दूर कर सकता है।

१०—यदि गरुड़ भी मुझसे पहिले रवाना हुए हों तो रथ के इस वेग से मैं उन्हें भी पकड़ लूं (पकड़ सकता हूं)।

११—चाहता हूं कि दुष्ट चाणक्य नन्दवंश के पक्ष में चला आवे।

१२—आशा करता हूं (कच्चित्) कि आप की तपस्या निर्विघ्न चल रही है।

ऊनविंश पाठ

लङ्, लिट् तथा लुङ्

अनद्यतनभूत, परोक्षभूत तथा सामान्यभूत

२०७—संस्कृत में अतीत समय का बोध कराने के लिए तीन लकार होते हैं—(१) अनद्यतनभूत (लङ्) (२) परोक्षभूत (लिट्) (३) सामान्यभूत (लुङ्)। प्रारम्भ में प्रत्येक का पृथक् अर्थ था। प्राचीन ग्रन्थों में, अर्थात् जब संस्कृत बोलचाल की भाषा थी उस ज़माने में लिखे हुए ग्रन्थों में ये तीनों लकार अपने ठीक-ठीक अर्थ में प्रयुक्त होते थे। परन्तु आगे चलकर, जब संस्कृत बोलचाल की भाषा न रह गई, तब ग्रन्थकार इन तीनों कालों का मनमाना प्रयोग करने लगे। जिन अर्थों में ये तीनों लकार मौलिक रूप में प्रयुक्त होते थे वे ये हैं—

प्रयुक्त होते हैं। सामान्यभूत आसन्न (हाल के) भूतकालिक कार्यों में आये हुए वार्तालापों में प्रयुक्त होता है, परन्तु निश्चयपूर्वक उल्लिखित भूतकाल का बोध कराने के लिए अथवा घटनाओं का वर्णन करने के लिए यह कदापि प्रयुक्त नहीं होता। इस प्रकार, सारे पुरुषसूक्त (ऋग्वेद १०।९०) में केवल अनद्यतनभूत तथा परोक्षभूत का ही प्रयोग हुआ है और वहाँ उल्लिखित घटनाएँ अतीत काल से सम्बन्ध रखती हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में आसन्न (हाल के) कार्य सामान्यभूत द्वारा दिखलाए गए हैं, जैसे, स भूमिं विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्, गावो ह जज्ञिरे तस्मात् इत्यादि। अजनि ते वै पुत्रा यजन्त मामनेनेत। परन्तु बाद के संस्कृत-लेखकों ने अनद्यतनभूत, परोक्षभूत तथा सामान्यभूत के इस अन्तर की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया और किसी भी अतीत कार्य का बोध कराने के लिए तीनों का मनमाना प्रयोग किया चाहे वह अतीत कार्य हाल का हो, चाहे सुदूर का हो, चाहे वक्ता द्वारा देखा गया हो या न देखा गया हो जैसे, जगाद विनयेन वचनानि निश्चलपक्ष्म लोचन सर्वभाव तानाभिनयम् (कादम्ब० १८६)।

कलिंग देश में रहे थे ? नाहं कलिगान् जगाम (सि० कौ०)—मैं कलिंग देश नहीं गया था।

२१०[1]—सामान्यभूत (लुङ्)—हाल के अतीत काल अथवा अनिश्चित अतीतकाल का बोध कराने के अतिरिक्त सामान्यभूत नैरन्तर्य (Continuousness) का भी बोध कराता है। इस अर्थ में अनद्यतनभूत कदापि नहीं आ सकता, जैसे, ब्राह्मणेभ्यो यावज्जीवमन्नमदात् (न कि अददात्)—उसने जिन्दगी भर ब्राह्मणों को भोजन दिया अर्थात् भोजन देना जिन्दगी भर जारी रक्खा।

(क) 'स्म' से अ-संयुक्त पुरा के योग में अनद्यतन भूत, परोक्षभूत, अथवा वर्तमान कोई भी प्रयोग में आ सकता है, जैसे, वसतीह पुरा छात्रा अत्रावसन्, ऊषुः वा—यहाँ पहिले विद्यार्थी रहते थे। परन्तु पुरास्म के साथ केवल वर्तमान आता है, जैसे, यजति स्म पुरा—वह प्राचीन काल में यज्ञ करता था।

२११—मा या मास्म के अनन्तर सामान्यभूत का "अ" लुप्त हो जाता है। जब सामान्यभूत मध्यम पुरुष अपने "अ" को लोप कर "मा" के साथ आता है तो आज्ञा का अर्थ देता है, जैसे, वयस्य, मा कातरो भूः (मालवि०) —मित्र, डरो मत। भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः (शा० ४)—अपमानित होने पर भी क्रोध के कारण पति के विरुद्ध आचरण मत करना।

२—नरपतिराहारं निर्वर्त्य आस्थानमण्डपमयासीत्।
तत्र चावनिपतिभिरमात्यैर्मित्रैश्च सह तास्ताः कथाः कुर्वन् मुहूर्त-मिवासाञ्चक्रे। (कादम्॰ १७)।
३—पुत्रनाम्नोऽपि महान्तं कालं स राज्यभारमनायासेनैव प्रज्ञाबलेन बभार। अनेन राजा सर्वकार्याण्यकार्षीत्तद्वदसावपि द्विगुणित-प्रजानुरागञ्चकार। (कादम्॰ ५८)।
४—आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां
ये व्याहारास्तेषु मा संशयो भूत्। (उत्तर॰ ४)।
५—जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुरः।
अगृध्नुराददे सोऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत्॥ (रघु॰ १।२१)।
६—अधिगतपरमार्थान् पण्डितान् मावमंस्था-
स्तृणमिव लघुलक्ष्मी नैव तान् संरुणद्धि। (भर्तृ॰ २।१७)।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

२—इस विषय में चिन्तित न होओ, तुम्हारी अनुपस्थिति में मेरे मित्र [illegible] तुम्हारे पुत्र की देख-रेख रक्खेंगे।

३—कभी धर्मशास्त्रविषयक बातें करते हुए, कभी चित्र खींचने में संलग्न होकर, उसने सारा दिन अपने मित्रों की मण्डली में बिता दिया।

४—तुमने मेरी पुस्तक क्यों खराब करदी? नहीं, महाशय जी, मैंने उसे देखा तक नहीं।

५—जब मैं उनसे मिलने गया तो मैंने उन्हें घर पर नहीं पाया।

६—मेरे पिता जी ने पूर्वजों की सारी सम्पत्ति बाँट दी है, ताकि हम लोग बाद में एक दूसरे से झगड़ा न करें।

७—सभी आश्रमों के चारों ओर राजा ने अपने रक्षकों को स्थापित कर दिया है ताकि ऋषि लोगों की तपस्या में कोई बाधा न पड़े।

८—मैं यह देखकर प्रसन्न हूँ कि गरीबों की दशा सुधारने में तुम्हारे [illegible] सफलीभूत हुए।

९—वादी के सारे गवाह आ गए हैं, अत अब मुकद्दमे की सुनवाई आरम्भ होनी चाहिए।

१०—कई वर्षों तक आखेट करने में अपना जीवन बिताकर, [illegible] अकस्मात् एक विकराल व्याघ्र के मुख में जा गिरा।

———

विंशतितम पाठ

दोनों भविष्य काल तथा क्रियातिपत्ति

२१२—संस्कृत में भविष्यकालिक क्रिया का बोध कराने के लिए दो भिन्न-भिन्न लकार हैं—(१) अनद्यतन भविष्य (लुट्) और (२) सामान्य भविष्य (लृट्)। दोनों में वही अन्तर है जो अनद्यतन भूत और सामान्य भूत में, सिवा इसके कि अनद्यतन भूत और सामान्य भूत भूतकाल से सम्बन्ध रखते हैं और अनद्यतन भविष्य और सामान्य भविष्य भविष्यकाल से सम्बन्ध रखते हैं, अर्थात् लुट् लकार (अनद्यतन भविष्य) ऐसी क्रिया का बोध कराता है जो आज न होगी, और लृट् लकार (सामान्य भविष्य) साधारणतया सभी प्रकार की भविष्य क्रियाओं का—आज में भी होने वाली भविष्य क्रियाओं का—बोध कराता है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकला कि अनद्यतन भविष्य आज न होने वाली किसी दूरवर्ती भविष्यत्कालिक क्रिया का बोध कराता है। सामान्य भविष्य अनिश्चित भविष्य काल, आज का भविष्य काल, कल का भविष्य काल और निकटवर्ती भविष्य काल—का बोध कराने में प्रयुक्त होता है, जैसे पञ्चषैरहोभिर्वयमेव तत्र गन्तारः (कुमा० ४)—हम लोग स्वयं ही पाँच छः दिनों में वहाँ जायेंगे। एते [illegible]नृत्तितार

२१३—जब किसी भविष्य क्रिया की अत्यन्त घनिष्ठ समीपता दिखानी होती है, तो वर्तमान अथवा भविष्य कोई भी प्रयोग मे लाया जा सकता है, जैसे, कदा गमिष्यसि—एष गच्छामि गमिष्यामि वा (सि० कौ०)—कब जाओगे? अभी जाऊँगा।

२१४—जब समययुक्त (conditional) वाक्य में आशा प्रगट की जाती है, तब भविष्य काल का बोध कराने के लिए सामान्य भूत, वर्तमानकाल, या सामान्य भविष्य कोई भी प्रयोग मे लाया जा सकता है, जैसे, देवश्चेदवर्षीत्, वर्षति, वर्षिष्यति वा धान्यमवाप्स्म वपामो वप्स्यामो वा (सि० कौ०)—यदि वर्षा होगी तो नाज बोवेंगे।

२१५—कभी-कभी जब किसी से कोई कार्य करने के लिए विनम्रता पूर्वक कहा जाता है, तब लोट् के अर्थ में सामान्य भविष्य प्रयोग में आता है, जैसे, तदा मम पाशांश्छेत्स्यसि (हित० १)—बाद में मेरा जाल काट देना। पश्चात् मम प्रतिगमिष्यति मानसं तत् (विक्रमो० ४)।

का परिणाम दिया होगा, जैसे, यदि वह यहाँ होता तो वीरतापूर्वक अपने देश की रक्षा करता—यदि सोऽत्र सन्निहितो भवेत्तर्हि स्वदेशं वीरवद् रक्षेत्

कालों तथा वृत्तियों के प्रयोग पर कुछ और विचार

[illegible]८७—वर्तमान, भूत तथा भविष्य के भिन्न-भिन्न रूपों के विवरण तथा उनकी जटिलताएँ संस्कृत में नहीं मिलतीं। एक प्रधान काल होता है और भिन्न-भिन्न रूप उसी काल द्वारा प्रकट किए जाते हैं। इसी लिए संस्कृत के विद्यार्थियों को इन कालों के भिन्न-भिन्न रूपों का ठीक उन्हीं के समकक्ष संस्कृत लकारों द्वारा अनुवाद करने में बड़ी कठिनता पड़ती है। निम्नलिखित अवतरणों में इस विषय पर कुछ विचार दिए जाते हैं और पूर्वगामी तीन पाठों में जो कुछ लिखा गया है, इनमें उसी का अधिक विस्तार के साथ निरूपण किया गया है।

वर्तमान, भूत तथा भविष्य

समय लड़के खेल रहे हैं" का अनुवाद "बालका अधुना क्रीडन्ति" होगा। "सूर्य चमक रहा था" का अनुवाद "रविरतपत्" होगा (न कि तपन्नासीत्)। "वह पाठ तैयार करता रहेगा" का अनुवाद "स पाठमभ्यंस्यते" होगा।

विशेष—सेक्शन १४५ में जैसा नियमित सातत्य (regular Continuity) बताया गया है, वैसा नियमित क्रिया-सातत्य जहाँ प्रकट करना अभीष्ट होता है, वहाँ आसधातु में शानच् जोड़ कर काम चलाते हैं। [illegible] सातत्यबोधक रूप (Continuous forms) आश्रित वाक्यों में आते हैं, तब शत्रन्त तथा शानजन्त की भाव-सप्तमी का रूप बड़े मजे में प्रयोग में लाया जा सकता है। "जब मन्त्री बोल रहा था, उस समय सभा में एक दूत ने प्रवेश किया" का अनुवाद "भाषमाणेऽमात्ये कश्चिद् दूत सभां प्राविशत्" होगा।

२२०—बलबोधक रूपों (EmPhatic forms) का अनुवाद [illegible] नूनम्, खलु अथवा ऐसे ही किसी निश्चयबोधक शब्द का साधारण [illegible] साथ जोड़कर कर सकते हैं, जैसे, "मैं तुझे अपराधी समझता तो हूँ" का अनुवाद "अहं त्वामपराधिनं मन्ये खलु-एव" अथवा "नूनमहं त्वामपराधिनम्मन्ये", "उसने असत्य भाषण तो किया" का अनुवाद "[illegible] एव-खलु" होगा।

पूर्ण तथा उसके सातत्य-बोधक रूप

Perfect and its Continuous Forms

२२२—आश्रित वाक्यों में आने वाले पूर्ण भूत भाव-सप्तमी द्वारा प्रकट किए जाते हैं, जैसे, "जब वह विदा हो गया, तब मैं लौटा" का अनुवाद 'तस्मिन्नपक्रान्तेऽहं प्रत्यागच्छम्' होगा। "जब मैं अपना पाठ पढ़ चुका, तब पाठशाला गया" का अनुवाद 'पाठानधीत्य शालामगच्छम्' होगा। कभी-कभी केवल क्त और क्तवतु द्वारा अनुवाद होता है, जैसे, 'ऐसा कह चुकने वाले से मैंने कहा—अब जाओ'—'इत्युक्तवन्तं व्रज साधयेत्यहमब्रुवम्।' 'जो क्षत हो चुका था, उसको उसने अच्छा कर दिया'—'क्षतं तमचिकित्सत'।

२२३—धातु में क्त और क्तवतु लगाकर भू धातु के विधिलिङ् के रूप लगा अथवा कर्म वाच्य या भाव वाच्य द्वारा पूर्ण भविष्य प्रकट किया जा सकता है। 'वह वहाँ अब तक चला गया होगा'—अनेन समयेन स तत्र गतो भवेत् अथवा तेन तत्र गन्तव्यम्।

will and shall

गा, गी, गे

२२६—साधारण भविष्यकाल का बोध कराने वाला उत्तम पुरुष के साथ Shall (गा) तथा मध्यम और प्रथम पुरुष के साथ will सामान्य भविष्य अथवा विधिलिङ् द्वारा अनुवादित किया जा सकता है, जैसे, मैं इसे करूँगा—अहं तत् कुर्याम् अथवा करिष्यामि। वह वहाँ जायगा—स तत्र गच्छेत् अथवा गमिष्यति।

२२७—दृढ संकल्प अथवा इच्छा का बोध कराने वाला will उत्तम पुरुष के साथ आने पर इच्छार्थक धातुओं के वर्तमान काल द्वारा अथवा एव या इसी प्रकार के निश्चय-बोधक शब्दों को सामान्य भविष्य के रूपों के साथ लगा कर अनूदित किया जा सकता है, जैसे, I will do it—अहं तत्कर्तुमिच्छामि अथवा अहं तत्करिष्याम्येव। Even if death be the result I will do it—यद्यपि तत् मृत्युपर्यन्तमपि भवेत्, तथाप्यहं तत्करिष्याम्येव।

त्वया स नैव हन्तव्य, Thou shalt not move even a step from this place—त्वयास्मात्स्थानात् पदात् पदमपि न दातव्यम् (२) जब Shall से प्रतिज्ञा का बोध होता है, तब किसी निश्चय-बोधक शब्द के साथ विधिलिङ् अथवा सामान्य भविष्य का रूप रखकर अनुवाद किया जा सकता है, जैसे, He shall be my prime minister—स मम प्रधानसचिवो भवेत् (भविष्यति) इत्यहं निश्चयेन कथयामि अथवा तं प्रधानसचिवं करिष्याम्येव।

२२९—अप्रत्यक्ष कथन (Indirect Speech) में आया हुआ shall सभी पुरुषों के साथ साधारण भविष्य काल का बोध कराता है और सामान्य भविष्य अथवा विधिलिङ् द्वारा अनूदित किया जा सकता है, जैसे, You say, you shall do it—यद् तत् करिष्यामि कुर्यां वा इति यूयं भणथ। कर्ता का दृढ़ संकल्प प्रकट करने वाला तथा सभी पुरुषों के साथ प्रयुक्त होने वाला Will सेक्शन २२७ में बताई हुई विधि द्वारा अनूदित किया जा सकता है, He says, he will write—पत्रमहमवश्यं लेखिष्यामीति स वदति।

Should and Would

२३१—अतर्कितोपपन्न अथवा आपातिक (Contingent) भविष्य काल, कर्तव्यता अथवा धर्म का बोध कराने वाले Should का अनुवाद विधिलिङ् (सेक्शन १६८) अथवा कृत्य प्रत्ययों से होता है। परन्तु जब Should से युक्त वाक्य संदेह अथवा अविश्वास-पूर्ण अर्थ प्रकट करता है, जैसे, I Should think so, तो ऐसे वाक्यों का अनुवाद 'वितर्क' या 'मति' की सहायता से करना चाहिये। उक्त अंग्रेजी वाक्य का अनुवाद होगा 'इति मे वितर्क. अथवा मतिः'।

२३२—देवयोग या यदृच्छा (Contingency) अथवा इच्छा बोध कराने वाले Would का अनुवाद विधिलिङ् द्वारा होता है (सेक्शन १६८)। जब Would से किसी स्वाभाविक या आभ्यासिक कार्य (habitual action) का बोध होता है तो केवल वर्तमान काल का प्रयोग होता है, जैसे, कालं नयति– अपना समय व्यतीत किया करता था। पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलम् (शा० ४)—वह पहिले जल नहीं पीती थी। यदि वह यहाँ उपस्थित हुए होते तो क्या ही अच्छा हुआ होता—यदि सोऽत्र संनिहितः स्यात् तर्हि अहो शोभनं भवेत्।

है)। परन्तु जब may से इच्छा का बोध होता है, तब वह विधिलिङ् अथवा आज्ञा अथवा आशीर्लिङ् से अनूदित होता है।

२३४—Can (could) सकना सदैव शक्ति का बोध कराता है, न कि अनुमति का। प्रधान क्रिया में तुमुन् जोड़कर तथा सकना अर्थ वाली किसी क्रिया का प्रयोग कर के इसका अनुवाद किया जाता है, जैसे, मैं इसे कर सकता हूँ—एतत् कर्तुं शक्नोमि—पारयामि—समर्थः वा।

२३५—Might का अनुवाद साधारणतया विधिलिङ् से होता है, जैसे, It might be so—ऐसा हो सकता है—एवं स्यात्। कभी-कभी कृत्य प्रत्यय द्वारा अनुवाद करते हैं, जैसे, He might be my friend—सम्भव है, वह मेरा मित्र हो—कदाचिदनेन मम मित्रेण भवितव्यम्।

(क) यदि पूर्णकाल (Perfect tense) के साथ आया हुआ might सम्भावना सूचित करता हो, तो वह विधिलिङ् अथवा क्त प्रत्यय द्वारा अनूदित होता है, जैसे, He might have done it—सम्भव है, उसने यह कार्य किया हो—तेनैतत् कृतं स्यात्-कर्तव्यम्। इसी प्रकार I could have done it—मैं इसे कर सकता होता—मयैतत् कर्तुं शक्यमासीत् (किन्तु न कृतम्)।

Must and Ought

प्रत्यय से किया जाता है, जैसे, He must have come home— स गृहमागतो भवेत् अथवा तेन गृहमागन्तव्यम्। एवमनया प्रष्टव्यम् (मालविका० ४)—उसको तुमसे ऐसा पूछना चाहिये था। [illegible] कथयितव्यम्—तुम्हें मुझसे यह बात कह देनी चाहिये थी।

The Subjunctive mood

२३८—मै आज्ञा देता हू कि उसे फांसी दे दी जाय, [illegible] हूँ कि मै इस कार्य मे कृत-कार्य होऊँ, उसे बचाओ, [illegible] कि उसका विकार बढ़ जाय—इन वाक्यों मे दे दी जाय, [illegible] बढ़ जाय क्रियाएँ ध्यान देने योग्य है। ऐसे वाक्यों का अनुवाद [illegible] अथवा लोट् से किया जाता है। उपर्युक्त वाक्यों का अनुवाद [illegible] प्रकार होगा—स शूलमारोप्येत अथवा स शूलमारोप्यताम् [illegible] पयामि। अस्मिन् कार्ये विजयी भवेयमित्याशंसे अथवा [illegible] भवेयम्। (सेक्शन २०२) परित्रायतामेनां भवान्। मा [illegible] वर्धताम्।

लिट् कदापि नहीं आवेगा, बल्कि क्रियातिपत्ति आवेगी (सेक्शन २१६); जैसे, If the book were in the library (as it is not), it should be given to you—यदि तत् पुस्तकं ग्रन्थालयेऽभविष्यत्तर्हि तद् तुभ्यम् अदास्यत ऊपर लिखे हुए पूरे विवरण को पढ़ने से यह निष्कर्ष निकलता है कि हेतु-हेतुमद्भूत (Subjunctive Mood) का प्रयोग तीन प्रकार से होता है—

(१) If the book is (as I know it is) in the library, you may take it

(२) If it be (I am uncertain) there you may take it

(३) If it were (as I know it is not) there, you might take it

प्रथम दो का अनुवाद वर्तमानकाल अथवा विधिलिङ् द्वारा किया जायगा। तीसरे का अनुवाद क्रियातिपत्ति द्वारा होगा।

२११—Pluperfect Conditionl को सर्वदा क्रियातिपत्ति से सूचित करते हैं (सेक्शन २१६)।

अभ्यास

४—तया देवतयास्मै स्वप्ने समादिष्टम् । उत्पत्स्यते तवैक पुत्रो जनि
चैका दुहिता । स तु तस्याः पाणिग्राहकमनुजीविष्यति ।
(दशकु० २।६

५—गामधास्यत् कथं नागो मृणालमृदुभिः फणैः ।
आरसातलमूलात्त्वमवालम्बिष्यथा न चेत् ॥ (कुमार० ६।६८) ।

६—राजन्प्रजासु ते कश्चिदपचारः प्रवर्तते ।
तमन्विष्य प्रशमयेः भवितासि ततः कृती ॥ (रघु० १५।४७) ।

७—अकरिष्यदसौ पापमतिनिष्करुणैव मा ।
नाभविष्यमहं तत्र यदि तत् परिपंथिनी ॥ (मालती० ६) ।

८—सिध्यंति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः,
सम्भावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम् ।
किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता
तं चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् ॥
(शा० ७

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

५—भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥
(श्रीमद्० २।३५) ।

६—मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ॥
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ॥ (श्रीमद्० १८।५८) ।

७—परिणेष्यति पार्वतीं यदा, तपसा तत्प्रवणीकृतो हरः ।
उपलब्धसुखस्तदा स्मरं, वपुषा स्वेन नियोजयिष्यति ॥
(कुमार० ४।४२) ।

संस्कृत में अनुवाद कीजिए

१—समस्त प्रजा को सूचित कर दिया जाय कि आज से चन्द्रगुप्त स्वयं ही राज्य के सारे कार्यों की देख भाल करेंगे ।

२—यदि तुम केवल प्रयत्न करो तो तुम अपना अभीष्ट मनोरथ प्राप्त कर लोगे ।

४—तया देवतयास्मै स्वप्ने समादिष्टम् । उत्पत्स्यते तवैक पुत्रो जनि
चैका दुहिता । स तु तस्याः पाणिग्राहकमनुजीविष्यति ।
(दशकु० २।६

५—गामधास्यत् कथं नागो मृणालमृदुभिः फणैः ।
आरसातलमूलात्त्वमवालम्बिष्यथा न चेत् ॥ (कुमार० ६।६८)

६—राजन्प्रजासु ते कश्चिदपचारः प्रवर्तते ।
तमन्विष्य प्रशमयेः भवितासि ततः कृती ॥ (रघु० १५।४७) ।

७—अकरिष्यदसौ पापमतिनिष्करुणैव सा ।
नाभविष्यमहं तत्र यदि तत् परिपथिनी ॥ (मालती० ६) ।

८—सिध्यति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्या,
सम्भावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम् ।
किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता
त चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् ॥
(शा०

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—भागुरायण.—कुमार, न कदाचिदपि शकटदासोऽमात्यराक्षसस्याग्रतोऽय ले
लिखित इति प्रतिपत्स्यते । अतोऽन्यल्लिखितमानीयतामस्य यतो वर्णसंवाद एवै
विभावयिष्यति । (मुद्रा० ५) ।

२—रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति चक्रवालम् ।
इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे
हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार ॥ (सुभाषित०)

३—परस्परेण स्पृहणीयशोभं, न चेदिदं द्वन्द्वमयोजयिष्यत् ।
अस्मिन् द्वये रूपविधानयत्नः पत्युः प्रजानां विफलोऽभविष्यत् ॥ (कुमार० ७।३

४—यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥
श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥
(श्रीमद्० २।५२,५३)

५—भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥
(श्रीमद्० २।३५)।

६—मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ॥
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ॥ (श्रीमद्० १८।५८)।

७—परिणेष्यति पार्वतीं यदा, तपसा तत्प्रवणीकृतो हरः ।
उपलब्धसुखस्तदा स्मरं, वपुषा स्वेन नियोजयिष्यति ॥
(कुमार० ४।४२)।

संस्कृत में अनुवाद कीजिए

१—समस्त प्रजा को सूचित कर दिया जाय कि आज से चन्द्रगुप्त स्वयं ही राज्य के सारे कार्यों की देख भाल करेंगे ।

२—यदि तुम केवल प्रयत्न करो तो तुम अपना अभीष्ट मनोरथ प्राप्त कर लोगे ।

३—[illegible] यह सब [illegible] वाले कलियुग में होगा और लोग नाना प्रकार के पाप करेंगे ।

९—यदि राम ठीक उस समय पर न गए होते तो सारा घर जल गया होता।

१०—यदि मैं उस समय बिल्कुल तटस्थ न रहा होता तो मैं महाराज के क्रोध का भाजन हो गया होता।

११—यह असम्भव है कि अब वह लौटकर आवेगा और हम लोगों के साथ आनन्दपूर्वक समय बितावेगा।

१२—जिस उत्साह से मैंने राजा की सेवा की यदि उसके आधे उत्साह से भी परमात्मा की सेवा की होती तो उसने मुझे नग्न कर मेरे शत्रुओं के हाथों में न सौंप दिया होता।



(२) किसी वक्तव्य या कथन के प्रारम्भ में, अथेदमारभ्यते द्वितीय तन्त्र (पञ्च० २)—अब दूसरा तन्त्र आरम्भ होता है।(३) "इसके बाद" या "तब" के अर्थ में, अथ प्रजानामधिपः प्रभाते वनाय धेनु मुमोच (रघु० २।१)--इसके बाद नराधिप ने प्रातःकाल गाय को वन जाने के लिए खोल दिया या छोड़ दिया। प्राय: इसी अर्थ में "यदि" अथवा "चेद्" का इतरेतरसम्बन्धी (correlative बनकर आता है, न चेन्मुनिकुमारोऽयमथ कोऽस्य व्यपदेश (शा०७)।(४ प्रश्न पूछने में, अथ शक्तोऽसि भोक्तुम् (ग०म०)। प्राय प्रश्नवाची शब्द के साथ ही "अथ" आता है, अथ सा किमाख्यस्य राजर्षे पत्नी (शा०७)।(५) "और" तथा 'भी के अर्थ में, भीमोऽथार्जुन (ग०म०)—भीम और अर्जुन। गणितमथ कला कौशिकीम् (मृच्छ १)—गणित और कौशिकी कला भी। (६) 'यदि' के अर्थ मे, अथ कौतुकमावेदयामि (कादम्०१४४)—यदि तुम्हें कौतुक है तो कहूँगा। अथ मरणमवश्यमेव जन्तो (वेणी०३)—यदि मनुष्य की मौत होना निश्चित (अवश्यम्भावी) है। (७) साकल्य, पूर्णता, अथ धर्म व्याख्यास्याम. (ग० म०)—हम पूरा पूरा धर्म वर्णन करेंगे। (८) संशय या अनिश्चय, शब्दो नित्योऽथानित्य (ग० म०)।

विशेष—कोशों में 'अधिकार' अर्थ में भी अथ का प्रयोग बताया गया है जैसे, अथ समास.। परन्तु ऊपर लिखा हुआ (१) और (२) और अधिकार एक ही वस्तु है, क्योंकि वे सभी वाक्यारम्भ में आते हैं। इसी प्रकार अन्वादेश और प्रतिज्ञा (affirmation, Proposition)। अन्वादेश का अर्थ है—एक ही वाक्य में किसी शब्द का एक बार प्रयोग करके दोबारा प्रयोग करना।

२४५—'अथकिम्' का अर्थ है—'और क्या', 'हाँ', 'ठीक ऐसी ही बात है' जैसे, शकार.—चेट! प्रवहणमागतम्? चेट —अथकिम् (मृच्छ०८। शकार-क्या गाड़ी आ गई? भृत्य—हाँ।

१—मंगलानन्तरारम्भप्रश्नकात्स्न्र्येष्वथो अथ। (अ०)
अथोथ स्यातां समुच्चये।
मंगले संशयारम्भाधिकारानन्तरेषु च।
अन्वादेशे प्रतिज्ञायां प्रश्नसाकल्ययोरपि॥ (है०)

(क) 'अथवा' विभाजक के तौर पर प्रयुक्त होता है। परन्तु प्रायः किसी पूर्व कथन में परिवर्तन करने के लिए या उसमें संशोधन करने के लिए 'अथवा' आता है, जैसे, दीर्यें कि न सहस्रधाहमथवा रामेण किं दुष्करम् (उत्तर० ६)—मैं हजारों टुकड़ों में क्यों नहीं फट जाता, अथवा राम के द्वारा किस काम का किया जाना मुश्किल है!

२४६—'अधिकृत्य' का अर्थ है "बारे में"। इसके योग में द्वितीया आती है, जैसे, अथ कतमं पुनर्ऋतुमधिकृत्य गास्यामि (शा० १)—किस ऋतु के बारे में गाऊँ? 'उद्दिश्य' का अर्थ है "बारे में", 'तरफ' और इसका भी प्रयोग उपर्युक्त विधि से होता है, जैसे, स्वपुरमुद्दिश्य प्रतस्थे (हित० ४)—वह अपने नगर की तरफ रवाना हो गया। किमुद्दिश्यामी ऋषयो मत्सकाशं प्रेषिता स्युः (शा० ५)—किस उद्देश्य से ये ऋषि लोग मेरे पास भेजे गए होंगे?

विशेष—आशा या सम्भावना अर्थ में अपि के साथ प्राय· नाम जुड़ा रहता है, जैसे,तदपि नाम रामभद्र. पुनरपीद वनमलकुर्यात् (उत्तर०२)—तो मैं आशा करता हूँ कि श्री रामचन्द्र जी फिर इस वन को (अपनी उपस्थिति द्वारा) सुशोभित करेंगे।

टिप्पणी—'अपि' के और भी बहुत से अर्थ बताए गए हैं, जैसे गर्हा (निन्दा), धिग्देवदत्तमपि स्तुयाद् वृषलम् (सि०कौ०)—देवदत्त को धिक्कार है जो शूद्र की भी प्रशसा करता है। 'पदार्थ' अर्थ में भी अपि का प्रयोग होता है। पदार्थ का अर्थ है किसी अप्रत्यक्ष यानी परोक्ष शब्द का अर्थ। सर्पिषोऽपि स्यात् (सि० कौ०)—घी का एक बूँद भी'। कामचारक्रिया अथवा अन्ववसर्ग (किसी के इच्छानुसार स्वीकृति दे देना), अपि स्तुहि—यदि चाहो तो स्तुति कर सकते हो। अपि स्तुह्यपि सेवास्मास्तथ्यमुक्त नराशन (भट्टि०८।६२)।

(क) सख्यावाची शब्दों के बाद अपि का 'सम्पूर्णता' अर्थ होता है, जैसे, सर्वैरपि राज्ञां प्रयोजनम् (पच१। १)—राजाओं को सभी से मतलब रहता है। इसी प्रकार चतुर्णामपि वर्णानाम्—चारों वर्णों का।

(ख) प्रश्नवाचक सर्वनामों और प्रश्नवाचक-सर्वनाम-निष्पन्न शब्दों के अनन्तर जुड़ने पर अपि का अर्थ 'कोई' होता है और कभी-कभी अवर्णनीय अर्थ होता है। सेक्शन १३५ देखिए।

(ग) यद्यपि—तथापि ये जोड़ी के शब्द हैं और साथ-साथ आते हैं।

२४८[1]—अयि 'हे मित्र' के अर्थ मे नम्रतापूर्वक अथवा मृदुलतापूर्वक सम्बोधन करने में प्रयुक्त होता है, जैसे, अयि विवेकविश्रान्तमभिहितम् (मालविका० १)—हे मित्र, तुमने विवेकहीन बात कही है। अयि मातर्देवयजन-सम्भवे देवि सीते (उत्तर०४)—देवताओं के पूजन मे पैदा हुई ऐ प्रिय सीते। अयि जीवितनाथ जीवसि (कुमार०४।३)—ऐ प्राणनाथ, क्या तुम जीवित हो।

१—अयि प्रश्नानुनययोस्तथा सम्बोधनेऽपि च (मे)।

२४६—अये प्रधानतया आश्चर्य का बोध कराता है, अये भगवत्यरुन्धती—(उत्तर० ५)—ओ हो! यह तो पूज्य अरुन्धती जी हैं। अये मय्येव भृकुटीधर मयूक्तः (उत्तर० ५)। 'अये' शोक, खेद अथवा भय का भी बोध कराता है, अये देवपादपद्मोपजीविनोऽवस्थेयम् (मुद्रा० २)—खेद है, महाराज के चरणकमलों के नौकर की यह दशा है।

२५०—अहह—(१) हर्ष, आश्चर्य अथवा विस्मय और (२) शोक अथवा मर्मान्तक वेदना का बोध कराता है। अहह महता नि:सीमान. चरित्रविभूतय (भर्तृ० २।३५)। ओहो, महापुरुषों के चरित्र की विभूति असीमित होती है। अहह दारुणो वज्रनिर्घात (उत्तर० २)—हा कष्ट, यह तो महा भयंकर वज्रप्रहार है। अहह कष्टमपण्डितता विधे (भर्तृ० ३।११०)—हाय रे विधाता की मूर्खता।

३—अहो दीप्तिमतोऽपि विश्वसनीयतास्य वपुषः। अथवोपपन्नमेतदस्मिन् ऋषिकल्पे राजनि। (शा० २)।

४—अपि ज्ञायते कतमेन दिग्भागेन गतः सा जाल्म इति।

(विक्रमो० १)।

५—अयि जात कथयितव्य कथय। (उत्तर० ४)।

६—कथमीदृशेन सह वत्सस्य चन्द्रकेतोर्द्वन्द्वसम्प्रहारमनुजानीयाम्। अथ वा इक्ष्वाकुगृहवृद्धा वयम्। प्रत्युपस्थिते च का गति । (उत्तर० ५)।

७—अतिप्रबलपिपासावसन्नानि गन्तुमल्पमपि मे नालमङ्गकानि। अलमप्रभुरस्म्यात्मनः। सीदति मे हृदयम्। अन्धकारतामुपयाति चक्षु । अपि नाम खलो विधिरनिच्छतोऽपि मे मरणमद्यैवोपपादयेत्।

(कादम् ०३६)।

८—अहो प्रभावो महात्मनाम्। अत्र शाश्वत विरोधमपहायोपशान्तात्मानस्तिर्यञ्चोऽपि तपोवनवसतिसुखमनुभवति। (कादम्० ४५)।

९—अपि नाम तयो कल्याणिनोर्भूरिवसुदेवरातापत्ययोर्मालतीमाधवयोरभिमत. पाणिग्रहः स्यात् (मालती० १)।

१०—अहो मे मूर्खताया प्रकार.। अहो यत्किंचनकारितायामादर । अहो निरर्थकव्यापारेष्वभिनिवेश । अहो बालिशाचरितेष्वासक्ति ।

(कादम्० १२०)।

११—चाणक्य—भद्र उपवर्णयेदानीं कुसुमपुरवृत्तांतम्। अपि वृषलमनुरक्ता. प्रकृतय । चरः—अथ किम्। आर्येण तेषु तेषु विरागकारणेषु परिहृतेषु देवे चन्द्रगुप्ते दृढमनुरक्ताः प्रकृतय । (मुद्रा० १)।

१२—अये अश्वमेध इति विश्वविजयिना क्षत्रियाणामूर्जस्वल सर्वक्षत्रियपरिभावी महानुत्कर्षनिकष । (उत्तर० ४)।

१३—ता. स्वचारित्र्यमुद्दिश्य प्रत्याययतु मैथिली।
तत पुत्रवतीमेना प्रतिपत्स्ये त्वदाज्ञया ॥ (रघु०१५।७३)।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—भगवति, महार्येषु लोकेषु तत्रभवतें त्वामुद्दिश्य समाजनाक्षराणि पातयिष्यामि। (मालविका०५)॥

२—[illegible] कथं [illegible] ईदृशं जनापवादं देवस्य कथयिष्यामि ।
अथ वा नियोगः खल्वीदृशो मन्दभाग्यस्य । (उत्तर० १) ।

३- [illegible] —अपि प्रतीयन्ते [illegible] लाभा [illegible] ।
[illegible] —आर्य, अथ किम् । (मुद्रा० १) ।

४—[illegible] मृत्युमङ्गीकरोमि ।
[illegible] प्रथमं तावत् [illegible] कपिञ्जलस्य
[illegible] । पुनरपरं यदि तस्य जनस्य [illegible]-
[illegible] मुनिजनजनित
[illegible] । (कादम्ब० १६०) ।

२—परन्तु यदि तुम मुझे वहाँ जबर्दस्ती ले चलोगे, तो भी मेरा मन अपनी प्रिया के प्रति लगा रहेगा जो कि मेरे प्रेम का एकमात्र आस्पद है।

३—स्वामी—क्या जो काम मैंने तुमको करने के लिए कहा था, उसे कर लिया।

भृत्य—उसे किए हुए मुझे बहुत समय हो गया।

४—अपनी प्रजाओं की सम्यक् रूप से रक्षा करने के कारण यह राजा प्रशंसा का पात्र है, अथवा, क्यों, ऐसा करना तो राजाओं का कर्तव्य ही है।

५—जिस लड़के के बारे में मै कह रहा हूँ, वह बड़ा कुशाग्रबुद्धि है।

६—जो पुरुष किसी निश्चित कारण पर क्रोध करता है, वह उस कारण के दूर होते ही शान्त होजाता है।

७—इस पर भगवान् विष्णु गरुड़ के निवासस्थान पर गए। वह अपने माननीय स्वामी का स्वागत करने के लिए तुरन्त निकल आए।

८—क्या यह सम्भव है कि मेरी आकाक्षाएँ पूर्ण हों।

९—इन विपद्ग्रस्त पुरुषों की क्या ही दयनीय दशा है। यह पाषाण-हृदय को भी द्रवीभूत कर देगी।

१०—आहा, इस रमणीक उद्यान की ऐसी सौम्य सुन्दरता।

११—अभीष्ट मनोरथ की पूर्ति कितने विघ्नों से भरी हुई होती है।

१२—हाय, मैंने अपना सारा समय जुआ खेलने में बिता दिया, इसके लिये अपने अतिरिक्त और किसको दोष दूँ?

१३—ओ हो यह तो मेरी ही अँगूठी है। मैं आज आठ दिन से इसे खोज रहा हूँ। आप ने इसे कहाँ पाया?

१४—मैं चलते-चलते थक गया हूँ। कृपया, अब चलिए, घर चलें।

१५—आशा है कि जिस पुरुष के विषय में मैंने आप से एक मास पूर्व कहा था, उसका स्मरण आप को है।

———

द्वाविंशतितम पाठ

आ, आं, आः, इति, इव, उत, एव, एवम्, ओम्

२५२१—आ का अर्थ 'तक' और 'से' तो होना ही है, इसके अतिरिक्त इसका अर्थ 'थोड़ा-थोड़ा' 'कुछ कुछ' भी होना है। यह विशेषणों के पहिले जुड़ा रहता है जैसे, आपिंगल-थोड़ा-थोड़ा चितकबरा। आमत्तानां कोकिलानां कूजित (मालविका० ३)—कुछ-कुछ मतवाली कोयलों के कूजन से।

आ का प्रयोग क्रियाओं के साथ होता है—यह तो सबको भली भाँति विदित है।

२५४—[1]आः पीड़ा या क्रोध सूचित करने के लिए प्रयोग में आता है, जैसे, आः शीतम् (ग० म०)—ओ हो, कैसा जाड़ा है। आ कथमद्यापि राक्षसत्रासः (उत्तर० १)—अरे, क्या अब भी राक्षसों से भय है।

२५५—किसी के कथन को वक्ता के ही शब्दों में सूचित करने के लिए इति का प्रयोग होता है और वक्ता के कथन के बिल्कुल बाद में रक्खाजाता है, जैसे, आज्ञप्तोऽस्मि राजश्यालकेन। स्थावरक प्रवहण गृहीत्वा जीर्णोद्यानमागच्छेति (मृच्छ ६)—मुझे राजा के साले द्वारा आज्ञा मिली है की हे स्थावरक, गाड़ी लेकर पुरानी बाग में आओ। तयोर्मुनिकुमारकयोरन्यतर. कथयति अक्षमालामुपयाचितुमागतोऽस्मीति (कादम्० १५१)—मुनिकुमारों में से एक कह रहा है कि अक्षमाला माँगने आया हूँ।

विशेष—अप्रत्यक्ष कथन (Indirect narration) का अनुवाद करने में यह देखना चाहिए कि यदि यह कथन प्रत्यक्ष कथन (Direct narration) में रक्खा गया होता तो इसका क्या स्वरूप होता। प्रत्यक्ष कथन (Direct narration) में वक्ता जिन शब्दों का प्रयोग करता है उनका अनुवाद सस्कृत में करके 'इति' जोड़ देना चहिए, जैसे Ram said to me that he would give me money when-ever I wanted it-रामो मामुवाच -यदा-यदा धनेन तव प्रयोजन स्यात्, तदा तदाऽह तत तुभ्यम् दद्यामिति अथवा दद्यामिति रामो मामुवाच।

(क) चूँकि इति शब्द का यह प्रयोग वक्तव्य अथवा कथन का बोध कराता है, अतः यह आवश्यक है कि वक्तव्य में उसकी समस्त शर्तें पूरी रहें, अर्थात् वक्तव्य में कम से कम एक कर्ता और क्रिया अवश्य रहे, क्रमादमु नारद इत्यबोधि स. (शिशु० १।३)—शनैः-शनै उन्होंने उनको नारद समझा या पहिचाना। अवैमि चैनामनघेति (रघु० १४।४०)—मैं उनको (जानकी जी को) निरपराध समझता हूँ। यहाँ क्रमादमु नारदमित्यबोधि स अथवा 'एनामनघामित्यवैमि' कहना अशुद्ध होगा। हाँ, यदि इति का प्रयोग न हो तो कर्मकारक प्रयोग में ला सकते हैं।

१—आस्तु स्यात् कोपपीडयोः। (अ०)

२५६१—इन साधारण अर्थों के अतिरिक्त इति के निम्नलिखित और अर्थ होते हैं—

(क) कारण,-जैसे, वैदेशिकोऽस्मीति पृच्छामि कः पुनरसौ जामाता (उत्तर० १)—चूंकि मैं विदेशी (अनजान) हूँ, अतः पूछता हूँ कि यह जामाता महाशय कौन है। लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरो (मालविका० १)—चूंकि उसने प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है, अतः विवाद से डरने वाले उस (पुरुष) का।

(ख) अभिप्राय अथवा प्रयोजन या अर्थ, जैसे, शरीरस्य मा विनाशो भूदिति मयेदमुच्छिद्य समानीतम् (कादम्ब० ३२०)—मैं शरीर को इसलिए उठा कर ले आया कि यह बर्बाद न हो जाए।

का बोध कराता है, जैसे पितेति स पूज्य, अध्यापक इति निन्द्य.—पिता की हैसियत से तो वह पूज्य हैं, पर अध्यापक की हैसियत से वह निन्दनीय है। शीघ्रमिति सुकर, निभृतमिति चिन्तनीय भवेत् (शा० ३)—जहाँ तक जल्द करने की बात है, वहाँ तक तो यह सरल है, पर जहाँ तक गुप्तरीति से करने की बात है, वहाँ तक यह विचारणीय समस्या है।

(७) इति का अर्थ 'मत' या 'विचार' भी होता है, जैसे, इत्यापिशलि: (ग० म०)—यह आपिशलि का मत है।

(८) 'उदाहरण' देने में भी इति का प्रयोग किया जाता है, जैसे, इन्दुरिन्दुरिव श्रीमानित्यादौ तदन्वय (चन्द्रालोक)।

विशेष—प्रकार और स्वरूप—ये दोनों अर्थ एक समान ही हैं। प्रत्यक्ष, प्रकाश और अवधारण के उदाहरण बहुत कम मिलते हैं।

(क) बलयुक्त प्रश्न करने के लिये 'किमिति' प्रयुक्त किया जाता है, जैसे, किमित्यपास्याभरणानि यौवने धृत त्वया वार्धकशोभि वल्कलम् (कुमार० ५। ५४)—क्यों तुमने युवावस्था में आभूषणों को त्याग रक्खा है जो केवल वृद्धावस्था में ही शोभा देता है।

२५७—इव[1] प्राय. उपमा देने में प्रयुक्त होता है और उपमान के अनन्तर आता है, जैसे वैनतेय इव विनतानन्दजनन.(कादम्०५)—वह वैनतेय के समान था जो कि विनता को सुख देते थे (अथवा उनको सुख देते थे जो उनके सम्मुख झुक जाते थे—हार मान लेते थे)। ससार अर्णव इव—समुद्रतुल्य संसार।

विशेष—इव से जुड़े हुए शब्द एक ही कारक में होने चाहिएँ। जैसे, ह्रीमिव जलभृतदेहा कन्यका ददर्श (कादम०१३१—उसने पृथिवी के समान एक कन्या देखी—ऐसी पृथिवी जिसका धरातल जल से भरा हो, (कन्यापक्ष में) —जिसने अपना शरीर जल द्वारा धारण कर रक्खा था। दिवसेनेव मित्रानुवर्तिना विलासिजने नाधिष्ठिता (कादम्०५१)—सूर्य का अनुसरण करने वाले

१—इवशब्दोपमोत्प्रेक्षा वाक्यभूषणयोरिव (ग० म०)

दिन के समान जो अपने मित्रों का अनुसरण किया करते थे, ऐसे विलासी जनों से बसा हुआ (भरा हुआ)।

(क) इव के और भी अर्थ ये हैं—(१) थोड़ा सा, कुछ-कुछ, कडार इवायम् (श० म०)—यह थोड़ा-थोड़ा (कुछ कुछ) चितकबरा है। (२) मानों गोया कि, जैसे, मृगानुसारिणं पिनाकिनमिव पश्यामि (श०१)—मानों मृग का अनुसरण करने वाले पिनाकी (शिव) को देखता हूँ। यो जहासेव वासुदेवम् (कादम्ब० ४) जो मानों वासुदेव की हँसी कर रहा था।

(ग) 'सम्भवत', (मैं जानना चाहूँगा) अथवा 'वस्तुतः' का अर्थ सूचित करने के लिए इव प्रश्नवाचक सर्वनामों तथा प्रश्नवाचक-सर्वनाम निष्पन्न शब्दों के साथ जोड़ दिया जाता है, जैसे, विना सीतादेव्या किमिव हि न दुःखं रघुपते (उत्तर० ६)—महारानी सीता से वियुक्त श्रीरामचन्द्र जी को, सम्भवतः, कौन सी चीज दुःखदायी प्रतीत न होगी। परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्तु पुरुषः (मुद्रा० ३)—सम्भवतः पराधीन पुरुष कैसे सुख का आनन्द (स्वाद) जाने।

म०)—यह या तो खूँटा हो सकता है या पुरुष। (२) प्रश्न करने में उत का प्रयोग होता है, उत दण्ड. पतिष्यति (ग० म०)—क्या डंडा गिर जायगा?

विशेष—'अत्यर्थ' अर्थ में उत बहुत कम आता है।

२६०—किसी शब्द द्वारा सूचित भाव को पुष्ट करने और उस पर जोर देने के लिये एव का प्रयोग होता है। इस अर्थ में इसका अनुवाद इन शब्दों द्वारा किया जा सकता है—ठीक, वही, केवल, अकेला, पहिले ही, तत्क्षण, मुश्किल से, जैसे, एवमेव—ठीक ऐसा ही। अर्थोष्मणा विरहित पुरुष. स एव (भर्तृ० २। ४६)—धन की गर्मी से रहित वही पुरुष। सा तथ्यमेवाभिहिता भवेन (कुमार० ३।६३) शिव द्वारा उसको सच्ची बात-मात्र बतला दी गई। नाम्नैव निर्भिन्नारातिहृदय. (कादम्०५)—जो नाम से ही शत्रुओं के हृदय को विदीर्ण कर देता था (भेद देता था)। उपस्थितेय कल्याणी नाम्नि कीर्तित एव यत् (रघु०१।८७)—चूँकि वह स्त्री यहाँ है, अत एव जिसी क्षण(ज्योंही) उसका नाम लिया गया। भवितव्यमेव तेन (उत्तर० ४)—यह तो होवेगा ही।

२६१—[1]एवम् का अर्थ साधारणतया 'ऐसा' या 'इसप्रकार' होता है। इसका सम्बन्ध किसी पूर्व कथित वस्तु अथवा बाद में आने वाली वस्तु से होता है, अथवा किसी कार्य को करने के लिए आदेश देने में इस शब्द का प्रयोग होता है, एवमुक्त कपिंजलः प्रत्यवादीत् (कादम्०१५१) (मुझसे) इस प्रकार कहे जाने पर कपिंजल ने उत्तर दिया।

(क) स्वीकृति' अर्थात् 'हाँ' का भी बोध कराने में इसका प्रयोग होता है, जैसे, एवमेतत् (उत्तर०१)—हाँ, यह ऐसा ही है। एव कुर्म —हाँ, हम लोग ऐसा करेंगे।

विशेष—'सादृश्य' अथवा 'दृढ सकल्प' का बोध कराने में एवम् बहुत कम आता है।

२६२ [2]ओम् बहुत ज्यादा प्रयोग में नहीं आता। प्राय यह शब्द शुभ-प्रारम्भ का बोध कराने के लिए आता है, जैसे, ओम् अग्निमीडे पुरोहितम्। अथवा धार्मिक विधि या क्रिया या प्रार्थना की समाप्ति का बोध कराने के लिये भी इसका प्रयोग होता है, जैसे, ब्रह्म भू भुव स्वरोम्।

१—एव प्रकारोपमयोरंगीकारेऽवधारणे। (वि०)

२—ओमित्यनुमितौ प्रोक्तं प्रणवे चाप्युपक्रमे (वि०)।

(क) संस्कृत में यह शब्द अनुमति के अर्थ में प्रयुक्त होता है, जैसे. ओमित्युच्यताममात्य (मालती० ६)—मंत्री से कह दो कि मैं ऐसा ही करूँगा। द्वितीयश्चेदोमिति ब्रूम।

अभ्यास

१—भर्तृदारिके, आर्याया पण्डितकौशिक्या इव स्वरसंयोग श्रूयते। (मालविका० ४)।

२—उत्खातिनी भूमिरिति मया रश्मिसंयमनाद्रथस्य मन्दीकृतो वेग। (शा० १)।

३—प्रथममिति प्रेक्ष्य दुहितृजनस्यैकोऽपराधो भगवता मर्षयितव्यः। (शा० ४)।

४—प्रतिभूमि गतेन रणरणायमानार्यपुत्रशून्यमिवात्मानं पश्यामि। (उत्तर० १)

५—अयं परन्तपः किमित्ययमुत्कार्यो स्वामी पार्श्वापसर्पात्स्वस्थी—, गद मत्सम्वतिष्ठते। (तिलो०)।

११—ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव ।
पुत्रं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि ॥ (शा० ४)

१२—लिंपतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवांजनं नभः ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता ॥ (मृच्छ० ५) ।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त-वाक्य

१—किमिव दुष्करमकरुणानां यत् सोऽयमनेनैव पादपमधिरुह्यैकैकशः फलानीव तस्य वनस्पते शाखासंधिभ्यः कोटरांतरेभ्यः शुकशावकानग्रहीदपगतासूंश्च कृत्वा क्षिताववपातयत्
(कादम्० ३३)

२—समदृच नानंतरमेव न वेद्मि किममन्दशक्तेर्मदनज्वरस्य वेगादुत नचोविपाकस्यात्मनो दुष्कृतस्य गौरवादाहोस्विन्मदृचम एव सामर्थ्यादाच्छिन्नमूलस्तरुरिव क्षिताविपतत् ।
(कादम्० ३१२)

३—पात्रविशेषन्यस्तं गुणांतरं व्रजति शिल्पमाधातुः ।
जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य । (मालविका० १)

४—सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन ।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव ॥

५—का कथा बाणसन्धाने ज्याशब्देनैव दूरतः ।
हुंकारेणेव धनुषः स हि विघ्नानपोहति ॥ (शा० ३)

६—गत एव न ते निवर्तते न सखा दीप इवानिलाहतः ।
अहमस्य दशेव पश्य मामविषह्यव्यसनेन धूमिताम् ॥ (कुमार० ४ । ३०)

७—स्वशरीरशरीरिणावपि श्रुतसंयोगविपर्ययौ यदा ।
विरहः किमिवानुतापयेद्वद बाह्यैर्विषयैर्विपश्चितम् ॥ (रघु० ८।८९)

८—प्रयांतीव प्राणाः सुतनु हृदयं ध्वंसत इव
ज्वलंतीवांगानि प्रसरति समंतादिव तमः ॥ (मालती० ९)

९—किमात्मनिर्वादकथामुपेक्षे जायामदोषामुत संत्यजामि ।
इत्येकपक्षाश्रयविक्लवत्वादासीत्स दोलाचलचित्तवृत्तिः ॥ (रघु० १४।३४)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए

१—चूँकि दुष्ट पुरुष मीठी-मीठी बातें बोलता है, इसलिए वह विश्वसनीय नहीं है ।

२—वह यहाँ पिछले दो महीने से रह रहा है, ताकि वह शहर से भली प्रकार परिचित हो जाय ।

त्रयोविंशतितम पाठ

कच्चित, क्व-क्व, कामम्, किं, (किमु, किमुत, किंपुनः), किल, केवलम् और खलु

२६३[1]—कच्चित् से वक्ता द्वारा व्यक्त की गई हुई किसी आशा का बोध होता है, और इसका अर्थ हुआ करता है "मैं आशा करता हूँ कि"। स्वरूपतः यह प्रश्नवाचक हुआ करता है और प्रश्न करने के ढंग के अनुसार इसका प्रत्याशित उत्तर 'हाँ' या 'नहीं' होता है, जैसे, शिवानि वस्तीर्थजलानि कच्चित् (रघु० ५।८)—आप के तीर्थजल विघ्नरहित तो हैं? अर्थात् मैं आशा करता हूँ कि आप के तीर्थजल विघ्नरहित हैं। कच्चिन्न वाय्वादिरुपप्लवो·· आश्रमपादपानाम् (रघु० ५।६)—मैं आशा करता हूँ कि आश्रम के वृक्षों के ऊपर आँधी-तूफान जैसी कोई उपद्रव या दुर्घटना तो नहीं बीती। (नहीं, कोई दुर्घटना नहीं बीती)।

२६४[2]—"क्व का अर्थ है 'कहाँ'। जब यह दो या दो से अधिक उपवाक्यों में दोहराया जाता है, तो इसका अर्थ होता है "बहुत बड़ा अन्तर" अथवा "बहुत बड़ी अयोग्यता", जैसे, क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः (रघु० १।२)—कहाँ तो सूर्य से पैदा हुआ वंश, और कहाँ स्वल्प ज्ञान वाली मेरी बुद्धि (अर्थात् दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है क्योंकि मेरी बुद्धि उस वंश का वर्णन करने के लिए बिल्कुल अयोग्य है)। तपः क्व वत्से क्व च तावकं वपुः (कुमार० ५।४)—तपस्या तथा तेरे शरीर में कितना ज़बर्दस्त अन्तर है (अर्थात् तेरा कोमल शरीर तपस्या करने के लिए उपयुक्त नहीं है)।

१—कच्चित् कामप्रवेदने। (अ०)

२—द्वौ क्व शब्दौ महदन्तरं सूचयतः (रघु० १।२ की मल्लिनाथ कृत टीका)

को तो कहना ही क्या है। मयि नांतकोऽपि प्रभु. प्रहर्तुं किमुतान्यहिंस्रा. (रघु० २।६२)—यमराज भी मुझे मारने में समर्थ नहीं हैं, अन्य हिंसक जन्तुओं की भला क्या मजाल है—स्वय रोपितेपु तरुपु उत्पद्यते स्नेहः किं पुनरंगसंभवेष्वपत्येपु (कादम् २६१)—अपने लगाए हुए वृक्षों के प्रति स्नेह उत्पन्न हो जाता है, फिर अपनी सन्तानों के प्रति तो कहना ही क्या है। भवादृशस्य त्रैलोक्यमपि न क्षम परिपथीभवितुं किं पुनर्युधिष्ठिरबलम् (वेणी० ३)—आप जैसे पुरुषों के सामने तीनों लोक तो अड़चन डाल ही नहीं सकते, फिर भला युधिष्ठिर की सेना की क्या मजाल।

विशेष—अनिश्चयात्मकता अथवा सन्देह बतलाने के लिए भी किमु शब्द का प्रयोग होता है, जैसे, किमु विषविसर्प किमु मद (उत्तर० १)—क्या यह विष का प्रसार है अथवा अत्यन्त हर्ष?

२६८—किल का साधारण अर्थ है 'सचमुच', 'वस्तुत' 'निश्चय ही।' किल शब्द उसके बाद आता है जिस पर जोर देना होता है, जैसे, अर्हति किल कितव उपद्रवम् (मालविका० ४)—निश्चय ही इस शठ का उपद्रव होना उचित है। प्रत्यूह सर्वसिद्धीनामुत्ताप प्रथमः किल—(हित० ३)—पहिले से ही बहुत ज्यादा जोश का होना सारे मनोरथों की प्राप्ति में निश्चय ही बाधक होता है।

२६९[1] किल निम्नलिखित अर्थों में भी आता है। (१) 'कहते हैं, 'लोग कहते हैं', जैसे, बभूव योगी किल कार्तवीर्य (रघु० ६।३८)—लोग कहते हैं कि कार्तवीर्य नामक एक योगी था। जघान कंस किल वासुदेव (म० भा०)। (२) नकली कार्य को द्योतित करने के लिए, जैसे, प्रसह्य सिंह किल तां चकर्ष (रघु० २।२७)—एक नकली सिंह ने उसे (स्त्री को) जबर्दस्ती खींच लिया। पयस्यगाधे किल जातसंभ्रमा (किरात० ८।४८)। (३) आशा प्रकट करने के लिए, जैसे, पार्थ किल विजेष्यति कुरून—मैं आशा प्रकट करता हूँ कि पार्थ कुरुओं को जीत लेगा।

१—वार्तासंभाव्ययो किल (अ०)

किल इत्यागामकस्मिन्यथारणसंभाव्यतेवार्तासु (गणरत्नमहोदधि)

(३) शिष्टतापूर्ण तथा मृदुलतापूर्ण प्रश्न करने मे, न खलु तामभिक्रुद्धो गुरुः (वेणी० ३)—मैं जानना चाहता हूँ कि क्या गुरु जी उस से क्रुद्ध नहीं हो गये ?

(४) निषेधार्थक कृत्वान्त शब्दों के साथ, जैसे, अलम् (सेक्सन ५७ देखिये), निर्धारितेऽर्थे लेखेन खलूक्त्वा खलु वाचिकम् (शिशु० २।७०) —जब कोई मामला पत्र द्वारा निर्णीत किया जाता हो तो मौखिक सन्देश मत जोड़ दो (अर्थात् मौखिक सन्देश कहलाना अनावश्यक है)।

(५) कारण, न विदीर्ये, कठिनाः खलु स्त्रियः (कुमार० ४।५)—मैं टुकड़े-टुकड़े नहीं हो जाती हूँ, क्योंकि स्त्रियाँ कठोर होती है (वर्धमान ने विषाद के उदाहरण के तौर पर इसका उल्लेख किया है)।

इसी प्रकार विधिना जन एष वञ्चितस्त्वदधीनं खलु देहिनां सुखम् (कुमा० ४।१०)।

(६) कभी-कभी यह केवल वाक्यालंकार के तौर पर प्रयुक्त होता है। विशेष—गणरत्नमहोदधि मे उल्लिखित नियम और निश्चय करान-करीब एक ही हैं।

अभ्यास

१—विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतीकारस्य (शा० ३)।

२—न खलु विदितास्ते तत्र निवसतश्चाणक्यहतकेन—अथ किम (मुद्रा० २)।

३—भर्तृगतया चिन्तयात्मानमपि नैषा विभावयति, किं पुनरागन्तुकम्। (शा० ४)

४—द्वावपि किलागमिनौ प्रयोगनिपुणौ च। किन्तु शिष्यागुणगरिम्णा गणदास उन्नमितोपदेशः (मालविका० ३)।

५—अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः (विक्रमो० १)।

६—भो, न केवलं रूपे, शिल्पेऽप्यद्वितीया मालविका। (मालविका० २)

७—वत्से नीते महत्तावञ्चिते पुनः सवितार देवमुपतिष्ठस्व। न न खलु ... कि ... (उत्तर० -)

त्वामवनिपृष्ठचारिणीमस्मत्प्रमादाद्विनष्टिकता ... पुनर्मन्यां।

२—भगवत जावालिमवलोक्याहमचिंतयम्—तपस्विना प्रतनुतपसामपि तेज प्रकृत्या दु सह भवति, किमुत सकलभुवनवंदितचरणानां मुनीनाम् । एवंविधानामनलय कारिणाम् पुण्यानि नामग्रहणान्यपि महामुनीनां, किं पुनर्दर्शनानि । (कादम०४३)

३—आजन्मन॰ शाठ्यमशिक्षितो यस्तस्याप्रमाणा वचन जनस्य ।
परातिसधानमधीयते यैर्विद्येति ते सतु किलाप्तवाच ॥ (शा० ५)

४—यदृच्छया त्वं सकृदप्यवन्ध्ययो पथि स्थिता सुन्दरि यस्य नेत्रयो॰ ।
त्वया विना सोऽपि समुत्सुको भवेत्सखीजनस्ते किमु दृढसौहृद ॥ (विक्रमो०१)

५—न केवलं दरीसस्थ भास्वता दर्शनेन व ।
अतर्गतमपास्त मे रजसोऽपि पर तम॰ ॥ (कुमार० ६।६०)

६—न केवल तद्गुरुरेकपार्थिव ।
क्षितावभूदेकधनुर्धरोऽपि स । (रघु०३।३१)

७—सुखश्रवा मगलतूर्यनिस्वना प्रमोदनृत्यै सह वारयोषिताम् ।
न केवलं सद्मनि मागधीपते पथि व्यजृंभंत दिवौकसामपि ॥ (रघु० ३ । ३१)

८—रघुमेव निवृत्तयौवन तममन्यत नरेश्वरं प्रजा ।
स हि तस्य न केवला श्रिय प्रतिपेदे सकलान्गुणानपि ॥ (रघु०८।५)

९—मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेत
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे । (मेघ० ३)

१०—दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेष
मंदायते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्या ॥ (मेघ०२)

११—स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु
स दृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्य ।
प्रागतरिक्षगमनात्स्वमपत्यजात-
मन्यैर्द्विजै परभृता खलु पोषयति ॥ (शा० ५)

१२—स्वरजा हृदयप्रमाथिनी तव च ते विस्मयनीयमायुधम् ।
मृदुतीक्ष्णतरं यदुच्यते तदिदं मन्मथ दृश्यते त्वयि ॥ (मेघ०।३)

१३—काम प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनाश्वासि ।
अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरुते ॥ (शा०२)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए:—

१—कहा जाता है कि हम लोगों की असावधानता के कारण राजा हम लोगों से बहुत ही क्रुद्ध हो गए हैं।

२—केवल एक बार भी देखे हुए व्यक्ति को मैं नहीं भूल सकता; भला फिर पुराने मित्र को कैसे भूल सकता हूँ ?

चतुर्विंश पाठ

च (च-च), जातु, तत्, ततः, तथा, तावत् और तु

२७२ [1]—"च" संयोजक समुच्चयबोधक अव्यय है और शब्दों अथवा वक्तव्यों (उक्तियों) को जोड़ता है। जिन जिन शब्दों अथवा वक्तव्यों को जोड़ता है, उनमें से प्रत्येक के साथ, अथवा सब से अन्त वाले के साथ यह आता है। परन्तु यह कभी भी वाक्य में पहिले नहीं आ सकता, जैसे, **रामश्च गोविन्दश्च** अथवा **रामो गोविन्दश्च**—राम और गोविन्द। तण्डुलानानयति च तान् पचति चौदनं भुङ्क्ते च अथवा तण्डुलानानयति तान् पचत्योदनं भुङ्क्ते च—वह चावल लाता है, उसे पकाता है और पका हुआ भोजन खाता है। परन्तु प्रत्येक शब्द अथवा प्रत्येक वक्तव्य के साथ "च" को लगाने के बजाय सब से अन्त वाले के साथ ही च का रखना अधिक अच्छा मालूम होता है—कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानैः (रघु० ।७६)

(क) प्रायः "च" वाक्य के प्रथम शब्द के अलावा किसी भी भाग में रख दिया जाता है, जैसे, अथ गजस्तं प्रणम्य प्रस्थितः। शशकाश्च तद्दिनादारभ्य सुखेन तिष्ठन्ति (पंच० ३।१)—तब उसे प्रणाम करके हाथी चला गया, और उस दिन से खरगोश सुखपूर्वक रहने लगे।

(ख) जब "च" "न" के साथ आता है तो उसका अर्थ "न तो" "न" होता है, न च न परिचितो न चाप्यगम्यः (मालविका० १)—न तो वह अप्रसिद्ध ही है, न अगम्य ही है।

(ग) कभी कभी इससे विरोधात्मक भाव अथवा विभेदात्मक भाव गर्भित होता है। ऐसी दशा में इसका अनुवाद 'परन्तु' 'तथापि' आदि से किया जाता

१—चान्वाचये समाहारेऽप्यन्योन्यार्थे समुच्चये।
पक्षान्तरे तथापादपूरणेऽप्यवधारणे॥

(२) दो घटनाओं का साथ होना अथवा अविलम्ब से होना सूचित करने के लिए 'च" प्रयोग में आता है, जैसे ते च प्रापुरुदन्वन्त बुबुधे चादिपूरुष. (रघु० १० । ६)—ज्योंही वे लोग समुद्र पर पहुँचे, त्योंही आदि-पुरुष (विष्णु) जाग पड़े।

२७४—जातु का अर्थ होता है—जरा भी, सम्भवत, कदाचित्, स्यात्, जैसे, किं तेन जातु जातेन (पञ्च० १। १)—सम्भवत उसके पैदा होने से क्या लाभ? न जातु बाला लभते स्म निर्वृतिम् (कुमार० ५। ५५)—उस कुमारी ने जरा भी सुख नहीं भोग पाया।

विशेष—पाणिनि का कहना है कि जातु का प्रयोग "नहीं मानना' के अर्थ में विधलिङ् के साथ किया जाता है, जैसे, जातु यत् त्वादृशो हरिं निन्देन्न मर्षयामि (सि० कौ०)—मैं नहीं मानता कि आप का सा व्यक्ति हरि की निन्दा करेगा।

२७५—तद् सर्वनाम (प्रयोगों के लिये सेक्शन १३२ देखिये) तथा क्रियाविशेषण अव्यय भी है। क्रियाविशेषण की दशा में इसका अर्थ है (१) इस कारण से,' 'इसलिए', 'फलत', जैसे, राजपुत्रा वय, तद्विग्रह श्रोतुं न कुतूहलमस्ति (हित० ३)—हम लोग राजपुत्र हैं, इसलिए, हमें संग्राम के विषय में सुनने की इच्छा है। (२) 'तो', 'उस दशा में,—इस अर्थ में यदि का इतरेतर-सम्बन्धी बन कर आता है, जैसे, तदेहि विमर्दक्षमा भूमिमवतराव. (उत्तर ०५)—तो आओ, युद्ध के लिए उपयुक्त किसी स्थान पर चलें। तथापि यदिमहत् कुतूहल तत् कथयामि (कादम्० १३६)—तो भी यदि बड़ी जबर्दस्त जिज्ञासा हो तो मैं कहूँ।

२७६—तत 'तद्' को पंचमी के रूप में प्रयोग में आता है, जैसे, तस्मात्, तस्या, ततोऽन्यत्रापि दृश्यते (सि० कौ०) = तस्मादन्यत्रापि। पर यह क्रियाविशेषण अव्यय के तौर पर बहुत आता है। इसका प्राथमिक अर्थ है "वहाँ से" "उस स्थान से" और साधारण अर्थ है 'तब', 'बाद में', "इसके बाद", जैसे, तत कतिपयदिवसापगमे (कादम्० ११०)—बाद में कुछ दिनों के बीत जाने पर। इसका अर्थ (१) "इस कारण से", "इसलिए", "फल-स्वरूप" भी होता है और यत का इतरेतरसम्बन्धी बनकर वाक्य में आता है,

जब यथा का परस्परसम्बन्धी होकर तथा आता है तो इसके अर्थ कुछ और ही होते हैं—इसके लिए सत्ताईसवाँ पाठ देखिए।

विशेष—'तथाहि' का अर्थ होता है 'क्योंकि' 'ऐसा कहा गया है', उदाहरणार्थ, तथाच का अर्थ होता है 'और इसी प्रकार'। इन दोनों शब्दों का का प्रयोग प्राय किसी की उक्ति का उद्धरण करने में होता है।

२७८—तावत् का प्रयोग इन अर्थों में होता है —

(१) इसका जो शब्दार्थ है उस अर्थ में, यानी 'पहिले' और 'कुछ करने के पहिले', जैसे, प्रिये इतस्तावदागम्यताम् (शा० १)—मेरी प्यारी, पहिले इधर तो आओ। आह्लादयस्व तावच्चन्द्रकरश्चन्द्रकान्तमिव (विक्रमो० ५) पहिले तो मुझे प्रसन्न करो जैसे चन्द्रमा की किरण चन्द्रकांत मणि को प्रसन्न करती है।

(२) रही बात, इसी बीच में, तब तक अर्थों में, जैसे, सखे स्थिरप्रतिबन्धो भव। अहं तावत् स्वामिनश्चित्तवृत्तिमनुवर्तिष्ये (शा० २)—मित्र, विरोध करने में दृढ़ बने रहो, रही बात मेरी, सो मैं तो अपने स्वामी की इच्छा के अनुसार आचरण करूँगा।

(३) अभी, अब अर्थों में, जैसे, गच्छ तावत—अभी या अब जाओ।

(४) किसी वक्तव्य पर बल देने के लिए वस्तुत के अर्थ में, जैसे, त्वमेव तावत् प्रथमो राजद्रोही (मुद्रा० १)—तू ही पहिला राजद्रोही है।

(५) रही, विषय में आदि अर्थों में, जैसे, एवं कृते तव तावत् प्राणयात्रा क्लेशं विना भविष्यति (पञ्च० १। ८) रही बात तुम्हारी, सो ऐसा हो जाने पर, तुम्हारी जीविका बिना किसी कष्ट के हो जाया करेगी। विग्रहस्तावदुपस्थित (हित० ३)—रही बात युद्ध की, सो तो सामने उपस्थित है।

जब यावत् का परस्पर सम्बन्धी होकर तावत् आता है, तब इसके जो अर्थ होते हैं, वे सत्ताईसवें पाठ में लिखे जायेंगे।

२७९—तु[1] प्राय विरोधवाची वाक्य प्रयोग में आता है। इस दशा में इसका अर्थ होता है—परन्तु, इसके विरुद्ध, जैसे, मम सर्वथा सुखाना प्राणोऽन्त

[1]—तु पादपूरणे भेदे समुच्चयेऽवधारणे (वि०)

५—आर्ये कृतपरिश्रमोस्मि चतु:षष्ठ्यङ्गे ज्योतिःशास्त्रे । तत्प्रवर्त्यतां भगवतो ब्राह्मणानुद्दिश्य पाक. । चन्द्रोपरागं प्रति तु केनापि विप्रलब्धासि [मुद्रा० १]

६—भगवन् कुसुमायुध त्वया चन्द्रमसा च विश्वसनीयाभ्यामतिसन्धीयते कामिजनसार्थ. । [शा० ३]

७—तात लताभगिनी वनज्योत्स्ना तावदामन्त्रयिष्ये । [शा० ४]

८—करटक उवाच । भद्र किं कृतं तत्रभवता । दमनक आह । मया तावन्नीतिबीजनिर्वापणं कृतं, परतो दैवविहितायत्तम् [पंच १ । १५]

९—दृष्ट्वा मेघनाद दूरत एव कृतनमस्कार तमप्राक्षीत् । तिष्ठतु तावत्पुरस्तात्पत्रलेखागमनवृत्तान्तप्रश्नो, वैशम्पायनवृत्तान्तमेव तावत् पृच्छामि । (कादम्० ३०४)

१०—अयमेकपदे तया वियोग सहसा चोपनत सुदु सहो मे ।
नववारिधरोदयादहोभिर्भवितव्य च निरातपत्वरम्यै. ॥
(विक्रमो०.४)

११—प्रतिग्रहीतु प्रणयिप्रियत्वात्त्रिलोचनस्तामुपचक्रमे च ।
संमोहन नाम च पुष्पधन्वा धनुष्यमोघ समधत्त बाणम् ।।
(कुमार ० ३ । ६६)

१२—न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यताम् ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ [मनु ० २ ।९४]

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—अत्रभवत्या प्रसवादस्मद्गृहे तिष्ठतु । कुत इदमुच्यत इति चेत् त्वं साधुभिरादिष्ट प्रथममेव चक्रवर्तिनं पुत्र जनयिष्यसीति । स चेत्तल्लक्षणोपपन्नो भविष्यति, अभिनन्द्य शुद्धान्तमेनां प्रवेशयिष्यसि । विपर्यये तु पितुरस्या समीपनयनमवस्थितमेव (शा० ५)

२—कथारम्भकाले राजपुत्रा ऊचु । आर्य मित्रलाभ श्रुतस्तावदस्माभि. इदानी सुहृद्भेदं श्रोतुमिच्छाम । (हित० २)

३—सुखमापतितं सेव्य दु खमापतितं तथा ।
चक्रवत्परिवर्तन्ते दु खानि च सुखानि च ॥ (हित० १)

६—दुर्योधन—उस युवा वीर के शौर्य पर बड़ा आश्चर्य है। मैं समझता हूँ कि उसके अद्भुत वीर कृत्यों को देखकर सभी योद्धा थोड़ी देर तक आश्चर्य के मारे स्तब्ध हो गये होंगे। अच्छा, आगे कहो।

७—अपने मधुर-वाक्यों से इस प्रकार मुझे ठगकर क्या तुम अब मुझे त्याग कर शरमाते नहीं हो?

८—अपनी सहचरी के क्षणिक वियोग से तुम इतने व्यथित हो, और इतने पर भी मुझ-जैसे कामाभिभूत व्यक्ति को अपनी खोई हुई प्रिया के विषय में कोई भी सामाचार बतलाने से इतना हिचकते हो।

९—ज्योंही उसने घर की देहरी पर पाँव रक्खा त्योंही तीन आदमी उस पर झपट पड़े और उसे बन्दी कर ले गये।

०—अब आप धन, प्रतिष्ठा, सन्तति, और मनुष्यों द्वारा अभिलषित और भी अन्य वस्तुएँ प्राप्त कर चुके। अब आप और क्या चाहते हैं? अथवा हाँ, हाँ, ठीक ही कहा है कि मनुष्य की तृष्णाएँ (इच्छाएँ) कहाँ तक फैली हैं इसका कोई ठिकाना नहीं है।

११—यज्ञशर्मा के पास जाओ और उससे पूछो कि तुम इतनी देर क्यों रुक गए, तब तक मैं जाकर दूसरे ब्राह्मणों को बुला लाता हूँ।

१२—बड़े प्रात:काल उठकर राम अध्ययन करना आरम्भ कर देता है, तुम तो बिस्तर पर खर्राटे मारते रहते हो।

१३—जहाँ तक मित्रगुप्त के ज्येष्ठ पुत्र का सम्बन्ध है, उसका विश्वास तो किया जा सकता है, परन्तु मैं उसके अन्य पुत्रों के विषय में कुछ भी नहीं जानता।

१४—यदि यह हो जाय तो आप स्वयं ही निर्विघ्न अपना काम करते [illegible] और हम लोग भी अपना अपना कार्य कर सकेंगे।

२८२[1]—"नाम" प्राय "नामक" के अर्थ में प्रयुक्त होता है, जैसे, रावणो नाम लंकेश—रावण नामक लंका का राजा। पुष्पपुरी नाम नगरी—पुष्पपुरी नामक नगरी।

विशेष—नाम शब्द के पूर्व आने वाला शब्द उसी विभक्ति में होना चाहिए जिस विभक्ति में वह संज्ञा होगी जिसका कि वह गुण है, जैसे, मेघनादो नाम मित्रम् (पंच० १।१५)—मेघनाद नामक मित्र। तन्नन्दिनी सुवृत्ता नामोऽस्यम्य (दशकु० ११) । अस्ति पाटलिपुत्रे नाम नगरे वलभिन्नाम वणिक् (दशकु० २।६)। यह 'नाम' शब्द किसी के साथ समस्त नहीं होता और इसको नामन् शब्द, जो समस्त होता है, का पर्यायवाची समझकर गड़बड़ी नहीं करनी चाहिए जैसे, दशरथनाम राजा–बिल्कुल अशुद्ध प्रयोग है। या तो 'दशरथो नाम राजा' होना चाहिये, या 'दशरथनामा राजा' होना चाहिये (दशरथो नाम यस्य स)।

२८३—नाम शब्द का एक दूसरा अर्थ है—वस्तुत, निश्चय ही, सत्यत. जो साधारणतया प्रयोग मे आता है, जैसे मया नाम जितम् (विक्रमो० १)—मै वस्तुत. जीत गया हूँ। विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम (शा० १)–अवश्य ही, आश्रमो में बहुत सीधा-सादा वस्त्र पहन कर घुसना चाहिए।

विशेष—जब नाम शब्द क., किम्, कथम् इत्यादि के साथ आता है तब इसका अर्थ होता है—सम्भवत मै जानना चाहूँगा (२५७ सेक्शन के इव के साथ तुलना कीजिये), जैसे, को नाम राज्ञा प्रिय (पचतंत्र)—सम्भवत राजाओं का कौन प्रिय है। को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तुर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे (उत्तर० ७)—मै जानना चाहता हूँ कि जब भाग्य अपनी शक्ति दिखलाने पर तुला हो तो भला उसके दरवाजे को कौन बन्द कर सकता है? अयि कथ नामैतत् (उत्तर० ६)—वस्तुत यह कैसी बात है?

२८४—नाम के निम्नलिखित प्रयोग भी होते है (१) बहाना रचना करने के लिये, जैसे, कार्तान्तिको नाम भूत्वा (दशकुमार २।६)—ज्योतिषी का बहाना करके।

१—नाम प्राकाश्यसंभाव्यक्रोधोपगमकुत्सने (अमर०)

नाम प्राकाश्यकुत्सयो

सम्भाव्याभ्युपगमयोरल्के विस्मये कुधे। मे०

तदाचार्यस्य दोषो ननु (मालविका० १)—जब मन्दबुद्धि शिष्या उपदेश को नष्ट कर देती है, तो क्या वस्तुत आचार्य का दोष नहीं ?

(२)सशोधक शब्द की जगह, जैसे, ननु पदे परिवृत्य भण (मृच्छ ६)—मैं कहता हूँ, कि शब्दों को बदल कर कहो। ननु भवानग्रतो मे वर्तते (शा०२)—क्यो, आप मेरे सामने हैं (क्या यह बात सच नहीं है कि आप मेरे सामने हैं) ? ननु विचिनोतु भवांस्तदस्मिन्नुद्याने (विक्रमो०२)—उसे तुम्हें इस बगीचे में खोजना चाहिए।

(३) "प्रार्थना करता हूँ" "कृपया" इन अर्थों मे, जैसे, ननु मां प्रापय पत्युरन्तिकम् (कुमार०४।३२)—कृपया मुझे मेरे पतिदेव के पास पहुँचा दीजिए।

(४) सम्बोधन करने मे। इस दशा में इसका अर्थ होता है "ओहो आहा", जैसे, राजवाहनोऽभाषत। ननु, मानव, अत्र भवानेकाकी किमिति निवसति (दशकु १।२)—राजवाहन ने कहा, "ऐ मनुष्य, तुम यहाँ अकेले क्यो रहते हो ?" ननु मूर्खा पठितमेव युष्माभिस्तत्काण्डे (उत्तर०४)—"हे मूर्खों, तुमने उस अध्याय मे यह विषय पहिले ही पढ़ लिया है।"

(५) प्रश्न करने मे, जैसे, ननु समाप्तकृत्यो गौतम (उत्तर०४)—क्या गौतम ने अपना कार्य समाप्त कर लिया ?

(क) तार्किक शास्त्रार्थों मे आपत्ति अथवा विरोधी सिद्धान्त उपस्थित करने के लिये ननु का प्रयोग होता है और अत्रोच्यते अथवा केवल उच्यते उस वक्तव्य के साथ जोड़ दिया जाता है जिसमें आपत्ति का उत्तर रहता है अथवा सिद्धान्त की काट रहती है, जैसे, 'ननु एकाधिक हरेज्ज्येष्ठ' इति वचनेन विषमो विभाग दर्शित इति। अत्रोच्यते'। सत्यमय विषमो विभाग सशास्त्रस्तथापि लोकविद्विष्टत्वान्नानुष्ठेय (मिताक्षरा)—अब यह आपत्ति की जा सकती है कि ज्येष्ठ पुत्र को दो भाग मिलना चाहिये इस वचन मे पैतृक-सम्पत्ति का विभाग विषम है। इसका उत्तर यह है—यह बात सत्य है कि यह विषम विभाग शास्त्र-सङ्गत अथवा शास्त्रविहित है तथापि इसका अनुसरण नहीं किया जाना चाहिये, क्योंकि यह लोकव्यवहार के विरुद्ध है। इसी प्रकार ननु अचेतनान्यपि वृक्षादिशरीराण्यचेतनानां च गोमयादीनां शरीराणीति उच्यते। (शं० भा० २।१ ...)

९—यदि गर्जति वारिधरो गर्जतु तन्नाम निष्ठुरा. पुरुषा ।
अयि विद्यु त्प्रमदाना त्वमपि च दु.ख न जानासि ॥
(मृच्छ० ५)

१०—प्रश्चोतन नु हरिचन्दनपल्लवाना
निष्पीडितेंदुकरकन्दलजो नु सेक. ।
आतप्तजीवनमन.परितर्पणो मे
सजीवनौषधिरसो नु हृदि प्रसिक्त ॥ (उत्तर० ३)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—नन्वार्यमिश्रै प्रथममेवाज्ञप्तमभिज्ञानशाकु न्तल नामापूर्वनाटक प्रयोगेणाधिक्रियतामिति । (शा० १)

२—अनुपपन्नं खल्वीदृशं त्वयि । न कदाचित्सत्पुरुषा शोकपात्रात्मानो भवंति । ननु प्रवातेऽपि निष्कंपा गिरय । (शा० ६)

३—सखि लवंगिके दिष्ट्या वर्द्धसे । ननु भणामि प्रतिबुद्ध एव ते प्रियवयस्य· प्रतिपन्नचेतनो महाभागो मकरन्द इति । (मालती० ४)

४—आर्य ननु रामभद्र इत्येव मा प्रत्युपचार: शोभते तातपरिजनस्य । तथाभ्यस्तमभिधीयताम् । (उत्तर० १)

५—स शक्तिकुमारो नाम श्रेष्ठिपुत्रोऽष्टादशवर्षदेशीयश्चिंतामापेदे । नास्त्यदाराणामननुगुण-दाराणां वा सुखंनाम'। तत्कथं नु गुणवद्विन्देय कलत्रमिति । अथ परप्रत्ययाहृतेषु दारेषु यादृच्छिकीं सपत्तिमनभिसमीक्ष्य कार्तान्तिको नाम भूत्वा भुवं बभ्राम । (दशकुमार०७।६)

६—विधिप्रयुक्तां परिगृह्य सत्क्रियां परिश्रमं नाम विनीय च क्षणम् ।
उमां स पश्यन्नृजुनैव चक्षुषा प्रचक्रमे वक्तुमनुज्झितक्रम ॥ (कुमार० ५।३२)

७—नियमयसि विमार्गप्रस्थितानात्तदंड·
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय ।
अतनुषु विभवेषु ज्ञातय सतु नाम
त्वयि तु परिसमाप्त बन्धुकृत्य प्रजानाम् ॥ (शा० ५)

८—वपुषा करणोज्झितेन सा निपतन्ती पतिमप्यपातयत् ।
ननु तैलनिषेकबिन्दुना सह दीपार्चिरुपैति मेदिनीम ॥ (रघु० ८।३८)

९—अस्या सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चंद्रो नु कांतिप्रद
शृङ्गारैकरस· स्वय नु मदनो मासो नु पुष्पाकर ।
वेदाभ्यासजड· कथ नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
निर्मातु प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनि ॥ (विक्रमो० १)

षड्विंश पाठ

पुनः, प्रायः (प्रायेण), बत, बलवत्, मुहुः, यत् और यत्सत्यम्

२८८—साधारणतया "पुनः" का अर्थ हुआ करता है 'फिर', जैसे, **पुनर्विवक्षुः** (कुमार० ५।८३)—फिर से बोलने का इच्छुक। परन्तु प्रायः इसका अर्थ हुआ करता है 'परन्तु', 'इसके विरुद्ध', जैसे, **तदेव पञ्चवटीवनं। स एव आर्यपुत्र। मम पुनर्मन्दभाग्याया दृश्यमानमपि सर्वमेवैतन्नास्ति** (उत्तर० ३)—यह वही पञ्चवटी का जंगल है, और आर्यपुत्र भी वहीं हैं, परन्तु मुझ अभागिनी के लिए यह सब दिखाई पड़ते हुए भी कुछ भी नहीं है।

(क) "पुनः पुनः" अकेला "पुनः" से अधिक बलशाली होता है। इसका अर्थ होता है 'बार बार', जैसे **स्वपाठान् पुनः पुनर्वाचय**—अपने पाठों को बार-बार पढ़ो। किम् के साथ **पुनः** का उल्लेख पहिले ही किया जा चुका है (सेक्शन २६७ देखिए।)

२८९—प्रायः अथवा **प्रायेण** का अर्थ है 'साधारणतया' और यह साधारण नियम बनाने में काम आता है, जैसे, **प्रायो भृत्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभवं स्वामिनं सेवमानाः** (मुद्रा० ४)—जब स्वामी की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है तब साधारणतया उसकी सेवा करने वाले नौकर उसको त्याग देते हैं। **प्रायेणैते रमणविरहेष्वङ्गनानां विनोदाः** (मेघ० ८७)—प्रायः अपने प्रेमियों से वियोग हो जाने पर स्त्रियों के ये ही मनोरंजन हुआ करते हैं।

२९०—बत[1] निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है.—

(१) अफसोस अर्थ में जिससे दुःख, शोक अथवा करुणा प्रकट की जाती है, जैसे, **अहो बत महत् पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्** (श्रीमद्० १।४५)—हाय, शोक की बात है, हम लोग कैसा बड़ा पाप करने जा रहे हैं।

(२) हर्ष अथवा आश्चर्य, इन अर्थों में यह प्रायः अहो के साथ आता है, जैसे, **अहो बतासि स्पृहणीयवीर्य** (कुमार० ३।२०)—ओहो, तेरी वीरता

१—खेदानुकम्पासन्तोषविस्मयामन्त्रणे बत। (अ०)

पर बोझे का भारीपन नहीं मालूम पड़ता ? क्योंकि वह अपने सिर से पृथ्वी का फेंक नहीं देते। प्रियमाचरित लते त्वया मे यदियं पुनर्मया दृष्टा (विक्रमो० १)—ऐ लते, तुमने मेरी एक भलाई की है, क्योंकि यह मेरे द्वारा फिर एक बार देख ली गई।

विशेष—यत:-अत, चूँकि-इसलिए, इसलिए—अतः, का अर्थ रखने वाले वाक्यों का अनुवाद करने मे तत् अथवा तत: का प्रयोग होता है, अथवा यत् या यत के द्वारा सारा वाक्य अनूदित किया जा सकता है, जैसे अहं भ्रातरं गृहान्निष्कासयामि यत (यत:) सोऽतीव दुर्वृत्त:—मै अपने भाई को घर से निकाल दूँगा क्योंकि वह बहुत ही दुराचारी है।

२६४—यत: का अर्थ है 'जिस जगह से'। यह यस्मात् के स्थान पर प्रयोग मे आता है, जैसे, यतस्त्वया ज्ञानमशेषमाप्तम् (रघु० ५।४)—जिससे (अर्थात् जिस गुरुजी से) तुमने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। जब कारण प्रकट रहता है, तब इसका अर्थ होता है "क्योंकि", जैसे, किमेवमुच्यते ? महदन्तरं, यत: कर्पूरद्वीप: स्वर्ग एव (हित० ३)—तुम ऐसा क्यों कहते हो ? बड़ा भारी अन्तर है क्योंकि कर्पूरद्वीप साक्षात् स्वर्ग ही है।

२६५—'यत्सत्यम्' एक शब्द है, अलग-अलग दो शब्द नहीं हैं। इसका अर्थ है "निश्चय ही" "अवश्य ही", "सच पूछिये तो," "सत्यत:", जैसे, अमङ्गलाशंसयास्य वो वचनस्य यत्सत्यं कम्पितमिव मे हृदयम् (वेणी० १)—तुम्हारे अमङ्गलसूचक वचन से, सत्यत:, मेरा हृदय काँपता है।

अभ्यास

१—यद्वेतस: कुब्जलीला विडम्बयति तत्किमात्मन: प्रभावेण ननु नदीवेगस्य। (शा० २)

२—इदं तत्प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणमिति यदुच्यते। (शा० ५)

३—निराकरणविक्लवाया: प्रियाया: समवस्थामनुस्मृत्य बलवदशरणोऽस्मि। (शा० ६)

४—सर्वथा न कश्चिन्न खलीकरोति जीवितवृष्णा यदीदृशमवस्थामपि मामायासयति जलाभिलाष:। (काद० २५)

७—खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणै संतापितो मस्तके
वाञ्छन्देशमनातप विधिवशात्तालस्य मूलं गत ।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्न सशब्दं शिर.
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यात्यापद ॥ (भर्तृ० ९।६०)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—मै इस विषय पर कुछ भी बोलना उचित नही समझता, क्योकि मै इसके विवरण से परिचित नही हूँ।

२—चूँकि कल रात मे तुम लोगो ने मेरे घर मे सेंध मारी, इसलिए मै तुम लोगो को बन्दी बनाता हूँ और जॉच पड़ताल के लिये तुम्हे न्यायालय में ले चलता हूँ।

३—कन्या-सम्बन्धी मामलो मे गृहस्थ लोग प्राय अपनी पत्नियो के नेत्रों से देखते हैं।

४—आहा, इस स्थान का अनुपम वैभव ! सच बात तो यह है कि सौन्दर्य मे यह इन्द्र के बगीचे से भी स्पर्धा करेगा।

५—जिस जगह से तुम आए हो क्या वह जगह प्रचुर अन्न से युक्त है ?

६—मै स्वामी की आज्ञा-पालन करने जा रहा हूँ, पर तुम कहाँ जा रहे हो ?

७—इस प्रकार लकड़हारे ने अपना प्राण और धन बचाया, पर पिशाच पूरे बारह वर्ष काम मे लगा रहा।

८—सुवदना मुझसे कहती है कि उसकी स्वामिनी चन्द्रलेखा जिस दिन दुर्गा के मन्दिर में नाची थी उसी दिन से बहुत बीमार है। अब मै अवश्य यह पूछने जाऊँगा कि उसकी तबियत कैसी है।

९—यह साधारण नियम है कि मालिक लोग नौकरो के प्रति जो सम्मान प्रदर्शित करते हैं यह भृत्यों द्वारा कराये जाने वाले काम के प्रकार के अनुसार बदलता रहता है।

१०—क्या तुम समझते हो कि सर्य नहीं थकता है, क्योकि वह अपने आकाशमार्ग मे कभी-भी स्थिर नही रहता।

११—मित्र बहुत जल्द मेरे जालो को काट कर मुझे बचाओ, क्योकि यह सच ही कहा गया है कि विपत्ति मित्रता की कसौटी है।

—तुम मुझे उस बदमाश सिंह को दिखलाओ ताकि मैं उसे मार डालूँ। स्वामिन्, मम प्राणैः प्राणयात्रा विधीयतां येन ममोभयलोकप्राप्तिर्भवति (पञ्च० १।२) स्वामिन्, मेरा प्राण लेकर आप अपना जीव (प्राण) धारण करें ताकि मैं दोनों लोक पा जाऊँ।

२६७—यथा—तथा जब एक दूसरे के साथ प्रयुक्त होते हैं तो इनके निम्नलिखित अर्थ हुआ करते हैं.—

(१) जैसा—वैसा, इस अर्थ में कभी-कभी तथा के स्थान में तद्वत् का प्रयोग होता है, जैसे, यथा वृक्षस्तथा फलम्—जैसा वृक्ष वैसा फल। यथा बीजांकुरः सूक्ष्मः प्रयत्नेनाभिरक्षितः फलप्रदो भवेत् काले तद्वल्लोकः सुरक्षितः. (पञ्च० १।८)—जैसे अच्छे प्रकार से रक्षा किया हुआ बीज का अंकुर उचित समय पर फल देता है, उसी प्रकार भली भाँति रक्षा की हुई प्रजा।

(२) 'इस प्रकार .. ...कि' इस अर्थ में इस प्रकार के स्थान पर तथा आता है और कि के स्थान पर यथा आता है, जैसे, यदि वामनुमतं तथा वर्तेथा यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि (शा० ३)—यदि आप इसका अनुमोदन करें तो इस प्रकार आचरण करूँ कि मैं राजर्षि जी की दया का पात्र बन जाऊँ। अहं स्वामिनं विज्ञाप्य तथा करिष्ये यथा स वधं करिष्यति (पञ्च० १।२१) मैं श्रीमान जी से निवेदन करके इस प्रकार व्यवस्था करूँगा कि वह उसे मार डालेगा।

विशेष—ईदृश, तादृश, तावत्, एतावत्, इयत् इत्यादि शब्दों का प्रयोग 'तथा" के स्थान पर होता है, और सम्बन्धवाचक सर्वनामों के रूप (प्राय. येन) दूसरे उपवाक्य के साथ प्रयुक्त होते हैं, जैसे, ईदृशी अहं मन्दभागिनी यस्या न केवलमार्यपुत्रविरहः पुत्रविरहोऽपि (उत्तर० ३) —मैं ऐसी मन्दभागिनी हूँ कि मैं न केवल अपने पतिदेव से वियुक्त हूँ, अपितु अपने पुत्र से भी। मम चैतावान् लोभविरमो येन स्वहस्तगतं सुवर्णकङ्कणमपि यस्मै कस्मैचिद् दातुमिच्छामि (हित० १)—मेरा लोभत्याग इतना (इस प्रकार का) हो गया है, कि मैं अपने हाथ में स्थित सोने के कंगन को भी किसी भी व्यक्ति को दे देना चाहता हूँ।

—तुम मुझे उस बदमाश सिंह को दिखलाओ ताकि मैं उसे मार डालूँ। स्वामिन्, मम प्राणैः प्राणयात्रा विधीयतां येन ममोभयलोकप्राप्तिर्भवति (पञ्च० १।२) स्वामिन्, मेरा प्राण लेकर आप अपना जीव (प्राण) धारण करें ताकि मैं दोनों लोक पा जाऊँ।

२६७—**यथा—तथा** जब एक दूसरे के साथ प्रयुक्त होते हैं तो इनके निम्नलिखित अर्थ हुआ करते हैं—

(१) जैसा—वैसा, इस अर्थ में कभी-कभी **तथा** के स्थान में **तद्वत्** का प्रयोग होता है, जैसे, **यथा वृक्षस्तथा फलम्**—जैसा वृक्ष वैसा फल। **यथा बीजाङ्कुरः सूक्ष्मः प्रयत्नेनाभिरक्षितः फलप्रदो भवेत् काले तद्वल्लोकः सुरक्षितः** (पञ्च० १।८)—जैसे अच्छे प्रकार से रक्षा किया हुआ बीज का अंकुर उचित समय पर फल देता है, उसी प्रकार भली भाँति रक्षा की हुई प्रजा।

(२) 'इस प्रकार . . . . कि' इस अर्थ में इस प्रकार के स्थान पर **तथा** आता है और कि के स्थान पर **यथा** आता है, जैसे, **यदि वामनुमतं तथा वर्तेथा यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि** (शा० ३)—यदि आप इसका अनुमोदन करें तो इस प्रकार आचरण करूँ कि मैं राजर्षि जी की दया का पात्र बन जाऊँ। **अहं स्वामिनं विज्ञाप्य तथा करिष्ये यथा स वधं करिष्यति** (पञ्च० १।११) मैं श्रीमान् जी से निवेदन करके इस प्रकार व्यवस्था करूँगा कि वह उसे मार डालेगा।

विशेष—**ईदृश, तादृश, तावत्, एतावत्, इयत्** इत्यादि शब्दों का प्रयोग '**तथा**" के स्थान पर होता है, और सम्बन्धवाचक सर्वनामों के रूप (प्रायः **येन**) दूसरे उपवाक्य के साथ प्रयुक्त होते हैं, जैसे, **ईदृशी अहं मन्दभागिनी यस्या न केवलमार्यपुत्रविरहः पुत्रविरहोऽपि** (उत्तर० [illegible])—मैं ऐसी मन्दभागिनी हूँ कि मैं न केवल अपने पतिदेव से वियुक्त हूँ, अपितु अपने पुत्र से भी। **मम चैतावान् लोभविरहो येन स्वहस्तगतं सुवर्णकङ्कणमपि यस्मै कस्मैचिद् दातुमिच्छामि** (हित० [illegible])—मेरा लोभाभाव इतना (इस प्रकार का) हो गया है, कि मैं अपने हाथ में स्थित सोने के कंगन को भी किसी भी व्यक्ति को दे देना चाहता हूँ।

(३) चूंकि—इसलिये, जैसे, यथाय चलितमलयाचलशिला-सचय प्रचडो नभस्वांस्तथा तर्कयामि आसन्नीभूतः पक्षिराज (नागा० ४)—चूंकि मलय पर्वत पर स्थित प्रस्तर-समूह को हिला देने वाली यह हवा बड़ी प्रचण्ड (भयकर) है, इसलिये मैं समझता हूँ कि पक्षिराज आ गए है।

(४) यदि . ..तो, यदि . तर्हि के समान प्रयुक्त होता है। अथवा बहुत कड़ी शपथ के तौर पर यथा तथा' का प्रयोग होता है, जैसे,

वाङमन कर्मभि पत्यौ व्यभिचारो यथा न मे।
तथा विश्वम्भरे देवि मामतर्धातुमर्हसि।

(रघु० १५।८१)

—यदि अपने पतिदेव के प्रति मेरे आचरण मे मनसा, वाचा, कर्मणा कोई भी बुराई न हो, तो ऐ विश्वव्यापिनी पृथ्वी देवी, कृपा कर मुझे अपने अन्दर ले लो।

(५) जितना ..उतना उतना जितना-इस दशा में तथा का अर्थ होता है 'उतना' और 'यथा' का अर्थ होता है 'जितना' और विवक्षित अर्थ समानता सूचित करता है, जैसे, न तथा बाधते शीत यथा बाधति बाधते (सुभाषित०)—जाड़ा मुझको उतना नहीं सता रहा है जितना 'बाधति' शब्द। इस अर्थ मे यथा और तथा दोनों के साथ अथवा एक ही के साथ एव शब्द प्राय जोड़ दिया जाता है ताकि समानता और भी अधिक बलवती हो जाय, जैसे, वधूचतुष्केऽपि यथैव शान्ता प्रिया तनूजास्य तथैव सीता (उत्तर० ४)—चारो बहुओ मे सीता उन्हें इतनी प्यारी थी जितनी कि उनकी कन्या शान्ता।

२९८—[1] जब "यावत्" शब्द अकेला प्रयुक्त होता है तो इसका अर्थ होता है "जहाँ तक" "तक", और यह काल की अवधि अथवा मार्ग (दूरी) द्योतित करता है। ऐसी दशा में इसके योग में द्वितीया आती है, जैसे, स्तनत्यागं यावत् पुत्रयोरवेक्षस्व (उत्तर० ७)—इन पुत्रों की तब तक देख-रेख करो जब तक ये स्तन का दूध पीना छोड़ न दें। कयतमवधि यावदस्मच्चरितं चित्रकारेणालिखितम् (उत्तर० १)—चित्रकार द्वारा हमारी जीवन-घटना कहाँ तक चित्रित की गई है?

(क)—यावत् का कभी-कभी अर्थ होता है 'तो' 'अभी' और इससे तत्काल किए जाने वाले कार्य का बोध होता है, जैसे, तद् यावद् गृहिणीमाहूय संगीतकमनुतिष्ठामि (शा० १)—तो अपनी स्त्री को बुलाकर मैं संगीत प्रारम्भ करता हूँ। यावदिमां छायामाश्रित्य प्रतिपालयामि तां (शा०३)—इस छाया का सहारा लेकर, मैं उसकी प्रतीक्षा करता हूँ।

२९९—इतरेतरसम्बन्धी के तौर पर यावत्-तावत् के ये अर्थ होते हैं—

(१) उतना ही जितना, इस दशा में तावत् का अर्थ होता है उतना ही और यावत् का अर्थ होता है 'जितना' तथा दोनों संज्ञा या विशेषण की भाँति प्रयुक्त होते हैं। जैसे, पुरे तावन्तमेवास्य तनोति रविरातपम्। दीर्घिकाकमलोन्मेषो यावन्मात्रेण साध्यते (कुमार० २।३३)—उसके नगर में सूर्यदेव उतना ही घाम करते हैं जितने से तालाबों के कमलों की कलियाँ खिल जाँय।

(२) सब, इस दशा में दोनों (यावत्—तावत्) मिलकर साकल्य (सम्पूर्ण संख्या या सम्पूर्णता का अर्थ देते हैं, जैसे, यावद् दत्तं तावद् भुक्तम् (ग०भा०) —जितना मुझे दिया गया उतना सब मैंने खा डाला। यावन्मानं [illegible] शक्यमुपपादयितुं तावत् सर्वमुपपादितम् (मदन०६२)

कमाने के योग्य रहता है, तब तक उसका परिवार उससे अनुराग करता है (उसमे अनुरक्त रहता है)।

विशेष—जिन स्थलों में जब तक, तब तक प्रयुक्त होते हैं उनमें यावत् और तावत् दोनों का प्रयोग करना पड़ता है। यावत् का प्रयोग क्रियाविशेषण उपवाक्य के साथ होगा और तावत् का प्रयोग प्रधान उपवाक्य के साथ होगा, जैसे, यावद्राज्यभारो मयि विन्यस्तस्तावदह प्रजा अनुरक्ता. करिष्यामि—जब तक राज्य का भार मुझको सौंपा जाता है, तब तक मै प्रजा को सन्तुष्ट रक्खूँगा। सूत तावद्रथ स्थापय यावदहमवतरामि—ऐ सारथि, जब तक मे उतर न आऊँ तब तक रथ को रोक रक्खो।

(ख) पहिले ही, पूर्व ही का अनुवाद 'यावन्न' से किया जाता है, जैसे, सरोवर से इनके उड़जाने के पूर्व ही मुझे इनसे समाचार प्राप्त कर लेना चाहिये—यावदेते सरसो नोत्पतन्ति तावदेतेभ्य प्रवृत्तिरवगमयितव्या (विक्रमो०४)।

३००—कभी-कभी यावत्-तावत् का केवल जब-तब अर्थ होता है, जैसे, यावदसौ पान्थ उत्थायोर्ध्वं निरीक्षते तावत्तेनावलोकितो हस काण्डेन हतो व्यापादितश्च (हित०३)—जब पथिक उठकर ऊपर की ओर देखने लगा तब हंस उसके द्वारा देखा जाकर बाण से मार दिया गया। कभी कभी यावत् का अर्थ होता है ज्योंही' और तावत् का अर्थ होता है 'त्योंही,' जैसे, एकस्य दुःखस्य न यावदन्त गच्छामि तावद् द्वितीय समुपस्थित मे (हित०१)—ज्योंही मैं ने एक विपत्ति से पार पाया त्योंही मेरे ऊपर दूसरी आ उपस्थित हुई।

अभ्यास

१—भगवन्सकल्पयोने प्रतिवधत्स्वपि विषयेष्वभिनिवेशस्य तथा प्रहरसि यथा जनोऽय कालातरक्षमो न भवति। (मालविका०३)

२—अकथितोऽपि ज्ञायत एव यथायमाभोगस्तपोवनस्येति। (शा०१)

३—आश्रमवासिनो यावदवेक्ष्याहमुपावर्ते तावदार्द्रपृष्ठा क्रियता वाजिन। (शा०१)

४—बहुवल्लभा राजानः श्रूयंते। तद्यथा नौ प्रियसखी बधुजन-शोचनीया न भवति तथा निर्वाहय (शा०३)

५—सञ्जीवक आह। भो मित्र कथ ज्ञेयो मयासौ दुष्टबुद्धिरिति। इयत काल यावदुत्तरोत्तरस्नेहेन प्रसादेन चाह दृष्टः। (पच१।१५)

६—यद्येव नकुलस्य बिलद्वारात्सर्पकोटर यावन्मत्स्यमासशकलानि प्रक्षिप यथा नकुलस्तन्मार्गेण गत्वा त दुष्टसर्पं विनाशयति। (पच०१।२०)

७—अयि मातर्देवयजनसभवे देवि सीते ईदृशस्ते निर्माणभाग. परिणतो येन लज्जया स्वच्छदेनाक्रदितुमपि न शक्यते। (उत्तर० ४)

८—ततो यावदसौ पांथस्तद्वचसि प्रतीतो लोभात्सरसि स्नातु प्रविशति तावन्महापके निमग्न. पलायितुमक्षम। (हित ०१)

९—यथा यथेय चपला दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जलम-लिनमेव कर्म केवलमुद्वमति। (कादम्०१०५)

१०—यावत्सर्वाविनो न परापतति तावद्वत्सया मालत्या नगरदेवता-गृह गतव्यमित्यादिशति भगवतीनिदेशवर्तिनोऽमात्यदारा। (मालती०६)

११—यथैतामुख्यागतैरपि महान् कलकल श्रुतोऽस्माभिस्तथा तर्कयामि। अन्यदपि पारक्य बलमुपगतमिति। (मालती० ८)

१२—क्रोध प्रभो सहर सहरेति यावद्गिर खे मरुता चरन्ति।
तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेष मदन चकार॥ (कुमार० ३।७२)

१३—यथैव श्लाघ्यते गगा पदेन परमेष्ठिन।
प्रभवेण द्वितीयेन तथैवोच्छिरसा त्वया॥ (कुमार०६।७०)

१४—अर्थेन तु वि[illegible] पुन[illegible]।
क्रिया नर्मा विनश्यति [illegible] यथा॥ [illegible]

—यावत. कुरुते जंतुः सबधान्मनसः प्रियान् ।
तावतोपि विलिख्यन्ते हृदये शोकशकवः ॥ (हित०४)

६—स तावदभिषेकाते स्नातकेभ्यो ददौ वसु ।
यावतेषा समाप्येरन् यज्ञा पर्याप्तदक्षिणा. ॥ (रघु०१० ।१७)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—यावत्तत्रभवान्वयस्य. कार्यासनादुत्तिष्ठति तावदेतस्मिन्विरलजनसपाते विमानोत्सगपरिसरे स्थास्यामि (विक्रमो० २) ।

२—तदेवंप्रायेऽतिकुटिलकष्टचेष्टासहस्रदारुणे राज्यतन्त्रेऽस्मिन् महामोहान्धकारकारिणि च यौवने कुमार तथा प्रयतेथा यथा नोपहस्यसे जनैर्नोपालभ्यसे सुहृद्भिर्नोक्षिप्यसे विषयैर्न कृष्यसे रागेण नापह्रियसे सुखेन (कादम्० १०६)

३—यथा यथा चलितजलयन्त्रविगलिताभिरंबुधाराभिराहन्यते सा तथा तथा वैद्युतानलमहोदर इव स्फुरति मदनपावक । (कादम्०२५१)

४—चन्द्रापीड प्रातरेव किंवदन्ती शुश्राव ।यथा किल दशपुरीं यावत् परागतः स्कन्धावार इति (कादम्०२६२)

५—वत्स यावदयं संसारस्तावत्प्रसिद्धैवेयं लोकयात्रा । यत्पुत्रैः पितरो लोकद्वयेऽप्यनुवर्तनीया इति । (वेणी० ३) ।

६—अपि दृष्टवानसि मम प्रियां वने कथयामि ते।तदुपलक्षण शृणु ।
पृथुलोचना सहचरी यथैव ते सुभग तथैव खलु सापि वीक्षते ॥ (विक्रमो० ४)

७—वितरति गुरु प्राज्ञे विद्या यथैव तथा जडे
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा ।
भवति च पुनर्भूयान् भेद. फलं प्रति तद्यथा
प्रभवति शुचिर्बिम्बोद्ग्राहे मणिर्न मृदां चय ॥ (उत्तर० २)

८—यथा कालकृतोद्योगात्कृषि फलवती भवेत् ।
तद्वन्नीतिरियं देव चिरात्फलति न क्षणात् ॥ (हित०२)

९—क्रोडीकरोति प्रथमं यथा जातमनित्यता ।
धात्रीव जननी पश्चात्तथा शोकस्य कः क्रम ॥ (नागानन्द० ४)

१०—यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद्भूतसमागम ॥ (हित०४)

११—[illegible] तथा लोक [illegible] दिलीपप्रिये ।
[illegible] प्रीतिदानेषु [illegible] यथा ॥ (रघु० १५।६८)

१२—[illegible] यावच्च दूरे जरा
[illegible] ।

आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
प्रोद्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥ (भर्तृ० ३ । ==)

१३—यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः । (श्रीमद्० ११।२६)

संस्कृत में अनुवाद कीजिये—

१—अपने मित्रों के परामर्श से मेरे द्वारा उसके नाश के लिये मैंने जो उपाय सोचे गए है, वे निम्नलिखित हैं।

२—मैं समझता हूँ कि आपने पहिले ही से सुन रक्खा है कि स्वर्ग में अप्सरा नाम की वाराङ्गनाओं का एक वर्ग रहता है।

३—शूरता में तो वह भीम के समान है, पर हृदय की दुष्टता में वह निर्दय से निर्दय राक्षस को भी मात करता है।

४—रावण ने अपनी तपस्या द्वारा शंकर जी को ऐसा प्रसन्न कर लिया कि उन्होंने उसे कई वरदान दिये।

५—यह राजा अपने देश के ऊपर ऐसी अच्छी तरह शासन करता है कि इसकी असंख्य प्रजाओं में से कोई भी इसके प्रति असन्तुष्ट नहीं है।

६—चूँकि युद्ध की सारी तैयारियाँ पूरी हो चुकी हैं, इसलिये शत्रु के साथ सन्धि करना मैं उचित नहीं समझता।

७—मैं जितना ही अधिक इस संसार के बारे में जानता हूँ उतना ही मेरा मन इससे विरक्त होता जाता है।

८—ज्योंही वह अपने मकान में घुसा त्योंही उसकी स्त्री भी चिल्लाती हुई उसके पास झपट कर आई कि [illegible] काट खाया है।

२१—उसने इक्कीस दिन डाक्टर की दवा खाई, पर कुछ भी लाभकर परिवर्तन न पाकर उसने वह दवा लेना बन्द कर दिया।

१२—अध्यापक ने बच्चे को छड़ी से इतनी कड़ी मार मारी कि वह बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

१३— दार्शनिक लोग जितना ही अधिक ईश्वर के बारे में सोचते हैं उतना ही कम उसे जान पाते हैं।

१४ वह अपने आचरण की शुचिता के कारण। उतना ही विख्यात है जितना कि अपने गुणों के कारण, और परोपकार करने में उतना ही तत्पर है जितना कि अपनी इन्द्रियों का नियन्त्रण करने में।

१५—क्या तुम नहीं जानते कि सभी मांसाहारी पशुओं के पंजे होते हैं (यावत् तावत् का प्रयोग कीजिये)।

१६— जितना ही अधिक परिश्रम से पढ़ोगे, तुम्हारी असफलता की उतनी उतनी ही कम "गुंजाइश" रहेगी और सुधार की सम्भावना उतनी ही अधिक होती चलेगी।



अष्टाविंश पाठ

वरं-न, वा, स्थाने, हन्त, हा और हि

३०१—"वरम्—न" के पीछे च, तु, अथवा पुन आता है। इसका अर्थ होता है—अच्छा है . . न कि, अच्छा है .... परन्तु नहीं। **वरम्** उस उपवाक्य के साथ आता है जिसमें अधिक वाञ्छित वस्तु रहती है, वह अधिक वाञ्छित वस्तु कर्ता कारक मे रक्खी जाती है, और **न च, न तु** अथवा **न पुन** उस उपवाक्य के साथ रक्खा जाता है जिसमें कम वाञ्छित वस्तु रक्खी जाती है (कम वाञ्छित वस्तु भी कर्ता-कारक मे रक्खी जाती है), जैसे, **वरं कन्या जाता न चाविद्वास्तनय** (पञ्च० १।१)—अच्छा है कि कन्या पैदा होवे, परन्तु मूर्ख पुत्र नहीं। **वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगम** (हित०१) —प्राण छोड देना अच्छा है, परन्तु नीचों का सम्पर्क (सान्निध्य) अच्छा नहीं।

(क) कभी कभी "न" अकेला ही आता है, च, तु अथवा पुन के साथ जुड़ा हुआ नहीं आता, जैसे, **याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा** (मेघ० ५)—श्रेष्ठ पुरुष से की हुई याचना चाहे असफल भी हो जाय तो भी अच्छा है, परन्तु अधम पुरुष से की हुई याचना चाहे सफल भी हो जाय तो भी अच्छा नहीं। **वरं भ्रान्तं वनचरै सह, न मूर्खजनसम्पर्क** (भर्तृ० २।१४)—जङ्गली जानवरों (अथवा मनुष्यों) के साथ भ्रमण करना अच्छा है परन्तु मूर्खों के साथ सम्पर्क रखना अच्छा नहीं।

३०२[1]—वा एक दूसरा संयोजक है जिसका अर्थ है 'या'। इसका प्रयोग च की तरह होता है।
(सेक्शन २७२) देखिए जैसे, राम वा गोविन्द—रामो गोविन्दो वा अथवा **रामो वा गोविन्दो वा**।

(क) वा के निम्नलिखित अर्थ भी होते हैं —

१—वा समुच्चय अर्थे उपमानविकल्पयोः। (?)

१) और. भी. जैसे, पत्रलेखे कथय महाश्वेतायाः कादम्बर्याश्च कुशली वा सकल परिजन इति (कादम्० २३०)—पत्रलेखा, मुझे बताओ कि महाश्वेता और कादम्बरी सकुशल तो हैं, और यह भी बताओ रा भृत्यवर्ग सकुशल तो है।

(२) वा शब्द समान और इव का भी अर्थ देता है, जैसे, जाता मन्ये मथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम् (मेघ० ८६)—मैं उसे पाले से मारी हुई ानी के समान विकृत आकार वाली (परिवर्तित आकार वाली) समझता हूँ।

(३) विकल्प से, प्राय व्याकरण-सम्बन्धी नियमों में, जैसे, दोषो णौ। चेत्तविरागे (पाणिनि० ६।४। ६०—६१।)—प्रेरणार्थक में दुष् का उ कर दिया जाता है, परन्तु जब इसका अर्थ होता है 'मस्तिष्क को उलट- देना' तब विकल्प करके उ को दीर्घ किया जाता है।

(ख) इव या नाम के समान सम्भवत के अर्थ में वा शब्द प्रश्नवाचक ामों के साथ और प्रश्नवाचकसर्वनाम-निष्पन्न शब्दों के साथ जोड़ दिया है, जैसे, मृत को वा न जायते (पंच० १।१) सम्भवत. कौन मरा हुआ के फिर से पैदा नहीं होता। कस्य वान्यस्य वचसि मया स्थातव्यम् ादम्० १५६)—दूसरे किस व्यक्ति के कहने के अनुसार मैं व्यवहार करूँ। वा गम्यते (उत्तर० ३)—सचमुच तुम कैसे जा सकते हो या जाओगे ?

३०३—वा... वा का अर्थ होता है "या तो या" जैसे, उभे एव वोढुमुभयोर्वीजमाहितम्। सा वा शम्भोस्तदीया वा मूर्तिर्जलमयी मम मार० २। ६०)—हम दोनों के वीर्य को केवल दो ही धारण करने में समर्थ या तो शम्भु जी के वीर्य का पार्वती. या मेरे वीर्य को उनकी जलमयी मूर्ति। कविपरिश्रमानुरोधाद् वा उत्तानकथावस्तुगौरवाद् वा नवनाटकदर्शन- कुतूहलाद् वा भवद्भिरवधान दीयमान प्रार्थये (वेणी० १)—मैं प्रार्थना ता हूँ कि आप लोग इधर ध्यान दें, चाहे कवि के परिश्रम का आदर करके, हे उत्तान कथावस्तु के महत्त्व का विचार करके. चाहे नए नाटक के अभिनय देखने की इच्छा से।

३०४—स्थाने औचित्यत यह सर्वथा उचित ही है कि—इन अर्थों में स्थाने शब्द का प्रयोग क्रियाविशेषण अव्यय के तौर पर होता है, से. स्थाने प्राणा कामिना दूत्यधीना (मेघ० ३)—यह उचित ही कहा

गया है कि प्रेमियों (कामियों) का प्राण दूतिया के अधीन होता है। स्थाने तपो दुश्चरमेतदर्थमपर्णया पेलवयापि तप्तम् (कुमार० ७ । ६५)—यह सर्वथा उचित ही है कि कोमलांगी होते हुए भी अपर्णा ने उन (शिवजी) के लिए बहुत ही कठिन (घोर) तपस्या की।

(क) अस्थाने का अर्थ है "अनुपयुक्त" "अनवसर", जैसे, अस्थाने द्वयोरपि प्रयत्न (मुद्रा० २)—दोनों का प्रयत्न अनवसर अथवा अनुपयुक्त था।

३०५—[1]"हत" निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है—

(१) हर्ष, आश्चर्य, जैसा कि हिन्दी के 'अरे' और 'ओह' शब्दों से प्रकट किया जाता है, जैसे, हत प्रवृत्त मगीतकम् (मालविका० १)—अरे, संगीत आरम्भ हो गया।

(२) अनुकम्पा, खेद, जैसे, पुत्रक, हत ते धानाका (ग० म०)—ऐ पुत्र, खेद (शोक) का विषय है कि तुम्हारे पास केवल धानाक है।

(३) विषाद-सूचक ओह, या हाय, जैसे, हत, धिङ् मामधन्यम् (उत्तर० १)—हाय, मुझ अभागे को धिक्कार है।

(४) यह कभी कभी वाक्यारम्भ करने के लिये प्रयुक्त होता है, जैसे, हत ते कथयिष्यामि (राम० १।४८।२४)—अच्छा, अब मैं आप से कहूँगा।

३०६—[2]"हा" शोक, विषाद, खेद, व्यथा, वेदना का अर्थ गमित करता है, जैसे, हा प्रिये जानकि (उत्तर० ३)—हाय प्यारी जानकी। हा हा देवि स्फुटति हृदयम् (उत्तर० ३)—हाय, देवी मेरा हृदय विदीर्ण होता है। कभी कभी यह आश्चर्य या विस्मय भी सूचित करने के लिये प्रयोग में लाया जाता है, जैसे, हा कथं महाराजदशरथस्य धर्मदारा प्रियसखी मे कौसल्या—(उत्तर० ४)—ओहो, यह तो वस्तुतः महाराज दशरथ की धर्मपत्नी मेरी प्रिय सखी कौसल्या है।

७—१"हि" कदापि वाक्य के प्रारम्भ में नहीं प्रयुक्त होता है। यह लिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है :—

(१) 'क्योंकि', बहुत ही शुद्ध और सुदृढ तार्किक युक्ति सूचित करता . अग्निरिहास्ति धूमो हि दृश्यते (ग० म०)—यहाँ आग है क्योंकि दिखाई पड़ता है। अपि महर्षिणा त्वं गृहायानुमतः कालो ह्यय तु द्वितीयमाश्रम (रघु० ५।१०)—क्या तुम गृहस्थ बनने के लिये महर्षि अनुमति पा चुके हो, क्योंकि यह द्वितीय आश्रम में प्रवेश करने का है।

विशेष—किसी प्रयोग-विशेष के सम्बन्ध में जो साधारण वचन या कथन कहे हैं, उनमें "हि" का यह अर्थ छिपा रहता है।

(२) वस्तुतः, सत्यतः, जैसे देव, प्रयोगप्रधान हि नाट्यशास्त्रं किमत्र व्यवहारेण (मालविका० १)—महाराज, नाट्यशास्त्र में वस्तुतः प्रयोग ही वस्तु होता है, इस विषय में मौखिक वाद-विवाद से क्या लाभ? न हि नलिनीं दृष्ट्वा ग्राहमवेक्षते मतगजः (मालविका० ३)—वस्तुतः कमलनी देखकर हाथी ग्राहकी परवाह नहीं करता।

(३) इसका प्रायः 'स्फुटार्थ' 'उदाहरणार्थ' अर्थ हुआ करता है। जब तथा के अर्थ में कोई बात किसी पूर्वोल्लिखित वचन के उदाहरण-रूप में कही जाती उस समय भी 'हि' का प्रयोग होता है, जैसे, प्रजानामिव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्। सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः (रघु १।१८)—वह प्रजाओं का हित करने के लिये उनसे कर लेता था, उदाहरणार्थ सूर्यदेव को हजार गुना बढ़ाकर लौटाने के लिए ही जल को पीते हैं।

(४) 'केवल', 'अकेला'। किसी बात पर बहुत बल देकर कहने में 'हि' का प्रयोग होता है जैसे मूढो हि मदनेनायास्यते (कादम्० १५५)—मूर्ख पुरुष कामदेव से सताया जाता है।

(५) कभी कभी अलङ्कार के तौर पर प्रयुक्त होता है।

१—'हि' पादपूरणे हेतौ विशेषेऽप्यवधारणे (वि०)

अभ्यास

१—शकुंतला—सखि कस्य वान्यस्य कथयिष्यामि किंत्वायासयित्री-दानीं वा भविष्यामि।

२—उभे—अत एव खलु निर्बन्धः। स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति। (शा० ३)

३—हन्त भोः शकुंतला पतिकुलं विसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम्। (शा० ४)

४—स्थाने खलु प्रत्यादेशविमानिताप्यस्य कृते शकुंतला क्लाम्यति। (शा० ६)

५—अविनीत किं नोऽपत्यनिर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि। हन्त वर्धते ते संरम्भः। स्थाने खलु ऋषिजनेन सर्वदमन इति कृतना-मधेयोऽसि। (शा० ७)

६—स्थाने खलु नारायणमृषिं विलोभयन्त्यस्तदूरुसम्भवामिमां दृष्ट्वा व्रीडिताः सर्वा अप्सरस इति। (विक्रमो० १)

७—भवादृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम्। अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखमुप-देशगुणाः। (कादम्० १०३)

८—तदेषा भवतः कांता त्यज वैनां गृहाण वा।
उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी॥ (शा० ५)

९—अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः॥
(कुमार० १।३)

१०—बहूनामप्यसाराणां समवायो हि दुर्जयः
तृणैरावेष्ट्यते रज्जुर्यया नागोऽपि बध्यते (पञ्च १।२८)

११—कुसुमान्यपि गात्रसंगमात्प्रभवन्त्यायुरपोहितुं यदि
न भविष्यति हन्त साधनं किमिवान्यत्प्रहरिष्यतो विधेः॥
(रघु० ८।४४)

१२—सेवा लाघवकारिणीं कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिं विदुः (मुद्रा०३)।
१३—वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतं
वरं क्लैब्यं पुंसां न च परकलत्राभिगमनम्।
वरं प्राणत्यागो न च पिशुनवाक्येष्वभिरुचि-
र्वरं भिक्षाशित्वं न च परधनास्वादनसुखम्॥
(हित०१)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त-वाक्य

१—वरमावाभ्यां कतिपयदिवसाननयोरप्यदर्शनकृताः क्लेशा अनुभूता न पुनरस्य वैशंपायनानवलोकनदुःखदीनं दिने दिने मुखमीक्षितम् (कादम्०२०४)
२—असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः॥ (शा०१।)
३—सुतनु हृदयात्प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते
किमपि मनसः संमोहो मे तदा बलवानभूत्।
प्रबलतमसामेवंप्राया शुभेषु हि वृत्तयः
स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया॥ (शा०७)
४—राजा—एवमादिभिरनुपक्रम्योऽयमातंकः। पश्य
कुसुमशयनं न प्रत्यग्रं न च चन्द्रमरीचयो
न च मलयजं सर्वांगीणं न वा मणियष्टयः।
मनसिजरुजं सा वा दिव्या ममालमपोहितुं
रहसि लघयेदारब्धा वा तदाश्रयिणी कथा॥ (विक्रमो०३)
५—स्थाने त्वां स्थावरात्मानं विष्णुमाहुस्तथाहि ते।
चराचराणां भूतानां कुक्षिराधारतां गतः॥ (कुमार०६।६८)
६—आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती।
पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति॥ (मेघ०)
७—सारथी—हा वत्से
निवृत्तां शिष्या चार्पयामि मम तत्तिष्ठतु तथा।
विशुद्धेरुत्कर्षस्तदपि तु मम भक्तिं द्रढयति॥
८—शिशुर्वा शिष्या वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतो
गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः॥ (उत्तर०४)

९—स्थाने भवानेकनराधिप सन्नकिञ्चनत्वं मखजं बिभर्ति।
पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः ॥ (रघु० ५। १६)

१०—प्रेष्यभावेन नामेयं देवीशब्दक्षमा सती।
स्नानीयवस्त्रक्रियया पत्त्रोर्णं वोपयुज्यते ॥ (मालविका० ५)

११—नृपतेः प्रतिषिद्धमेव तत्कृतवान् पङ्क्तिरथो विलङ्घ्य यत्।
अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः ॥ (रघु० ९।७४)

१२—तमवेक्ष्य रुरोद सा भृशं स्तनसंबाधमुरो जघान च।
स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते ॥ (कुमार० ४। २६)

१३—व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतुर्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ॥
(मालती० १)

१४—अर्हस्येनं (दावाग्निं) शमयितुमलं वारिधारासहस्रै-
रापन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् (मेघ० ५४)

१५—स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः ॥ श्रीमद्०
११।३६

१६—राक्षस—अहो सुश्लिष्टोऽभूदयं प्रयोगः।
तेनैवाय न ममेति नोत्तरमिदं मुद्रा मदीया यतः
सौहार्दं शकटेन खण्डितमिति श्रद्धेयमेतत्कथम्।
मौर्ये भूषणविक्रयं नरपतौ को नाम संभावयेत्
तस्मात्सप्रतिपत्तिरेव हि वरं न ग्राम्यमत्रोत्तरम् ॥ (मुद्रा० ५)

१७—स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं शमयति परितापं छायया संश्रितानाम् ॥

१८—उचितः प्रणयो वरं विहन्तुं बहवः खण्डनहेतवो हि दृष्टाः।
उपचारविधिर्मनस्विनीनां न तु पूर्वाभ्यधिकोऽपि भावशून्यः ॥ (मालविका ३)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—एक दरबान ने स्वयं दरवाजे पर बैठे माली पर ओंछा निर्दिष्ट करना अभिमानी स्वामी की सेवा प्रशासन करना ही अपना सबसे अधिक अच्छा है।

२—या तो वह या उसके दोनों सारे कुम करने में समर्थ हैं पर ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं।

३—यह उचित ही है कि द्रव्य को मितव्ययता-पूर्वक खर्च करने के लिये यह तुम्हें चेतावनी दे रहा है क्योंकि तुम्हारी कन्या का विवाह प्रतिदिन निकट आता जा रहा है।

४—जब पुरुष के ऊपर विपत्तियाँ आ पड़े, तो विवेक (परिच्छेद) ही सच्ची बुद्धिमत्ता (पाण्डित्य) है, क्योंकि जो लोग विवेक के बिना आचरण करते हैं उनकी विपत्तियाँ बढ़ जाती हैं।

५—जिस कवि ने यह कहा कि एक दोष बहुत से गुणों के समूह में लुप्त हो जाता है उसने ठीक से मानुषिक प्रकृति का निरीक्षण (अध्ययन) नहीं किया, क्योंकि प्राय दरिद्रता सद्गुणों के समूह को भी नष्ट कर देती है।

६—सचमुच दूसरो का प्राण बचाने के लिए इस उदार-चित्त पुरुष के अतिरिक्त और कौन अपने प्राणों को सकट में डालेगा।

७—ऐ स्त्री, निश्चय जानो कि तुम अचिरात् अपने पति से संयुक्त हो जाओगी, क्या यह बात सच नहीं है कि जिस नदी का जल ग्रीष्म में सूख जाता है, वह फिर वर्षा ऋतु मे अपने प्रवाह से सयुक्त हो जाती है।

८—मैं सभी देवताओं को समान श्रद्धा से पूजता हूँ, चाहे वे यवनों के हों चाहे ब्राह्मणों के हों।

९—बन्धुओं के बीच में धनहीन जीवन निर्वाह करने की अपेक्षा मैं व्याघ्रों और वृक्षो से भरे हुये जङ्गल को अधिक पसद करूँगा।

१०—पृथ्वी पर जो जो वस्तुएँ मुझे प्रियतम थीं उनके नाश हो जाने पर भी जीवित रहने वाले मुझको धिक्कार है।

११—ओ हो, जो अँगूठी मुझसे खो गई थी, वह मिल गई।

१२—ओ हो इस पुरुष की आकृति कैसी प्रसन्न है।

१३—यह उचित ही है कि रामायण के प्रणेता ने उनके असंख्य कृत्यों का वर्णन करने के लिये दिव्य वाणी का प्रयोग किया।

१४—सभी राजाओं में से उसने केवल इस राजा को पति चुना, क्योंकि मन अपने पूर्व सम्बन्धों को जानता रहता है।

१५—भला दुष्टों के फन्दे में फँस कर कौन सा पुरुष सरलता से बच जाता है। और कौन सा कमजोर आदमी बलवानों के साथ संघर्ष करने के प्रयत्न में असफल नहीं हुआ है।

ऊनत्रिंश पाठ

आत्मनेपद और परस्मैपद

सूचना—इस पाठ मे तथा तीसवें पाठ में जिन उद्धरणों के सामने कुछ नहीं लिखा गया है, वे सिद्धान्त-कौमुदी से लिए गए हैं तथा भट्टि से भट्टि-काव्य आठवाँ सर्ग समझना चाहिये।

३०८—संस्कृत मे दो पद होते हैं—आत्मनेपद और परस्मैपद। आत्मनेपद यह सूचित करता है कि क्रिया का फल कर्ता के लिए है (कर्तृगामि फलम्), जैसे, कुरुते का अर्थ हुआ "अपने लिए करता है"। परस्मैपद यह सूचित करता है कि क्रिया का फल दूसरे के लिए है, जैसे, गच्छति का अर्थ हुआ दूसरे के लिए जाता है"। पर यह भेद कार्यरूप में नहीं माना जाता। इन शब्दों के मौलिक अर्थ वही हैं जो कि अभी बताए गए हैं, पर सर्वत्र इनका पालन करना असम्भव हो जाता है। संस्कृत लेखक दोनों पदों को बिना किसी भी भेद भाव के प्रयोग में लाते हैं, जैसे, निदेशमिदानीं श्रोतुमिच्छामि (मालविका० १)—अब मैं सन्देश सुनना चाहता हूँ। उत्कण्ठासाधारणं परितोषमनुभवामि (शा० ४)। यावद् यते साधयितुं त्वदर्थम् (रघु० ५। २५)

यदि यह कहा जाय कि यह भेद उभयपदी धातुओं के विषय में ही माना जाता है, तो यह बात भी प्रयोगों तथा उदाहरणों से सिद्ध नहीं होती, जैसे, राजा स्वसूनोश्चन्द्रापीड इति नाम चकार। शुकनासोऽपि विप्रजनोचितं वैशम्पायन इति नाम चक्रे (कादम्० ७४)। यहाँ पर दोनों पद एक ही अर्थ में प्रयुक्त हैं।

गम् धातु परस्मैपदी है, परन्तु सम् उपसर्ग पूर्वक गम् धातु आत्मनेपदी हो जाती है। शास् (शासन करना) परस्मैपदी धातु है, परन्तु आ उपसर्ग पूर्वक शास् धातु (आशीर्वाद देना) आत्मनेपदी हो जाती है। इस प्रकार की कुछ धातुओं का उल्लेख इस पाठ में तथा अगले पाठ में होगा।

भ्वादिगणी धातुएँ

३१०[1]—उपसर्ग रहित रहने पर क्रम् धातु उभयपदी होती है। परन्तु जब यह आत्मनेपद में रहती है तब यह नैरन्तर्य अथवा बाधाभाव, शक्ति, विकास या उन्नति का अर्थ सूचित करती है, जैसे, क्रममाणोऽरिसमदि (भट्टि० ८।२२)—शत्रु की सभा में निर्बाध घूमता हुआ। अध्ययनाय क्रमते—अध्ययन के लिए स्फूर्ति दिखलाता है। क्रमतेऽस्मिन् शास्त्राणि—इसमें शास्त्र विकसित होते हैं।

(क) उप तथा परा पूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होती है और वही उपरिलिखित अर्थ सूचित करती है जैसे इत्युक्त्वा खे पराक्रस्त (भट्टि० ८।२२)—ऐसा कह कर उसने आकाश में अपनी शक्ति (पराक्रम) दिखाई। परीक्षितुमुपाक्रस्त राक्षसी तस्य विक्रमम् (भट्टि० ८।२३)—उस राक्षसी ने उसके शौर्य की परीक्षा लेने की धृष्टता की।

(ख) आ पूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होती है और किसी नक्षत्र का उदय होना सूचित करती है जैसे, आक्रमते सूर्य (म० भा०)—सूर्य उदित होता है। देवमार्गमनारोव (भट्टि० ८। २३)। परन्तु आक्रामति धूमो हर्म्यतलात्—महल के ऊपर से धुआँ निकलता है। अथवा आक्रामति धूमो हर्म्यतलम् (म० भा०)—धुआँ महल के ऊपरी भाग को ढक लेता है।

(ग) चलने अथवा कदम रखने के अर्थ में वि उपसर्ग पूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे विष्णुस्त्रेधा विचक्रमे—विष्णु ने तीन कदम लिए। वाजी विक्रमते। परन्तु विक्रामति सन्धि —सन्धि फट रही है (जोड़ टूट रहा है)।

---

[1] [illegible] (६।३।२८४)

(घ) आरम्भ करने के अर्थ में प्र तथा उप-पूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होती है; जैसे, वक्तुं मिथः प्राक्रमतैवमेनम्। (कुमार० ३। २)—इस प्रकार एकान्त में बातचीत करने लगा। परन्तु प्रक्रामति—जाता है, उपक्रामति—आता है।

३११[1]—क्रीड् धातु परस्मैपदी है, पर अनु, सम्, परि तथा आ पूर्वक क्रीड् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, अनु-परि-आ-क्रीडते माणवकः, सक्रीडते मणिभिः यत्र कन्याः (मेघ० ७)—जहाँ कन्याएँ मणियों से खेलती हैं। परन्तु माणवकमनुक्रीडति (म० भा०)—माणवक के साथ खेलता है।

(क) शोर करने के अर्थ में सम् पूर्वक क्रीड् धातु परस्मैपदी होती है, जैसे, सक्रीडन्ति शकटानि (म० भा०)—छकड़े आवाज करते हैं (शोर करते हैं)।

३१२[2]—'मिलजाने', 'जुड़ जाने,' के अर्थ में सम् पूर्वक गम् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे अक्षधूर्तैः समगंसि (दशकु० २। २)।—मैं जुआड़ियों में मिल गया। इसी प्रकार सम् पूर्वक ऋ या ऋच्छ् धातु आत्मनेपदी हो जाता है, जैसे, समारन्त ममाभीष्टाः (भट्टि० ८। १६)।

३१३[3]—उद् पूर्वक चर् (चलना) धातु जब सकर्मक के तौर पर प्रयुक्त होती है तो आत्मनेपदी होती है, जैसे, पानशौण्डाः पथः क्षीबा वृन्दैरुदचरन्त च (भट्टि ८।३१)—नशे में मतवाले पियक्कड़ झुण्ड के झुण्ड मार्ग से भटक गए। इसी प्रकार धर्ममुच्चरते—धर्म (कर्तव्य) का उल्लंघन करता है। परन्तु बाष्पमुच्चरति—भाप ऊपर उठती है।

(क) तृतीयान्त वाहन के योग में सम् पूर्वक चर् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, यानैः समचरन्तान्ये (भट्टि० ८।२०)—अन्य लोग रथों से गए। क्वचित् पथा सञ्चरते सुराणाम् ([illegible])—कभी-कभी [illegible] मार्ग से [illegible] जाता है।

३१४[1]—वि तथा परा पूर्वक जि धातु जीतना, विजयी होना, हरा देना—इन अर्थों में आत्मनेपदी होती है, जैसे, चक्षुर्मेचकमम्बुज विजयते (विद्धशालभंजिका)—उसकी (नीली नीली) आँखे नील कमल को जीत लेती हैं। विजयतां देव (मालविका० १)—महाराज की जय हो (महाराज विजयी हों); खं पराजयमानासो (भट्टि० ८।६)—आकाश को हराते हुए।

३१५[2]—जब वि अथवा उद् पूर्वक तप् धातु अकर्मक के तौर पर प्रयुक्त होती है, अथवा जब शरीर का कोई अवयव उसका कर्म होता है तो वह आत्मनेपदी होती है, जैसे, रविर्वितपतेत्यर्थम् (भट्टि० ८।१४)—सूर्य बहुत जोरों से तप रहा है। तीव्रमुत्तपमानोयमशक्य सोढुमातप. (भट्टि० ८।१५)—यह अत्यन्त ही झुलसाने वाला घाम असह्य है। उत्तपते वितपते पाणी (म० भा०)—वह अपने हाथों को सेंकता है। परन्तु उत्तपति सुवर्णं सुवर्णकार (म० भा०)—सोनार सोने को तपाता है। इसी प्रकार, चैत्रो मैत्रस्य पाणिमुत्तपति।

विशेष - तप् धातु स्वत. अकर्मक है, जैसे, तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति (शा० ५)—सूर्य के चमकते रहते भला अन्धकार कैसे प्रकट होगा?

३१६—उद्, उप, या वि, पूर्वक नी धातु अथवा इन उपसर्गों से रहित नी धातु निम्नलिखित अर्थों में आत्मनेपदी होती है :—

(१) उपदेश देना अथवा आदेश देना, जैसे शास्त्रे नयते—शास्त्र का उपदेश देता है।

(२) उठाना, जैसे, दण्डमुन्नयते—डण्डा उठाता है।

(३) धार्मिक संस्कार की दीक्षा देना, जैसे, माणवकमुपनयते—माणवक का यज्ञोपवीत संस्कार करता है।

(४) ज्ञान, अन्वीक्षण, जैसे, तत्त्वं नयते—सत्य की जाँच-पड़ताल करता है।

(५) मजदूरी पर लगाना या नियुक्त करना, किराए पर लगाना, जैसे, कर्मकरानुपनयते—मजदूरों को किराए पर रखता है।

१—विपराभ्यां जेः (१।३।१९)

२—उद्विभ्यां तपः (१।३।२७) स्वाङ्गकर्मकाच्चेति वक्तव्यम्। (वार्तिक)

(६) ऋण या कर देना, जैसे, कर विनयते—राज-कर देता है।

(७) व्यय करना, काम मे लगाना, जैसे, शत विनयते—सौ रुपए (दान) खर्च करता है।

(क) जब शरीरावयव के अतिरिक्त अन्य कोई चीज कर्म हो तो वि-पूर्वक नी धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, विनेष्ये क्रोधमथवा (भट्टि० ८।२२)—अथवा मैं अपना क्रोध दूर कर दूँगा। परन्तु गण्ड विनयति—अपना गाल फेर लेता है।

विशेष—शिक्षा देना, पालतू बनाना—इन अर्थों में वि+नी परस्मैपदी होती है, जैसे वन्यान् विनेष्यन्निव दुष्टसत्त्वान् (रघु० २।८)—मानो जङ्गल के दुष्ट पशुओं को पालतू बनाने की इच्छा करते हुए। इसी प्रकार, विनिन्युरेन गुरवो गुरुप्रिय (रघु० ३।२९)।

३१७—आ पूर्वक यम् धातु जब अकर्मक के तौर पर प्रयुक्त होती है अथवा जब शरीरावयव या शास्त्रातिरिक्त (ग्रन्थातिरिक्त) कोई वस्तु उसका कर्म हो तो यह आत्मनेपदी होती है, जैसे, आयच्छते—फैलाता है, पाणिमायच्छते—अपना हाथ फैलाता है, वस्त्रमायच्छते—कपड़ा फैलाता है।

(क) जब सम्+उत् पूर्वक यम् धातु का कर्म शास्त्र नहीं होता बल्कि शास्त्रातिरिक्त अथवा साहित्यातिरिक्त कोई दूसरी वस्तु कर्म हो तो यह आत्मनेपदी होती है, जैसे, व्रीहीन् समुद्यच्छते—चावल इकट्ठा करता है, भारमुद्यच्छते—बोझ उठाता है। परन्तु उद्यच्छति वेदम्—वह पढ़ने के लिए वेद परिश्रम करता है।

(ख)[1] उप पूर्वक यम् धातु विवाहार्थ अथवा [illegible] होती है, जैसे, सीता [illegible] दशमुखारिरुपयेमे यदन्याम् [illegible]—सीता को त्याग कर दशमुख के शत्रु (श्री रामजी) ने [illegible] नहीं [illegible]।

३१८[2]—रम् [illegible] आत्मनेपदी [illegible] है परन्तु वि, आ, परि उपसर्ग पूर्वक रम् धातु परस्मैपदी हो जाती है, [illegible], विरम वत्से [illegible]—हे [illegible]। आरमति [illegible]—

1—उपाद् यम स्वकरणे (१।३।५६)

2—व्याङ्परिभ्यो रमः [illegible]

बगीचे में आराम करता है। क्षण पर्यरमत्तस्य दर्शनात् (भट्टि० ८।५३)—उसको देखकर क्षण भर के लिए प्रसन्न हो गया।

(क) उप-पूर्वक अकर्मक रम् धातु उभयपदी होती है, जैसे उपारसीच्च सम्पश्यन् वानरस्त चिकीर्षितात् (भट्टि० ८।५५)—वानर जो कुछ करना चाहता था, उसे देखकर उसने बन्द कर दिया। नात्र सीतेत्युपारस्त (भट्टि० ८।५५)—सीता यहाँ नही है, यह देखकर वह रुक गया।

३१६[1]—वद् धातु स्वत तो निम्नलिखित अर्थों में आत्मनेपदी है—

(१) किसी चीज मे मेधावित्व अथवा बुद्धिवैचक्षण्य दिखलाना, जैसे, शास्त्रे वदते.

(२) शान्त करना, । पुचकारना, (इस अर्थ में प्राय. उप-पूर्वक रहती है,) जैसे, भृत्यानुपवदते—अपने नौकरों से मेल-मिलाप कर लेता है अर्थात् उन्हे शान्त कर देता है।

(३) ज्ञान, जैसे. शास्त्रे वदते—शास्त्रों को जानता है।

(४) प्रयास, उद्योग। जैसे, क्षेत्रे वदते—खेत में खूब कड़ी मिहनत करता है।

(५) "मतभेद' 'विवाद' (प्राय इस अर्थ में । यह वि-पूर्वक रहती है), जैसे, परस्पर विवदमानाना शास्त्राणाम् (हित० १)—आपस में वाद-विवाद करने वाले शास्त्रा का।

(६) चापलूसी करना, प्रार्थना करना, जैसे, दातारमुपवदते—दाता की चाटुकारी करता है [यह न० २ के समान ही है]

(क) सम्प्र-पूर्वक वद् धातु मनुष्यों के समान जोर से तथा स्पष्ट बोलने के अर्थ मे आत्मनेपदी होती है, जैसे, सम्प्रवदते ब्राह्मणा—ब्राह्मण लोग बड़े जोरों से बोल रहे है। परन्तु, वरतनु सम्प्रवदन्ति कुक्कुटा (म० भा)—ऐ सुन्दर शरीर वाली स्त्री, मुर्गे बाँग दे रहे है।

(ख) उपयुक्त परिस्थिति में अनु-पूर्वक वद् धातु अकर्मकदशा मे आत्मनेपदी होती है, जैसे. अनुवदते कठ कलापस्य—कठ कलाप की नकल करता है।

१—भासनोपसम्भाषाज्ञान-यत्न-विमत्युपमन्त्रणेषु वद । व्यक्तवाचां समुच्चारणे । अनोरकर्मकात् । विभाषा विप्रलापे (१।३।४७—५०)

परन्तु उक्तमनुवदति—कहे हुए को फिर से कह देता है। अनुवदति वीणा—वीणा बोलती है।

(ग) वि+प्र पूर्वक वद् धातु "झगड़ा करने" के अर्थ में उभयपदी होती है, जैसे, विप्रवदते वैद्या अथवा विप्रवदति वैद्या—वैद्य लोग वाद-विवाद करते हैं। ऐद् विप्रवदमानैस्ता सयुक्ता ब्रह्मराक्षसै (भट्टि० ८।३०)—झगड़ते हुए ब्रह्मराक्षसों से भरी हुई उस (स्थली,) के पास गया।

(घ) धिक्कारने, अथवा डाटने के अर्थ में अप-पूर्वक वद् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, न्यायमपवदते, नृभ्योऽपवदमानस्य (भट्टि० ४५)।

३२०[१]—अपना अभिप्राय प्रकाशन करने के अर्थ में अथवा किसी को न्यायाधीश या पंच के तौर पर स्वीकार कर लेने के अर्थ में स्था धातु स्वत. आत्मनेपदी होती है, जैसे, गोपी कृष्णाय तिष्ठते—गोपी कृष्ण से अपने सारे मनोगत भावों को प्रकाशित कर देती है। सशय्य कर्णादिषु तिष्ठते य (किरात० ३। १४)—सशय आ पड़ने पर जो व्यक्ति कर्ण आदि को अपना पंच मान लेता है।

(क) सम्, अव, प्र और वि पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, दारिद्र्यात् पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न सतिष्ठते (मृच्छ०)—गरीबी के कारण बान्धव लोग (भी) मनुष्य के कहने में नहीं रहते। क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तु (रघु० ८। ८७)।—यदि जीव क्षण भर के लिए भी सांस लेता है। हरिर्हरिप्रस्थमथ प्रतस्थे (शिशु० ३। १)—तब हरि इन्द्रप्रस्थ को चल दिए। इसी प्रकार, अत्रापरे प्रत्यवतिष्ठन्ते (शाकर ४५), अग्ने ज्वलत विस्फुलिंगा विप्रतिष्ठेरन (शाकर० ४५)।

कस्त्वां न बहु मन्यते (भट्टि० ८ । १२)—मित्र के लिए प्रयत्न करने वाले तुमको कौन नही मानता या पूजता । मुक्तावुत्तिष्ठते—मुक्ति के लिए उठता है (उच्चाकाङ्क्षा रखता है) । (किरात० ११ । १३तथा शिशु० १४।१७ देखिए) । परन्तु पीठादुत्तिष्ठति, और ग्रामाच्छतमुत्तिष्ठति—गाँव से एक सौ मिलता है ।

३२२[1]—धार्मिक विधि के अनुसार सेवा करने या देवता आदि की पूजा करने के अर्थ में उप-पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, ये सूर्यमुपतिष्ठन्ते मन्त्रैः (भट्टि०८ । १३)—जो लोग मन्त्रो द्वारा सूर्य को पूजते हैं । न त्र्यम्बकादन्यमुपास्थितासौ (भट्टि० १ । ३)

विशेष[2]—साधारण सेवा करने या पूजा करने के अर्थ में यह धातु साहित्य मे उभयपदी पाई जाती है, जैसे, उपतस्थुर्महात्मानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् (महा० २ । ४।७), स्तुत्यं स्तुतिभिरर्थ्याभिरुपतस्थे सरस्वती (रघु० ४ । ६)

३२३[3]—उप-पूर्वक स्था धातु निम्नलिखित अर्थों में भी आत्मनेपदी होती है,—

(१) मिलना, सम्मिलित होना, जैसे, गंगा यमुनामुपतिष्ठते—गंगा यमुना से मिल जाती है ।

(२) किसी के साथ मैत्री करना, जैसे, रथिकानुपतिष्ठते (म०भा०)—सारथियो से मैत्री करता है ।

(३) जाना, जैसे, मार्ग चला जाता है, अयं पन्था साकेतमुपतिष्ठते (म०भा०)—यह मार्ग साकेत (अयोध्या) को चला जाता है ।

(क) जब किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा विवक्षित होती है तब उप-पूर्वक स्था धातु उभयपदी होती है, जैसे, भिक्षुको ब्राह्मणकुलमुपतिष्ठति-

---

१—उपान्मन्त्रकरणे (१ । ३ । २५)

२—इस पर महाभाष्य का यह वचन है—

बहूनामप्यचित्तानामेको भवति चित्तवान्

पश्य वानरसैन्येऽस्मिन् यदर्कमुपतिष्ठते ॥

मैवं मंस्थाः सचित्तोऽयमेषोऽपि हि यथा वयम् ।

एतदप्यस्य कापेयं यदर्कमुपतिष्ठति ॥

३—उपाद्देवपूजासंगतकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम् । (वार्तिक)

उपतिष्ठते वा (म० भा०)-भिक्षुक कुछ पाने की इच्छा से ब्राह्मण के घर पर जाता है। जब यह अकर्मक के तौर पर प्रयुक्त होती है तब भी आत्मनेपदी होती है, जैसे, **भोजनकाले उपतिष्ठते**—भोजन के समय तैयार होकर खड़ा हो जाता है।

३२४[1]—निरन्तर अभ्यास करने के अर्थ मे अनु-पूर्वक हृ धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, **पैतृकमश्वा अनुहरन्ते**—घोड़े सदा अपने पुरखों की गति (चाल) का अभ्यास करते है। परन्तु "मिलना-जुलना" अर्थ मे यह परस्मैपदी होती है, जैसे, **रामभद्रमनुहरति** (उत्तर०४)।

३२५[2]—ललकारने के अर्थ मे आ-पूर्वक ह्वे धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, **कृष्णश्चाणूरमाह्वयते** (सि० कौ०)। **आह्वयत चेदिराट् मुरारिम्** (शिशु० २०। १)। परन्तु **इत स्वाह्वयैनमप्यायुष्मन्त** (उत्तर० ६)—इस चिरजीवी बालक को भी यहाँ बुलाओ।

अभ्यास

१—राज्य नाम शक्तित्रयायत्तम्। शक्तयश्च मन्त्रप्रभावोत्साहाः परस्परानुगृहीताः कृत्येषु क्रमते। (दशकु० २।८)

२—असौ पापः क्रमेण शाखातरैः सचरमाण कोटरमागत्य तातमपगतासुमकरोत्। (कादम्०३३)

३—एव भोः सततविच्छेदनिरवलम्बानां मूलपुरुषावमाने गपद-परमुपतिष्ठति। (शा० ६)

४—उपसि स्नात्वा कृतमगलो मन्त्रिभिः सह समगच्छे। (दशकु० २।३)

५—अये वनदेवतेय फलकुसुमपल्लवार्घ्येण मामुपतिष्ठते। (उत्तर० ३)

६—विजयेतां रामलक्ष्मणौ कुम्भकर्णमेघनादौ। (अ० रा० ३)

७—तत प्रतस्थे कौबेरीं भास्वानिव रघुर्दिशम्। (रघु० ४।६६)

८—वक्तु [illegible] स्वनितवचनैर्मानिनी प्रक्रमेथा। (मेघ [illegible])

१—[illegible] (२ २ ०)

२—[illegible] (२ ३ ०)

९—बलिर्बबन्धे जलधिर्ममन्थे जह्रेऽमृतं दैत्यकुलं विजिग्ये ।
कल्पान्तदुःस्था वसुधा तथोहे येनैष भारोऽतिगुरुर्न तस्य ॥
(भट्टि० २।३९)

१०—उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता ।
समो हि शिष्टैराम्नातौ वर्त्स्यन्तावामयः स च ॥
(शिशु० २।१०)

११—अयमपि च गिरं नस्त्वत्प्रबोधप्रयुक्ता-
मनुवदति शुकस्ते मञ्जुवाक् पञ्जरस्थः । (रघु० ५।७४)

१२—यावत्प्रतापनिधिराक्रमते न भानु-
रह्नाय तावदरुणेन तमो निरस्तम् । (रघु० ५।७१)

१३—अथ सर्वस्य धातारं ते सर्वे सर्वतोमुखम् ।
वागीशं वाग्भिरर्थ्याभिः प्रणिपत्योपतस्थिरे ॥ (कुमार० २।३)

१४—स मानसीं मेरुसखः पितॄणां कन्यां कुलस्य स्थितये स्थितिज्ञः ।
मेनां मुनीनामपि माननीयामात्मानुरूपां विधिनोपयेमे ॥
(कुमार० २।१८)

१५—पटुर्धारावाही नव इव चिरेणापि हि न मे
निकृन्तन्मर्माणि क्रकच इव मन्युर्विरमति । (उत्तर० ४)

१६—फलान्यादत्स्व चित्राणि परिक्रीडस्व सानुषु ।
साध्वनुक्रीडमानानि पश्य वृन्दानि पक्षिणाम् ॥
(भट्टि० ८।१०)

१७—विचिन्वन्नोपावदिष्टानां केनचिद् व्यवदिष्ट न ।
शृण्वन् सम्प्रवदमानाद्रावणस्य गुणान् जनात् ॥
(भट्टि० ८।२८)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

३—वयोवेषविसंवादि रामस्य च तयोस्तदा ।
जनता प्रेक्ष्य सादृश्य नाक्षिकम्प व्यतिष्ठत ॥ (रघु० १५।६७)

४—तत्रैनं हेमकुम्भेषु सम्भृतैस्तीर्थवारिभिः ।
उपतस्थुः प्रकृतयो भद्रपीठोपवेशितम् (रघु० १७।१०)

५—इति दर्शितविक्रिय सुतं मरुतः कोपपरीतमानसम् ।
उपसान्त्वयितुं महीपतिर्द्विरदं दुष्टमिवोपचक्रमे ॥ (किरात० २।२५)

६—पारसीकास्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना ।
इन्द्रियाख्यानिव रिपूंस्तत्त्वज्ञानेन संयमी (रघु० ४।६०)

७—विनयन्ते स्म तद्योधा मधुभिर्विजयश्रमम् ।
आस्तीर्णाजिनरत्नासु द्राक्षावलयभूमिषु ॥ (रघु० ४।६५)

८—श्रुतमप्यधिगम्य ये रिपून् विनयन्ते न शरीरजन्मनः ।
जनयत्यचिराय सम्पदामयशस्ते खलु चापलाश्रयम् ॥ (किरात० २।४१)

९—प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः ।
पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसं
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते ॥ (उत्तर० २)

१०—क्षणं भद्रावतिष्ठस्व ततः प्रस्थास्यसे पुनः ।
न नस्त्वमस्थास्यते कार्यं दनेर्गोरी[illegible] त्वया ॥ (भ[illegible] [illegible]।११)

११—द्रष्टुं प्रक्रममाणोऽसौ सीतामसोनिः[illegible]म ।
उपाक्रंस्ताकुलं घोरैः क्रममाणैर्निशाचरैः ॥ (भट्टि० ८।२५)

१२—[illegible] ।
घोषस्यान्ववदिष्टेव लंका पूत्कुर्वती पुरः ॥ (भट्टि० ८।२)

१३—व्यस्मरत्प्रथनादस्मात्[illegible] ।
क्षणं पर्यग्लसत्तस्य दर्शनं[illegible] मन ॥ (भट्टि० ८।४३)

१४—यावदर्थपदां [illegible] मारुतः ।
[illegible] प्रह्वया [illegible] । ([illegible])

संस्कृत में अनुवाद कीजिये—

१—आधी रात को जब मैं अपने बिस्तरे पर गहरी नींद में सो रहा था तो परस्पर विवाद करते हुए पुरुषों की तरफ से आने वाले कोलाहल से जाग पड़ा।

२—कुटुम्ब की रक्षा ज्येष्ठ पुत्र को सौंप कर बुड्ढा आदमी तीर्थ-यात्रा के लिये चल दिया (प्र+स्था)।

३—योग्यतम सेनापति से आश्रत फ्रांसीसियों ने दुर्ग पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया (उप+क्रम्), परन्तु चीन-निवासियों ने उन्हें सरलता-पूर्वक हरा दिया (परा+जि)।

४—जोर जोर बातें करते ही करते दोनों युवक एक दूसरे पर प्रहार करने लगे और दोनों में अधिक उग्र प्रकृति वाले युवक ने दूसरे को द्वन्द्व-युद्ध के लिये ललकारा (आ+ह्वे)।

५—केवल धन प्राप्त करने की इच्छा से धनाढ्यों की सेवा करने वालों (उप+स्था) तथा चापलूसी करने वालों को धिक्कार है।

६—यमुना जी प्रयाग में गङ्गाजी से मिल जाती हैं (सम्+गम्), और यह स्थान हिन्दुओं द्वारा बहुत ही पवित्र माना जाता है।

७—क्रोध रोको (वि+रम्) और लोभ छोड़ो, किसी भी प्रकार अनर्थ करने की चेष्टा न करो।

८—जब परशुराम जी एक उत्त्रस्त घोड़े पर चढ़ कर सञ्चरण कर रहे थे (सम्+चर्) तो घोड़ा एक जलाशय देखकर चकित हो गया और अश्वारोही बड़े वेग से नीचे गिर पड़ा।

९—इङ्गलैण्ड के युवराज ने डेनमार्क की राजकुमारी से विवाह कर लिया (उप+यम्)।

१०—जो व्यक्ति बालक का उपनयन कराता है (उप+नी) और ब्रह्मविद्या प्रदान है, वह आचार्य कहलाता है।

११—यह मार्ग सीधे नदी को जाता है, पर दूसरा बिल्कुल टेढ़ा-मेढ़ा है, जिसे चाहो उसे चुन लो।

१२—जब कि आप इतना करने वाले हैं तो तुम बिना इतना के कैसे बाहर जा सकते हो।

१३—ब्राह्मण की प्रकृति मृदु होती है। चाहे वह थोड़ी देर के लिये उग्र भी हो जाय, परन्तु बहुत जल्द ही वह अपनी मौलिक स्थिति पर आ जाती है (सप्तमी के साथ अव+स्था)।

१४—कृपा के इच्छुक हम लोगों ने दुष्ट के व्यंग्यों को तथा अभिमानियों द्वारा किये हुए अपमानों को बहुत देर तक क्लीबवत् सहा, तो, ऐ आशे, तू अपना कार्य कब बन्द करेगी ?

१५—शुकनास चन्द्रापीड के पास गया (उप+स्था) और उसे कई महत्त्व-पूर्ण विषयों पर मन्त्रणा (परामर्श) देकर प्रसन्नचित्त हो घर लौट आया।

त्रिंशत्तम पाठ

अदादिगणी धातुऍं

३२६—पहिचानने के अर्थ में सम् पूर्वक विद् (जानना) धातु आत्मनेपदी है, पितरावपि मा न प्रतिसविदाते (दशकु० २।३)—मेरे माँ-बाप भी मुझे नहीं पहिचानते ।

(क) सचेत होना, 'जानना' अर्थों में जब सम्-पूर्वक विद् धातु का अकर्मक प्रयोग होता है तब भी इसका आत्मनेपद मे रूप चलता है, जैसे, के न संविदन्ते वायोर्मैनाकाद्रिर्यथा सखा (भट्टि० ८।१७)—कौन नहीं जानता कि मैनाक पर्वत वायु का मित्र है ।

३२७—आशीर्वाद या वरदान अर्थ में आ-युक्त तथा किसी वस्तु के लिये प्रार्थना करने या याचना करने के अर्थ में प्र-युक्त शास् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, ऋचमेकच्छन्दसाशास्ते (शा० ४)—एक ऋक् द्वारा उसे आशीर्वाद देता है। इद प्रशास्महे (उत्तर० १)—हम लोग यह माँगते हैं या प्रार्थना करते हैं ।

३२८—हन् साधारणत परस्मैपदी होती है, पर अकर्मक के तौर पर प्रयोग मे आने पर और अपने ही शरीर से सम्बन्ध रखने पर आ-पूर्वक हन् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, आघ्नान इव सदीप्तैरलातै सर्वतो मुहु. (भट्टि० ८।१५)—माना चारो ओर जलते हुए आग के अगारो से मारते हुए। परन्तु परस्य शिर आहन्ति (सि० कौ०)।

विशेष—यह प्रतिबन्ध सदा नहीं माना जाता, आजघ्ने विषमविलोचनस्य वक्ष (किरात० १७।६३)।

(५) तैयार करना, जैसे, एधोदकस्योपस्कुरुते--ईंधन पानी को तैयार करता (उबालता) है।

(६) कहना, जैसे, गाथा प्रकुरुते--कहानियाँ कहता है।

(७) लगाना, काम में लगाना जैसे, शतं प्रकुरुते--(किसी व्यापारिक कार्य में) एक सैकड़ा लगाता है। इसी प्रकार, उपकुर्वन्तमत्यर्थं प्रकुर्वाणोऽनुनीतिवत् (भट्टि० ८।१८)।

(क) उपकार करने के अर्थ में उप-पूर्वक कृ धातु उभयपदी होती है जैसे, नहि दीपो परस्परस्योपकुरुत (शाकर० ४२०)--दो दीपक आपस में एक दूसरे का उपकार नहीं करते। किं वा भूय प्रियमुपकरोमि (मुद्रा० ७)। सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम् (किरात० ७।२८)--लक्ष्मी वह है जिससे लक्ष्मीवान पुरुष दूसरे का उपकार करता है।

(ख)[1] अनु तथा परा उपसर्ग पूर्वक कृ धातु परस्मैपदी होती है, जैसे पराकरोति दानम्--दान को अस्वीकार कर देता है। अनुकरोति भगवतो नारायणस्य (कादम० ६)

३३९[2]--सहन करने अथवा अभिभूत करने के अर्थ में अधि पूर्वक कृ धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, शत्रुमधिकुरुते--शत्रु का नाश कर देता है अथवा पराभूत कर देता है। परन्तु मनुष्यानधिकरोति शास्त्रम् (शाकर०)--शास्त्र मनुष्यों को अधिकार देता है।

३४०[3]--बोलने या बड़बड़ाने के अर्थ में जब वि-पूर्वक कृ धातु का कर्म शब्द या आवाज होती है, तो वह आत्मनेपदी होती है, जैसे, स्वरान् विकुरुते--स्वर (आवाज) पैदा करता है--बोलता है। परन्तु चित्तं विकरोति कामः--कामदेव चित्त में विकार पैदा कर देता है।

क्र्यादिगणी धातुएँ

३४१[1]—परि, वि तथा अव पूर्वक क्री (खरीदना) धातु आत्मनेपदी होती है जैसे, कृतेनोपकृतं वायोः परिक्रीणानम् (भट्टि० ८।८)—वायु द्वारा किए हुये उपकारों का बदला कार्य द्वारा करते हुये को। यस्तानि विक्रीणीते (याज्ञ०)—जो उन्हें बेचता है।

३४२[2]—स्वत ज्ञा धातु उभयपदी है, जैसे, जानासि विनोदयितुम् (उत्तर० १)। जानीते हि भवान् (विक्रमो० २)। अप-पूर्वक ज्ञा धातु 'छिपाने', इनकार करने के अर्थ में आत्मनेपदी होती है, जैसे, शतमपजानीते—एक सैकड़ा इनकार करता है।

(क) सोचने, विचारने या ध्यान करने के अतिरिक्त अर्थों में सम-पूर्वक तथा प्र-पूर्वक ज्ञा धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, शतं संजानीते—एक सैकड़ा खोजता है। हरचापारोपणेन कन्यादानं प्रतिजानीते (प्र० श० ४)—हर के धनुष की डोर चढ़ा देने की शर्त पर कन्या प्रदान करने की प्रतिज्ञा करता है। परन्तु मातरं मातुर्वा संजानाति—अपनी माता के विषय में सोचता है।

(ख) अनु-पूर्वक ज्ञा धातु उभयपदी होती है, जैसे, अनुजानीहि मां गमनाय (उत्तर० ३)। ततोऽनुजज्ञे गमनं सुतस्य (भट्टि० ३।२३)—तब पुत्र को जाने की अनुमति दे दी।

(ग) सन्नन्त ज्ञा धातु सर्वदा आत्मनेपदी होती है, जैसे, जिज्ञासमानानुचरस्य भावम् (रघु० २।२६)—अपने अनुचर का भाव जानने की इच्छा करती हुई।

चुरादिगणी और प्रेरणार्थक धातुएँ

३४३[1]—चुरादिगण की धातुएँ तथा प्रेरणार्थक धातुएँ उभयपदी होती हैं। परन्तु इस नियम के अनेक अपवाद भी हैं।

१—परिव्यवेभ्यः क्रियः (१।३।१८)
२—अपह्नवे ज्ञः। संप्रतिभ्यामनाध्याने (१।३।४४, ४६)

(५) तैयार करना, जैसे, एधोदकस्योपस्कुरुते---ईंधन पानी को तैयार करता (उबालता) है।

(६) कहना, जैसे, गाथा प्रकुरुते---कहानियाँ कहता है।

(७) लगाना, काम में लगाना जैसे, शतं प्रकुरुते---(किसी धार्मिक कृत्य में) एक सैकड़ा लगाता है। इसी प्रकार, उपकुर्वन्नमत्यार्थं प्रकुर्वाणोऽनुजीवितत् (भट्टि० ८।१८)।

(क) उपकार करने के अर्थ में उप-पूर्वक कृ धातु उभयपदी होती है, जैसे, नहि दीपौ परस्परस्योपकुरुत (शाङ्कर० ४२०)- दो दीपक आपस में एक दूसरे का उपकार नहीं करते। किं वा भूय. प्रियमुपकरोमि (मुद्रा० ७)। सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेपाम् (किरात० ७।२८) ---लक्ष्मी वह है जिससे लक्ष्मीवान पुरुष दूसरे का उपकार करता है।

(ख)[१] अनु तथा परा उपसर्ग पूर्वक कृ धातु परस्मैपदी होती है, जैसे पराकरोति दानम्--दान को अस्वीकार कर देता है। अनुकरोति भगवतो नारायणस्य (कादम्ब० ६)

३३९[२]---सहन करने अथवा अभिभूत करने के अर्थ में अधि पूर्वक कृ धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, शत्रुमधिकुरुते---शत्रु को क्षमा कर देता है अथवा पराभूत कर देता है। परन्तु मनुष्यानधिकरोति शास्त्रम् (शाङ्कर०)--शास्त्र मनुष्यों को अधिकार देता है।

३४०[३]---बोलने या बड़बड़ाने के अर्थ में जब वि-पूर्वक कृ धातु का कर्म शब्द या आवाज होती है, तो यह आत्मनेपदी होती है, जैसे, स्वरान् विकुरुते---स्वर (आवाज) पैदा करता है---बोलता है। परन्तु चित्तं विकरोति कामः---कामदेव चित्त में विकार पैदा कर देता है।

(क) जब वि-पूर्वक कृ धातु का अकर्मक प्रयोग होता है, तो वह आत्मनेपदी होती है, जैसे, विकुर्वे नगरे तस्य (भट्टि० ८।२१)---उसके नगर में मैं स्वेच्छापूर्वक आचरण करूँगा। (विविध चेष्टे)।

१---अनुपराभ्यां कृञः। (परस्मैपदम्। १।३।७९)

२---अधेः प्रसहने। (१।३।३३)

३---वेः शब्दकर्मणः। अकर्मकाच्च (१।३।३४-३५)

क्र्यादिगणी धातुएँ

३४१[1]—परि, वि तथा अव पूर्वक क्री (खरीदना) धातु आत्मनेपदी होती है जैसे, कृतेनोपकृत वायो परिक्रीणानम् (भट्टि० ८।८)—वायु द्वारा किए हुये उपकारों का बदला कार्य द्वारा करते हुये को। यस्तानि विक्रीणीते (याज्ञ०)—जो उन्हें बेचता है।

३४२[2]—स्वत ज्ञा धातु उभयपदी है, जैसे, जानासि विनोदयितुम् (उत्तर०१)। जानीते हि भवान् (विक्रमो०२)। अप-पूर्वक ज्ञा धातु 'छिपाने', इनकार करने के अर्थ में आत्मनेपदी होती है, जैसे, शतमपजानीते—एक सैकड़ा इनकार करता है।

(क) सोचने, विचारने या ध्यान करने के अतिरिक्त अर्थों मे सम-पूर्वक तथा प्र-पूर्वक ज्ञा धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, शत सजानीते—एक सैकड़ा खोजता है। हरचापारोपणेन कन्यादान प्रतिजानीते (प्र० श० ४)—हर के धनुष की डोर चढ़ा देने की शर्त पर कन्या प्रदान करने की प्रतिज्ञा करता है। परन्तु मातर मातुर्वा सजानाति—अपनी माता के विषय में सोचता है।

(ख) अनु-पूर्वक ज्ञा धातु उभयपदी होती है, जैसे, अनुजानीहि मा गमनाय (उत्तर०३)। ततोऽनुजज्ञे गमन सुतस्य (भट्टि० ३।२३)—तब पुत्र को जाने की अनुमति दे दी।

(ग) सन्नन्त ज्ञा धातु सर्वदा आत्मनेपदी होती है, जैसे, जिज्ञासमानानुचरस्य भावम् (रघु० ८।२६)—अपने अनुचर का भाव जानने की इच्छा करती हुई।

चुरादिगणी और प्रेरणार्थक धातुएँ

३४३—चुरादिगण की धातुऐं तथा प्रेरणार्थक धातुएँ उभयपदी होती है। परन्तु इस नियम के अनेक अपवाद भी हैं।

१—परिव्यवेभ्यः क्रियः (१।३।१८)

२—अपह्नवे ज्ञः। संप्रतिभ्यामनाध्याने (१।३।४४-४६)

(क)[१] जब सकर्मक धातुओं के प्रेरणार्थक रूप प्रयोग में आते हैं, अथवा जब मूल रूप का कर्म प्रेरणार्थक में कर्ता हो जाता है, तब आत्मनेपद का प्रयोग होता है, परन्तु उत्कण्ठापूर्वक स्मरण करने के अर्थ में नहीं, जैसे, **भक्ता भवं पश्यन्ति**—भक्त लोग भव को देखते हैं। **भवो भक्तान् दर्शयते**—भव अपने आप को भक्तों को दिखा देते हैं। **दर्शयसे नित्य मनुष्यान्** (महा० २।५।८६)। परन्तु **स्मरयति वनगुल्मः कोकिलम्**—उत्कण्ठापूर्वकस्मृतौ विषयो भवति (सि० कौ०)। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि प्रेरणार्थक के साधारण प्रयोग से यह प्रयोग सर्वथा भिन्न है, **भक्तान् भवं दर्शयति देवदत्तः**।

(ख) साधारणतया, जब क्रिया का फल कर्ता के ऊपर आता है, तब प्रेरणार्थक आत्मनेपद में होता है, जैसे, **कटं कारयते**—अपने लिए चटाई बनवाता है। **स्वार्थं कारयमाणाभिः** (भट्टि० ८।४८)—अपना मतलब साधन करवाने वाली (स्त्रियों) से।

३४४[२]—बुध, युध, नश, जन्, अधि+इ, प्रु, द्रु, स्रु परस्मैपदी होती हैं, जैसे, **बोधयति पद्मम्, नाशयति दुःखम्, जनयति सुखम्** इत्यादि-(१) भक्षणार्थक, निगल जाना अर्थ वाली, तथा कम्पनार्थक धातुएँ परस्मैपदी होती हैं। जब अद् धातु की क्रिया कर्ता के लिये नहीं की जाती उस दशा के अतिरिक्त अन्य अर्थों में यह अपवाद-स्वरूप है।

३४५[३]—पा (पीना) का प्रेरणार्थक रूप, दम्, आ+यम्, आ+यस्, परि+मुह्, रुच्, नृत् और अभि+वद् धातुओं का फल जब कर्ता के लिये होता है, तब ये आत्मनेपदी होती हैं, जैसे, **पिबत्यसौ पाययते च सिन्धूः** (रघु० १३।६)।

(क) सम्बोधन करने तथा विदा होने या विदा करने के अर्थ में आ-पूर्वक मन्त्र धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, **आमन्त्रयस्व सहचरम्** (शा० ३)—अपने मित्र से विदा होओ।

१—णेरणौ यत्कर्म णौ चेत् स कर्ताऽनाध्याने (१।३।६७)

२—बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः (१।३।८६)

३—न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः (१।३।८९)

अभ्यास

१—सा दूरस्थितेव पाणिना वेणुलतामादाय नरपतिप्रबोधनार्थं सकृत्सभाकुट्टिममाजघान। (कादम्० १०)

२—सखे सीरध्वज हृदयमेवामन्त्रयस्व किमर्थं कृतार्थमसीति। (अ० रा० १३)।

३—सखे सैव धन्या गणिकादारिका यामेव भवन्मनोभिनिविशते (दशकु० २।२)।

४—इयमतिक्रम्य स्वकुलधर्ममर्थनिरपेक्षा गुणेभ्य एव स्व यौवन विचिक्रीषते (दशकु०२।२।)।

५—राज्ञा च तथानुशिष्टा सत्यप्यनाश्रवैव सा यदासीत्तदास्या. स्वसा माता च निर्वधेन राज्ञे समगिरेताम्। (दशकु० २।२)।

६—मानी मानसारो महेश्वर समाराध्यास्माद्धयदा गदा लब्ध्वा आत्मानमप्रतिभट मन्यमानो महाभिमानो भवतमभियोक्तुमुद्युक्तं (दशकु० २।१)।

७—तत प्रवृत्तासु प्रीतिसकथासु सुहृदा वृत्तात श्रोतु कृतप्रस्तावस्ताश्च तदुक्तावन्वयु क्त। (दशकु०२।१)।

८—तथास्मास प्रतिविधाय तिष्ठत्सु राजापि विज्ञापितोदत्तो जातानुताप पारग्रामिकान् प्रयोगान् प्राय. प्रायु क्त।

(दशकु० २।४)

९—मदसिक्तमुखैर्मृगाधिप करिभिर्वर्तयते स्वय हतै·।
लघयन् खलु तेजसा जगन्न महानिच्छति भूतिमन्यत ॥
(किरात० २।१८)।

१०—उज्झत्सु सहार इवास्तसंख्यमह्नाय तेजस्विषु जीवितानि।
लोकत्रयास्वादनलोलजिह्व न व्याददात्याननमत्र मृत्यु ॥
(किरात० १६।१६)।

११—सदुन्यवहित तेजो भोक्तुमर्थान् प्रकल्पते।
प्रदीप स्नेहमादत्ते दशयाभ्यन्तरस्थया ॥ (शिशु० २।८५)।

१२—पाकसम्यगुपेत्य नीत पानत्यपेक्षो रसायनम्।
समन्यत्त्वैकसदानि स्वास्नूनि बलवन्ति च॥ (शिशु० १।६८)।

१३—कृतसीतापरित्याग. स रत्नाकरमेखलाम् ।
बुभुजे पृथिवीपालः पृथिवीमेव केवलाम् ॥ (रघु० १५।१) ।

१४—कुलभार्यां प्रकुर्वाणमहं द्रष्टुं दशाननम् ।
यामि त्वरावान् शैलेंद्र मा कस्यचिदुपस्कृथा ॥
योऽपचक्रे वनात्सीतामधिचक्रे न य हरि ।
विकुर्वाण. स्वरानद्य वल तस्य निहन्म्यहम् ॥ (भट्टि० ८।१६,२०) ।

१५—आत्मानमपजानानः शशमात्रोऽनयद्दिनम् ।
ज्ञास्ये रात्राविति प्राज्ञ प्रत्यज्ञास्त क्रियापटु. ॥ (भट्टि०८।२६)

१६—सजानानान् परिहरन् रावणानुचरान वहून् ।
लकां समाविशद्रात्रौ वदमानोऽरिदुर्गमाम् ॥ (भट्टि०८।२७) ।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—अथ कुपितोऽर्थपतिर्व्यवहर्तु मर्थगर्वादभियोक्ष्यते त च भूयश्चित्रैरुपायै कौपीनावशेषं करिष्याव । (दशकु० २।२) ।

२—प्रजाभिस्तु वंधुमतो राजानो न ज्ञातिभि । तदुत्तिष्ठ कुरुष्व पुरेव सर्वाः क्रिया । कृताहारे त्वय्यहमपि सुखमुपभोक्ष्ये पथ्यमित्येवमभिहितस्यास्य दिधक्षन्निव हृदयमतितरां शोकानल समुधुक्षे । (हर्ष० ५) ।

३—समाजने मे भुजमूर्ध्व वाहु मन्वेतरं प्राध्वमित प्रयुक्ते । (रघु० १३।४३) ॥

४—स किसखा साधु न शास्ति योधिप हितान्न य· सश्रृणुते म किप्रभु । सदानुकूलेपु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येपु च सर्वस पद ॥ (किरात०१।५) ।

५—सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविन समानमानान् सुहृदश्च वधुभि । स संतत दर्शयते गतस्मय कृताधिपत्यामिव साधु वधुताम् ॥ (किरात० १।१०)

६—मदमानसमुद्धत नृप न वियुक्ते नियमेन मूढता । अतिमूढ उदस्यते नयान्नयहीनादपरज्यते जन ॥ (किरात० २।४१) ।

७—स राजलोक कृतपूर्वसंविदारमसिद्धौ ममयोपलभ्यम् । आदास्यमान प्रमदामिषं तदावृत्य पन्थानमजस्य तस्थौ ॥ (रघु० ७।३१) ।

८—असंविदानस्य ममेश सविदा तितिक्षितु दुश्चरित त्वमर्हसि । विरोध्य मोहात्पुनरभ्युपेयुषां गतिर्भवानेव दुरात्मनामपि ॥ (किरात० १८।४२) ।

९—तत्प्रतीपपवनादि वैकृतं प्रेक्ष्य शांतिमधिकृत्य कृत्यवित् । अन्वयुक्त गुरुमीश्वर क्षिते स्वतमित्यलघयत्स तद्व्यथाम् ॥ (रघु०११।६२) ।

१०—नृपति. प्रकृतीरवेक्षितु व्यवहारासनमाददे युवा । परिचेतुमुपांशु धारणां कुशपूतं प्रवयास्तु विष्टरम् ॥ (रघु० ८।१८) ।

—समनह्यत किमङ्ग भूपतिर्यदि सन्धित्सुरसौ सहामुना। द्विरराक्रमणेन सन्नतिं किल बिभ्रीत बिभेत्यसंभव ॥ (शिशु० १६।३४)।

—व्यस्ताक्षरामक्षरभूमिकायां कार्त्स्न्येन गृह्णाति लिपिं न यावत्। सर्वाणि तावच्छ्रुतवृद्धयोगात् फलान्युपायैः स ददर्श नीतेः । (रघु० १८।४३)।

—नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्री-
मेकः कृत्स्नां नगरपरिघप्रांशुबाहुर्भुनक्ति ।
आशंसन्ते समितिषु सुराः सक्तवैरा हि दैत्यै-
रस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरुहूते च वज्रे ॥ (शा० २)

—यन्मां विधेयविषये स भवान्नियुङ्क्ते
स्नेहस्य तत्फलमसौ प्रणयस्य सारः । (मालती० १)

५—अवादयच्छनैर्वायुर्लता नर्तयमानवत्।
नायासयत मन्दस्ता ऋतवोऽन्योन्यसंपदः ॥
ज्योत्स्नामृतं शशी यस्यां वापीर्विकसितोत्पलाः ।
अपाययत संपूर्णः सदा दशमुखाज्ञया ॥
प्रादमयंत पुष्पेषु यस्यां देव समाहृताः ।
परिमोहयमाणाभी राक्षसीभिः समावृता ॥
यस्यां वासयते सीता केवलं स्म रिपुः स्मरात् ।
न स्वरोचयतात्मानं चतुरो बुद्धिमानपि। ॥ (भट्टि० ८।६१ से ६४ तक)

१६—उत्क्षिप्तगात्रः स्म विटङ्कयन्नभः समुत्पतिष्यन्तमगेन्द्रमुच्चकैः ।
आकुञ्चितप्रोहनिरूपितक्रमं करेणुरारोहयते निषादिनम् (शिशु० १२।५)

संस्कृत में अनुवाद कीजिये—

१—ऋष्यशृंग ने सीता जी को आशीर्वाद दिया (आ+शास) कि तू वीर पुत्र पैदा कर।

२—जब इस द्वन्द्व युद्ध की तैयारी करना (सम्+नह) तो अपने साथ अपने सर्वोत्तम अस्त्रशस्त्रों को ले लेना (आ+दा)।

३—महाराज, सुनिए, चाहे आप मेरे ऊपर अत्याचार कर लें, चाहे मेरी सारी सम्पत्ति छीन लें पर सत्य के प्रति मेरी आस्था मुझसे आप नहीं ले सकते।

४—रामचन्द्र से टूटा हुआ गड्ढा खेत में चरने वाले पशुओं को डराता था (˚ + णिच्)।

५—छः उपायों में से साम को सर्वदा पहिले काम में लाना चाहिये (प्र+युज्), उसके असफल हो जाने पर अन्य उपायों का अवलम्बन करना चाहिये।

६—ग्वाला अपनी गायों को तालाब का निर्मल जल पिला कर (पा णिजन्त) सूर्यास्त के समय अपने घर गया।

७—जब मनुष्य दूर जाने लगता है, तो वह अपने गुरुजनों से विदाई लेता है (आ+प्रच्छ्) और अपने कुलदेवता को प्रणाम करता है।

८—सूर्य की प्रखर गर्मी से पीड़ित होकर हाथी तुरन्त अगाध जल वाले तालाब में घुस गया।

९—अपनी प्रजा की सन्तानवत् रक्षा करने वाला (भुज्) राजा स्वयं ही अनन्त सुख भोगता है और सिंहासन के प्रति प्रजा की श्रद्धा प्राप्त करता है।

१०—एक जलपात्र के ऊपर लटकती हुई मछली की परछाईं को नीचे से देखकर उसे बींध देने वाले को द्रुपदराज ने कन्यादान की प्रतिज्ञा की।

११—यज्ञीय अश्व को खोजते-खोजते सगर-पुत्रों ने कपिल मुनि को देखा और उनके ऊपर अश्वापहारक का अभियोग लगाया (अभि+युज्)।

१२—अभाग्यवशात् अंधाधुन्ध (सरभस) भगदड़ में, त्वरा से अंधी माता ने अपने प्रिय शिशु का सिर एक प्रस्तरखण्ड से टकरा कर (आ+हन्) उसे मार डाला।

१३—कौवा रोटी के तथा अन्य खाद्य पदार्थों के टुकड़ों को चुन चुनकर (अप+हृ) अपना प्राण धारण करता है।

१४—एक बार फारस देश के एक राजा ने किसी दार्शनिक से पूछा (अनु+युज्) कि आप राजाओं में किस चीज को सब से अधिक सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। उसने उत्तर दिया—तृष्णा का अभाव।

१५—इस कलियुग में माँ-बाप प्राय: अपनी कन्याओं को द्रव्य के लिये बेंच डालते हैं (वि+क्री) और वृद्धावस्था से दोहरे झुके हुए पुरुषों के साथ उनका ब्याह कर देते हैं। क्या यह राक्षसी कर्म नहीं।

———

चतुर्थ भाग

वाक्य-विश्लेषण तथा वाक्य-संकलन

३४६—प्रथम तीन भागा में हमने सस्कृत व्याकरण के उन सिद्धान्तो पर विचार किया जिनके द्वारा एक सस्कृत वाक्य में आये हुए शब्दो का एक-दूसरे से सम्बन्ध निर्धारित किया जाता है अथवा दूसरे शब्दो में यह कहिये कि जिन सिद्धान्तो के अनुसार विभिन्न शब्दो को जोड कर हम सस्कृत वाक्य-रचना करते हैं। हमने व्याकरण के बहुत ही मुख्य-मुख्य रूपों तथा उपयोगी सयोजक शब्दो, जिनकी प्रोफेसर वेन ने इन शब्दो में प्रधानता बलाई है—'सभी प्रकार के विषयों और शैलियो से समान सम्बन्ध रखने वाले (ये रूप और सयोजक शब्द) संस्कृत निबन्ध-रचना की कबुजा (Hinges) हैं' को भी समझाया है। चूँकि वर्तमान या प्राप्त सस्कृत व्याकरणा में इन रूपो और शब्दों पर बहुत बरिल और अधूरा विचार किया गया है अत· इन रूपों और वाक्यों की व्याख्या संस्कृत में और भी आवश्यक हो जाती है। यद्यपि यह विषय शब्द-कोष-सग्रह-कर्त्ता के क्षेत्र का है।

संस्कृत-रचना या कारक-प्रक्रिया के नियमो को सरल और सुबोध बनाने के लिए वाक्य-विश्लेषण पर विचार करना आवश्यक है। इससे विद्यार्थियो को किसी वाक्य के विभिन्न अगो और उनके आपस के सम्बन्धों को निर्धारित करने की योग्यता प्राप्त होगी। वाक्य-विश्लेषण सस्कृत निबन्ध-रचना को सुगम बना देगा और विद्यार्थियो को सस्कृत से अन्य भाषाओ या अन्य भाषाओ से सस्कृत मे अनुवाद करने मे सहायता मिलेगी।

(Phrase) कहते हैं और शब्दों का समूह जिससे एक निश्चित और पूर्ण विचार या भाव व्यक्त होता है, वाक्य है। जैसे,

राम, सुवर्णम्, नीति —ये पद हैं। रामविवासनम, अग्नितप्तं सुवर्णम्, जनहितावहा नीति—ये पद-समुच्चय हैं। रामविवासन कैकेय्या अभिमतम्, अग्नितप्त सुवर्णं विलिनाति, जनहितावहा नीति. राज्ञा अनुरुध्यते—ये वाक्य हैं।

टिप्पणी—वाक्य चाहे साधारण हो, चाहे आज्ञा (लोट्) में हो, चाहे आशीर्वादात्मक हो, चाहे प्रश्नवाचक हो, तत्वतः सब एक ही हैं।

३४८—प्रत्येक वाक्य में दो भाग होते हैं—उद्देश्य तथा विधेय। जिसके विषय में कुछ कहा जाता है, वह उद्देश्य कहलाता है। उद्देश्य के विषय में जो कुछ कहा जाता है, वह विधेय है। जैसे, सविता उदेति—सूर्य उदित होता है। यहाँ सविता उद्देश्य है और उदेति विधेय है।

३४९—वाक्य तीन प्रकार के होते हैं—साधारण, मिश्रित (संकीर्ण) तथा संयुक्त।

साधारण वाक्य वह है जिसमें एक उद्देश्य और एक प्रधान क्रिया हो अथवा जो भी विधेय का काम करता हो वह हो (और आगे देखिए); जैसे, अहं पापकारिणी महाभागमद्राक्षम् (कादम्० १६६), धिक् ताम् (भर्तृ० २।२)

मिश्रित (संकीर्ण) वाक्य वह है जिसमें केवल एक प्रधान उद्देश्य (कर्त्ता) और एक ही प्रधान विधेय होता है, परन्तु दो या तीन प्रधान क्रियाएँ (finite verbs) होती हैं, जैसे, या चिंतयामि सततं मयि सा विरक्ता (भर्तृ० २।२), यदि गर्जति वारिधरो (स) गर्जतु (मालविका० ५)।

संयुक्त वाक्य वह है जिसमें दो या दो से अधिक स्वतन्त्र वाक्य हों, जैसे, दुदोह गां स यज्ञाय शस्याय मघवा दिवं (दुदोह च)—(रघु० १।२६)

साधारण वाक्य

३५०—साधारण वाक्य में एक कर्त्ता और एक प्रधान क्रिया (finite verb) होती है।

यह साधारण वाक्य का सबसे प्रारम्भिक स्वरूप अथवा मूल स्वरूप है। आगे उन विधियों का वर्णन किया जायगा जिनसे कि बृहत्तर तथा पेचीदे स्वरूप बनते हैं।

३५१—साधारण वाक्य के मूल तत्वों—उद्देश्य और विधेय—में और भी गौण अवयव जोड़कर उनको बढ़ाया जा सकता है, और उन गौण अवयवों में भी और अधिक अवयव जोड़कर वे भी बढ़ाए जा सकते हैं।

उद्देश्य

३५२—उद्देश्य (कर्त्ता) संज्ञा (साधारण अथवा संयुक्त) अथवा सर्वनाम हो सकता है।

'आत्मा' तपस्यायोजित (कादम् १६३); 'शुकनाश' सविस्तरमुवाच (कादम्० १०२), "भरतशत्रुघ्नौ' द्वन्द्व बभूवतु (रघु० १० ८१), 'त्रैलोक्यमपि' पीडितम्, 'पटुत्वं' कथायोगेन बुध्यते (हित० १), 'मरण' प्रकृति शरीरिणाम् (रघु० ८।८७), 'सो'ऽप्याचचक्षे (दशकु० २।८)।

विशेष—(क) क्रिया से स्वय ही कर्त्ता का वचन और पुरुष मालूम हो जाता है। अत प्राय उसे (कर्त्ता को) बिल्कुल ही प्रकट नहीं करते, जैसे, (भगवान्) अपनयतु न कुतूहलम् (कादम्० १८), कथ मन्दभाग्य करोमि (अहम्) (उत्तर० ३), (त्व) ब्रूहि रामचरितम् (उत्तर० २)।

(ख) प्राय विशेषण अपने विशेष्य के बिना ही प्रयुक्त होता है, जैसे, 'विद्वान्' सर्वत्र पूज्यते, 'द्वावपि' आगमिनौ (मालविका० ३)।

(ग) प्राय संख्यावाचक शब्द वाक्य के उद्देश्य के तौर पर प्रयुक्त होते हैं जैसे, शरदाम् अयुत ययौ (रघु० १०।१), शतम् अनूच्यमायुष्कामस्य।

३५३—संज्ञा अथवा सर्वनाम की विशेषता बताने वाले भिन्न-भिन्न साधनों से साधारण कर्त्ता का विस्तार किया जा सकता है—

(१) विशेषण द्वारा—विशेषण चाहे सार्वनामिक हो, चाहे कृदन्तीय हो, चाहे गुणबोधक हो, चाहे परिमाण-बोधक हो,

'स' राजा विमारम्भ सम्प्रति (उत्तर० २), या 'इयमन्या' [illegible]पिता (उत्तर० ४) 'अजस्र' (स) समर्थयामास (कादम्० १३३),

एवम् 'अभिधीयमानः' स प्रत्यवादीत् (कादम्० १४७); पदपंक्तिर्दृश्यते 'अभिनवा' (शा० ३), 'चतुर्दश' सहस्राणि रक्षसा भीमकर्मणा हतानि (उत्तर० २)।

(२) षष्ठ्यन्त संज्ञापद अथवा सर्वनामपद से, जैसे, 'रामस्य' करुणो रस (उत्तर० ३), अपि कुशली 'ते' गुरु (रघु० ५।४); अन्यविषया न तु दृष्टि 'अस्या' (शा० ३),

(३) समानाधिकरणसंज्ञा द्वारा, जैसे, तस्मिन् 'भोजवंशभूषण' 'सम्भावयिता बुधान्' पुण्यवर्मा नामासीत् (दशकु० २।८)।

विशेष—सकर्मक क्रियाओं से बने हुये कृदन्तीय विशेषणों के योग में कर्म कारक भी आता है, जैसे,

'आसेदिवान्' रत्नवत् 'आसनं' स गुहेनोपमेयकान्तिरासीत् (रघु०), 'अनुयास्यन् मुनितनया' (अहं) विनयेन वारितप्रसरः (शा० ६।४), 'रसिकमनांसि समुल्लासयन्' वसन्तसमयः समाजगाम (दशकु० १), १।५)।

टिप्पणी—रूप-परिवर्तन-हीन संस्कृत के सुबन्त शब्द समय-सूचक अव्यय के स्वभाव वाले होते हैं। विधेय के विस्तार का वर्णन करते समय उन पर विचार किया जावेगा।

३५४—संस्कृत में प्राय समासों द्वारा विस्तार किया जाता है। समास संस्कृत का सार है, और समासहीन अनुच्छेद पा जाना बड़ा कठिन हो जाता है। इन समासों के लम्बान की कोई भी सीमा निर्धारित नहीं है। यदि यह देखना हो कि संस्कृत-लेखकों ने इस अधिकार को कितनी स्वतन्त्रता-पूर्वक प्रयुक्त किया है तो दण्डी, सुबन्धु और बाण भट्ट तथा भवभूति की कृतियाँ देखिये (मालतीमाधव के तृतीयांक में लवंगिका की उक्तियाँ तथा पञ्चमांक में सुप्रसिद्ध दण्डकछन्द देखिये)। उचित लम्बान वाले समासों से वाक्य की शोभा बढ़ जाती है, और शब्दों के प्रयोग में बहुत किफायत भी हो जाती है।

३५५—संज्ञा और सर्वनाम के विस्तार में सब से अधिक प्रयोग तत्पुरुष तथा बहुव्रीहि समासों का होता है।

(१) साधारण विशेषण के स्थान पर व्यधिकरण तत्पुरुष, कर्मधारय, उपपद तत्पुरुष और बहुव्रीहि का प्रयोग किया जा सकता है,

च्यपिता 'तद्विटपाश्रिता' लता (रघु० ८।४७), 'अबलाविप्रयुक्त कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठ' स कामी (मेघ० २), 'उटजद्वारविरूढम्' नीवारवलिम् (शा० ४), 'ताम्बूलकरकवाहिनी' तरलिका (कादम्० १४८) 'गृहीतप्रतिमुक्तस्य' तस्य (रघु० ४।४३), कुल्याम्भोभि 'पवनचपलै. (शा० १)।

षष्ठीतत्पुरुष प्राय सम्बन्ध सूचित करने के लिये प्रयुक्त किया जाता है,

कौत्स प्रपेदे 'वरतन्तुशिष्य' (रघु० ५ । १), नष्टाशका 'हरिणशिशव' चरन्ति (शा० १)।

३५६—उपर्युक्त विधियों में से दो या दो से अधिक को एक साथ मिलाकर उद्देश्य का और भी आगे विस्तार किया जा सकता है, और यदि वे विस्तार वाले शब्द सज्ञा या सर्वनाम हों तो उनका विस्तार और भी आगे किया जा सकता है —

एकदा तत्रस्थ एव मृगयानिर्गतो विचरन् [विशेषण] कानन किनरमिथुनमद्राक्षीत् (कादम्० ११६)। तत्तनयश्च (षष्ठीतत्पुरुष) हारीतनामा (विशेषण) तापसकुमारक (सामानाधिकरण सज्ञापद) सनत्कुमार' इव सर्वविद्यावदातचेता (विशेषण बहुव्रीहि) सिस्नासु (विशेषण) उपागमत् (कादम्० ३७)। ताभिरष्टाभि प्रत्यक्षाभि (तनुभि का विशेषण) तनुभि प्रपन्न (कर्ता का विशेषण) ईशो व अवतु (शा० १)। मदम्बा पूर्णभद्रबोधितार्था (विशेषण) तादृशेपि व्यसने (क्रिया-विशेषण) नातिविह्वला (विशेषण) कुलपरिजनानुयाता (विशेषण) मत् पितुरुत्तमागम् उत्सगेन धारयन्ती (कर्म सहित कृदन्तीय विशेषण और क्रिया विशेषण) राज्ञे समादिदेश (दशकु० २।४)। इसी प्रकार 'तस्य' 'त्रय', पुत्रा 'परमदुर्मेधस 'वसुशक्तिरुग्रशक्तिरनेकशक्तिश्चेति नामानो' बभूवु (पञ्च० १), दुखेन तप्यन्ते 'त्रयो' 'न ' पितर 'अपरे' (उत्तर० ५)।

कर्म अथवा विधेय का पूरक

३५७—यदि विधेय कोई सकर्मक क्रिया, या गत्यर्थक क्रिया हो, या कोई ऐसी क्रिया हो जो कर्मप्रवचनीय के बल से सकर्मक हो जाती हो, तो वह कर्म द्वारा पूरी की जाती है। वह कर्म या तो संज्ञापद हो सकता है, या सर्वनाम पद या कोई भी ऐसा शब्द जो संज्ञा का काम कर सकता हो,

जाबालिम् अपश्यम् (कादम्० ४२), आखण्डल. 'काममिद' बभाषे (कुमार० ३।२)। याति अस्त-शिखरं पतिरोषधीनाम् (शा०)। विचचार 'दावम्' (रघु० २। ८)। पत्ति पदातिम् अभ्यपतत् (रघु० ७ ३७)।

३५८—कर्म का भी विस्तार उसी प्रकार किया जा सकता है जिस प्रकार कर्ता का (सेक्शन ३५३ लगातार ३५६ तक देखो।)—त्र्यम्बकं 'संयमिनं' ददर्श (कुमार ३। ४४)। 'विलपन्तं' कपिञ्जलसश्रौपम् (कादम्० १६५)। तं तस्थिवांसं'।नगरोपकण्ठे (विशेषण की विशेषता बतलाता है) प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्रः।(रघु० ५।६१)। प्रकृतिवक्र स 'कस्य' अनुनयं प्रतिगृह्णाति (शा० ४)। इदम् 'अव्याजमनोहरं' वपु 'तप क्षमं' साधयितु य इच्छति (शा० १), मेघम् 'आश्लिष्टसानुम्' 'वप्रक्रीडा-परिणतगजप्रेक्षणीयं' ददर्श (मेघ० २)। अवनिपतिस्तु प्रतीहार्या निर्दिश्यमानां ता 'प्रावृषमिव घन-केशजालाम्' 'अलकोद्भासिनीम्' 'अचिरोपरूढयौवनाम्' 'अतिशयरूपाकृतिम्' अनिमेषलोचनो ददर्श (कादम् ११)

३५६—बनाना, नाम रखना, पुकारना, सोचना, विचारना, नियुक्त करना—इत्यादि अर्थों को द्योतित करने वाली धातुओं का, मुख्यकर्म के अतिरिक्त, एक पूरक कर्म भी होता है, जैसे,

तमात्मजन्मानम् 'अज' चकार (रघु० ५।३६)। आज्ञामपि 'वरप्रदान' मन्यन्ते, दर्शनप्रदानमपि 'अनुग्रह' गणयन्ति (कादम्० १०८)। प्रत्याख्यानमपि 'ईर्ष्या' संभावयति, 'आक्रोशमपि परिहासम् आकलयति', दोषसंकीर्तनमपि 'स्मरणोपायम्' अवगच्छति, अवज्ञानमपि 'अनियन्त्रण प्रणयम्' उत्प्रेक्षते (कादम्० २३५)

३६०—दुह्, याच्, शास्, नी इत्यादि धातुएँ दो कर्म लेती हैं। उनमें से एक प्रधान कर्म कहलाता है, दूसरा गौण कर्म अथवा एक प्रत्यक्षकर्म, दूसरा अप्रत्यक्ष कर्म अथवा अकथित कर्म (सेक्शन ४० देखिये)

३६१—अर्थदृष्टि से सकर्मक की श्रेणी में गिनी जानी वाली धातुएँ कभी कभी नियम-विशेष के कारण चतुर्थ्यन्त अथवा पञ्चम्यन्त अथवा षष्ठ्यन्त अथवा सप्तम्यन्त पद लेती हैं। ऐसे प्रयोगों को विधेय का पूरक समझना चाहिए, क्योंकि उनके बिना अर्थ पूर्ण नहीं होता, स्पृहयामि दुर्ललिताय अस्मै (शा० ७)। कुप्यन्ति 'हितवादिने' (कादम्० १०८) असूयन्ति 'मम प्रकृतय' (विम्मो० ४)। 'पापात्' जुगुप्सते (म० भा०)। स्मरसि वा 'तस्य प्रदेशस्य' (उत्तर० ६)। स स्निह्यति 'आवयो' (उत्तर० ६)।

३६२—देना, बतलाना, प्रतिज्ञा करना, भेजना—इन अर्थों का बोध कराने वाली धातुओं के योग में चतुर्थी होती है, और चतुर्थी में वह व्यक्ति रक्खा जाता है जिसे कोई चीज दी जाती है अथवा जिससे कोई चीज बताई जाती है। इस चतुर्थ्यन्त पद को अप्रत्यक्ष कर्म अथवा अकथित कर्म समझना चाहिए।

'विप्राय' गा प्रतिश्रृणोति, भोजेन दूतो 'रघवे' विसृष्ट (रघु० ५।३०); 'तस्मै' प्रस्तुतमाचचक्षे (रघु० ५।१९)।

विशेष—एक दूसरे दृष्टिकोण से ये विधेय के विस्तार कहे जा सकते हैं, और उनसे इन प्रश्नों का उत्तर मिलता है—'किसको', 'कहाँ'।

विधेय

३६३—विधेय अकेली प्रधान क्रिया हो सकती है जैसे 'आज्ञापयतु' भवान् (शा० १) त्वया सह गौतमी 'धारयति' (शा० ४)।

३६४—गम्यमान अथवा प्रत्यक्ष 'अस्'-धातु-युक्त कोई विशेषण पद या [illegible] हो सकता है जैसे

[illegible] परमात्मा 'पन्नः' ([illegible])। त्वम् 'असि महसा [illegible]' ([illegible])। वत्से, [illegible] ([illegible])। 'गृहीत' [illegible] ([illegible])। 'अनाहतोऽसि' ([illegible])। [illegible] हि [illegible] ([illegible])। दूषिता स्थ 'परिभूता स्थ' [illegible] ([illegible])। [illegible] पुन चिन्तितवान् ([illegible])।

(क) 'अस्' धातु अपूर्ण-विधेया धातु है, अत अर्थ को पूर्ण करने के लिए इसे एक संज्ञापद अथवा सर्वनामपद की अपेक्षा होती है, जैसा कि ऊपर के उदाहरणों में है। परन्तु जब यह 'अस्तित्व' अर्थात् 'सत्ता' का बोध कराती है, तब यह अकेली ही आती है, जैसे,

हिमालयो नाम नगाधिराज. अस्ति (कुमार० १।१)।

इसी प्रकार, भू धातु भी जब केवल अस्तित्व का बोध कराती है तब अकेली ही आती है, पन्तु जब 'होना' अर्थ मे आती है तब अपूर्णविधेया रहती है, जैसे, 'बभूव' योगी किल कार्तवीर्य (रघु० ६। ३८)।

(ख) कभी-कभी विधेय (अस्, विद्, और वृत्) बिल्कुल ही नहीं प्रकट रहता मातले कतमस्मिन् प्रदेशे मारीचाश्रम (शा० ७)। इस वाक्य में अस्ति अथवा विद्यते छिपा हुआ है।

३६५—अपूर्णविधेया धातुएँ और भी हैं, जैसे, भू, वृत् (होना), जन् (होना या उत्पन्न होना), भा (मालूम पडना), दृश् कर्मवाच्य (मालूम पड़ना), लक्ष् कर्मवाच्य (मालूम पड़ना)। विधेय को पूर्ण करने के लिए इन्हें भी संज्ञापद अथवा विशेषणपद की अपेक्षा होती है, जैसे,

तेऽपि 'यथोक्ता' 'संवृत्ता.' (पंच १)। तव प्रजासु , विडौजा प्राज्यवृष्टिर्भवतु (शा० ७)। ईदृशाना विपाकोऽपि 'परमाद्भुतो' जायते' (उत्तर० ३)। स्वात्या सागरशुक्तिसंपुटगत (पय) 'सन्मौक्तिक जायते' (भर्तृ० २।६७) (एक सुन्दर मोती होती है)। अय पाण्ड्य 'अद्रिराज' इवाभाति (रघु० ६ । ६०)। 'मदनक्लिष्टा' इयमालक्ष्यते (शा० ३) (प्रेम-पीडित प्रतीत होती है)।

(क) मन् (समझना, सोचना) तथा कृ धातु जब कर्मवाच्य मे रहती है तब उनका भी प्रयोग इसी प्रकार होता है, जैसे,

नलिनी 'पूर्वनिदर्शन मता' (रघु० ८।४५)। व्याघ्र 'कुक्कुट कृत' (हित० ४)। स 'सेनापति नियुक्त'।

इसलिए जब विधेय संज्ञापद अथवा विशेषणपद होता है तब उसी विभक्ति में रक्खा जाता है जिस विभक्ति में कर्ता रहता है, अथवा वह प्रथमा विभक्ति में रक्खा जाता है।

२६६—कभी कभी अव्ययों का प्रयोग करके वाक्य संक्षिप्त रूप में प्रकट किया जाता है और उद्देश्य तथा विधेय दोनों ही गम्यमान रहते है, प्रकट नहीं रहते, और उन्हीं अव्ययों में से निकालकर प्रकट किए जाते हैं, जैसे,

'धिक्' ता च त च='सा' च 'स' च 'निन्द्यौ' स्त ।

शिवाय 'नम'=शिव प्रणम्यते ।

अल प्रयत्नेन=प्रयत्नेत न 'किमपि' साध्यम् इत्यादि ।

२६७—प्राय अव्यय पद विधेय का काम देते हैं, जैसे,

विषवृक्षोऽपि छेत्तुम् 'असाम्प्रतम्' (कुमार २।५५)=न युज्यते ।

पवन आलिगितु 'शक्यम्' (शा० ३)=शक्यते । 'कष्टं' खलु अनपत्यता (शा० ६)। मनसिजरुज सा वा दिव्या मम 'अलम्' अपोहितुम् (विक्रमो० ३)।

विधेय का विस्तार

२६८—विधेय का विस्तार निम्नलिखित साधनों से हुआ करता है—

(१) अव्यय द्वारा

(२) जिस किसी में क्रियाविशेषण अव्यय की समता हो, उसके द्वारा,

(३) जो भी क्रियाविशेषण अव्यय के तुल्य हो, उसके द्वारा ।

काल—स्थान—प्रकार—वाचक क्रियाविशेषण अव्यय, विस्मयादि-बोधक अव्यय बहुत से सुबन्त पद (प्रथमा, द्वितीया, षष्ठी, और सम्बोधन के अतिरिक्त) इसी प्रकार का कार्य करते हैं अर्थात् विधेय के विस्तार के काम में आते हैं । शब्दों के साथ परसर्गों (कर्म-प्रवचनीयों) अथवा क्रियाविशेषणों का जुड़ जाना भी विधेय के विस्तार के काम में आता है, यथा लार्थम्, रामाद् विना, ब्राह्मणानथ, राज्ञ समक्षम् आदि ।

२६९—विधेय के विस्तार का चार भेदों में वर्गीकरण हो सकता है—

कालवाचक-क्रियाविशेषण-विस्तार

२७०—कालवाचक क्रियाविशेषण वाले विस्तारों से निम्नलिखित वस्तुएँ प्रकट होती हैं—

(१) कब के उत्तर में समय अथवा अवधि का बोध होना है, जैसे,

द्वय गत 'सम्प्रति' शोचनीयताम् (कुमार० ५।७१)। 'तत' प्रविशति कचुकी (शा० ५)। यास्यति 'अद्य' शकुन्तला (शा० ४)। आषाढस्य 'प्रथमदिवसे' मेघ ददर्श (मेघ० २)। 'अनुदिवसम्' परिहीयसे अगै (शा० ३)। गिरिशमुपचचार 'प्रत्यहम्' सा सुकेशी (कुमार० १।६०)। 'अस्मात् परं' को न. कुले निवपनानि नियच्छति (शा० ६)।

विशेष—(क) भावेसप्तमी से बने हुए वाक्यांश प्राय कालवाचक क्रियाविशेषण अव्यय माने जा सकते हैं,

'अन्तर्हिते शशिनि' सैव कुमुद्वती मे दृष्टि न नन्दयति (शा० ४) (चन्द्रमा के छिप जाने पर)। 'गते च केयूरके' चन्द्रापीडमुवाच (कादम्० १८१)।

(ख) इसीप्रकार क्त्वान्त और ल्यबन्त शब्द भी कालवाचक क्रियाविशेषण हैं। वे जब सकर्मक क्रियाओं से बने होते हैं तब उनका कर्म होता है,

'प्रतिनिवृत्य'त प्रदेश व्यलोकयम् (कादम्० १२५)। महाश्वेता 'तच्छ्रुत्वा' सुचिर 'विचार्य' केयूरक प्राहिणोत् (कादम्० १८१)। अचिरात् 'पावन तनय प्रसूय' मम विरहजा शुच न गणयिष्यसि (शा० ४। १८)

(२) 'कब तक' 'कहाँ तक' प्रश्न के उत्तर में कालान्तर अथवा अवधि का बोध होता है, जैसे, 'इयति दिवसानि' प्रजागरकृशो लक्ष्यते (शा० ३)। दत्तदृष्टि 'सुचिर' व्यचरम् (कादम्० १५२)। 'क्रोशं' कुटिला नदी (सि० कौ०)। स्तन्यत्यागं यावत् अवेक्षस्व (उत्तर० ७)।

(३) 'कितनी बार' प्रश्न के उत्तर में जैसे, 'बारबार' तिरयति दृशोरुद्गम बाष्पपूर (मालती० १)। अह्नो 'द्वि' भुङ्क्ते (सि० कौ०)। ताम्यन्मूर्ति श्रयति 'बहुश' चन्द्रपादान् (मालती० ३)

स्थानवाचक-क्रियाविशेषण-विस्तार

२७१—स्थानवाचक-क्रियाविशेषण-विस्तार तीन बातें सूचित करते हैं—

'कहाँ' प्रश्न के उत्तर मे किसी स्थान मे रहना सूचित करता है।

अस्ति 'अवतीषु' उज्जयिनी नाम नगरी (कादम्० ४८)। 'कस्मिश्चिद-धिष्ठाने' कौलिकरथकारो प्रतिवसत. स्म (पच०१।५)। एष कण्वस्य महर्षे 'उपमालिनीतीरम्' आश्रमो दृश्यते (शा० १)। अस्ति 'उत्तरस्या दिशि' नगाधिराज (कुमार०१।१)। निर्मल नख-लग्नमूर्ति. 'पादयो.' पतति (कादम्०१६३)।

(२) किसी स्थान की तरफ गति प्रकट करता है, और 'किस तरफ'—इस प्रश्न का उत्तर देता है, जैसे,

सा तरलिका 'क' गता (कादम्०१७६)। 'नीचै.' गच्छति 'उपरि' च दशा (मेघ० ११२)। 'गृहाभिमुख' प्रतस्थे (हित०४)। मदोद्धता 'प्रत्यनिल' विचेरु (कुमार० ३ । ३१)।

(३) किसी स्थान से पृथक्त्व प्रकट करता है, और "कहाँ से' —इस प्रश्न का उत्तर देता है, जैसे, यदि मे 'दर्शनपथात्' नापयाति (कादम्० १३२)। 'वनस्पतिभ्य' कुसुमान्याहरत (शा० ४)। 'कुत.' इद सौधमागतम् (दशकु०२ । ५)।

विशेष—कारण अथवा अभिप्राय के अतिरिक्त पचमी के शेष अर्थ इसी प्रकार प्रकट किए जाते हैं, 'तीक्ष्णात्' उद्विजते (मुद्रा० ३)। 'दिवाकरात् अन्धकार रक्षति (कुमार० १ । १२)।

प्रकारवाचक-क्रियाविशेषण-विस्तार

३७२—प्रकारवाचक-क्रियाविशेषण-विस्तार निम्नलिखित बाते प्रकट करते है—

(१) किसी क्रिया का प्रकार या ढग (कैसे) चन्द्रापीड 'सविनयम् अपाठीन (कादम्०१३४)। माधव 'सलज्जम्' अधोमुखस्तिष्ठति (मालती० १)। को वा दुर्जनवागुरासु पतित 'क्षेमेण' यात पुमान् (पच०१।२)। तदिद 'कणशो' विकीर्यते (कुमार० ४।२७)। 'त्वरितम्' अपसर्पता तरुगहनेन (उत्तर० ४)। अथवा 'कथ' भवान मन्यते ([illegible] [illegible]० १)। 'अयत्नेनैव उपशान्तान्यस्य निर्भरानि' [illegible] जनम् (कादम्०५१) 'प्रहृष्टा' पद् [illegible] ([illegible]० १)।

(२) मात्रा;

तमवेक्ष्य सा 'भृशं' रुरोद (कुमार० ४।२६)। स राज्यं गुरुणा दत्तं 'प्रतिपद्य 'अधिकं' बभौ (रघु० ४।१)। 'यावच्छक्यं' सुहृदसवो रक्षणीया. (कादम्० १५१)

विशेष—तुलनावाची पञ्चमी इस वर्ग में रक्खी जा सकती है,

'मोहात्' प्रबोध. कष्टतरोऽभूत् (रघु० १४।५६)। गृह 'कान्तारात्' अतिरिच्यते (पञ्च ४।१)।

(३) किसी क्रिया का करण या साधन,

सचूर्णयामि 'गदया' न सुयोधनोरू (वेणी० १)। कच्चित् 'पथा' सञ्चरते सुराणाम् (रघु० १३।१६)। विसृजति 'हिमगर्भैं मयूखैः' अग्निमिन्दुः (शा० ३)।

विशेष—किसी क्रिया के कर्ता का बोध कराने वाली तृतीया इस वर्ग में रक्खी जा सकती है,

जनपदहितकर्ता त्यज्यते 'पार्थिवेन' (पञ्च० १।२)। 'त्वया' 'चन्द्रमसा' च अतिसन्धीयते कामिजनसार्थ (शा० ३)।
इदम् 'अशरणै' अद्याप्येव रुद्यते (उत्तर० ३)।

अथवा इस प्रकार की तृतीया कर्ता के खाने में रक्खी जा सकती है क्योंकि वह क्रिया के कर्ता का बोध कराती है।

(४) सहगामिनी परिस्थितियाँ,

'त्वया सह' निवत्स्यामि (उत्तर० २)। रत्न समागच्छतु 'काञ्चनेन' (रघु० ६।७९)। 'जटाभि.' तापस (भवति अथवा ज्ञायते)। 'महत्या सेनया निर्जगाम । स्मर क्षणमप्युत्सहते न 'मां विना' (कुमार० ४।३६)।

कार्यकारणवाचक-क्रियाविशेषण-विस्तार

३७३—इस प्रकार के विस्तार से निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं —

(१) किसी क्रिया का कारण, या अभिप्राय (तृतीया तथा पञ्चमी से सूचित होने वाले अर्थ)—

'दौर्मन्त्र्यात्' नृपति विनश्यति (भर्तृ० २।४२)। 'भर्तृगतचिन्तया आत्मानमपि नैषा विभावयति (शा० ४)। 'आवेगस्खलितया गत्या' प्रभ्रष्ट

मे पुष्पभाजनम् (शा० ४)। कापुरुष 'स्वल्पकेनापि' तुष्यति (पञ्च० १।१)। लज्जेऽहम् 'अनेन प्रागल्भ्येन' (कादम्० १८७)। 'त्वया' जगन्ति पुण्यानि (उत्तर० १)। नाथवन्त 'त्वया' लोकाः (उत्तर० १)।

(२) किसी क्रिया का अंतिम कारण अथवा निमित्त; जैसा कि चतुर्थी से अथवा तुमुनन्त से सूचित होता है,

'समिदाहरणाय' प्रस्थिता वयम् (शा० १)। अयति बहुशो 'मृत्यवे' चन्द्रपादान् (मालती० ३)। प्रवर्तता 'प्रकृतिहिताय' पार्थिव. (शा० ७)। 'अमीषा प्राणाना कृते' कि नास्माभि व्यवसितम् (भर्तृ० ३।३६)। तद् गच्छ 'सिद्ध्यै' (कुमार० ३।१८)। 'लोकान् दग्धु' तत्तपोऽलम् (कुमार० २।५६)। यावद् यते 'साधयितु तवार्थम्' (रघु० ५।२५)। 'छेत्तु वज्रमणीन्' शिरीषकुसुमप्रान्तेन सनह्यते (भर्तृ० २।६)।

(३) विरोध (Concession) शर्त

'तथापि' घटिष्ये (मालविका० १)। नन्दा हता 'पश्यतो राक्षसस्य' (मुद्रा० ३)

३७४—एकविंशतितम पाठ से लेकर अष्टाविंशतितम पाठ तक में जिन अव्ययो का निरूपण किया गया है, वे वाक्य-विश्लेषण में या तो छोड दिए जाते हैं या प्रकारवाचक क्रियाविशेषण-विस्तार के खाने मे रक्खे जा सकते हैं।

३७५—ऊपर जो चार विधियाँ बताई गई हैं, उनमें से दो को या दो से अधिक को एक मे मिलाकर विधेय का विस्तार किया जा सकता है। सेक्शन ३५३ से लेकर सेक्शन ३५६ तक मे जिन विधियो का उल्लेख किया गया है, उनमे से किसी एक का प्रयोग करके विस्तारो का और भी आगे विस्तार किया जा सकता है।

'दिष्ट्या 'धर्मपत्नी समागमेन पुत्रमुखदर्शनेन' चायुष्मान् वर्धते (शा० ७)। अयं च अत्रभवतीचित्रकूटवनविहारे' 'सीतादेवीमुद्दिश्य' रघुपते श्लोक (उत्तर० १)। नियतं स्वयमेव इयम् 'अतिविनीततया' 'प्रतिपदमेव दिवसे' कुमारमाराधयिष्यति (कादम्० १०१)। 'प्रत्यूषे' 'उत्थाय' 'तेनैव क्रमेण' 'अनवरतप्रयाणकैः' 'प्रतिप्रयाणम् उपचीयमानेन सैनाम-

मुद्रायेन' जर्जरयन वसुन्धरा प्रातिष्ठत (कादम्० ११८)। 'अथ' राजवाहन. 'पुष्पोद्भवेन सह' 'स्वमन्दिरमुपेत्य' 'सादर' 'वालचन्द्रिकामुखेन' 'निज-वल्लभायै' 'सगमोपाय वेदयित्वा' कौतुकाकृष्टहृदय अतिष्ठत् (दशकु० १।५)

साधारण वाक्यों का वाक्य-विश्लेषण

३७६ —साधारण वाक्यों का वाक्य-विश्लेषण करने की यह विधि है—

१—पहिले वाक्य का कर्त्ता ढूँढ़ निकालिए।

२—तव कर्त्ता के विस्तारो को ढूँढ़ लीजिए।

३—विधेय (प्रधान क्रिया) को ढूँढ़िये।

४—कर्म वतलाइए (यदि प्रधान क्रिया सकर्मक है)।

५—कर्म के विस्तारों को लिख डालिए।

६—अन्त मे, प्रधान क्रिया के क्रिया-विशेषणात्मक विस्तारो को लिख दीजिए।

उदाहरण

(१) विश्व भरात्मजा देवी राज्ञा त्यक्ता महावने।
आसन्नप्रसवमात्मानं गङ्गादेव्या विमुचति॥ (उत्तर० ७)

(२) एव क्रमेण समारूढयौवनारभं परिसमाप्तसकलकलाविज्ञानमव-गम्यानुमोदितमाचार्यैश्चन्द्रापीडमानेतु राजा वलाधिकृत वलाहक-नामान वहुतुरगवलपदातिपरिवृत प्राहिणोत्। (कादम्० ७७)

(३) पौरस्त्यानेवमाक्रामस्तांस्ताञ्जनपदाञ्जयी।
प्राप तालीवनश्याममुपकठ महोदधे॥ (रघु० ४।३४)

(४) पुराणस्य कवेस्तस्य चतुर्मुखसमीरिता।
प्रवृत्तिरासीच्छब्दाना चरितार्था चतुष्टयी। (कुमार० २।१७)

(५) एव गते मन्त्रिणि राजनि च कामवृत्ते चन्द्रपालितोऽभ्येत्य विविधाभि क्रीडाभिर्विहारभद्रमात्मसादकरोत्। (दशकु० २।८)

(६) कौशिकेन स किल क्षितीश्वरो राममध्वरविघातशातये। काकपक्ष-धरमेत्य याचित. (रघु० ११।१)

(७) धिक् सानुज कुरुपतिं। (वेणी० २)

वाक्यविश्लेषण का रूप

कर्ता	कर्ता का विस्तार	क्रिया	कर्म	कर्म का विस्तार	क्रिया का क्रिया-विशेषण विस्तार
१ राजा	विश्वम्भरात्मजा, गङ्गा महा-वने त्यक्ता	विमुञ्चति,	आत्मानं	प्राणप्रमं	गङ्गादेव्या (स्थान)
२ राजा		प्राहिणोत्	बलाधिकृतं	चतुरंगबलपदाति परिवृतं (विशेषण) बलाहकनामानं	एवं क्रमेण समा-विशा नमवगम्य (काल), आ चार्यैरनुमोदित चन्द्रापी-डमानेतुं (अभिप्राय)
३ जया,	नाम्नात् पौरस्त्यान् जनपदानिवसाकामन्	प्राप	उपकंठं	तालावनश्यामं ('वशे०) महोदधे (सम्बन्धे षष्ठी)	
४ प्रशस्ति	नरदानां चतुष्ट्या तस्य पुराणस्य कवेश्चतुमु ख-समीरिता	चरितार्था आसीत्			
५ चंद्र-पालित		आत्मसात् अकरोत्	विहारभद्रं		एवम् अभ्येत्य (काल) निर्विधाभि क्रीडाभि (साधन)
६ त्रिनीशर मौशिकेन (कर्ता)	स (सार्वनामिक विशेषण)	याचित	राम (गौण कर्म)	काकपक्षधरं	एत्य (काल), किल (प्रकार), अध्वर-विघातशांतये (अभिप्राय)
७ पुरपति	मानुज	धिक् —निंद्य			

मिश्रित वाक्य

'यस्यार्था' तस्य मित्राणि (हित० १)। 'इतश्चेतश्च निर्गतो युवराजः इति' आकर्ण्य आचकम्पे मेदिनी (कादम्० ११३)।

जिस अंश में प्रधान कर्त्ता और विधेय होते हैं उसे प्रधान उपवाक्य कहते हैं, शेष को आश्रित अथवा अधीन उपवाक्य कहते हैं।

३७८—आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं—संज्ञा-उपवाक्य, विशेषण-उपवाक्य, और क्रिया-विशेषण-उपवाक्य।

वस्तुतः मिश्रित वाक्य साधारण वाक्य का एक विस्तृत स्वरूप है, जिसमें संज्ञा-उपवाक्य संज्ञा का प्रतिनिधित्व करता है, विशेषण-उपवाक्य विशेषण का और क्रिया-विशेषण-उपवाक्य क्रियाविशेषण का।

संज्ञा उपवाक्य

३७९—संज्ञा-उपवाक्य संज्ञा के स्थान पर आता है, अर्थात्, वह निम्न-लिखित कार्य करता है—

(१) प्रधान क्रिया का कर्त्ता
(२) प्रधान क्रिया का कर्म
(३) प्रधान उपवाक्य-स्थित किसी संज्ञापद का समानाधिकरण
(४) प्रधान उपवाक्य में आई हुई किसी क्रिया का कर्म —

(१) 'अयं पुनरविरुद्धः प्रकार इति' वृद्धेभ्यः श्रूयते (उत्तर० ४)—('श्रूयते' का कर्त्ता)। 'स स पापादृते तासां दुष्यन्त' इति घुष्यताम् (शा० ६)—('घुष्यताम्' का कर्ता)।

(२) प्रकाशं निर्गतस्तावदवलोकयामि 'कियदवशिष्टं रजन्या इति' (शा० ४)—('अवलोकयामि' का कर्म)

(३) 'अप्रतिष्ठे रघुज्येष्ठे का प्रतिष्ठा कुलस्य नः' इति दुःखेन तप्यन्ते त्रयो नः पितरोऽपरे॥ (उत्तर० ५)—(दुःखेन का समानाधिकरण)। तस्य कदाचित् चिन्ता समुत्पन्ना 'यदर्थोत्पत्त्युपायाश्चिन्तनीयाः (पञ्च० ११)—(चिन्ता का समानाधिकरण)।

(४) 'तथापि सुहृदा सुहृदसन्मार्गप्रवृत्तो यावच्छक्तितो निवारणीय इति' मनसा अवधार्य अब्रवम् (कादम्० १५५)—(अवधार्य का कर्म)।

३८०—सज्ञा-उपवाक्य प्रधानतया 'इति' से सूचित किए जाते हैं, अथवा यथा, यद् से आरम्भ होकर कभी इति से और कभी बिना इति के समाप्त होते हैं।

अकथितोपि ज्ञायत एव 'यथाय तपोवनस्याभोग' इति (शा० १)। सत्योय जनप्रवादो 'यत्सपत् सपदमनुबध्नातीति' (कादम्० ७३)। अविज्ञात-मदनवृत्तान्ता 'क गच्छामि इति' नाज्ञासिषम् (कादम्० १४७)।

विशेष—कभी कभी इति का प्रयोग नहीं भी होता, जैसे, कथय 'सत्सगति पुसा किं न करोति' (भर्तृ० २। ८८)। एतत् कल्याणाभिनिवेशिन श्रुतिविषयमापतितमेव 'यथा विबुधसद्मन्यप्सरसो नाम कन्यकाः सन्ति'। (कादम्० १३६)

विशेषण-उपवाक्य

३८१—विशेषण-उपवाक्य किसी सज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बताता है, और विशेषण-धर्मा होता है। इसका आरम्भ सम्बन्धवाचक सर्वनाम "यद्" के स्वरूपो (यावत्, यादृश आदि) से होता है।

विशेषण-उपवाक्य निम्नलिखित के साथ प्रयुक्त हो सकता है—

(१) कर्ता के साथ, 'यदालोके सूक्ष्म' व्रजति सहसा तद् विपुलताम् (शा० १)। तत्तस्य किमपि द्रव्य 'यो हि यस्य प्रियो जन' (उत्तर०२)। 'अहेतु पक्षपातो य' तस्य नास्ति प्रतिक्रिया (उत्तर ० ५)—कर्ता की विशेषता बताने वाले 'तस्य' की विशेषता बता रहा है।

(२) कर्म के साथ, 'यस्यागम केवलजीविकायै' त ज्ञानपण्य वणिज वदन्ति (मालविका ० १)। स तावदभिषेकान्ते स्नातकेभ्यो ददौ वसु। यावतैषा समाप्येरन् यज्ञा पर्याप्तदक्षिणा ॥ (रघु० १७।१७)।

(३) विधेय के [illegible] के साथ, 'युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो जगन्ति यस्या सविकाशमासत। तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागमसम्भवा मुद (शिशु० १।२३)—'मुद' के विस्तारसूचक शब्द 'तनौ' की [illegible] है।

३८२—प्रायः विशेषण-उपवाक्य विशेषणधर्मा समासों द्वारा सूचित किए जाते हैं अर्थात् व्यधिकरण तत्पुरुष और कर्मधारय समास तथा बहुव्रीहि समास द्वारा और क्त-प्रत्ययान्त, क्तवतु-प्रत्ययान्त, कृत्य-प्रत्ययान्त शब्दों द्वारा--

तन्नन्दिनीं सुवृत्ता नामैतस्मात् द्वीपादागतो रत्नोद्भवो नाम रमणीय-गुणालयो भ्रान्तभूवलयो व्यवहारी उपयेमे (दशकु० १।१)। यहाँ पर 'आगत' और 'भ्रान्तभूवलय', यो द्वीपादागच्छत् और यो भूवलय बभ्राम—इन विशेषण-उपवाक्यों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

क्रियाविशेषण-उपवाक्य

३८३—क्रियाविशेषण-उपवाक्य क्रियाविशेषण अव्यय का समानधर्मा होता है और क्रिया की विशेषता बताता है। यह क्रियाविशेषण अव्यय के स्थान पर आता है और उसी की रचना के समान इसकी भी रचना होती है। क्रियाविशेषण अव्यय ही के समान यह भी काल, स्थान, प्रकार, कारण और कार्य सूचित करता है।

३८४—कालवाचक क्रिया-विशेषण उपवाक्य प्रधान उपवाक्य के अन्दर आई हुई क्रिया का काल बताता है।

सत्वर निवेदय यावत् दंष्ट्रान्तर्गतो न भवसि' (पञ्च० १।८)। अत्रैव तावद्रथं स्थापय यावदवतरामि (शा० १)। यदा हर. पार्वतीं परिणेष्यति तदा स्मर स्वेन वपुषा नियोजयिष्यति (कुमार० ४।३२)। 'यावदसौ पान्थ सरसि स्नातु प्रविशति तावत् महापङ्के निमग्न. (हित० १)।

विशेष—कालवाचक क्रियाविशेषण-उपवाक्य को बहुधा भावे सप्तमी आदि के प्रयोग द्वारा सूक्ष्म करते हैं।

३८५—स्थानवाचक-क्रियाविशेषण-उपवाक्य किसी स्थान में किसी वस्तु की स्थिति अथवा किसी स्थान के प्रति किसी वस्तु की गति सूचित करते हैं। 'यत्र यत्र धूम' तत्र तत्र वह्नि.।

३८६—प्रकार-वाचक क्रियाविशेषण-उपवाक्य निम्नलिखित बातें सूचित करते हैं—

(१) समानता—यह इव और यथा से द्योतित की जाती है (इव और यथा इतरेतरसम्बन्धी हैं तथा और तद्वत् के), जैसे, पुत्र लभस्वात्मगुणानुरूप

नवन्तमोऽस्य भवत पिता इव' (अलभत)—(रघु० ५।२४)। आसीदिय शरथस्य गृहे 'यथा श्री.' (अस्ति)—(उत्तर० ४)। 'यथा काष्ठ च काष्ठ च मेयातां महोदधौ। समेत्य च 'व्यपेयाताम्' तद्वद् भूतसमागम (हित० ४)।

विशेष—यथा अथवा इव से प्रारम्भ किए हुए उपवाक्य प्राय संक्षिप्त हते हैं।

(२) मात्रा अथवा सम्बन्ध (समानता, अगाधता आदि)—

'वितरति गुरु प्राज्ञे विद्या यथैव' तथा जडे (वितरति) (उत्तर० २)। 'यथा यथा अम्बुधाराभिराहन्यते' तथा तथा स्फुरति मदनपावक.। (कादम्० २५२)

३८७—बहुव्रीहि समासों को क्रियाविशेषण अव्यय के तौर पर प्रयोग करके भी प्रकार-वाचक क्रियाविशेषण उपवाक्यों को सूचित करते हैं, जैसे, राजा 'सविलक्षस्मितम्' आह = 'यथा विलक्षस्मित स्यात्' तथा आह। 'उद्योतिताम्बरदिगन्तरम् अंशुजालै शक्ति' पपात हृदि तस्य महासुरस्य (कुमार० १७।५१)।

३८८—कार्य-कारण-वाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य निम्नलिखित बातें सूचित करते हैं —

(१) कारण,

'वत्से कठोरगर्भेति' नानीतासि (उत्तर० १)। ममापि तर्हि धर्मतस्तथैव 'यत प्रियवयस्य इत्यात्थ' (उत्तर० ५)। इत्यादि नन्विह निरर्थकमेव 'यस्मात्कामो जृम्भितगुण' (मालती० १)। कमपरमवश न विप्रकुर्यु 'विभुमपि त यदमी स्पृशन्ति भावा' (कुमार० ६।९५)। कच्चिद् भर्तु. स्मरसि रसिके 'त्व हि तस्य प्रियेति' (मेघ० ८८)।

(२) शर्त

भ.पता 'यदि प्रत्यूहलम्' (कादम्० १६)। 'अथ तु वेत्सि शुचिव्रतमात्मन' पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम् (शा० ५)। 'जात्या चेदवध्योऽहम्' एषा सा जाति परित्यक्ता (वेणी० ३)।

(३) Concession

'काममननुरूपमस्या वपुषो वल्कलं' न पुनरलङ्कारश्रियं न पुष्यति (शा० १)। 'नेत्रे पुनर्यथैव मे स्निग्धनीले, तथापि सौभाग्यगुणः स एव।
(उत्तर० ६)

(४) अभिप्राय, प्रयोजन,

दोषं तु मे कञ्चित् कथय 'येन स प्रतिविधीयेत' (उत्तर० १)। 'तदागच्छ यथा दर्शयामि' (पञ्च० १।८)। भो धीर गच्छ 'मा खलु तत्रभवती धारिणी विसंवदिष्यति' (मालविका० १) 'अस्य शरीरस्य मा विनाशो भूदिति' मयेदमुत्क्षिप्य समानीतम् (कादम्० ३२०)।

(५) परिणाम,

कुमार, तथा प्रयतेथा 'यथा नापहस्यसे जनैः' (कादम्० ११०)। स ऋत्विजस्तथानर्च 'यथा साधारणीभूतं नामास्य धनदस्य च' (रघु० १७।८४)। सा वेणुलतामादाय ।सभाकुट्टिममाजघान 'येन सकलमेव तद्राजकं तदभिमुखमासीत्' (कादम्० १०)।

३८९—संज्ञा, विशेषण, अथवा क्रियाविशेषण उपवाक्य की द्विरुक्ति कर मिश्रित वाक्य का विस्तार किया जा सकता है। परन्तु उस दशा में वह वाक्य संयुक्त वाक्य हो जायगा, जिसके प्रत्येक अंशभूत वाक्य मिश्रित वाक्य होंगे।

'कथं स त्वया दृष्टः' 'किं किमभिहितासि तेन' 'कियन्तं कालमवस्थितासि तत्र' 'कियदनुसरन्नस्मानसावागतः' इति पुनः पुनः पर्यपृच्छम् (कादम्० १५०)। 'यस्य चेन्द्रियाणि सन्ति' 'यः पश्यति वा' 'श्रुतमवधारयति वा' स खलूपदेशमर्हति (कादम्० १५६)

३९०—पुनश्च, आश्रित उपवाक्यों में से दो या दो से अधिक एक ही मिश्रित वाक्य में आ सकते हैं,

क्रोधं प्रभो संहर संहरेति (संज्ञा) यावद्गिरः खे मरुतां चरन्ति (क्रियाविशेषण)। तावत् स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार॥ (कुमार० ३।७२)। राष्ट्रमुख्यमाहूयाख्यातवान्। योऽसौ अनन्तसीरः प्रहारवर्मणः पक्ष इति (क्रियाविशेषण) निनाशयिषितः (विशेषण) सोऽपि पितरि मे प्रकृतिस्थे किमिति नाश्येतेति (संज्ञा)—(दशकु० २)।

आश्रित उपवाक्य बनाने वाले शब्द

संज्ञा उपवाक्य—'इति', 'यथा', इति-सहित अथवा इति-रहित 'यद्।'

विशेषण उपवाक्य—यद् शब्द के रूप।

क्रियाविशेषण उपवाक्य—(१) कालवाचक—यदा, यावत, यावत् न··· तावत, यदा यदा।

(२) स्थानवाचक—यत्र, यत्र यत्र।

(३) प्रकारवाचक—इव, यथा—तथा या तद्वत्, यथैव तथैव, यथा यथा।

(४) कारण-वाचक (क) इति यत ······तत , यद्, यथा' तथा, हि,

(ख) यदि तर्हि, तद्, ततः, चेद्, अथ।

(ग) यद्यपि, काम (तु, पुनः)।

(घ) येन, इति, यथा, मा (लृट्, लुट् अथवा लोट् के साथ)।

(ङ) यथा, येन।

मिश्रित वाक्यों का विश्लेषण

८६१—मिश्रित वाक्यो का विश्लेषण इस प्रकार किया जाना चाहिए मानो प्रत्येक आश्रित उपवाक्य एक शब्द अथवा एक वाक्यांश हो। तदनन्तर, आश्रित उपवाक्यो का अलग से साधारण वाक्यो के समान विश्लेषण किया जाना चाहिए।

उदाहरण

(१) अथ स निःश्वस्य लज्जाविशीर्यमाणविरलाक्षर सखे कपिंजल वेत्सि तदृसान्तानि किं मा पृच्छसीति कृच्छ्रेण शनै शनैरवदत्। (कादम्० १५५)

(२) एवं नानानुगृहीत च शूलादवतार्य हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापित। (पञ्च० ६)

(३) अनेकसमारम्भ यथा यथा नास्य न, तथा तथा कुतूहलेनकातरेण ... दर्शनाभिलाषवन्तो निपुणमभिलषन्तो दत्तदृष्टि सुचिर व्यचरम्। (कादम्० १५२)

वाक्यविश्लेषण की विधि

कर्ता	कर्ता का विस्तार	क्रिया	कर्म	कर्म का विस्तार	क्रिया के क्रियाविशेषणात्मक विस्तार
१ स	,,	अवदत्	सखे कपिंजल पृच्छसीति (क)	,,	अथ (काल), नि श्वस्य (काल), लज्जाविशीर्यमाण—विरलाक्षरम् (प्रकार), कृच्छेण शनै शनै (प्रकार)
(क) (ख) सखे कपिंजल कर्ता के साथ	विदितवृत्तांतोपि (विशेषण)	पृच्छसि		मां (मुख्य) किं (गौण)	
२—एप	य —प्रतिष्ठापित (क)	अनुगृहीत			नाम (प्रकार)
(क) य		प्रतिष्ठापित			हस्तिस्कंधे (स्थान) शूलादवतार्य (काल)
३—(अह)	सुहृत्स्नेह-शंकमान (शानजन्त विशेषण) निपुणं इतस्ततो दत्तदृष्टि (विशेषण)	न्यचरम्			तथातथा (मात्रा) यथायथा अन्वेपमाणो नापश्य त (मात्रा) सुचिरं (काल)
(क) अह	अन्वेपमाण (शानजन्त विशेषण)	अपश्यं (न)	त		यथायथा (मात्रा)

संयुक्त वाक्य

३६२—संयुक्त वाक्य में दो या दो से अधिक साधारण अथवा मिश्रित वाक्य होते हैं जो आपस में एक दूसरे के समानाधिकरण होते हैं।

संयुक्त वाक्य के अंशभूत उपवाक्य निम्नलिखित श्रेणी के हो सकते हैं—

(१) साधारण वाक्य

(२) कुछ तो साधारण वाक्य हो सकते हैं और कुछ मिश्रित

(३) सभी मिश्रित वाक्य हो सकते हैं

१—तथाप्येष प्राण स्फुरति न तु पापो विरमति (उत्तर० ६)
मनो निष्ठाशून्य भ्रमति च किमप्यालिखति च ॥ (मालती० १)

(इसमें प्रत्येक साधारण वाक्य है)

२—दाक्षिण्यं नाम विम्बौष्ठि वैंविकानां कुलव्रतम् । तन्मे दीर्घाक्षि ये प्राणास्ते त्वदाशानिवन्धना (मालविका० ४)

(इसमें दूसरा अंश मिश्रित वाक्य है)

३—यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वमसि किं पितुरुत्कलया त्वया ।
अथ तु वेत्सि शुचिव्रतमात्मन पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम् ॥
(शा० ५)

(दोनों अंश मिश्रित वाक्य हैं)

इन उदाहरणों में जो पृथक् पृथक् वाक्य हैं, वे किसी भी प्रकार एक दूसरे के आश्रित नहीं हैं । प्रत्येक उक्ति स्वत स्वतन्त्र है । परन्तु मिश्रित वाक्य स्वतन्त्र अर्थ रखने वाले वाक्यों में विभक्त नहीं किया जा सकता ।

३६३—संयुक्तवाक्य के अंशों में परस्पर निम्नलिखित सम्बन्ध हो सकते हैं—

(१) Cumulative relation सामूहिक सबन्ध । यह सम्बन्ध च, तथा, अपिच से सूचित किया जाता है और इस में दो या दो से अधिक वाक्य साथ-साथ जोड़े जा सकते हे ।

(२) Adversative relation प्रतिकूल सम्बन्ध अथवा विरोध-स्वरूप सम्बन्ध । यह सम्बन्ध वा तु, पुन., परन्तु आदि सम्बन्धबोधक शब्दों से सूचित किया जाता है, और इसमें दूसरा वाक्य पूर्वगामी वाक्य का [illegible] ।

(३) आनुमानिक सम्बन्ध । यह सम्बन्ध अत , तत् , तत से सूचित किया जाता है और इस में किसी पूर्वगामिनी घटना से किसी परिणाम अथवा कार्य का प्रादुर्भूत होना दिखलाया जाता है

सामूहिक सम्बन्ध

Cumulative Relation

३६४—सामूहिक सम्बन्ध में उक्तियों का परस्पर सम्मिलन तीन प्रकार से हो सकता है—

(१) उक्ति के ऊपर समान बल देकर—

तटस्थ. स्वानर्थान् घटयति 'च' मौन 'च' भजते (मालती० १)। त्रिलोचनस्त्वां प्रतिग्रहीतुमुपचक्रमे 'च' पुष्पधन्वा धनुष्यमोघ बाणं समधत्त 'च' (कुमार० ३ ६६) । तृणमिव वने शस्ये (सा) त्यक्ता न 'चापि' अनुशोचिता (उत्तर० ३)।

(२) दूसरे उपवाक्य के ऊपर अधिक बल देकर—

न केवल तातनियोग एव 'अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु' (शा० १)। पुण्यानि नामग्रहणान्यपि महामुनीना 'कि पुन दर्शनानि' (कादम्० २२)।

(३) विचारों में उत्तरोत्तर उत्थान दिखला कर—

उदेति पूर्व कुसुम 'तत ' फलम् (शा० ५)। जगज्जीर्णारण्य भवति हि विकल्पव्युपरमे। कुकूलाना राशौ 'तदनु' हृदय पच्यत इव। (उत्तर० ६)

विशेष—इस सम्बन्ध मे कई समानाधिकरण वाक्य एक दूसरे के पास पास रक्खे हुए एक दूसरे के पीछे आते जाते हैं। परन्तु इनको जोडने के लिए भी शब्द इनके बीच मे नहीं रक्खा जाता, उनका अर्थ गम्यमान रहता है।

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्ति सपत्नीजने, भूयिष्ठ भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी । (शा० ४) (इसमे चार कथन या उक्तियाँ) हैं।

जाड्य धियो 'हरति' 'सिञ्चति' वाचि सत्यम्, मानोन्नतिं 'दिशति' पापम् 'अपाकरोति' । चेत. 'प्रसादयति' दिक्षु 'तनोति' कीर्तिम् सत्सगति: (भर्तृ० २।२३)।

दारिद्र्याद् ह्रियमेति ह्रीपरिगतः प्रभ्रश्यते तेजसो, निस्तेजा परिभूयते परिभवात् निर्वेदमापद्यते। निर्विण्णः शुचमेति शोकपिहितो बुद्ध्या परित्यज्यते, निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निधनता सर्वापदामास्पदम्। (मृच्छ० १)।

विरोधसूचक सम्बन्ध

३६५—विरोधसूचक सम्बन्ध तीन प्रकार से सूचित किया जाता है—

(१) बहिष्कार-सूचक समुच्चयबोधक अव्ययों द्वारा, जिनसे पहिली परिस्थिति का बहिष्कार द्योतित होता है —

प्रज्ञाहीनोऽयं राजा 'नोचेत्' नीतिशास्त्रकथाकौमुदी वागुल्काभि कथं तिमिरयति (हित० ३)। व्यक्तं नास्ति कथम् 'अन्यथा' वा सत्यपि तां न पश्येत् (उत्तर० ३)। अद्यापि हरकोपवह्निस्त्वयि ज्वलति। 'अन्यथा' त्वं भस्मावशेषः कथमित्थमुष्णः (शा० ३)।

(२) Alternative Conjunction—द्वारा, वा-वा, किम्—अथवा, उत, आहो, आहोस्वित् —

तदेषा भवत कान्ता त्यजैनां 'वा' गृहाण 'वा' (शा० ५)। सूतो 'वा' सूतपुत्रो 'वा' यो 'वा' को 'वा' भवाम्यहम् (वेणी० ३)। किं धर्मोपदेशानामिदम् 'उत' मोक्षप्राप्तिरियम् 'आहोस्वित्' अन्य कश्चिन्नियमप्रकारः (कादम्० १५०)।

(३) Arrestive Conjunctions के द्वारा, तु, किन्तु, परम् (तु), पुन तथापि, और कभी कभी केवलम् —

दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं 'तु' पौरुषं (वेणी० ३), (अथ कथाप्रविभाग। प्रणीतो न 'तु' प्रकाशित (उत्तर० ४) सखे पुण्डरीक सुविदितमेतन्मम 'किन्तु' इदमेव पृच्छामि (कादम्० १५५), न च न परिचितो न चाप्यगम्य चकितमुपैमि 'तथापि' पार्श्वमस्य (मालती० १), लौकिकाना हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते। ऋषीणां 'पुन' आद्याना वाचमर्थोऽनुधावति। (उत्तर० १), अनुदिवस परिहीयसे अङ्गैः 'केवलं' लावण्यमयी छाया त्वां न मुञ्चति (शा० ३)।

Illative Relation

३६६—आनुमानिक सम्बन्ध Illative Relation निम्नलिखित शब्दों से सूचित किया जाता है—अत, तस्मात्, तत, तद् अनेन हेतुना, एव च आदि—

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां भर्तृमतीं जनोन्यथा विशङ्कते 'अत प्रमदा स्वबन्धुभि. परिणेतु. समीपे इष्यते (शा० ५), भो उपस्थित नयनमधु सनिहिता च मल्लिका। तत् अप्रमत्त इदानी पश्य (मालविका० २), जनकोऽद्य गतो विदेहान्। 'ततो' विमनसो देव्याः परिसान्त्वनाय नरेन्द्रो वासगृहं विशति (उत्तर० १), अत्यद्भुतादपि गुणातिशयात्प्रियोसि 'तस्मात्' सखा त्वमसि (उत्तर० ५), मध्यस्था नो गुणदोषतः परिच्छेत्तुमर्हति 'तेन हि' प्रस्तूयता विवादवस्तु (मालविका० १)

३६७—प्राय संस्कृत मे जब संयुक्त वाक्य के समानाधिकरण भागो का एक ही कर्ता या एक ही क्रिया होती है या कोई भी अंश उभयनिष्ठ होता है तो उभयनिष्ठ अंश दोहराया नही जाता, और इस प्रकार से वाक्य संक्षिप्त बना दिया जाता है।

(१) तटस्थ स्वानर्थान् 'घटयति च मौन च भजते' (मालती० १)
हृदयमशरण मे पक्ष्मलाक्ष्या कटाक्षै.
'अपहृत' 'अपविद्ध' 'पीत' 'उन्मूलित' च (मालती० १)

(२) दिष्ट्या न केवल 'उत्सग.' चिरात् 'मनोरथोपि' मे 'पूर्ण' (उत्तर० ४)

न मा त्रातु 'तात.' 'प्रभवति' न 'चावा' न 'भवती' (मालती० २)

समानाधिकरण वाक्यों को जोडने वाले शब्दों का वर्गीकरण

Cumulative Relation	(१) च, च-च, तथाच, अपि, अपिच, अपरच, अन्यच्च (२) केवल-अपि, किमुत, किंपुन. (३) अथ, तदनु, पूर्व-तत , अनतर-तत पर, ततश्च अनतर च,
Adversative Relation	(१) अन्यथा, न (नो) चेन् (२) वा, का-वा, न वा. (३) तु, किन्तु, पर (तु), तथापि, पुन , केवल
Illative Relation	तत्, तस्मात्, अत., तत , तथा, एव च, एव, तेन हि

संयुक्त वाक्यों का वाक्य विश्लेषण

३६८—सयुक्त वाक्यों का विश्लेषण करने में पहिले भिन्न-भिन्न समानाधिकरण उपवाक्यों का परस्पर सम्बन्ध बताइए। तदनन्तर इन समानाधिकरण उपवाक्यों का अलग से विश्लेषण कीजिए। यदि वे साधारण वाक्य हो तो साधारण वाक्यों का सा विश्लेषण कीजिए, यदि वे मिश्रिता वाक्य हों तो मिश्रित वाक्यों का सा विश्लेषण कीजिए।

उदाहरण

(१) वर्ष वा गर्ज वा शक्र मुच वा शतशोऽशनिम्। (मृच्छ० ५)

(२) उचित. प्रणयो वर विहतु बहव. खण्डनहेतवो हि दृष्टा.। उपचारविधिर्मनस्विनीना न तु पूर्वाभ्यधिकोपि भावशून्य। (मालविका० ३)

(३) दृष्टा खलु मया तत्रभवत्या मालविकाया प्रियसखी बकुलावलिका भाविता च तमर्थे भवता य सदिष्ट.। (मालविका० ३)

१—शक्र (त्वं) वर्ष वा (क)—प्रधान वाक्य

(त्व) गर्ज वा (ख)—प्रधान—क का समानाधिकरण

(त्व) शतशोऽशनि मु च वा (ग)—प्रधान—क और ख का समानाधिकरण विरोध-सूचक सम्बन्ध है।

	कर्ता	क्रिया	कर्म	क्रियाविशेषणात्मक विस्तार
च	(त्व) शक्र	वर्ष (वा)		
ख	(त्व)	गर्ज (वा)		
ग	(त्व)	मु च (वा)	अशनि	शतश (प्रकार)

२—उचित प्रणयो विहतु वर बहव खण्डनहेतवो दृष्टा हि (क)

न तु पूर्वाभ्यधिकोपि भावशून्यो मनस्विनीनामुपचारविधि वर (ख) विरोध-सूचक सम्बन्ध है।

(क) का विश्लेषण जो कि मिश्रित वाक्य है

कर्ता	क्रिया	कर्म	क्रियाविशेषणात्मक विस्तार
(क) प्रणय	वर		विहतुम् (अभिप्राय)
(उचित —विशेषण)			बहव दृष्टा (कारण)
खण्डनहेतव			

हि (कारण)

बहव: (विशेषण) दृष्टा

(ख) उपचारविधि

मनस्विनीनां (षष्ठी)

पूर्वाभ्यधिकोपि न (वरम्)

भावशून्य (विशेषण)

३—पहिला साधारण वाक्य है, दूसरा मिश्रित वाक्य है, जिसका विश्लेषण ऊपर दे दिया गया है। सामूहिक सम्बन्ध है।

अभ्यासार्थ विविध उदाहरण

निम्नलिखित वाक्यों का विश्लेषण ऊपर बताई हुई विधि के अनुसार कीजिए और यह भी बताइए कि वे साधारण वाक्य हैं अथवा मिश्रित अथवा संयुक्त :—

१—महत्येव प्रत्यूषे दास्या: पुत्रैः शकुनिलुब्धकैर्वनग्रहणकोलाहलेन प्रतिबोधितोस्मि। (शा० २)

२—कुतो धर्मक्रियाविघ्न सतां रक्षितरि त्वयि। (शा० ५)

३—प्रमाणादधिकस्यापि गडश्याममदच्युते। पद मूर्ध्नि समाधत्ते केसरी मत्तदन्तिन:॥ (पच० १)

४—लघुहृदया मा लोक कलयिष्यतीति निर्ह्रीकया मया नाकलितम्। (कादम्० १७७)

५—दर्शनादारभ्य शरीरस्याप्ययमेव प्रभु किमुत भवनस्य विभवस्य वा। (कादम्० १६६)

६—स चानुयुक्तो धूर्तः सविनयमावेदयत्। विदितमेव खलु वो यथाह युष्मदाज्ञया पितृवनमभिरक्ष्य तदुपजीवी प्रतिवसामि। (दशकु० २।६)

७—यदा किंचित् किंचिद् बुधजनसकाशादवगत तदा मूर्खोस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगत। (भर्तृ० २।८)

८—अहमतिमृदुनि पुलिनवति सरस्तीरेऽवरोप्य सस्पृह निर्वर्णयन्ना मत्प्राणैकवल्लभा राजकन्या कटुकावतीमलक्षयम्। (दशकु० २।६)

९—एवमेतत्। किंतु न कदाचिदार्यस्य निष्प्रयोजना प्रवृत्तिरित्यस्ति न. प्रश्नावकाश.। (मुद्रा० ३)

१०—विचिंतयती यमनन्यमानसा तपोधन वेत्सि न मामुपस्थितम्। स्मरिष्यति त्वा न स बोधितोपि सन् कथा प्रमत्तः प्रथम कृतामिव। (शा० ४)

११—अये महाराजेति निष्प्रणयमामंत्रणपद सौमित्रिमात्रे च बाष्पस्खलिताक्षर कुशलप्रश्न । तथा मन्ये विदितसीतावृत्तांतेयमिति। (उत्तर० ३)

१२—वरेषु यद्बालमृगाक्षि मृग्यते तदस्ति कि व्यस्तमपि त्रिलोचने। (कुमार० । ७५)

१३—तद् ब्रूत वत्सा किमित प्रार्थयध्व समागता ।
मयि सृष्टिर्हि लोकाना रक्षा युष्मास्ववस्थिता ॥
(कुमार० २ । २८)

१४—काम भवान् प्रकृत्यैव धीर पित्रा च महता प्रयत्नेन समारोपितसस्कार। तथापि भवद्गुणसतोषो मामेव मुखरीकृतवान्॥ (कादम्० १०९)

१५—वध्ये गयि मत्तहस्ती मृत्युविजयो नाम हिंसाविहारी राजगोपुरोपरितलाधिरूढस्य पश्यत उत्तमामात्यस्य शासनाज्जनकठरवद्विगुणितघटारवो मडलितहस्तकाड ममभ्यधावत्। (दशकु० २।४)

१६—यज्ञोपवीत नाम
अमौक्तिकमसौवर्ण ब्राह्मणाना विभूषणम्।
देवताना पितृणा च भागो येन प्रदीयते॥ (मृच्छ० १०)

१७—अत्रातरे ब्राह्मणेन मृत पुत्रमुत्क्षिप्य राजद्वारे सोरस्ताडनमब्रह्मण्यमुद्घोषितम्। ततो न राजापराधमतरेण प्रजानामकालमृत्युश्चरतीत्यात्मदोष निरूपयति करुणामये रामभद्रे सहसैवाशरीरिणी वागुदचरत्। (उत्तर० २)

१८—अथ कदाचित् पिगलको नाम सिंह सर्वमृगपरिवृत पिपासाकुल उदकग्रहणार्थ यमुनातटमवतीर्ण सजीवकस्य गभीरतरशब्द दूरादेवाशृणोत्। (पच० १)

१६—यदि समरमपास्य नास्ति मृत्योर्भयमिति युक्तमितोऽन्यत्र प्रयातुम्।
अथ मरणमवश्यमेव जन्तो: किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे॥
(वेणी० ३)

२०—प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः। (भर्तृ० २।६०)

२१—यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्।
(भर्तृ० २।८८)

२२—यथा तिरश्चीनमलातशल्यं प्रत्युप्तमन्तः सविषश्च दंशः।
तथैव तीव्रो हृदि शोकशङ्कुर्मर्माणि कृन्तन्नपि किं न सोढः॥
(उत्तर० ३)

२३—परस्परविरोधिन्योरेकसंश्रयदुर्लभम्।
सङ्गतं श्रीसरस्वत्योर्भूतयेऽस्तु सदा सताम्॥ (विक्रमो० ५)

२४—सर्वैरुस्रैः समग्रैस्त्वमिव नृपगुणैर्दीप्यते सप्तसप्तिः
(मालविका० २)

२५—अस्त्वमर्षो मा भूद्वा। एतत्तु पृच्छामि, तात हि राघवं राजानं शृणुमः। स किल नात्मना दृप्यति न चास्य प्रजा ईदृश्यो जायन्ते। तत् किमस्य मनुष्या राक्षसीं वाचं वदन्ति। (उत्तर० ५)

२६—यथा नौ प्रियसखी बन्धुजनशोचनीया न भवति तथा निर्वाहय।
(शा० ३)

२७—अथ स विषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे
नृपतिककुदं दत्त्वा यूने सितातपवारणम्।
मुनिवनतरुच्छायां देव्या तया सह शिश्रिये
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम्॥ (रघु० ३।७०)

और अधिक अभ्यास करने के लिए विद्यार्थी पूर्व पाठों से वाक्यों को चुन लें और उनका विश्लेषण करें।

द्वितीय सेक्शन

वाक्यों में शब्दों का क्रम

३६६—प्रथम भाग के भूमिकांश में पहले ही बताया जा चुका है कि संस्कृत वाक्य में शब्दों का क्रम कोई इतना महत्त्वशाली विषय नहीं है जिसपर विचार किया जाय। संस्कृत में अव्यय तथा कुछ और अन्य शब्दों को छोड़ कर बाकी सभी शब्दों का रूप चलता है और व्याकरणीय रूप-परिवर्तन स्वयं एक शब्द का दूसरे के साथ क्या सम्बन्ध है, इसे प्रकट कर देता है। इस प्रकार, व्याकरण की दृष्टि से क्रम-नामक कोई ऐसा विषय नहीं है जिस पर बहुत ध्यान दिया जाय। कथमपि तत्याज वने सीता लक्ष्मण कठोरगर्भाम्—इस प्रकार का वाक्य भले ही देखने में बड़ा भद्दा लगता हो, परन्तु व्याकरण की दृष्टि से यह अशुद्ध नहीं है। परन्तु यदि व्याकरण-सम्बन्धी क्रम न भी हो, तो भी विचारों का एक तार्किक क्रम ऐसा होता है जो एक विशेष रीति के अनुसार एक दूसरे के पीछे आना ही चाहिये। यदि हम किसी भी संस्कृत गद्य-पद्य के पृष्ठों को देखें तो हमें उसमें शब्दों का कोई विशेष क्रम अवश्य मिलेगा, उदाहरणार्थ, पहिले विशेषण-सहित कर्ता कारक आता है, चाहे प्रकट रूप से चाहे अप्रकट रूप से, तब यदि कर्म रहता है, तो वह आता है, और अन्त में क्रिया अथवा क्रियापद जैसे

अब वाक्यों मे शब्दो के क्रम के विषय में कुछ नियम विहित किए जायेंगे ।

४००—गद्य-वाक्य मे शब्दों की व्यवस्था करने के लिए सर्वोत्तम अनुसरणीय नियम यह है—[१] पहिले विशेषण-सहित तथा विशेषणवाक्यांशसहित कर्ता को रखना चाहिए, [२] तब विशेषण-सहित कर्म को रखना चाहिए, [३] अन्त मे विधेय [चाहे वह कृदन्तीय हो, चाहे तद्धितीय हो] । क्रियाविशेषण तथा क्रियाविशेषण-वाक्यांश अन्तिम स्थान के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्थान पर रक्खे जा सकते हैं। कुछ समुच्चयबोधक अव्ययों को छोड़ कर शेष सभी कर्ता के पूर्व आते हैं। यदि कोई विद्यार्थी निम्नलिखित वाक्य लिखे या बोले तो वह वाक्य महा भद्दा होगा—"सकाश गुरो आशिष राज्ञो अग्रजन्मा प्रयुज्य प्रतीयायेत्थम्" ।

इसके स्थान पर यदि वह निम्नलिखित प्रकार से वाक्य को लिखे या बोले तो क्या ही अच्छा लगेगा—

"इत्थ राज्ञे आशिष :प्रयुज्य अग्रजन्मा गुरो सकाश प्रतीयाय" ।
[रघु० ५।३५] ।

४०१—जब किसी श्लोक का अन्वय किया जाता है, तब उपर्युक्त क्रम साधारणतया पालन किया जाता है। उदाहरणार्थ यह श्लोक लीजिये ।

अथ प्रजानामधिप. प्रभाते जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम् ।
वनाय पीतप्रतिबद्धवत्सां यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच ।। (रघु० २।१)

इसका अन्वय इस प्रकार होगा—

अथ (समुच्चयबोधक अव्यय) **यशोधन** (विशेषण) **प्रजाना** (षष्ठी) **अधिप** (कर्ता) **प्रभाते** (कर्म के विशेषण का विस्तार) जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्या (विशेषण)पीतप्रतिबद्धवत्साम् (दूसरा विशेषण) ताम् (कर्म का वि०) ऋषे (कर्म का वि०) **धेनु** (कर्म) **वनाय** (विधेय का विस्तार) **मुमोच** (क्रिया) ।

इसी प्रकार, अभिहन्ति हन्त कथमेष माधव सकुमारमानम् अनवग्रह स्मर (मालती० १), हन्त कथमेषोऽनवग्रह स्मर सुकुमारमाय माधवमभिहन्ति, अथवा हन्त एष कथमभिहन्ति ।

इन साधारण नियम को विशेष विशेष उदाहरणों मे तोड़कर दिखाया जा सकता है कि भिन्न-भिन्न शब्दों का परस्पर क्या सम्बन्ध होना चहिए।

४०२—साधारण नियम से सब से पहिली बात यह सीखनी चाहिये कि शब्दों का विन्यास इस प्रकार किया जाय कि एक विचार दूसरे विचार के पीछे अपने प्राकृतिक क्रम में आता चले। अर्थात् आश्रित शब्द साधारण तथा उन शब्दों के पूर्व आवें जिन पर वे निर्भर हैं अथवा जिनके द्वारा वे शासित हैं। इस प्रकार, विशेषण और उसका विशेष्य, सकर्मक क्रिया और उसका कर्म, क्रियाविशेषण तथा क्रियाएँ, कर्मप्रवचनीय तथा सम्बन्ध-सूचक अव्यय तथा उनके द्वारा शासित शब्द जहाँ तक हो सके बिल्कुल समीप में रक्खे जावें।

४०३—जब किसी वाक्य में कोई साधारण सा कर्ता और क्रिया होती है, तो कर्ता पहिले रक्खा जाता है, रघुपतिस्तिष्ठति (उत्तर० ६)।

विशेषण विशेष्य के पहिले आता है, 'देवो' रघुपतिस्तिष्ठति (उत्तर० ६)। उपात्तविद्यो 'गुरुदक्षिणार्थी' कौत्सः प्रपेदे (रघु० ५।१)। 'अपगतश्रम' चाभिमत दिगन्तरमयासीत् (कादम्० ३२)।

(क) जब विशेषण विधेय बनकर आता है, तब वह अपने विशेष्य के बाद आता है।

(ख) जब किसी वाक्य में सार्वनामिक तथा गुणबोधक विशेषण दोनों ही आते हैं, तो सार्वनामिक विशेषण पहिले रक्खा जाता है, गुणबोधक विशेषण बाद में। तस्याम् अतिदारुणायां हतनिशायाम् (कादम्० १६६)—उस महा-भयङ्कर और अभागी रात मे। परन्तु कभी-कभी गुणबोधक विशेषण सार्वनामिक विशेषण के पहिले आता है, जैसे, विचक्षणो वर्णी स (रघु० ५।१६) पर मल्लिनाथ की टीका। तुलना 'अनेन' पार्थिवेन सह (रघु० ६।३७) पर मल्लिनाथ की टीका।

४०५—षष्ठी का जिससे सम्बन्ध होता है, प्राय. उसके पहिले आती है: 'जगत' पितरौ वन्दे (रघु० १।१)। इसी प्रकार 'अर्थानाम्' ईशिषे (भर्तृ० ३।३०)।

(क) जब संज्ञा की विशेषता बताने वाला कोई विशेषण होता है, तो प्रायः यह क्रम रहता है—विशेषण, षष्ठी, तब संज्ञा, जैसे अयम् अस्या देव्या सन्तापः (कादम्० ६१)। तस्य एवंविधस्य पद्मसरस पश्चिमे तीरे (कादम्० २३)।

४०६—सम्बोधन को वाक्य के एकदम प्रारम्भ में रखना चाहिए, जैसे, 'तात' क एष बाल: (दशकु० २।८)। 'सखे पुण्डरीक' नैतद् भवतोऽनुरूपम् (कादम्० २५१)। 'आर्यपुत्र' इयमस्मि (शा० १)।

४०७—विधेय (चाहे वह कृदन्तीय हो, चाहे तद्धितीय हो) सर्वदा वाक्य के अन्त में रक्खा जाता है. वाक्य के द्वारा विवक्षित भाव को वह पूर्ण कर देता है। अत उसका सर्वोत्तम स्थान अन्त में ही है।

(क) जब किसी कथा या कहानी का वर्णन करते हैं तो 'रहता है' या 'रहता था' अर्थ में 'अस्' और 'भू' धातुओं का प्रयोग वाक्य के आरम्भ में होता है, 'अस्ति' गोदावरीतीरे विशाल: शाल्मलीतरुः (हित० १)। 'अस्ति' मगधदेशशेखरीभूता पुष्पपुरी नाम नगरी (दशकु० १।१)। 'अभूत्' अभूतपूर्वो राजा चिन्तामणिर्नाम (वासवदत्ता ३),

(ख) कभी-कभी बल देने के लिये—प्रभाव-शाली बनने के लिये—विधेय पहिले आता है: 'भवेयु:' तावत् प्राणादय पञ्च जना माध्यंदिनानाम् (शाङ्करभाष्य ३७१), 'आस्ताम्' तावत् सर्वमेवेदम् (कादम्० १८), 'उत्सर्पिणी' खलु महता प्रार्थना (शा० ७), 'कृतं' त्वया रामसदृशं कर्म (उत्तर० २), 'विरला:' हि तेषामुपदेष्टार: (कादम्० १०६), 'भवितव्यमेव' तेन (उत्तर० ४)।

(ग) जब प्रश्नवाचक शब्द का प्रयोग नहीं होता है तो प्रश्नवाचक वाक्यों में भी यही बात होती है, जैसे, जात 'अस्ति' ते माता 'स्मरसि' वा तातम् (उत्तर० ४), 'स्मरसि' च तदुपान्तेष्वावयोर्वर्तनानि (उत्तर० १)।

संस्कृत में उपसर्ग शब्द बहुधा धातुओं के पहले लगे रहते हैं और केवल कर्मप्रवचनीय-प्रयोग को छोड़ कर उनका अकेला प्रयोग नहीं होता। जब ये

अकेले प्रयुक्त होते हैं (अर्थात् कर्मप्रवचनीय दशा मे) तो साधारण नियम के अनुसार वे अपने अधीन शब्द के पीछे आते हैं।

इति मन्दमतीन् 'प्रति' भायात् (शाकर भाष्य)। अयोध्याम् 'अनु' जलानि वहति (रघु १३ । ६१)।

(क) सह, ऋते, विना, अलम्, आदि शब्द सज्ञाओं अथवा सर्वनाम पर शासन करते हैं, और प्राय. जिन शब्दो पर शासन करते हैं उनके बाद मे आते है, जैसे, रामेण सह, ईश्वरात् ऋते, मा विना, सतोषाय अलम् आदि।

४०९—संस्कृत मे अव्ययो का क्षेत्र अग्रेजी के क्रियाविशेषणों के क्षेत्र की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत है। अव्ययों में उन सभी शब्दों का समावेश हे जिनका रूप नहीं चलता जैसे, क्रियाविशेषण, स्थानबोधक, समुच्चयबोधक, तथा विस्मयादिबोधक। सज्ञाओ तथा सर्वनामो की सभी विभक्तियाँ क्रिया विशेषण मानी जा सकती हैं, परन्तु प्रथमा तथा द्वितीया विभक्तियों को छोडकर, क्योंकि ये विभक्तियाँ क्रिया के कर्ता और कर्म का काम करती हैं, तथा षष्ठी विभक्ति को भी छोडकर, क्योंकि यह विभक्ति एक शब्द का दूसरे शब्द के साथ सम्बन्ध सूचित करती है। क्रियाविशेषणों की स्थिति के विषय में निम्नलिखित नियम कारक-विभक्तियो में भी लागू होंगे।

४१०—कालवाचक, स्थानवाचक, प्रकारवाचक, कारणवाचक तथा परिणाम वाचक क्रियाविशेषण अव्यय प्राय उन शब्दों के समीप रक्खे जाते हैं जिनकी वे विशेषता बताते हैं—

४११—जब क्रियाविशेषण शब्द विधेय की विशेषता बताते हैं तब वे कर्ता के पहिले भी आ सकते हैं, कर्ता के बाद मे भी आ सकते हैं अथवा यदि कोई कर्म हो तो कर्म के बाद भी, परन्तु अन्त में नहीं आ सकते,

अनेकवारम् (समय) अपरिक्लिश्यम् (प्रकार) मा परिष्वजस्व (उत्तर० ६), प्रजानामेव भूत्यर्थम् (अभिप्राय) स ताभ्यो (स्थान) बलिमग्रहीत् (रघु० १। १८), सर्वं सौदामिन्यां (स्थान) सम्भाव्यते (मालती० १)। दारिद्र्याद् (कारण) ह्रियम् एति (मृच्छ० १)। हरिणा (कर्ता) असुराः तव शरव्य कृता. (शा० ६)। शिवाभ्यो (अभिप्राय, वस्तुत तो अकथित कर्म) मासबलिपिंडम् अनुदिन निशि (समय) उमुत्ससर्ज (कादम्० ६५)। गुरौ भक्त्या मयि अनुकम्पया (कारण) च प्रीतास्मि (रघु० २। ६३)।

टिप्पणी—यदि कर्ता अथवा कर्म के कोई विशेषण शब्द हो तो दुविधा मिटाने के लिए क्रियाविशेषण को कर्म के बाद में रखना चाहिए।

(क) भाववाचक उपवाक्य अर्थत कालवाचक और कभी कभी कारणवाचक अव्यय हुआ करते हैं, इसलिये प्राय. पहिले रक्खे जाते है —

'चन्द्रिकायामभिव्यक्तायां' किं दीपिकापौनरुक्त्येन (विक्रमो० ३)।

'युष्माक प्रेक्षमाणानाम्' एन स्मर्तव्यशेष नयामि (वेणी० ४)।

विशेष—कालवाची तथा स्थानवाची क्रियाविशेषण अव्यय प्राय. समुच्चय-बोधक अव्ययों के अत्यन्त सन्निकट, वाक्य के प्रारम्भ मे रक्खे जाते है।

४१२—सयोजक शब्दों अथवा समुच्चय-बोधक अव्यय शब्दो मे से 'च', 'वा', 'तु' 'हि', 'चेत्' कभी भी आदि मे नही आते जब कि 'अथवा', 'अथ', 'अपिच', 'किंच' प्राय आदि मे ही आते हैं। इतरेतर-सम्बन्ध-बोधक-समुच्चय-वाची अव्यय, जैसे यथा—तथा, यावत्—तावत, यद्—तद्, यत —तत' जिन उपवाक्यो को जोड़ते हैं उनके प्रारम्भ मे आते हैं। उदाहरण के लिए प्रासगिक सेक्शनो को देखिए।

४१३—प्रश्न-वाचक शब्द बहुधा वाक्य के प्रारम्भ मे आते हैं;

'अपि' एतत् तपोवनम्, 'अपि' कुशली ते गुरु, 'कथं' शास्त्राणि परिचय, 'कियद्' वा वय. इत्यादि (कादम्० १८)।

(क) 'एव', 'नाम', 'किल', 'खलु', 'हि' आदि बल देने वाले शब्द जिन पर बल देते हैं, उन्हीं से जोड़ दिए जाते हैं। 'इव', 'नु', 'अपि' जिन शब्दों की विशेषता बताते हैं, उन्हीं के साथ आते हैं।

(ख) हा, हन्त, अहह आदि विस्मयादि-बोधक अव्यय तथा 'अहो' 'अरे', 'अयि' सम्बोधन-सूचक शब्द प्रायः वाक्य के आरम्भ में आते हैं।

४१५—पुनरुक्त शब्द, अथवा किसी पूर्व प्रयुक्त शब्द का सजातीय शब्द जहाँ तक हो सके उसी शब्द के समीप रक्खा जाना चाहिये, जैसे, गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणः।

संस्कृत वाक्य में शब्दों का क्रम या शब्द-चयन लैटिन भाषा के वाक्य में शब्दों का जो क्रम होता है, उससे बहुत कुछ मिलता है। सबसे साधारण नियम लैटिन भाषा में यह है कि साधारण वर्णन या कथन में समुच्चय-बोधक अव्यय के पश्चात् कर्त्ता आता है और तब governed case with adverbs और स्थान, प्रकार आदि के सूचक पद आते हैं और सबसे पश्चात् क्रिया आती है।



तृतीय सेक्शन

वाक्यों का संश्लेषण

४१५—संस्कृत वाक्यों के विश्लेषण की व्याख्या करके और शब्दों के क्रम के विषय में कुछ नियम बनाकर, अब हम विद्यार्थी को एक पग और आगे ले चलेंगे: वाक्य-निर्माण या वाक्य-रचना।

आपने पहिले ही देख लिया है कि किसी भी वाक्य में कम से कम एक कर्ता और एक क्रिया होनी चाहिए; और यह भी देख लिया कि कर्ता अथवा कर्म का विस्तार विशेषण द्वारा, षष्ठ्यन्त संज्ञा शब्द द्वारा, समानाधिकरण संज्ञा द्वारा, समासों द्वारा, अथवा इन सब विधियों को एक में मिलाकर भी किया जा सकता है; और यह भी देखा कि क्रिया का विस्तार कालवाची, स्थानवाची कारणवाची, तथा परिणामवाची परिस्थितियों से किया जा सकता है। अब वाक्यों को बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

साधारण वाक्य

४१६—"राम" और "गम्" शब्दों को ले लीजिए। इन दोनों को मिलाकर एक वाक्य बनाया जा सकता है—**रामो जगाम**। यह वाक्य—**रामो जगाम**—अपने मूल स्वरूप में है। कर्ता का विस्तार यों किया जा सकता है :—

(१) दशरथस्य पुत्र अथवा दशरथपुत्रो रामो जगाम,

(२) कौसल्यानन्दवर्धन अखिलजनप्रियो दशरथपुत्रो आदि,

(३) भरताग्रजः कौसल्यानन्दवर्धन आदि आदि,

(४) भरताग्रज कौसल्यानन्दवर्धन' अखिलजनप्रियो दशरथपुत्रो राम ससीतालक्ष्मणो रम्याणि उपवनानि पश्यन जगाम।

अब स्पष्टतया देखा जा सकता है कि किस प्रकार अन्तिम वाक्य दो साधारण शब्दों से अर्थात् राम और गम् से—प्रादुर्भूत हुआ है।

अभ्यास १

अर्जुन, हनुमत्, गगा और हरि शब्दों को कर्ता बनाकर वाक्य बनाइए और क्रमश उपर्युक्त विधि के अनुसार उनका विस्तार कीजिए।

अभ्यास २

रु, रुच्, पत्, रम् धातुओ का विधेय के तौर पर प्रयोग करते हुए वाक्य बनाइए, और किन्हीं भी दो विधियों के अनुसार कर्ता का विस्तार कीजिए।

अभ्यास ३

इन शब्द-युग्मो को लीजिए और किसी षष्ठ्यन्त सज्ञा शब्द तथा विशेषण द्वारा कर्ता का विस्तार करते हुए वाक्य बनाइए।

शुक—डी। अगना—या। सैनिक—युध् और गज—हन् (कर्मवाच्य)। भृत्य—तड् (कर्मवाच्य)।

अभ्यास ४-५

रावण सीता जहार और सारमेयोऽम्रियत—इन वाक्यों को लीजिए और कर्ता का विस्तार सभी विधियो के अनुसार कीजिए।

४१७—विधेय यदि सकर्मक क्रिया हो तो उसको कर्म द्वारा पूरा करते है। कर्म सज्ञा अथवा सर्वनाम होता है, अत कर्ता के समान कर्म का भी विस्तार किया जा सकता है, उदाहरणार्थ, अहं प्रासादमपश्यम्—यहाँ पर कर्म का विस्तार इस प्रकार किया जा सकता है—

अहं विशाल प्रासादमपश्यम्। अह वगाधिपस्य विशाल प्रासादमपश्यम्। अहं सौख्यनिकेतन नगरभूषण च अनेकरक्षिपरिवृत वगाधिपस्य विशाल प्रासादमपश्यम्। इसी प्रकार 'राजा अमात्य प्रावाच" विस्तृत किए जाने पर राजा शास्त्राध्ययनकठोरधियम् अनुरजितसकलप्रजाजन सद्गुरो प्रत्यादेश स्वम् अमात्य प्रोवाच।

अभ्यास ६

(विशेषणों द्वारा विस्तृत किए हुए) उद्देश्य और विधेय देते हुए ऐसे [illegible] वाक्य बनाइए जिनमें निम्नलिखित शब्दों में से प्रत्येक शब्द कर्म बन कर आवे।

मनुष्याणां शतम्, अजाकुलम्, मद्गात्रम्, सभृङ्गाणि कमलानि, स्वनाम, [illegible]पर्णानि, महागजम्, तण्डुलकणान्, हिमाद्रेः शिखरम्, और [illegible]।

अभ्यास ७

निम्नलिखित धातुओं का प्रयोग करते हुये तथा कृदन्तीय विशेषणों द्वारा विस्तारित कर्मकारक देते हुए वाक्य बनाइये :—

श्रु, ग्रह्, सृज्, चुर्, पा [पीना], अद्, प्र+दा, व्यध्, रुध् और नी।

अभ्यास ८

निम्नलिखित शब्दों को कर्ता बनाकर तथा कर्ता और कर्म का विस्तार कर वाक्यों को पूर्ण कीजिए :—

सर्प, धृतराष्ट्र, कञ्चुकिन्, यति, पथिक, इन्द्र, राज्ञी, पाठशाला, पुत्र, पितृ।

अभ्यास ९—१०

वाक्य बनाइए और उनमें निम्नांकित धातुओं में से प्रत्येक का उपयुक्त कर्ता तथा कर्म दीजिए और कर्ता तथा कर्म का किन्हीं दो विधियों के अनुसार विस्तार कीजिए,

तृ, अभि+लिह्, परि+भ्रम्, आप्, प्रच्छ्, पिष्, कृ, क्री, मन्, तड्।

अभ्यास ११

छः वाक्य बनाइए जिनमें कर्ता का विस्तार कृदन्तीय विशेषण द्वारा कीजिए और कर्म का विस्तार कृदन्तीय विशेषण द्वारा करके विधेय को पूरा कीजिए।

अभ्यास १२

छः वाक्य बनाइए जिनमें कर्ता तथा कर्म दोनों का विस्तार कृदन्तीय विशेषण तथा षष्ठ्यन्त संज्ञा अथवा सर्वनाम द्वारा हो।

४१८—कालवाची, स्थानवाची, प्रकारवाची, कारणवाची तथा परिणामवाची परिस्थितियों से विधेय का विस्तार किया जा सकता है। "त्वं यासि" इस वाक्य को लीजिए। विधेय का विस्तार इस प्रकार किया जा सकता है —

त्वम् अधुना यासि (काल)। त्वम् अधुना कुत्र यासि (काल तथा स्थान)। त्वम् अधुना सत्वर कुत्र यासि (काल, स्थान तथा प्रकार)। त्वम् अधुना समिदाहरणाय सत्वर किमिति पद्भ्यामेव यासि (काल, प्रकार,

ाभिप्राय, कारण)। त्वमधुना समिदाहरणाय गुरुमपृष्ट्वा सत्वरं किमिति ादि यासि। इसी प्रकार सखे मा प्रतिपालय का विस्तार भिन्न-भिन्न विधियो े किया जा सकता है —

सखे विरचिताया प्रयाणसविधाया पितरावापृच्छ्य द्वारे क्षण' मा ातिपालय। स 'निशितेन शरेण मध्याह्नाहारार्थं' कमपि विलोलनेत्र हरिण-शिशु 'नितवदेशे' विव्याध। 'पश्यतोऽपि पितु 'त्व ह्य स्ववेश्मन निष्क्रम्य ंकरेण सार्धम् अतिचटुलया गत्या कुत्र खलु' अगच्छ ।

अभ्यास १३

निम्नलिखित वाक्यों मे क्रियाओ में उपयुक्त कालवाची तथा प्रकारवाची क्रियाविशेषणात्मक विस्तार जोड़िए —

(१) विहगा डयन्ते (२) पुस्तकं वाचय (३) अह गामानयम् (४) गुरूननुरुध्यस्व (५) त्वया रुद्यते (६) आपण याति (७) सैनिका युयुधिरे (८) कृषीवल क्षेत्रमकृषत् (९) प्रमदा उद्यान जग्मु (१०) सपद् उद्यमम् अनुगच्छति।

अभ्यास १४

निम्नलिखित क्रियाविशेषणात्मक विस्तारों का प्रयोग करते हुए वाक्य बनाइए जिनमे कर्ता का विस्तार दो से अधिक विधियो के अनुसार किया गया हो —

सहसा, वार वार, त्रीन् संवत्सरान्, सपदि, कदा, पुन, कल्याणाय पूर्व (अपादान के साथ) तदानीम् प्रत्यनलम्, प्रतिदिनम्, उपनदि दिनोरा रात्रिन्दिवम्।

अभ्यास १५

अभ्यास १६

निम्नलिखित शब्द-युग्मों को लेकर क्रिया का विस्तार कालवाची तथा स्थानवाची क्रिया-विशेषणात्मक विस्तारों द्वारा कीजिए —

मुनि—वस्। राजन्—रक्ष्। पुत्र—सेव्। कोकिल—वि+रु। हरि—क्रुध्। शिष्य—प्र+नम्।

अभ्यास १७

निम्नलिखित धातुओं का प्रयोग करते हुये तथा विधेय का प्रकारवाची, कारणवाची तथा परिणामवाची क्रियाविशेषणों द्वारा विस्तार करते हुये वाक्य बनाइए :—

मृ, प्र+या, प्र+स्था, मृज्, उत्+वह्, याच्, पा (रक्षा करना), स्निह्, ईश्, अधि+इ।

अभ्यास १८

निम्नलिखित कर्तृपदों को लेकर क्त्वान्त अथवा ल्यबन्त द्वारा विधेय का विस्तार कीजिए :—

भृगा, नर, देवा अमी, राक्षसै (कर्तृपद), भीम., सामाजिका, दूतः, अधिराज, अश्वत्थामा, सुभद्रा और यवना.।

अभ्यास १९

निम्नलिखित धातुओं का प्रयोग करते हुये भाववाचक वाक्यांश द्वारा क्रिया का विस्तार कीजिए —भाष्, दह्, प्रच्छ्, कृ (क्तान्त), स्पृह्, वद्, हन् (क्तान्त), पठ्. सम्+मन्त्र्, या।

अभ्यास २०

कालवाची एवं प्रकारवाची क्रिया-विशेषणों द्वारा तथा निम्नलिखित धातुओं को तुमुनन्त बनाकर क्रिया का विस्तार कीजिए —

वन्द्, कथ्, चुद्, शास्, ज्ञा, स्तु, ग्रह्, आ+दा, वि+श्वस्, उप+आस्, मृ, परि+नी।

अभ्यास २१

बारह वाक्य बनाइए जिनमें क्रिया का विस्तार कालवाची, स्थानवाची प्रकारवाची, कारणवाची तथा परिणामवाची, क्रियाविशेषण-वाक्यांशों द्वारा हो।

४१६—जब विधेय के साथ-साथ कर्ता और कर्म का भी विस्तार हुआ रहता है, तब वाक्य अपने पूर्णतम स्वरूप में दृष्टिगोचर होता है। "रविरुद-गच्छत्" साधारणतम स्वरूप वाला वाक्य है। कर्ता और क्रिया का विस्तार करके इस प्रकार का वाक्य हो सकता है :—

'अरुणपुरःसरो' रविः 'तमोजालं निरस्य जनक्रियाप्रवृत्तये प्राच्यां दिशि झटिति' उदगच्छत्। इसी प्रकार साधारण वाक्य 'स पदवीमन्वयात्' विस्तृत होकर इस प्रकार हो सकता है—'गुरुभिरुपदिष्टः' स प्रथमे वयसि वर्तमानोऽपि संसाराद् उद्विजमानः अनेकयतिप्रतिपन्नां परमसुखदायिनीं साधुपदवीं निवारयतोऽपि पितुः पारत्रिकसुखावाप्तये प्रशान्तचेतसा अन्वयात् इसी प्रकार "पान्थः भुजगं ददर्श" विस्तृत किए जाने पर इस प्रकार हो सकता है —

अथ असौ पान्थः ग्रामान्तरं गच्छन् अध्वश्रमार्तः कथमपि पदानि न्यस्यन् अनाक्रान्ते एवार्धपथे कञ्चिद् बृहत्कायं प्रसारितफणं श्यामदेहं भुजगं यदृच्छया तरुतले ददर्श।

अन्य उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

इति परिकलय्य किंचिदुन्नमितकन्धरो भयचकितया दृशा दिशोऽवलोक्य तृणेऽपि चलति पुनः प्रतिनिवृत्तां तमेव पदे पदे पापकारिणाम् उत्प्रेक्षमाणो निष्क्रम्य तस्मात् तमालतरुमूलात् सलिलसमीपम् उपसर्तुं प्रयत्नमकरवम् (कादम्० ३५)। अनुबध्यमानश्च तया तां सर्वाम् अतिथिसपर्याम् अतिदूरावनतेन शिरसा सप्रश्रयं प्रतिजग्राह (कादम्० १३३)।

किंनिमित्तं वा अनेकसिद्धसाध्यसंबाधानि सुरलोकसुलभान्यपहाय दिव्याश्रमपदानि एकाकिनी वनमिदममानुषमधिवसति (कादम्० १३५)।

अभ्यास २२

अभ्यास २४

छः वाक्य बनाइये जिनमें कर्ता, क्रिया तथा कर्म का विस्तार एक से अधिक विधियों के अनुसार रहे।

४२०—साधारण वाक्यों में अर्थ को बिना बदले हुए क्रिया के वाच्य का परिवर्तन करके शब्दों का रूपान्तर किया जा सकता है। दासी पुष्पाण्यानयत् इस वाक्य का वही अर्थ है जो दास्या पुष्पाणि आनीयन्त का है। कभी-कभी वाक्यांश बदलकर उक्ति या वाक्य का रूपान्तर किया जा सकता है, कस्माद् हेतोरत्र निवससि, पिता सपुत्रो ग्रामं गतः, इन वाक्यों का वही अर्थ है जो किमर्थमत्र निवससि और पिता पुत्रेण सह (अथवा सहित) ग्राम गत. का है। परन्तु संस्कृत में हम एक ही भाव को भिन्न भिन्न शब्दों द्वारा प्रकट कर किसी भी वाक्य के शब्दों का रूपान्तर कर सकते हैं। उद्यमात् विभव. प्रभवति—इस वाक्य को लीजिए। अर्थ को बदले बिना यह वाक्य निम्नलिखित ढंगों से अनेकधा प्रकट किया जा सकता है—

उद्यमाद् विभव उत्पद्यते-सजायते
उद्यमो विभवाय कल्पते-भवति-जायते
उद्यमप्रभवो विभव
उद्यमेन नरो विभव याति-विभवयुतो भवति
उद्यमी नरो विभवसपन्नो भवति
उद्यममवलम्ब्य नरो विभवं याति
उद्यमपरेण नरेण (प्राय) विभवयुतेन भाव्यम्
उद्यमबीजाद् विभवांकुर प्ररोहति

अभ्यास २५

उपर्युक्त वाक्य के आदर्श पर निम्नलिखित वाक्यों को भिन्न भिन्न प्रकार से प्रकट कीजिए —

(१) निर्धनता सर्वापदामास्पदम् (२) अस्य कोप [illegible] निमित्त (३) मूर्खाणामुपदेश प्रकोपाय भवति (४) धार्मिक आपदा पर पदम् (५) न धर्मवृद्धेषु वय समीक्ष्यते (६) विद्वान् सर्वत्र पूज्यते (७) दैवपरा नरा

विनश्यन्ति (८) सुतो लालनाद् विनश्यति (९) त्वमेव नः परमा गति. (१०) पराभवोऽपि मानिनाम् उत्सव एव ।

मिश्रित वाक्य

४२१—मिश्रित वाक्य को देखने से यह स्पष्ट ही है कि उसमें एक प्रधान कथन होता है और कम से कम एक आश्रित कथन । प्रधान उपवाक्य स्वतन्त्र हुआ करता है, और आश्रित उपवाक्य बनावट मे प्रधान के ऊपर आश्रित रहते हैं । इस प्रकार इस वाक्य को लीजिए—दूतो राज्ञे वार्ता न्यवेदयत् । यह साधारण वाक्य है । तीन प्रकार के आश्रित उपवाक्यो में से कोई एक भी जोड़-कर यह मिश्रित बनाया जा सकता है ।

सामता महाराजमभिद्रोग्धुम् अहर्निश यतन्ते इति वार्ता दूतो राज्ञे न्यवेदयत् (सज्ञा उपवाक्य) ।

य पौरजानपदानपसर्पितु प्रयुक्त स दूतः (विशेषण उपवाक्य) ।

काले उपायश्चिन्त्येतेति हेतो दूत. आदि । (क्रियाविशेषण उपवाक्य) ।

४२२—अब मिश्रित वाक्य बनाने के लिए कुछ अभ्यास दिए जायँगे । आश्रित वाक्य बनाने के लिए जो शब्द प्रयोग में लाए जाते है, वे पृष्ठ ३४२ पर सेक्शन ३९० के चक्र मे दिखाए गए हैं । उन शब्दों को इस अवसर पर देख लेना चाहिए ।

अभ्यास २६—२८

पाच वाक्य बनाइए जिनमे सज्ञा उपवाक्य (१) कर्ता अथवा कर्म बने (२) प्रधान उपवाक्य के कर्ता अथवा कर्म का समानाधिकरण हो, अथवा (३) प्रधान उपवाक्य के सिवा किसी शब्द का कर्म बने ।

अभ्यास २६

अभ्यास ३१—३४

छः मिश्रित वाक्य बनाइए जिनमें (१) कालवाची क्रियाविशेषण-उपवाक्य हो (२) स्थानवाची क्रियाविशेषण-उपवाक्य हो (३) प्रकारवाची क्रियाविशेषण-उपवाक्य हो (४) कारणवाची, दशावाची, अभिप्रायवाची क्रियाविशेषण-उपवाक्य हो। निम्नलिखित धातुओं का प्रयोग कीजिए :—

खन्, उप+स्था, हन्, लभ्, पत्, आ+राध् (प्रेरणार्थक)।

अभ्यास ३५

छः मिश्रित वाक्य बनाइए जिनमें क्रमशः कालवाची क्रियाविशेषण-उपवाक्य, स्थानवाची क्रियाविशेषण-उपवाक्य, सादृश्यवाची क्रियाविशेषण-उपवाक्य, प्रकारवाची क्रियाविशेषण-उपवाक्य, परिणामवाची क्रियाविशेषण-उपवाक्य तथा दशावाची क्रियाविशेषण-उपवाक्य आवे।

४२३—ऐसे मिश्रित वाक्यों का अभ्यास दिया जा चुका जिनमें एक प्रकार का आश्रित उपवाक्य प्रयुक्त था। अब ऐसे वाक्य लिए जायँगे जिनमें दो या दो से अधिक प्रकार के आश्रित उपवाक्य आवेंगे। इस वाक्य को लीजिए—"वृषल समाज्ञापयति।" य एष क्षपणको जीवसिद्धि नाम राक्षसप्रयुक्तो विषकन्यया प्रवर्तक घातितवान्, स एकमेव दोषं प्रख्याप्य सनिकारं नगरात् निर्वास्यताम् इति (मुद्रा० १)।"

यहाँ 'समाज्ञापयति' का कर्म "स एकमेव दोषं प्रख्याप्य सनिकारं नगरात् निर्वास्यताम् इति" यह उपवाक्य है। इस उपवाक्य के कर्ता की विशेषता एक विशेषण-उपवाक्य कर रहा है, वह विशेषण-उपवाक्य यह है, "य एष क्षपणको जीवसिद्धि नाम राक्षसप्रयुक्तो विषकन्यया प्रवर्तक घातितवान्"।

इसी प्रकार "यदैव मयाय देवस्य उज्जयिनीगमनवृत्तान्तो निवेदित तदैव सनिर्वेदमेवमेतदित्युक्त्वा उत्थाय महाश्वेता पुनस्तपसे स्वमाश्रमपदमाजगाम" इस वाक्य में प्रधान क्रिया की विशेषता एक कालवाची क्रियाविशेषण-उपवाक्य कर रहा है, वह कालवाची क्रियाविशेषण उपवाक्य यह है—"यदैव मयाय देवस्योज्जयिनीगमनवृत्तान्तो निवेदित" और इसमें एक संज्ञा-उपवाक्य जुड़ा हुआ है (उक्त्वा का कर्म एवमेतत विस्तार के साथ एक संज्ञा-उपवाक्य है)।

इस प्रकार एक ही मिश्रित वाक्य में दो या दो से अधिक प्रकार के आश्रित उपवाक्य जोड़े जा सकते हैं, 'यदा अतितृष्णा नराणां हृदये पदं करोति तदा ते यदीश्वरेणात्मने स्थित्यनुरूपं दत्तं तेनापरितुष्टाः सन्तस्ततोधिकतरमीहमाना यत्तैः सुखेन भोक्तुं शक्यं तृष्णातिरेकात् प्रायो हापयन्तीति असकृद् वयमस्मिन् जगति प्रतीमः । इस मिश्रित वाक्य में एक क्रियाविशेषण-उपवाक्य यह है—यदा ··करोति जो "हापयति" की विशेषता बताता है, दो विशेषण-उपवाक्य हैं (१) यत् ··दत्तम् और (२) यत्··· शक्यम् और एक सज्ञा-उपवाक्य है "तत्ते हापयन्ति" ।

अभ्यास ३६–४०

पाँच मिश्रित वाक्य बनाइए, जिनमें प्रत्येक में (१) एक विशेषण-उपवाक्य और एक संज्ञा-उपवाक्य हो (२) एक क्रिया-विशेषण-उपवाक्य और एक विशेषण-उपवाक्य हो (३) एक सज्ञा-उपवाक्य और एक क्रियाविशेषण उपवाक्य हो (४) एक क्रिया-विशेषण-उपवाक्य और एक सज्ञा-उपवाक्य हो, और इनमें से प्रत्येक की विशेषता एक विशेषण-उपवाक्य करे (५) तीनों उपवाक्य साथ-साथ प्रयुक्त हों ।

संयुक्त वाक्य

४२४—संयुक्त वाक्य में दो या दो से अधिक प्रधान कथन रहते हैं। ये कथन सब के सब साधारण अथवा मिश्रित, या साधारण और मिश्रित मिले हुए हो सकते हैं। यह नियम सामूहिक, विरोधात्मक और आनुमानिक तीनों सम्बन्धों में लागू होता है।

एक साधारण वाक्य लीजिए "यात्रिक काशीमगच्छत् ।" इसको [illegible] सम्बन्धों को दिखलाते हुए संयुक्त वाक्य में परिवर्तित करने के लिए हम [illegible] —

यहाँ पर सयुक्त वाक्यों के भिन्न-भिन्न अंश साधारण वाक्य के रूप में हैं। आवश्यकता पड़ने पर वे मिश्रित बनाए जा सकते हैं। इस प्रकार वाक्य (२) को लीजिये,

यात्रिक काशीमगच्छत् किंतु यावत् स्नानार्थं गगासलिलेऽवतरति तावत् केनचित् महानक्रेण सहसा गृहीत्वा भक्षित ।

यहाँ द्वितीय अंश मिश्रित वाक्य है और पहिला अश साधारण वाक्य है, जो मिश्रित वाक्य बनाया जा सकता है.—

श्री विश्वेश्वरदर्शनेनात्मान निर्धौतकल्मष करोमीति यदा गाढाभिलाषो मनसि पदं चकार, तदा स यात्रिक. आदि आदि।

अभ्यास ४१—४२

ऊपर के आदर्श पर (१) पाँच सयुक्त वाक्य बनाइये जिनके अग साधारण वाक्य रहें (२) पाँच सयुक्त वाक्य बनाइये जिनके अग मिश्रित वाक्य हों।

अभ्यास ४३

एक स युक्त वाक्य लिखिये जिसमें निम्नलिखित मे से प्रत्येक का वर्णन हो .—

(१) वर्षाकाल. (२) पाणिनि (३) अराजको जनपद (४) राजधर्मः (५) धनम् और (६) कालिदास

४२५—अंग्रेजी भाषा में हम participial, prepositional या अन्य phrases तथा Subordinate या Co-ordinate clauses द्वारा साधारण वाक्यों को स क्षिप्त या स युक्त कर सकते है। इस प्रकार जो वाक्य बनता है वह साधारण, मिश्रित अथवा स युक्त हो सकता है। उदाहरण के लिये इन वाक्यो को लीजिये, "With these thoughts, I came near the place. Just then I heard sounds of loud lament I therefore, eargarly pressed forward. Then I could clearly distinguish, Kapinjala's voice upbraiding Pundarika for his cruelty The cruelty lay in leaving his friend to live without him". इन वाक्यों का निम्न प्रकार मे एक वाक्य बनाया जा सकता है,

"with these thoughts as I came near the place, I heard sounds of loud lament, and pressing eagerly forward, I could clearly distinguish Kapinjala's voice upbraiding Pundarika for his cruelty in leaving his friend to live without him" इस प्रकार यह एक संयुक्त वाक्य बना जिसका पूर्व भाग एक मिश्रित वाक्य है।

संस्कृत में बहुव्रीहि तथा तत्पुरुष समासों द्वारा बहुत से साधारण वाक्य एक वाक्य में जोड़े जा सकते हैं। इस प्रकार जो नया वाक्य बनेगा, वह या तो साधारण वाक्य होगा या मिश्रित या संयुक्त।

एकदा सा गम्भीरध्वनिं शुश्राव। तमाकर्ण्य तस्याः कुतूहलमुपजातम्। अतः सा तस्यां दिशि दृष्टिं प्रेरितवती महान्तं च शबरगणं ददर्श। इन सब वाक्यों को मिलाकर एक साधारण वाक्य इस प्रकार बनाया जा सकता है—एकदा श्रुते गभीरे ध्वनौ सा तदाकर्णनोपजातकुतूहला तद्दिशि प्रेरितदृष्टिः महान्तं च शबरगणं ददर्श। इसी प्रकार अथैकदा राजा दुष्यन्तो मृगयार्थं वनमियाय। तं तस्य सैनिका अमात्याश्चानुजग्मुः। वने स बहून् जघान। तेषु एकं मृगं पलायमानमनुससार। मार्गे दिव्याश्रमपदं ददर्श। ये वाक्य एक मिश्रित वाक्य में इस प्रकार जोड़े जा सकते हैं—

सैनिकैरमात्यैश्चानुगतो यदैकदा राजा दुष्यन्तो मृगयार्थं वनमियाय तदा स तत्र बहून् मृगान् हत्वा तेष्वेकं मृगं पलायमानमनुसरन् मार्गे दिव्याश्रमपदं ददर्श। अथवा इससे भी अधिक संक्षिप्त इस प्रकार किया जा सकता है—सैनिकामात्यो राजा दुष्यन्तो मृगयार्थं वनं गतः बहून् मृगान् हत्वा आदि आदि।

तथा स्थिता तां चंद्रापीडो निभृतमुपससार मुहूर्तमिव स्थित्वा च ता स सविनयमवादीत्

(२) तस्मिन्दिव्याश्रमपदे दुष्यत. कामपि कन्यकामपश्यन्। सा कन्या चारुसर्वाङ्गी आसीत। स कण्वमुनेराश्रम । त राजा प्राविशन। तदा तत्सत्कारार्थं शकुन्तला आश्रमाद्बहिराजगाम। शकुन्तला कण्वस्य कृतिका दुहितासीत्। सा सप्रश्रय दुष्यत स्वागत व्याजहार।

(३) पेशवे इति ख्यातानां महाराष्ट्राधिकारिणां मध्ये चरमो वाजीराज इत्येको बभूव। स पुण्यपत्तनमधितष्ठौ। स किल बहुगुणोपपन्न आसीत्। किन्तु तस्य राजकार्यविचरणविषयेऽतीव मन्दादर आसीत्। अत कर्मसचिवस्थाने बहवो नर्मसचिवा एव त पर्यवारयन्। तैस्तस्य मनो विषयभोगेषु सुतरामाकृष्यत। एव कामाधीने राजनि तच्छन्दानुवर्तिनि चामात्यगणे महाराष्ट्रदेशोऽनायासेनैव रन्ध्रान्वेषणदक्षाणां शत्रूणामभिपतां गत।

४२६—ऊपर बता दिया गया है कि कतिपय दिए हुए वाक्यों को जोड़कर किस प्रकार एक वाक्य बनाया जा सकता है। अब यह बताया जायगा कि किसी दिए हुये वाक्य को किस प्रकार भिन्न भिन्न वाक्यों मे तोड़ना चाहिए। इससे विद्यार्थी को किसी भी दिए हुए मौलिक सस्कृत वाक्य की टीका सस्कृत में ही करने का अच्छा अभ्यास प्राप्त हो जायगा। इस प्रणाली से टीका करने के कार्य मे बड़ी सुविधा प्राप्त हो जायगी। यदि दिए हुये वाक्य को भिन्न भिन्न वाक्यों में तोड़कर विद्यार्थी मौलिक शब्दो के स्थान पर अन्य पर्यायवाची शब्द रख दे तो मानो उसने उस वाक्य का स्वतंत्र अनुवाद कर दिया।

उदाहरणार्थ यह श्लोक लीजिए—गुणदोषौ बुधो गृह्णन्निन्दुक्ष्वेडाविवेश्वर। शिरसा श्लाघते पूर्वं पर कण्ठे नियच्छति। इसे भिन्न भिन्न वाक्यों द्वारा इस प्रकार अनूदित कर सकते हैं।

शिव इन्दु विष च द्वे अपि स्वीकरोति, किन्तु इन्दु शिरसा धारणपूर्वक प्रशसति विष च स्वकण्ठे नियच्छति। एवं प्राज्ञो नर कस्यचित्नरस्य गुण दोषमुभावपि गृह्णाति। किन्तु गुणं शीर्षान्दोलनपूर्वक श्लाघते, दोष तु स्वकंठे नियम्य तन्नाममात्रमपि विलोपयति।

वस्तुत यह मौलिक श्लोक की स्वतन्त्र टीका है, पर इससे अर्थ पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है। एक दूसरा वाक्य लीजिए —

संग्रामनिर्विष्टसहस्रबाहुरष्टादशद्वीपनिखातयूप ।

अनन्यसाधारणराजशब्दो बभूव योगी किल कार्तवीर्यः ॥

यह श्लोक निम्नलिखित प्रकार से कई वाक्यों में तोड़ा जा सकता है

पुरा किल कार्तवीर्यो नाम योगी समजायत। तस्य युद्धेषु (एव) बाहुसहस्र परैरनुभूतम् (अन्यत्र स द्विभुज एव)। तेन अष्टादशसु द्वीपेषु यज्ञस्तम्भा स्थापिता। तथा च तस्य राजशब्दो नान्यसामान्य आसीत्। इसी प्रकार 'श्रुतिसुभग गीतध्वनि श्रुत्वा संजातकुतुको ध्वनिप्रभवजिज्ञासया कृतगमनबुद्धि दत्तपर्याणम् इन्द्रायुधमारुह्य प्रियगीतै प्रथमप्रस्थितै वनहरिणैरुपदिश्यमानवर्त्मा पश्चिमया सरस्तीर-वनलेखया निमित्तीकृत्य त गीतध्वनिमभिप्रतस्थे' वाक्य का विस्तार इस विधि से किया जा सकता है —यदा स सुखश्रव गीतशब्दमशृणोत् तदा सजातकुतूहल तत्प्रभवमुपलब्धु स ऐच्छत। तदनुरोधात् गमनाय मति विधाय इन्द्रायुधपृष्ठे पर्याण समारोप्य तमारुरोह। तन्मार्गोपदेशाय इव सदाप्रियगीतरवा वनहरिणा तस्मात् पूर्वमेव तदभिप्रेता दिशं प्रस्थिता।ताननुसरन् स पश्चिमेन सरस्तीरप्रान्तेन त गीतध्वनिम् उद्दिश्य ययौ।

ऊपर दिए हुए उदाहरणों की शैली के अनुसार तथा सेक्शन ४२० की रचना से विद्यार्थी सस्कृत-लेखकों की कृतियों से वाक्यों को लेकर उनकी टीका कर सकते हैं।



चतुर्थ सेक्शन

पत्र-लेखन

४२७—पत्र-लेखन के विषय में संस्कृत-लेखकों ने बहुत ध्यान नहीं दिया। जितने संस्कृत-ग्रन्थ विद्यमान हैं उनमें पत्रों के बहुत कम उदाहरण मिलते हैं, क्योंकि हमारे पूर्वज पत्रलेखन-प्रणाली का अधिक आश्रय नहीं लेते थे। अतएव संस्कृत में पत्रलेखन में वे कठिनाइयाँ नहीं आती जो प्राय अंग्रेजी में आती हैं क्योंकि अंग्रेजी में विविध प्रकार के पत्र चलते हैं—वैयक्तिक, व्यापारिक, राजकीय, आदि आदि। अंग्रेजी में कुछ निश्चित विधियाँ होती हैं जिनके अनुसार पत्र प्रारम्भ किए जाते हैं। सम्बोधित व्यक्ति की स्थिति के अनुसार पत्रों के इन स्वरूपों में भी वैभिन्य होता है। इस अन्तर के अतिरिक्त दूसरी कोई भी ऐसी बात नहीं रहती जिससे यह पहिचाना जा सके कि अमुक वैयक्तिक पत्र है (पिता का पत्र पुत्र को), अमुक राजकीय पत्र है (अमात्य की ओर से राजा को) अथवा अमुक पत्र किसी अन्य प्रकार का है (एक व्यक्ति की ओर से अन्य व्यक्ति को)। संस्कृत में पत्र-लेखन की जो बहुत प्रचलित विधियाँ हैं, वे उदाहरणपूर्वक इस सेक्शन में दी जायँगी।

४२८—इसके पूर्व कि विद्यार्थियों को पत्र-लेखन के विस्तार अथवा विवरण का अध्ययन करने को कहा जाय, हम पहले दो उदाहरण प्रस्तुत करेंगे :—

(१) स्वस्ति। महेन्द्रद्वीपात् परशुरामो लङ्कायाम् अमात्य माल्यवन्तमभ्यर्हयति। अत्रैव परममाहेश्वर लङ्केश्वरम् अभिनन्द्य ब्रवीति। विदितमेतद् वो यदस्माभि दण्डकारण्यतीर्थोपासकेभ्य तपोवनेभ्य प्रतिज्ञातमभयम्। तत्र विराध-दनु-कबन्ध-प्रभृतय केऽप्यभिचरन्तीति श्रुतम्। तत् तान् प्रतिषिध्य सद्वृत्तिम् अस्मद्धिता च माहेश्वरप्रीतिमनुरुध्यतां भवत।

ब्राह्मणातिक्रमत्यागो भवतामेव भूतये।

जामदग्न्यश्च वो मित्रमन्यथा दुर्मनायते ॥ इति ।

(२) और भी अधिक अर्वाचीन प्रणाली का नमूना यह है :—

स्वस्ति । श्रीमत्सस्कृताद्यनेकविद्याविनयविराजमाना राजमान्या श्रीयुतगोखलेउपनामधारिण कृष्णरावाख्या शतश साष्टागप्रणाम-पुरस्सर विज्ञाप्यन्ते । यत काशीतो भवदर्थे आनीतस्य मानवधर्म-शास्त्रग्रन्थस्य वार्ताहरदेयभागेन सहित मूल्य सार्धदशरूपकपरि-मितमिना पत्रिका भवद्धस्त प्रापयतो गोविदस्य हस्ते दीयतामिति एषा विज्ञप्ति ।

पुण्यपत्तने
मार्गशीर्षसुदि १८०७ सवत्सरे
१५

पटवर्धनकुलोत्पन्नस्य
हरिसूतोर्नारायणस्य

४३६—अब विद्यार्थियो का ध्यान निम्नलिखित विषयो की ओर आकर्षित किया जाता है,

(१) प्रत्येक पत्र "स्वस्ति" शब्द से प्रारम्भ होता है ।

(२) जिस स्थान से पत्र लिखा जाता है उस स्थान का उल्लेख पहिले किया जाता है, और पञ्चमी विभक्ति में रक्खा जाता है । इस पञ्चमी विभक्त्यन्त शब्द का अन्वय प्रधान क्रिया के साथ रहता है । कभी कभी उस स्थान का उल्लेख अन्त मे किया जाता है और सप्तमी मे रक्खा जाता है जैसा कि ऊपर दिए हुए उदाहरण न० २ में है ।

से प्रकट होता है कि लेखक सम्बोधित व्यक्ति का निकट सम्बन्धी है, जैसे पिता, पति आदि)।

टिप्पणी—अर्वाचीन पत्रों में लेखक का नाम अन्त में आता है और षष्ठी विभक्ति में रक्खा जाता है (जैसा कि ऊपर के उदाहरण न० २ के पत्र में है)। इस षष्ठ्यन्त शब्द का सम्बन्ध 'विज्ञप्ति' 'प्रार्थना' या इसी प्रकार के अन्य शब्द से रहता है। ध्यान रहे कि यह शैली अधिक लोकोपचारपूर्ण है और उसी दशा में काम में लाई जानी चाहिए जब कि लेखक सम्बोधित व्यक्ति को न जानता हो, अथवा सम्बोधित व्यक्ति से परिचित न हो।

(५) पत्र का प्रारम्भ प्रथम पुरुष में हुआ करता है, यद्यपि पत्र के मध्य भाग में दूसरे पुरुष भी आ सकते हैं।

(६) सम्बोधित व्यक्ति का जो नाम कभी कभी अंग्रेजी में कागज के बाएँ कोने पर अन्त में लिखा जाता है और लिफाफे के ऊपर पूरा पूरा लिखा जाता है—वही नाम संस्कृत में लेखक के निवास-स्थान के सहित आदि वाक्य में दिया जाता है, और क्रिया का कर्ता अथवा कर्म बना कर (जैसा कि ऊपर के उदाहरण न० २ में है), अथवा उसके साथ किसी अन्य प्रकार से सम्बद्ध करके रक्खा जाता है। यही पत्र का पता कहलाता है।

(७) संस्कृत में पत्र लिखने की तारीख नहीं दी जाती। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर उसे क्रिया का क्रियाविशेषणात्मक विस्तार बनाकर सप्तमी विभक्ति में या पत्र के बाएँ कोने में अन्त में रखते हैं, जैसे, शुभानुसंवत्सरे वैशाखवदि १३ भौमे।

४३०—सुविधा के लिए पत्र दो श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं—

(१) **घरेलू पत्र**—वे हैं जो किसी कुटुम्ब के भिन्न-भिन्न प्राणियों के बीच में लिखे जाते हैं।

(२) **अन्य पत्र**—वे हैं जो मित्र द्वारा मित्र के पास, शिष्य द्वारा आचार्य के पास, अमात्य द्वारा राजा के पास, अथवा एक व्यक्ति द्वारा अन्य व्यक्ति के पास भेजा जाता है। इन्हें हम "विविध पत्र" के नाम से सम्बोधित करेंगे।

१—घरेलू पत्र

४३१—पिता द्वारा पुत्र के पास भेजे हुए, बड़े द्वारा छोटे के पास भेजे हुए, अथवा पति द्वारा पत्नी के पास भेजे हुए पत्रों में सम्बन्ध की घनिष्ठता की मात्रा "स्नेहात् परिष्वज्य," "उत्तमाङ्गे चुम्बन्" "सस्नेहमालिङ्ग्य" आदि आदि से प्रकट की जाती है।

यहाँ पर कुछ उदाहरण दिये जावेंगे—

(क) पिता की ओर से पुत्र को पत्र—

स्वस्ति। यज्ञशरणात्सेनापतिः पुष्पमित्रो वैदिशस्थं पुत्रमायुष्मन्तमग्निमित्रं स्नेहात्परिष्वज्य अनुदर्शयति। विदितमस्तु। योऽसौ राजसूययज्ञे दीक्षितेन मया राजपुत्रशतपरिवृतं वसुमित्रं गोप्तारमादिश्य निरर्गलस्तुरगो विसृष्टः स सिंधोर्दक्षिणरोधसि चरन्नश्वानीकेन यवनाना प्रार्थितः। तत उभयोः सेनयोर्महानासीत्संमर्दः। किंतु वसुमित्रेण प्रसह्य ह्रियमाणो मे वाजिराजो निवर्तितः। सोऽहमिदानीं पौत्रेण प्रत्याहृताश्वो यक्ष्ये। तदिदानीमकालहीनं विगतरोषचेतसा भवता वधूजनेन सह यज्ञसदर्शनायागन्तव्यमिति।

(ख) स्वस्ति। उज्जयिनीतः परममाहेश्वरो महाराजाधिराजो देवस्तारापीडः सर्वसंपदामायतनं चन्द्रापीडमुत्तमाङ्गे चुम्बन्नवदयति। कुशलिन्यः प्रजाः। किंतु कियानपि कालो भवतो दृष्टस्य। बलवदुत्कण्ठितं नो हृदयम्। देवी च सहान्तःपुरैर्ग्लानिमुपनीता। अतो लेखवाचनविरतिरेव प्रयाणकालतां नेतव्येति।

(ग) और भी आधुनिक ढंग का पत्र निम्नलिखित प्रकार का होगा—

स्वस्ति। पञ्चवटीतो गोविंदशर्मा पुण्यपत्तने पुत्रं विश्वनाथं (अथवा आयुष्मन्तं विश्वनाथं) सोत्कण्ठं सस्नेहं निर्भरमालिङ्ग्य कुशलं वार्तयति [illegible]। [illegible]। कुशलमिहास्माकं सर्वेषाम्। भवदीया कुशलवती वार्ता सर्वदा प्रेष्या। अद्यैव भवदर्थं [illegible] परशुरामस्य हस्ते विंशती रूप्यका दत्ताः। तेषां विनियोगः कथं कृत इति यथावसरं निवेदनीयमिति।

संवत् १९८७ मार्गशीर्षकृष्ण १४ भौमेऽह्नि।

४३२ —पिता अपने पुत्र को, बड़ा अपने छोटे को, तथा बड़ा सम्बन्धी अपने छोटे सम्बन्धी को अधोनिर्दिष्ट ढग मे पत्र लिखेगा—

स्वस्ति । श्रीमच्चिरजीविषु अमुकशर्मसु प्राणाधिकतरेषु अमुकस्य (पितु , भ्रातु आदि जैसा भी हो) सस्नेहा आशिष. कोटिश. स्फुरतु । विदितमस्तु आदि, या,

स्वस्ति । अमुकस्थानात् अमुकस्थानवासिन चिरजीविनम् अथवा आयुष्मतम् अमुकशर्माणम् अमुकशर्मा सस्नेहमाशी सहस्रपूर्वक कुशल वार्तयति, अथवा सोत्कठ सस्नेह समालिंग्य कुशल वार्तयति यथा। आदि,

(क) पति की ओर से पत्नी को,

स्वस्ति । अमुकस्थाने पालितपरमपतिव्रतगुणा सौभाग्यशालिनी भार्याममुकानाम्नीम् अमुक सस्नेह समालिंग्य कुशल वार्तयति यथा। कार्यं च । कुशलमिहास्माकम् । तत्रत्यसमस्तमानुषाणा कुशलवती वार्ता प्रहेया । अथवा एवंगुणासु प्राणेभ्योपि प्रियतमासु नितातालिगनपूर्वक-स्नेहसमूहा आदि ।

४३३—जब छोटा अपने बड़े को अथवा पत्नी अपने पति को पत्र लिखे तो इस ढग से लिखे—

१—पुत्र की ओर से पिता को.—

(१) स्वस्ति । अमुकस्थाने अनेकगुणालकृतस्नेहगुणभूषितपुत्र-वत्सलपूज्यपितृपादारविंदान् अमुकस्थानात्सदाविनीत सुत (अथवा सदाज्ञाविधायी पितृभक्तितत्पर सुत.) अमुको महाभक्त्या सबहुमान क्षितितलनिहितमौलिना साष्टाग प्रणम्य सविनयं विज्ञापयति । × × × सर्वाभ्यो मातृप्रभृतिभ्यो मदीय प्रणामो वाच्य । कार्या-दिक च सदादेष्टव्यमिति ।

(२) स्वस्ति।श्रीमत्पितृचरणेषु अकिंचित्करकिकरस्य सुतस्य (कभी कभी मम) बद्धकरसपुट प्रणतिततिमहस्रमजस्रम । कार्यं च इत्यादि

(३) स्वस्ति श्रीजन्मकर्मार्थयत्नेषु जनकेष्वित ।
स्नेहार्द्रभावसहिता स्फुरन्तु नतय परा ॥

टिप्पणी—जब छोटा भाई बड़े भाई को अथवा पुत्र अपनी माता को पत्र लिखे तो उसे आवश्यक परिवर्तन कर देना चाहिए।

२—पत्नी की ओर से पति को —

स्वस्ति। यथास्थाने सकलपूज्यतमगुणगणालंकृतभर्तुः पादान् (कभी कभी नाम दे दिया जाता है) अमुकस्थानात्सदाज्ञाविधायिनी अमुका पतिसेवातत्परा कठश्लेषपूर्वक सस्नेह सोत्कंठ सविनय प्रणम्य विज्ञापयति यथा। कार्यं च।

२-विविध

४३४—अब "विविध" वर्ग वाले पत्रों को लेंगे। मित्र को लिखते समय लोग प्राय सम्मानद्योतक शब्दों का प्रयोग करते हैं, जैसे, अमुकम् अर्हयति, अभिनन्दयति, अभिनन्द्य ब्रवीति, सस्नेहम् अनुदर्शयति, प्रणतिपुर सर निवेदयति इत्यादि।

इस प्रकार के एक पत्र का उदाहरण पहिले ही दे दिया गया है (उदाहरण न० १ देखिए)। मित्र को पत्र लिखते समय विद्यार्थी उस पत्र को नमूना मान सकता है।

नीचे कुछ आधुनिक नमूने दिए जाते हैं—

(१) स्वस्ति यथा स्थाने विद्वत्त्वदाक्षिण्यौदार्यादिगुणालंकृतशरीर परमप्रेमनिधान वयस्यम् अमुकम् अमुकस्थानादमुक सोत्कंठ सस्नेह गाढमालिंग्य कुशल वार्तयति यथा। कार्यं च।

(२) स्वस्ति। अस्मदेकाश्चर्यीभूतेषु विद्याविनयादिमंडितेषु पूज्यतमेषु अमुकस्थाननिवासिषु अमुकशर्मसु अमुकस्थानवासिन अमुकस्य प्रणतिसारम्अजस्रम्।

४३५—अपरिचित लोग निम्नलिखित सामान्य ढंग को काम मे ला सकते हैं —

इस नमूने के ढग पर किसी भी पुस्तक-प्रणेता को पत्र लिखकर प्रार्थना की जा सकती है कि अमुक पुस्तक की एक प्रति डाक द्वारा भेज दे।

स्वस्ति। आंग्लभौमगीर्वाणादिभाषासु परा प्रतिष्ठा गता. कलिकातानगरस्थमहापाठशालाधिकृता श्रीतर्करत्नवागीशाख्या. प्रणामपुरःसर विज्ञाप्यन्ते। यत् भवत्प्रणीतम् अलकारदर्पणाख्य ग्रथम् अधिकृत्य काचित् विज्ञप्तिपत्रिका मया मित्रहस्ते अद्य दृष्टा। तदवलोकनेन त ग्रथ क्रेतु मन्मनसि वलवतीच्छा प्रादुर्भवति। तदनुरोधात् राजशासनपत्रद्वारेण वार्ताहरभागसहित मूल्य सार्धचतुष्टयरूपकम् इत. प्रेषितम्। तद्यावच्छक्य सत्वर तद्ग्रथस्य प्रेषणेनानुग्राह्यमात्मानमिच्छामि। ग्रथश्च निम्नलिखितवाह्यनामा प्रेषणीय इति विज्ञप्ति.।

पुण्यपत्तने सस्कृतपाठशालायाम् } अभ्यकरोपनामकस्य गोविदसूनो
-संवत् १६३५ श्रावणवदी११शनौ } रामशास्त्रिण.

टिप्पणी—इन सभी पत्रों मे प्राय. सम्बोधित व्यक्ति के कुशल के लिए भगवान् से या किसी देव या देवी से प्रार्थना कर दी जाती है। यह अन्त में रक्खी जाती है, इस प्रकार—शमिह भावत्क भवयमनुदिनमेधमानमाशास्महे अथवा अत्यन्त सक्षेपतः इति शम्।

४३६—विद्यार्थी अपने अध्यापक को इस प्रकार लिखेगा —

स्वस्ति। अमुकस्थाने अनेकतीर्थावगाहनापवित्रीकृतमानसान् परमाराध्यपरमपूज्यश्रीगोविंदाचार्यपादारविंदान् अमुकस्थानात्सदादेशवर्ती अमुकनामक· परमभक्त्या क्षितितलनिहितमौलिना साष्टाग प्रणम्य सविनय विज्ञापयति,अथवा, एवगुणोपेता श्रीमदुपाध्यायपादा भक्तितत्परेण अमुकनाम्ना शिष्येण सविनयप्रणामपूर्वक विज्ञाप्यन्ते, इति विज्ञप्ति अमुकशर्मण. इत्यादि।

इस ढंग के अनुसार विद्यार्थी बीमारी की छुट्टी लिए अध्यापक को इस प्रकार लिख सकता है —

स्वस्ति। सकलविद्यावगाहनविशदीकृतमानसा परमपूज्या गोपालरावाख्या अनेकप्रणामपूर्वक सविनय विज्ञाप्यन्ते। यन्मम गेहस्य -मातापितरावुभावपि ज्वरपीडितौ सतौ शय्याग्रस्तौ। तौ तथा परित्यज्य

पाठशाला गतु नाहमुत्सहे। मामपि च बलवती शिरोबाधा पीडयति। अत: अद्य मम अनुपस्थितिं मर्षयितुमर्हन्ति आचार्यपादा इति सविनया विज्ञापना सदाभवदादेशवर्तिन शिष्यस्य।

खिस्ताब्दे दशममासस्य द्वादशवासरे १८८५ } कालेकुलोत्पन्नस्य गोविंद-सूनोर्हरेः

४२७—कुछ और नमूने देकर इस सेक्शन की समाप्ति की जाती है। (प्रत्येक नमूने में प्रयुक्त किया जा सकता है)।

(१) मन्त्री अथवा अन्य राज-पुरुष की तरफ से राजा को —

श्रीसमस्तसामतसेनानिर्वाहकेषु परोपकारसत्कारनिपुणेपु निजकीर्तिधवलितदिगतरेषु महाराजाधिराजचरणेषु, आदेशवर्तिनो महाराजकिंकरस्य नमस्ताशीशशो सहस्रमजस्रम्, अथवा °का. °णा, °रा, °णा आशी सहस्रपूर्वक निवेद्यन्ते, अथवा अमुकस्थाने देव विनयनतशिरा अमुकः पादद्वारविदे भक्त्या मूर्ध्नि अंजलिं रचयति। कार्यं च लिख्यते इत्यादि।

(२) बड़े की तरफ से छोटे को —

अमुकस्थानात् अमुक अमुकस्थाने अमुक सप्रसाद समादिशति यथा (कार्यं च) इत्यादि

(३) छोटे की तरफ से बड़े को —

पूज्यपरमाराध्यस्वामि अमुकपादान् अमुकस्थानात्सदादेशकारी अमुक साष्टांगप्रणामपूर्वकं विज्ञापयति।

(४) [illegible] को

[illegible]परमहंसपरिव्राजकाचार्यदेवभूदेवनरदेवपूजितेषु श्रीपादेषु अमुकस्य पपचावस्मरणपूर्वक नारायणस्मरणप्रणामसहस्रमजस्र विज्ञप्तिश्च।

४२८ —[illegible] हम [illegible] करेंगे कि ऊपर के पृष्ठों में दिए हुए नियम [illegible] हैं। [illegible] नियमों का [illegible] करने से यह नियम [illegible] सकता है। [illegible] विषय में [illegible] नियमों [illegible] जान [illegible] जायेंगी।

अभ्यास ४५—५२

१—अपने पिता को एक पत्र लिखिए जिसमे यह दिखाइए कि आप ने पाठशाला मे अपने अध्ययन मे क्या प्रगति की।

२—पिता की ओर से पुत्र के पास एक पत्र लिखिए, जिसमे यह दिखलाइए कि आप उसके पास कुछ पुस्तकें तथा उपहार भेज रहे हैं।

३—अपने मित्र के पास एक पत्र लिखिए, जिसमे यह प्रार्थना कीजिए कि अमुक प्रीति-भोज में अथवा अमुक धार्मिक उत्सव के अवसर पर आकर दर्शन दीजिए।

४—एक पुस्तक-विक्रेता के पास पत्र लिखिए, जिसमे उससे प्रार्थना कीजिए कि अमुक अमुक पुस्तको की आप को आवश्यकता है, अत उन्हे शीघ्र भेजिए।

५—अपने गुरु को एक पत्र लिखिए जिसमे यह दिखलाइए कि अमुक अमुक गृह-कार्य के कारण आप पाठशाला में उपस्थित न हो सकेंगे, अत. अमुक अवधि तक के लिए अवकाश प्रदान किया जाय।

६—किसी मित्र को पत्र लिखिए जिसमें उससे यह प्रार्थना कीजिये कि मेरे लिए कुछ आर्थिक सहायता भेज दीजिए।

७—अपने सहपाठी को एक पत्र लिखिए जिसमें यह प्रार्थना कीजिए कि अपनी सस्कृत व्याकरण की पुस्तक कुछ दिनो के लिए उधार दे दीजिए।

८—किसी पाठशाला के प्रधानाध्यापक की ओर से जिले के शिक्षाधीश के पास कतिपय सहकारी अध्यापक माँगते हुए एक पत्र लिखिए।

कठिन शब्दों की व्याख्या

प्रथम पाठ

पृ० ८ अ० २—सर्वत्रौ 'विषय—विदूषक के विषय में पुरूरवा द्वारा कथित, जबकि उसने चन्द्रमा की उपमा मोदक से दी। 'प्रत्येक दशा में भोजन ही भुक्खड़ आदमी का उपयुक्त क्षेत्र हुआ करता है' अर्थात् उसके रूपक और उसकी उपमाएँ भी भोजन विषयक होती हैं।

अ० ३—सैवेयमिति। 'निश्चयपूर्वक कौन व्यक्ति यह विश्वास कर सकता है कि यह स्त्री वही है'—इसकी मुखाकृति में ऐसा घोर परिवर्तन हो गया है।

अ० ४—सार्थवाहस्यार्थपते प्राणा। "अर्थपति"—व्यक्तिवाचक संज्ञा (कुबेर), इसका अर्थ है—'मानों विमर्दक अर्थपति का बाह्य जीवन है,' वह उसे अपने प्राणों के समान प्यारा समझता है, वे प्राण जो 'अन्तश्चरा' हैं।

अ० ५—ममापि पाण्डवा॥ एक प्रश्न 'क्या पाडव लोग भयोत्पादक वस्तु हैं।

अ० ७—प्रवृद्ध यद्वैर च युवाम्॥ भीम सहदेव से कहते हैं "न तो मेरे सुयोग्य भ्राता (धर्म), न अर्जुन, न तुम ही कारण हो। मम शिशोरेव—मुझ जैसे बच्चे ही का।

पृ० ६ अ० ८—हृदयम् द्वितीय—दूसरा हृदय, तू मेरे अस्तित्व (जीवन) का अंशभूत है।

अ० ६—बलवानपि पदम्॥ निस्तेजा—तेजहीन, साहसहीन, तथा अग्निरहित, दाहशक्ति रहित। यह भस्मचय से भी अन्वित है, जो बहुत बड़ा होते हुए भी सरलता से ही पाँव तले रौंदा जाता है क्योंकि उसमें आग नहीं रहता।

अभ्यास ४५—५२

१—अपने पिता को एक पत्र लिखिए जिसमें यह दिखाइए कि आप ने पाठशाला में अपने अध्ययन में क्या प्रगति की।

२—पिता की ओर से पुत्र के पास एक पत्र लिखिए, जिसमें यह दिखलाइए कि आप उसके पास कुछ पुस्तकें तथा उपहार भेज रहे हैं।

३—अपने मित्र के पास एक पत्र लिखिए, जिसमें यह प्रार्थना कीजिए कि अमुक प्रीति-भोज में अथवा अमुक धार्मिक उत्सव के अवसर पर आकर दर्शन दीजिए।

४—एक पुस्तक-विक्रेता के पास पत्र लिखिए, जिसमें उससे प्रार्थना कीजिए कि अमुक अमुक पुस्तकों की आप को आवश्यकता है, अत. उन्हें शीघ्र भेजिए।

५—अपने गुरु को एक पत्र लिखिए जिसमें यह दिखलाइए कि अमुक अमुक गृह-कार्य के कारण आप पाठशाला में उपस्थित न हो सकेंगे, अत. अमुक अवधि तक के लिए अवकाश प्रदान किया जाय।

६—किसी मित्र को पत्र लिखिए जिसमें उससे यह प्रार्थना कीजिये कि मेरे लिए कुछ आर्थिक सहायता भेज दीजिए।

७—अपने सहपाठी को एक पत्र लिखिए जिसमें यह प्रार्थना कीजिए कि अपनी संस्कृत व्याकरण की पुस्तक कुछ दिनों के लिए उधार दे दीजिए।

८—किसी पाठशाला के प्रधानाध्यापक की ओर से जिले के शिक्षाधीश के पास कतिपय सहकारी अध्यापक माँगते हुए एक पत्र लिखिए।

कठिन शब्दों की व्याख्या

प्रथम पाठ

पृ० ८ श्र० २—सर्वत्रौ ... विषय—विदूषक के विषय में पुरूरवा द्वारा कथित जबकि उसने चन्द्रमा की उपमा मोदक से दी। 'प्रत्येक दशा में भोजन ही भुक्खड़ आदमी का उपयुक्त क्षेत्र हुआ करता है' अर्थात् उसके रूपक और उसकी उपमाएँ भी भोजन विषयक होती हैं।

श्र० ३—सैवेयमिति। 'निश्चयपूर्वक कौन व्यक्ति यह विश्वास कर सकता है कि यह स्त्री वही है—इसकी मुखाकृति में ऐसा घोर परिवर्तन हो गया है।

श्र० ४—सार्थवाहस्यार्थपते ... प्राणा। "अर्थपति"—व्यक्तिवाचक संज्ञा (कुबेर) इसका अर्थ है—'मानों विमर्दक अर्थपति का बाह्य जीवन है.' वह उसे अपने प्राणों के समान प्यारा समझता है वे प्राण जो 'अन्तश्चरा' हैं।

श्र० ५—ममापि ... पाण्डवा॥ एक प्रश्न 'क्या पाडव लोग भयोत्पादक वस्तु हैं।

श्र० ७—प्रवृद्ध यद्वैर ... च युवाम्॥ भीम सहदेव से कहते हैं "न तो मेरे मुरोय भ्राता (धर्म), न अर्जुन, न तुम ही कारण हो। मम शिशोरिव—मुझ जैसे बच्चे ही था।

पृ० ९ श्र० ८—हृदयम् द्वितीय—दूसरा हृदय, तू मेरे अस्तित्व (जीवन) का ... है।

श्र० ९—बलवानपि ... पदम्॥ निस्तेजा—तेजहीन, साहसहीन, तथा अग्निरहित, दाहशक्ति रहित। यह भस्मचय से भी अन्वित है जो बहुत बड़ा होते हुए भी बालकों से ही पाँव तले रौंदा जाता है क्योंकि उसमें आग नहीं रहती।

पृ० = पृष्ठ

श्र० = अभ्यास

[illegible]

[illegible]

अ० ११—इक्ष्वाकु…अभूत्। आहितलक्षण.—'काकुत्स्थ' ऐसा नाम रक्खा गया, 'काकुत्स्थ' इस नाम से विख्यात हुआ, अथवा (अमरकोशानुसार 'अपने सद्गुणों के कारण प्रसिद्ध')।

अ० वा० १—यस्त्वमिव ••निबन्धनम् 'जो तुम्हारे ही समान मेरे मन की दूसरी गाँठ है।' कामन्दकी द्वारा मालती से कहा गया है जब कामन्दकी ने उससे यह बताया कि माधव कौन था।

अ० वा० २—पश्चिमे वयसि वर्तमानस्य—अपनी अन्तिम अवस्था में वर्तमान जिसकी अवस्था काफी बड़ी हो चुकी थी।

पृ० ६-अ० वा० ३—शुकमादाय—अपने साथ एक सुग्गा लिए हुए। आश्चर्यभूत —आश्चर्य की वस्तु। इति कृत्वा—ऐसा विचार कर, इस विचार।से। देवपादमूलमागता—श्रीमान् के चरणों में आई।

अ० वा० ४—गर्भस्थस्यैव—जब कि वह गर्भ ही में रहता है, तभी, अर्थात् ये पाँचो उसके साथ साथ पैदा होते हैं।

अ०'वा० ६ भूपते.—भूपतिना, केवल तीन वस्तुएँ उसके द्वारा नहीं दी जा सकती थीं क्योंकि वे राजत्व के आवश्यक लक्षण थीं।

अ० वा० ७-निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थमस्मिन्द्वये श्रीश्च सरस्वती च। इस पंक्ति का अर्थ यह है कि यद्यपि सम्पत्ति तथा विद्या (सरस्वती) के प्रकृत्या भिन्न भिन्न स्थान (स्थितियाँ) होते है तथापि इस राजा में वे साथ-साथ रहती हैं। लक्ष्मी और सरस्वती का साथ-साथ निवास बड़ा दुर्लभ हुआ करता है, पर इस राजा में दोनों का साथ-साथ निवास पाया जाता है। एकसंस्थम्—एका संस्था यस्य।

अ० वा० ८—व्यतिकरितदिगन्ता —जिन्होंने दिगन्तों (दिशाओं के अन्तों) को व्याप्त कर रक्खा है। दिशाम् अन्ता इति दिगन्ता। सुकृतविलसितानां स्थानमूर्जस्वलानाम्—जो उत्तम कार्यों के जबर्दस्त विलासों (प्रदर्शनों) के घर हैं अर्थात् जिन्होंने अनेक पुण्य-कार्य किए हैं।

द्वितीय पाठ

पृ० १४-अ० १—यदेते चन्द्रसरोरक्षका —चन्द्र-सरोवर की रक्षा करने वाले अर्थात् खरगोश।

प्र० ३-यस्मिन्नेवाधिक चक्षुरारोपयति पार्थिव'। जिसके ऊपर राजा अपनी आँख अधिक लगाता है अर्थात् जो औरों की अपेक्षा अधिक प्रियतर दृष्टि से देखा जाता है।

प्र० ४-कृता. "विकृष्यतामिदम्। इसका अर्थ यह है 'राक्षस तुम्हारे बाणों के लिए उपयुक्त निशाने हैं, इसलिए अपने धनुष को इनके ऊपर झुकाओ।'

प्र० ८-उमा तत्समौ। उसी प्रकार राजा और मागधी (सुदक्षिणा) जो कि उनके (शिव तथा उमा और इन्द्र तथा शची के) समान थे, अपने पुत्र से प्रसन्न थे जो कि उनके समान था (अर्थात् कार्तिकेय और जयन्त के समान था)।

पृ० १५. प्र० वा० १—बहु मन्यते—माना जाता है, बड़े सम्मान की दृष्टि से माना जाता है। आशानिबन्धनं जाता जीवलोकस्य—सारे संसार भर की आशा का बन्धन हो गई। श्री सीता जी के कहने का तात्पर्य यह है—"वस्तुत वह स्त्री धन्य है जिसने मेरे स्वामी का मनोरंजन करके लोगों की आशाओं को अपने ऊपर केन्द्रित करा लिया है।"

पृ० १५ प्र० वा० २—सोऽयं तस्य जात। सीता द्वारा बड़े प्रेम से पालित हाथी के बच्चे के विषय में राम ने कहा, यत् कल्याणं आदि 'वह युवावस्था की अच्छाइयों का पात्र बन गया है।' अर्थात् युवावस्था की ताजगी और वीरता से युक्त है।

प्र० वा० ३-न प्रमाणीकृत न सन्तति॥ पृथ्वी के कहने का तात्पर्य यह है कि सीता जी को त्यागने में राम इन विचारों से जरा भी प्रेरित नहीं हुए थे, जिनमें एक के भी अनुसार श्रीराम जी के विरुद्ध निर्णय हो सकता था।

प्र० वा० ५—कृपण. मस्त त्रिमूर्धा—राम द्वारा मारे हुए राक्षसों के नाम हैं।

(सम्पत्ति तथा विपत्ति) ठीक एक मित्रकी भाँति जो उपयुक्त विषय या वस्तु बन सकता है। उसका पाना दुर्लभ या कठिन है।" अर्थात् सम्पत्ति तथा विपत्ति के दिनों में मित्र के अतिरिक्त दूसरा कोई भी साथ नहीं दे सकता। ये चान्ये सुहृदः समृद्धिसमये द्रव्याभिलाषाकुलाः ते सर्वत्र मिलन्ति इसकी तुलना सैम्सन एगानिस्ट की उक्ति से कीजिये "सम्पत्ति के दिनों में वे लोग झुण्ड के झुण्ड इकट्ठा हो जाते हैं, विपत्ति के दिनों में वे अपना मुँह छिपा लेते हैं, खोजने पर भी नहीं मिलते। "तत्त्वनिकषग्रावा तु तेषां विपत्—परन्तु विपत्ति उनके तत्त्व को पहिचानने की कसौटी है (जिस पर उनका वास्तविक चरित्र परखा जा सकता है)।

अ० वा० ६—हिंसाशून्यम्—क्षतिरहित, किसी को कष्ट पहुँचाए बिना प्राप्त। गोल्ड-स्मिथ की उक्ति से तुलना करो 'And from the mountain's grassy side, a *guiltless* feast I bring.' "अशनम्" का अन्वय "व्यालानां समाप्ति प्रयान्ति" के साथ होगा—"नष्ट हो जाते हैं, क्षीण हो जाते हैं", "जीविका उपार्जन करने के प्रयत्न में बिल्कुल क्षीण हो जाते हैं"।

पृ० १५-अ० वा० १०—महिमानं न गुणानामियत्तया ॥ भगवान् विष्णु के प्रति सम्बोधित है "हमारे शब्द आप की महिमा का वर्णन करके बन्द हो जाते है—यह या तो हमारी क्षीणता (थकावट) के कारण हो जाता है, अथवा वर्णन करने की असमर्थता के कारण, न कि इस कारण कि आप के गुणों का अन्त हो चुका।"

तृतीय पाठ

पृ० २२, अ० २—विन्दूत्क्षेपान्—चक्कर करते हुए पहिये के द्वारा 'ऊपर की तरफ फेंकी हुई जलकी बूँदें।'

अ० ५-क इदानीं सहते—प्रियंवदा के कहने का तात्पर्य यह है-दुष्यन्त के अतिरिक्त उस स्त्री का जीवन कौन बचा सकता है जिसने गाढे प्रेम के लक्षण प्रदर्शित किये हैं।

पृ० २३, अ० ६—प्रावृषा सभृतश्री.—जिसकी शोभा वर्षा ऋतु के कारण बढ जाती है।

श्र० १०—कृतकार्य—वनम् का विधेय है। इसका अर्थ हुआ "जिसका मनोरथ सिद्ध हो चुका है।" "यद्" कर्म है "अध्यास्ते" का।

श्र० ११—अधिष्ठाय—नेता अथवा सचालक होकर, पथ-प्रदर्शक होकर।

श्र० १४—"अमी" का सम्बन्ध है "वक्षयः क्लृप्तधिष्ण्या." से। "क्लृप्तधिष्ण्याः" का अर्थ है "जिसके स्थान नियत कर दिये गए हैं"।

श्र० १५—मण्डप की लम्बान चौड़ान दो। शतमध्यर्द्ध—एक सौ पचास।

श्र० १६—रघुप्रतिनिधि—रघु के प्रतिनिधि अर्थात् अज। कामदेव के समान बाल्यावस्था के अतिरिक्त किसी भी अवस्था को धारण कर।

श्र० १७—सम्प्रति आवसत्—हाल ही में रह चुका है।

श्र० १८-क्रमेण तिष्ठत्। वह उसके बाद सोता था और प्रातःकाल उसके जागने पर जागता था।

श्र० वा० /—सकृत्कृतप्रणयोऽयजन। "अय जन" का सम्बन्ध साधारणतया वक्ता से हुआ करता है। दुष्यन्त के कहने का तात्पर्य है "इस व्यक्ति ने (अर्थात् मैंने) एक वार उससे अर्थात् हंसपदिका से प्रेम किया, इसी कारण रानी वसुमती के सम्बन्ध में मुझे बहुत कड़े-कड़े व्यग्य सुनने पड़े हैं।

पृ० ?४, श्र० वा० ४—दोष विवक्षता त्वया—दोष को कहने की इच्छा करने वाले आप के द्वारा।

श्र० ६—क्रियान्तरान्तरायमन्तरेण—आपके अन्य कर्तव्यों में विघ्न पहुंचाए बिना अर्थात् ऐसे समय पर जब कि आप को दूसरा कुछ भी काम न करना हो।

पृ० ?४ कल्पितशस्त्रगर्भम्—जिसके अन्दरूनी भाग में शस्त्र तैयार करके रखे गए थे।

अ० वा० १३—यत्—चूँकि। इसका अर्थ यह है कि पागल कुत्ते के ज़हर के समान सीता-विषयक यह बदनामी हर जगह फैल गई है, यद्यपि बड़े-बड़े अद्भुत उपायों द्वारा यह हटाई जा चुकी थी।

अ० वा० १४—प्रियासहचर—मेरी प्रिया की साथी अर्थात् मेरी प्रिया के साथ।

अ० वा० १५—गोदावरीपरिसरस्य—जिसके समीप गोदावरी नदी है।

अ० वा० १६—दंष्ट्रानखलांगलप्रहरण—जिसके अस्त्र उसके दाँत, पंजे और दुम हैं। तृष्णां छिनत्ति—प्यास बुझाता है।

अ० वा० १७—अजातशत्रु .—'धर्म' जिसका कोई शत्रु ही नहीं था। लिखितैरिव—चित्र में खिंचे हुए से, मानो हम लोग चित्र थे जिसमें हिलने-डुलने तथा बदला लेने की शक्ति नहीं हुआ करती।

अ० वा० १८—जलानि या तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्यामनुराजधानीम्—सरयू नदी जिसके तट पर यज्ञ-स्तम्भ बने हुए हैं, अयोध्या राजधानी से बगल में अपना जल बहाती है।

पृ० २५, अभ्यास वा० १८—वाच्यदर्शनात्—निन्दा को देख कर। नृपति. सन्—राजा होता हुआ।

चतुर्थ पाठ

पृ० २६ अ० १—अचिरप्रवृत्तोपदेशम्—जिसमें उपदेश को प्रारम्भ हुए बहुत दिन नहीं बीते हैं, चूँकि हाल ही में वह अपने स्वामी के हाथों में सौंपी गई थी। कीदृशी मालविका—मालविका का क्या हाल है? उसने कितनी निपुणता प्राप्त कर ली है?

अ० २—सुख प्रष्टुम्—यह पूछने के लिए कि उसका क्या हाल है।

पृ० २६ अ० ४—पृथूपदिष्टाम्—महाराज पृथु द्वारा यह बताई हुई कि यदि उचित ढंग से दुहा जाय तो अनेक बहुमूल्य वस्तुओं को देने में क्षम्य।

अ० ५—सकल्पितार्थे·· वभाषे। इन्द्र द्वारा उद्दिष्ट कार्य के सम्बन्ध में जो अपनी शक्ति दिखा चुका था, जो उद्दिष्ट कार्य को करने की क्षमता सिद्ध कर चुका था।

अ० ६—सोऽहम्—इसलिए मैं।

अ० ७—किमत्र ... दुग्धा। जब कौत्स ने देखा कि रघु ने कुबेर से आकाश से सम्पत्ति (निधि) की वर्षा करवाई है, तब उन्होंने यह कहा था। वृत्तेस्थितस्य—(राजाओं के) कर्तव्य में लगे हुए के। मनीषितम्—आकाश भी ने आपके अभिलषित मनोरथ को प्रदान किया है।

अ० ६—ज्येष्ठा—हिमवान् की बड़ी कन्या। त्रिपथगा—तीन मार्गों से अर्थात् वाली-आकाश, पृथ्वी और पाताल से होकर बहने वाली।

पृ० ३०, अ० वा० १—राज्याश्रममुनिम्—वह राजा जो राज्यरूपी आश्रम में मुनि के तुल्य था।

अ० वा० ३—काकपक्षधरम्—जिसके घुघराले बाल थे अर्थात् जो अभी बिल्कुल बालक था, षष्ठी तत्पुरुष समास। तेजसाम् हि न वय. समीक्ष्यते-जो तेजयुक्त होते हैं, उनके विषय में उम्र नहीं देखी जाती। भर्तृहरि जी के "न खलु वयस्तेजसो हेतु." से तुलना कीजिए।

अ० वा० ४—कृपयाविष्टम्—कृपा की भावना से भरे हुए को।

अ० वा० ५—भर्तुस्तथा... प्रसन्नाम्। यहाँ पर शरद् ऋतु की उपमा एक चतुर दूत से की गई है जो अपने मित्र (गंगा जी) को स्वामी (अर्थात् समुद्र) के पास पूर्णतया प्रसन्न चित्तवृत्ति की दशा में (अत्यन्त शुद्ध जल वाली—गंगा-पक्ष में) बड़ी कठिनाइयों को पार करके उन गंगा जी को ठीक रास्ते पर लाया है (गंगा पक्ष में—नदी को उसके सामान्य मार्ग पर लाकर), जो दुबला पड़ गया है (जो गंगा जी मार्ग में संकीर्ण हो गई है), जो स्वामी से क्रुद्ध हो गया है क्योंकि स्वामी ने बहुत सी पत्नियाँ रख ली हैं (गंगा पक्ष में—जिसका जल वर्षा-ऋतु में गँदला हो जाता है चूंकि समुद्र भी नदी रूपी बहुत सी पत्नियाँ रख लेता है)।

अ० वा० ६—मम वचनात्—मेरे कहने से। पूर्वाभाष्यम् आदि—जो लोग पास निवास किया करते हैं, उनसे बातचीत करने का यही (कुशल प्रश्न) एकमात्र ढंग है।

पृ० ३०, अ० वा० ७—स —रान। याचमान शिव सुरान—देवताओं से आशीर्वाद मांगता हुआ। देवताओं से शिवा जी के कल्याण की प्रार्थना करता हुआ। यथास्थित सर्वम्—सभी बातें वैसी की वैसी ही हैं। भिक्षमाणो दक्ष [illegible] हुआ।

प्राणान् दुहन्निवात्मानम्—मानों अपने शरीर में से प्राणों को निचोड़ते हुए उसने शोक को अपने मस्तिष्क में सीमित रक्खा अर्थात् वह जीवन से निराश हो गया, इसी से हृदय में दुःखी था।

"आ यत्र तापस्मान्"—अनुमान दिखाता है। "आ" का अर्थ हुआ करता है "हाँ, शायद ऐसा ही हो।"

पंचम पाठ

पृ० ३७, अ० १—अनायत् अर्थात् हारीत, जब उसने सुग्गा को उस निस्सहाय अवस्था में देखा। मुक्तप्रयत्नम्—जिसने प्रयत्न करना (छटपटाना) बन्द कर दिया था।

पृ० ३८, अ० ३—येन असत्यसन्धे जने सखी पद कारिता—जिसने मेरी सखी को उस असत्य-प्रतिज्ञ पुरुष में विश्वास करवाया।

अ० ४—आसन ,प्रतिग्राहित.—तुनसे (गुरुजी का) आसन दाबाया गया।

अ० ५—धात्रीकर्म वस्तुत परिगृह्य—दाई के कर्तव्य से लेकर अन्य सभी कार्यों का भार लेकर, यानी जो कार्य दाइयाँ करती हैं, वह सब काम करता हुआ। कदाचित् यह वाक्य यों पढ़ा जा सकता है। 'धात्रीकर्म वस्तुत परिगृह्य'—दाई के कर्तव्यों का भार वस्तुत. लेकर। वृत्तचूडौ—जिनका चूडाकर्म (मुण्डन संस्कार) हो चुका था। त्रयीवर्जम्—तीनों वेदों को छोड़कर।

अ० ७—आर्यो भवति—शुकनास से वैशम्पायन को जाकर लाने की आज्ञा अपने पिता से प्राप्त करने की प्रार्थना करते हुए चन्द्रापीड ने कहा।

अ० ८—तौ दंपती बहु विलप्य शिशो प्रहर्त्रा शल्य निखातमुद्धार-यतामुरस्त —विलाप करके वे दोनों (स्त्री पुरुष) अपने शिशु के वध करने वाले से छाती में गड़े हुए बाण को निकलवाने लगे।

अ० ११—साग च वेदमध्याप्य—अंगों-समेत वेद पढ़ाकर। अंग छ है—शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, कल्प, और ज्योतिष। उत्क्रान्तशैशवौ—जो अपनी शैशवावस्था पार कर चुके थे। कविप्रथमपद्धतिम्—कवियों का पहिला मार्ग, जिसने पहिले पहल कवियों को रास्ता दिखाया। वह श्री वाल्मीकिजी "आद्य. कवि." हैं, अत. उनके लिए उक्त विशेषण दिया गया है।

पृ० २८, अ० वा० १—भावेन—श्रीमान् जी के द्वारा, इसका संकेत सूत्रधार की तरफ है।

पृ० २९, अ० वा० ४—रजनीतिमिरावगुण्ठिते पुरमार्गे घनशब्द-विक्लवा इत्यादि—शिव द्वारा कामदेव के भस्म कर दिए जाने पर रति द्वारा कहा गया है। "रात्रि के अन्धकार में आच्छादित"।

अ० वा० ५—तां कुलप्रतिष्ठां कुलदेवताभ्यः प्रणमय्य—जो अपने कुल की शक्ति अथवा वैभव थी, ऐसी उस कन्या से कुल देवताओं को प्रणाम करवा कर। कारयितव्यदक्षा—जो कुछ (दूसरों से) कराया जाना चाहिए, उसको भली-भाँति जानती हुई। सतीनां पादग्रहणमकारयत्—उससे सती स्त्रियों के चरण पकड़वाए।

अ० वा० ६—एकोन्मीलनपेशलः—तुरन्त स्मरण करा देने वाले।

अ० वा० ७—उत्सवसंकेतान्—एक जाति विशेष के लोगों का नाम है। जयोदाहरणम्—अपनी विजय की घोषणा अर्थात् पद्य जो उसकी सेना की सफलता की घोषणा करें।

अ० वा० ८—अथ—दशरथ की मृत्यु के बाद। अनाथा—राजा के मर जाने के कारण 'स्वामी से हीन'।

अ० वा० ९—'त्वं रक्षसा भीरु यतोऽपनीता इत्यादि'—राम ने सीता से कहा है। रक्षसा—रावण द्वारा।

अ० वा० १०—गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः इत्यादि—द्रौपदी ने युधिष्ठिर से कहा है—अपने उपयुक्त सभी साधनों को रखने वाला, तथा अपने कुल पर गर्व करने वाला, तुम्हारे अतिरिक्त कौन सा राजा गुणों के कारण पति में अनुरक्त रहने वाली तथा उच्चकुल में पैदा हुई पत्नी तुल्य सम्पत्ति को दूसरों से हरण करवा लेगा। क इव—सम्भवतः कौन सा!

अ० वा० ११—य पयो दोग्धि पाषाणं स रामात् भूतिमाप्नुयात् इत्यादि—ये चार पंक्तियाँ तथा आगे की दो पंक्तियाँ रावण ने सीता जी से कही हैं। रावण सीता जी का चित्त अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न कर रहा था। इन पंक्तियों का अर्थ है "जो पुरुष पत्थर में से दूध निकालता है वही रामचन्द्र जी से समृद्धि (ऐश्वर्य) प्राप्त कर सकता है।" कहने का तात्पर्य यह है कि "यह

बिल्कुल असम्भव है"। बोधयन्त हिताहितम्—जो तुम्हें हितकर तथा अहितकर बातें समझा रहा है। कि विलापयसे—मुझसे क्यों ज्यादा बातचीत करवाते हो?

अ० वा० ११—आज्ञां कारय रक्षोभिर्मां प्रियाण्युपहारय क. शक्रेण कृत नेच्छेदधिमूर्धानमञ्जलिम्—मुझसे और राक्षसों से प्रिय लगने वाले कार्य कराइये। सिर पर हाथ लगाकर और अञ्जलि जोड़कर इन्द्र द्वारा किए हुए प्रणाम को कौन न चाहेगा, अर्थात् मुझसे हराया हुआ इन्द्र जिस प्रकार मुझे प्रणाम् करता है, उसी प्रकार मेरी प्यारी को (तुझको) भी प्रणाम करेगा। मूर्धानमधिगत.अथवा अधिगतो मूर्धा येन तमधिमूर्धानम्।

पृ० ३६; अ० वा० १२—एनम् अर्थात् राम। रक्षोगणं क्षिप्नुम्—राक्षसों के समूह को नष्ट करने के लिए। गाधिसुत —विश्वामित्र।

छठवॉ पाठ

पृ० ४५, अ० १—अधरोत्तरव्यक्तिर्भविष्यति—यह स्पष्ट हो जायगा कि कौन छोटा है, कौन बड़ा है।

अ० २—अहम् अयम्—गणदास, जिसने हरदत्त के विषय में राजा से शिकायत की।

अ० ३—शापितासि मम लवंगिकावलोकितयोर्जीवितेन यदि वाचा न कथयसि—यदि तुम इसे वाणी द्वारा नहीं कहोगे तो मैं तुम्हें अपने प्राणों की शपथ दिलाता हूँ। जब मालती माधव के प्रश्नों का उत्तर केवल सिर हिलाकर देती थी, तब माधव ने यह बात कही थी।

अ० ८—जरद्द्रविड धार्मिक:—बुड्ढा द्रविड़ सन्यासी। "इच्छया" का अन्वय "निसृष्टे" के साथ होगा। इसका अर्थ है "मतोपजनक" "स्वेच्छानुसार"। "अभिमतम्" का अन्वय "मनोरथम्" के साथ होगा। इसका अर्थ है "चाहा हुआ, वाञ्छित"।

पृ० ४६; अ० १०—किं बहुना—बहुत कहने से क्या लाभ? अर्थात् सक्षेपत।

अ० ११—स्वहृदयेनापि विदितवृत्तान्तेनामुना जिह्रेमि—चूँकि मेरा हृदय सारा वृत्तान्त जान गया है, इसलिए मैं उससे अपने हृदय से लज्जित हूँ।

पृ० ४६, अ० १४—दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः—गुणों मे, वनलताओं ने बगीचे की लताओं को बहुत ज्यादा मात कर दिया है। अर्थात् अनलकृत प्रकृति सबसे अधिक अलकृत कर देती है।

अ० १५—शरीरसादादसमग्रभूषणा—जब सुदक्षिणा गर्भवती थी, उस समय उनकी जो दशा थी, उसका वर्णन है। सुदक्षिणा अपने सारे आभूषणो को नहीं पहिने हुए थी, बल्कि थोड़े से अत्यन्त आवश्यक आभूषणो को पहिने हुए थी—जैसे, मङ्गलसूत्र, ककरण इत्यादि। मुखेन—मुखेन उपलक्षिता। तनुप्रकाशेन—धुँधले प्रकाश वाले (चन्द्रमा) से। विचेयतारका—ऐसी रात्रि जिसमे सितारो को खोजना पड़ता है, क्योंकि वे प्रभातकाल में बहुत कम रहते है।

अ० १६—मर्त्येषु असमूढ—तमाम मनुष्यों मे जो मूढ़ नहीं है, वही मुझे जानता है आदि आदि।

अ० वा० १—अकथ्यमाने—अर्थात् पुण्डरीकवृत्तान्ते।

अवभूतप्रणिपाता पश्चात् सतप्यमानमानसोऽपि इत्यादि—यद्यपि मानवती स्त्रियाँ पहिले तो प्रणाम को ठुकरा देती हैं, तथापि बाद में वे पश्चात्ताप मे दुःखित होती है और अपने प्रिय को मनाने से हृदय मे भीतर ही भीतर लज्जित होती हैं अर्थात् वे खुलकर मनाना पसन्द नहीं करतीं।

अ० वा० १—कष्टजन कुलधनैरनुरजनीय—जब लक्ष्मणजी ने कहा "यावदार्याया हुताशने विशुद्धि अर्थात् अग्निद्वारा सीता जी की विशुद्धि तक तब श्रीरामचन्द्र जी कहते हैं "हा, कितने दुःख की बात है कि जिनका विमल यश ही धन है, उन्हें प्रजा को प्रसन्न रखना पड़ता है। इसलिए वह कार्य (विशुद्धि) केवल प्रजा को प्रसन्न रखने के लिए किया गया था। इसलिए जो कुछ बुरी बाते हम ने तुम्हें कही है वे वस्तुतः तुम्हें उचित नहीं हैं। न.—अस्माभि।

पृ० ४७ अ० वा० ४—अविनयबहुलतया—क्योंकि चढ़ती हुई जवानी नाना अविनयपूर्ण बातों से भरी रहती है। तमपि—पुण्डरीकम्।

अ० वा० ६—स्पृशति बहुमानोन्नतिपदम्—पदवी को प्राप्त कर लेता है। इत—गति।

अ० वा० ८—विनयप्रधानै—विनय प्रधान [illegible], जिनमें विनय सबसे प्रधान है।

पृ० ४७, अ० वा० १०—"नन्दमोर्यनृपयो." का अन्वय "अस्तोदयो" के साथ होगा। अविभिन्नकालम्—साथ ही साथ। इन पंक्तियो से सूर्य की अपेक्षा चाणक्य की उत्कृष्टता सूचित होती है। "जो अपने प्रकाश के कारण सहस्र किरण वाले सूर्य भगवान् के प्रकाश को भी मात कर देता है—वह प्रकाश जो सर्व-व्यापी नहीं है और पर्याय से (अन्तर से) शीत और उष्ण पैदा करता है चाणक्य की तरह एक ही समय मे नहीं—चाणक्य एक साथ ही शीत तथा उष्ण पैदा कर देता है ।

अ० वा० १३—"शत्रुओ के विरुद्ध उठाया गया हुआ अथवा खींचा गया हुआ।" न तेन शासनम—उसकी आज्ञाएँ राजाओ द्वारा बड़े सम्मान के साथ पाली जाती हैं। "गुण" का अर्थ "डोरा" भी है।

अ० वा० १५—स वाल आसीद् वपुषा चतुर्भुज .—नारद मुनि विष्णु से शिशुपाल के विषय मे कह रहे हैं। वाल .—लड़का होते हुए (भी)। मुखेन पूर्णेन्दुनिभस्त्रिलोचन.—मुख में पूर्ण चन्द्रमा के समान वह त्रिनेत्र भगवान् शकर के तुल्य था। अब, युवा होने के कारण, उसने राजाओ को कर देने के लिए विवश कर दिया है, और वस्तुत· सर्वथा सूर्य के समान है (जो अपनी किरणो से पर्वतो को व्याप्त कर लेता है)।

सातवाँ पाठ

पृ० ५५, अ० १—"सर्वज्ञस्य" मे तृतीया का अर्थ है। केवल एक आदमी के द्वारा फैसला कराने का उत्तरदायित्व, चाहे वह आदमी कितना भी सर्वज्ञ क्यो न हो, दोषपूर्ण हो सकता है।

अ० ४—असौ = बालकाय

अ० ५—साधो.—नेक आदमी को दिया हुआ

अ० ६—राम द्वारा अपनी पुत्री सीता जी के त्यागे जाने पर जब पृथ्वी राम से क्रुद्ध थी, तब गगा जी ने पृथ्वी से कहा। शरीरमसि ससारस्य—'आप तो इस भौतिक जीवन की स्वय शरीर (आधार) हैं।'

अ० ७—मिथ्या निर्भरा —झूठी-मूठी महिमा के घमंड से भरे हुए। आत्मप्रज्ञा इत्यादि—वे मन्त्री की राय से घृणा करते हैं क्योकि वे सोचते हैं कि मन्त्री की राय को मानने मे मेरी बुद्धिमत्ता का अपमान है।

पृ० ५५ श्लो० ६—महाश्वेताप्रणामपुरःसरम्—पहिले महाश्वेता को प्रणाम करके।

अवाङ्मनसगोचरम्—जो वाणी और मन की पहुँच के बाहर है, अर्थात् जिसका न तो वर्णन हो सकता है, न चिंतन हो सकता है।

श्लो० ११—रविमावसते····· नमस्ते ॥ चन्द्रमा को सम्बोधन है। जब चन्द्रमा सूर्य-मण्डप में प्रवेश करता (आवसति) है तब अमावस्या (नवीन चन्द्रमा का दिन) होती है परन्तु उस दिन दर्शन का दिन न होने के कारण पवित्र आत्माओं द्वारा पवित्र कार्य (हवन पूजा आदि) सम्पादित नहीं होत। सुधया आदि—रघुवंश के पाँचवें सर्ग के १६ वें श्लोक 'पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षय श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः' की तुलना करो। चन्द्रमा के दिन प्रति दिन क्षीण होने का कारण उसके एक-एक अंश का देवताओं और पितरों द्वारा पान किया जाना बताया जाता है।

श्लो० १२—उमा विधि ॥ जब सातों ऋषियों ने उमा का विवाह शिव से करने के लिए हिमालय से कहा तो उस समय उन ऋषियों ने हिमालय से ऐसा कहा। त्वत्कुल इत्यादि—'यह ढंग (परिस्थितियों का समुदाय) तुम्हारे कुटुम्ब को उन्नत करने के लिए प्रचुर है।

पृ० ५६ श्लो० १३—तृणबिन्दो परिशङ्कित—तृणबिन्दु घोर तपस्या कर रहे थे, इसलिए उनसे डरा हुआ इन्द्र।

देवता और प्रधानत इन्द्र दूसरों की तपस्या से सर्वदा भयभीत रहते हैं। शाकुन्तल अंक १ में की इस पंक्ति से तुलना करो—'अस्त्येतदन्यसमाधि-भीरुत्वं देवानां।' हरिणी—एक अप्सरा का नाम।

श्र० वा० ४—दण्डवत्प्रणम्य—'भूमि पर मुँह के बल लेट कर', पड़े हुए दण्ड की भाँति।

पृ० ५६, श्र० वा० २—रामस्य दर्शन सुहृदाम्—राम का अपने मित्रों को देखना।

श्र० वा० ३—कुलपाशव.—कुल के कलंक, जो कुल की प्रतिष्ठा को दूषित करते हैं।

श्र० वा० ५—स—दिलीप.। यज्ञाय गा दुदोह—देवताओं को प्रसन्न रखने वाले यज्ञों का सम्पादन करने के लिए। अन्न उपजाने के लिए इन्द्र वृष्टि करते थे (अक्षरार्थ—आकाश को दुहते थे), इस प्रकार वे दोनों परस्पर अदल-बदल में सेवाएँ करते थे और ससार का पोषण करते थे। गा दुदोह—पृथ्वी को दुहते थे (कर वसूल करते थे) ।

श्र० वा० ६—"केवलात्मने" से ब्रह्मा की तरफ सकेत है जो एक तथा अविभाज्य है। "गुणत्रयम्"—सत्व, रजस् और तमस्। बाद में सृष्टि के समय ब्रह्म विभक्त हो गया जिसके ये तीनों गुण क्रमश. रचना, पालन और नाश के समय प्रतीत होते हैं।

श्र० वा० ६—दुःखात् सुखमुपनतम्—विपत्ति भोग लेने के बाद जो प्रसन्नता होती है।

श्र० वा० ११—अरुणाय कल्पते—अरुण का स्वागत करने के योग्य है। "अरुण" सूर्यभगवान् के अग्रगामी दूत हैं जो रात्रि की समाप्ति सूचित करते हैं।

श्र० वा० १४—अनुहु कुरुते—बदले में गरजता है, दूसरे का गरजना सुनकर स्वय गरजता है।

श्र० वा० १५—तथेति—'हाँ' कहते हुए। सन्तानकामाय—सन्तान का इच्छुक।

"तस्याः" का अन्वय "प्रसादम्" के साथ होगा।

श्र० वा० १८—पुराणशोभाम् अधिरोपितायाम्—अपनी पहिले की सी शोभा को प्राप्त। न स्पृहयाम्बभूव—जरा भी स्पर्धा नहीं करते थे, क्योंकि वह तो पहिले ही से अपनी राजधानी में उसका उपभोग कर रहे थे।

अ० वा० १६—सानुनीति.—सानुनयः, मेल-मिलाप वाला रुख धारण करके

दिदृक्षुम्—"त्वं शुभा न वा इति द्रष्टुमिच्छन्तम्। राक्षसों की यही विशेषता है कि वे दूसरों की स्त्रियों के विषय में पूछ ताछ करें। नमस्कुर्या —यदि त्वं नमस्कुर्या।

आठवाँ पाठ

पृ० ६५, अ० १—सत्क्रियाविशेषात्—विशेष प्रकार के सत्कार (स्वागत) के कारण। राजा के कहने का तात्पर्य यह है कि मैंने ऐसा कोई कार्य नहीं किया है जिसके कारण इन्द्र के हाथों मैं ऐसा ऊँचा स्वागत पाऊँ।

पृ० ६५, अ० २—सूर्योपस्थानात् प्रतिनिवृत्तम्—सूर्य का उपस्थान करके लौटे हुए को, यानी सूर्य की पूजा करके लौटे हुए को।

अ० ७ उज्जिहानजीविताम् वराकीम्—जिसका प्राण निकल रहा था, ऐसी उस स्त्री को छोड़कर।

अ० ८—अलम् उत्तरोत्तरम्—और ज्यादा बातें न करो।

अ० ९—तासां चतुर्दशकुलानि—अप्सरसां चतुर्दश कुलानि।

अ० १०—मा तावदुद्धरं शुचो दयिताप्रवृत्त्या इत्यादि—पुरूरवा ने हंस से कहा है। तावत्—पहिले अर्थात् अन्य कोई भी कार्य करने के पूर्व ही। स्वार्थात् सतां गुरुतरा प्रणयिक्रियैव—सज्जन पुरुषों के विचार में याचक का कार्य अपने स्वार्थ की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण होता है।

पृ० ६६, अ० १२—प्रजा संरक्षति नृप इत्यादि। तदभावे—उसके (अर्थात् राजा के) अभाव में सत् वस्तु अर्थात् विद्यमान वस्तु भी असत् (अविद्यमान) हो जाती है। तात्पर्य यह कि जान और माल की कोई सुरक्षा नहीं रह जाती।

वैतसीवृत्तिम् आश्रित्य—वेतों की नीति का सहारा लेकर, वेता की सी नीति धारण कर, अर्थात् अपने से प्रबलतर शत्रु से हार मान कर।

अ० १६—मध्यदेश की स्थित का वर्णन करो।

अ० वा० १—जन्मकर्मतो मलिनतरजनम्—जहाँ के लोग अपने जन्म तथा कर्मों क अपेक्षा बहुत ज्यादा मैले थे। निर्घृणतर आदि—जिनके सारे कृत्य उनके हृदयों की अपेक्षा कहीं अधिक घृणित थे।

अ० वा० २—कुसुमघटित—वह प्रमोदोद्यान को कामदेव का धनुष समझती है जो पुष्पनिर्मित बाणों के कारण सुन्दर लगता है, और बगीचा भी सुन्दर है क्योंकि उसमें भौंरे फूलों में चिपके हुए हे। शिलीमुख—बाण और भौंरा भी। पीतरक्त.—पीताश्च ते रक्ताश्च, चम्पक पीला होता हे और अशोक लाल होता है। राक्षस-पक्ष में—"पीतरक्ता" का अर्थ होगा पीत रक्त थे. ते।

अ० वा० ३—आत्मसंपत्—अपनी उत्कृष्टता। अभिजनात् प्रभृति—उच्चकुल से लेकर।

अ० वा० ४—लब्धप्रसरा—स्वच्छन्द व्यवहार (कार्य) के लिए अवसर पाकर। दुःखोपचर्या—बड़ी मुश्किल से मनाई जा सकने वाली।

अ० वा० ६—विनयाधानम्—नैतिक शिक्षा प्रदान करना, शिष्टता सिखलाना।

अ० वा० ७—नव —अज.। नवेतर.—रघु। स्थिर संकल्प वा महाराज अज ने तब तक अपने कार्य (समाधि लगाने का कार्य) नहीं बन्द किए जब तक उन्होंने परमात्माका दर्शन नहीं कर लिया।

अ० वा० ८—स्वनुष्ठित— अच्छी तरह से संपादित।

अ० वा० १२—पूर्व · मम ॥ जब श्रीसीता जी ने श्रीहनुमान् जी को अशोकवाटिका में अपने समीप में देखा तो यह कहा था। पूर्वस्मात् इत्यादि—यह तो पहिले (अर्थात् रावण) से भिन्न मालूम पड़ता हैं क्योंकि यह बड़ी श्रद्धा-पूर्वक श्री राम जी का गुणानुवाद गा रहा है। अथवा, क्या बिना किसी प्रकारकी क्रूरता किए मुझमें विश्वास पैदा करने के लिए यह यहाँ आया है? प्रभातात् प्राक्—दृष्टानि स्वप्नदर्शनादीनि शुभनिमित्तानि।

अ० वा० ११—स—मारुति। ताम्—सीताम्। प्रीते पराजयमानाम्—जिसे रावण की बातें असह्य लगती थीं।

अ० वा० १४—एकाक्षरम्—एक अक्षर, ओम्। सावित्र्यास्तु परं नास्ति—जगत्प्रसिद्ध गायत्रीमन्त्र अर्थात् सावित्री से बढ़ कर कोई चीज नहीं। (जिसको कि शान्तिपूर्वक जपना है)

नवाँ पाठ

वर्तमानकवि—जीता हुआ अथवा समकालीन कवि।

त्वयि बद्धभावा—तुम्हारे ऊपर उसका प्रेम लगा हुआ है। इतो गतम्—त्वयि आहितम्।

संसर्गमुक्ति खलेषु-खलसंसर्गमुक्ति—खलों की संगत से घृणा करता हुआ।

पृ० ७४ अ० १२—सन्तानार्थाय विधये—सन्तानार्थक किसी विधि का सम्पादन करने के लिए जब इन्द्र कामदेव को एक बड़ा कार्य सौंप रहा था, तब उसने यह कहा था

अ० वा० १४—आत्मसमम्—मेरे सदृश तुम। भूधरतामवेक्ष्य—पृथ्वी को धारण करने की योग्यता देखकर।

अ० वा० १६—कृत्स्न गोत्रमंगलम्—सीता ने दोनों कुलों का मंगल-कृत्य किया था।

पृ० ७५. अ० वा० १८—ईशम्—उसके स्वामी अर्थात् श्रीरामचन्द्र। नितान्तरूक्षाभिनिवेशम्—जो सीता जी के विरुद्ध बड़ी निर्दय धारणा रखते थे (अर्थात् त्याग का विचार रखते थे)।

अ० वा० १९—परकर्मापहः—अपने शत्रुओं के कार्यों को नष्ट करता हुआ [illegible]।

[illegible] आत्मनो रन्ध्रं रन्ध्रेषु प्रहरन् रिपून्—शत्रुओं की कमजोरी [illegible] किया।

[illegible] —अन्तर्गतं वसन्तानले [illegible]—[illegible]

[illegible]

अ० वा० २१—साक्षात् प्रियामुपगतामपहाय पूर्वम्—पहले जब शकुन्तला स्वयं दुष्यन्त के पास आई थी तो उसने स्वयं ही उसको त्याग दिया था, तथापि शकुन्तला के चित्र को देखकर प्रसन्न हुए दुष्यन्त ने विदूषक से यह कहा।

अ० वा० २३—चिरेणानुगुण प्रोक्ता प्रतिपत्तिपराङ्मुखी—जब सीताजी ने तिरस्कारपूर्वक रावण की प्रार्थनाओं को ठुकरा दिया तो उसने यह कहा था। प्रतिपत्तिपराङ्मुखी—मुझे 'अपना पति' मानने के लिये (तू) तैयार नहीं।

अ० वा० २५—स.—जनक। आप्तवचनात्—विश्वसनीय मुनि के कहने से। मुनि की इस बात को सुनकर, जनकजी को विश्वास हो गया कि राघव में पुरुषार्थ है, यद्यपि वे (राघव) बालक ही दिखाई पड़ते थे। त्रिदशगोपमात्रके—बीरबहूटा (इन्द्रगोप) नामक कीड़े के बराबर।

दशवाँ पाठ

पृ० ८७—अ० ५ विश्रम्भातिशय-प्रसंगसाक्षिण (उत्तर० ३)—अत्यन्त घनिष्ठता (विश्रम्भ) वाली घटनाओं के साक्षी (गवाह) (हम दोनो के बीच)।

अ० ६—एवमवस्थिते (काद० १५८)—इन परिस्थितियों में।

तत्र प्रभवति देवी—इसे करने का श्रीमती जी को (आपको) पूर्ण अधिकार है।

अ० ८—अयं जनः (माल० ५)—मालती। न खलु स उपरत—मरा हुआ नहीं है। निश्चय ही वह जीव जिसे उसके प्यारे लोग स्मरण करे, मरा हुआ नहीं है।

अ० १३—समरशिरसि चंचत्पंचचूडश्चमूनाम् (उत्त० ५)—युद्ध के अग्रभाग में अर्थात् जिस स्थल पर खूब घनघोर युद्ध हो रहा हो, उस स्थल पर।

पृ० ८७—अ० वा १ सर्वदेवमयस्य—(काद० ६)। जो नारायण सर्वदेवमय हैं उनके समान वह था, क्योंकि उसके अन्दर बहुत से देवता निवास करते थे। मन मे "धर्म" देव रहते थे अर्थात् वह धर्म के समान न्यायी अथवा स्पष्ट वक्ता था।

अ० वा० २—नियतमिह सर्वात्मना कृतावस्थितिना इत्यादि (काद० ४४ —निश्चय ही धर्मदेव यहाँ पूर्णरूप से निवास कर रहे हैं, कलियुग की लीलाओं को ठुकरा देते हैं, और सतयुग की सुधि नहीं करते हैं—वह सतयुग जो धर्म कर्म करने के लिए बहुत ही उपयुक्त है। इस आश्रम में रहने वालों का जीवन बहुत ही अच्छा है।

पृ०८८—अ० वा० ३—तव प्रसादस्य आदि (शाकु० ७)—कारण-कार्य का जो सामान्य नियम है उसके विरुद्ध, आपके विषय में, आप की कृपा के पहिले ही सम्पत्तियों का आगमन हो गया।

अ० वा० १६—शीर्षच्छेद्य (उत्त० १)—उन्हें उसका सिर काट लेना चाहिए। ते=त्वया।

अ० वा० ५—अकामयेताम् (रघु० १४।४)—दोनों माताएँ कौशल्या और सुमित्रा 'वीरसू' शब्द की इच्छा नहीं करती थीं—'वीरसू'—"वीर पुत्र पैदा करने वाली" नहीं कहलाना चाहती थीं।

अ० वा० ६—वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा (रघु० १४।६०)—जब श्री रामचन्द्र जी ने निर्दयतापूर्वक सीताजी को त्याग दिया, तब सीताजी ने लक्ष्मण जी से यह कहा था। "मद्वचनात्"—मेरी ओर से, मेरे कहने से।

अ० वा०७—देव्या शून्यस्य जगतो द्वादश परिवत्सर. (उत्तर० १)—जानकी से शून्य हुए (खाली हुए) संसार को बारह वर्ष हो गए। यानी जानकी जी को जङ्गल गए बारह वर्ष हो गए।

समुद्र के उत्तर में रहने वाले श्री राम जी, खारे समुद्र के दक्षिण में बसी हुई इस नगरी को कैसे जान सकते थे ?"

ग्यारहवाँ पाठ

पृ० ६४ अ० १—अलमलमुपालम्भेन (मालवि० १)—जब दोनों नर्तकों के बीच विवाद उठ खड़ा हुआ तो परिव्राजिका से कहा गया कि इस मामले का निर्णय करो। तब परिव्राजिका ने कहा—"जब शहर बिल्कुल पास ही में बसा हुआ हो, तब क्या रत्न की परीक्षा गाँव में करवाई जाती है ? तात्पर्य यह कि जो काम तुम लोग मुझसे करवाना चाहते हो उसको करने का अधिकार केवल महाराज को है, अथवा उसे करने के लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति महाराज है, न कि मैं।

अ० ३—मा तावदनात्मज्ञे (शा० ६)—अरे ऐसा न करो, ऐसा न करो।

अ० ४—किं दीपकपौनरुक्त्येन (विक्र० ३)—इतने अत्यधिक दीपकों का क्या प्रयोजन ? इनकी संख्या आवश्यकता से कहीं अधिक है।

अ० ५—किं वृत्तम् (उत्त० २)—ऐ पूज्य आत्रेयी, उसका क्या हाल हुआ।

पृ० ६५, अ० ६—रघुकदम्बकेषु (उत्त० २)—रघुओं में सर्वश्रेष्ठ

अ० ७ स्मर्तव्यशेषं नयामि (वेणी० ४)—उसको केवल स्मरण किए जाने लायक बनाए देता हूँ अर्थात् मारे डालता हूँ।

अ० ६—बीजम् (उत्त० ५)—श्री सीता जी स्वयं ही गर्भवती होने पर त्याग दी गई थी।

पृ०६५, अ० १०—(रघु० १५। ८०)। सा—पृथ्वी। मा मेति व्याहरत्येव—ज्यों ही वह कह रहे थे "अरे उसे मत ले जाओ, मत ले जाओ।"

अ० वा० ४—अनपायिनि संश्रयद्रुमे गजभग्ने पतनाय वल्लरी (कुमा० ४। ३१)—वृक्ष के ऊपर आश्रित लता अवश्य गिर जाती है।

अ० वा० ६—दर्शितभयेऽपि धातरि (पंच १। ६)—भय को देख कर दृढ चित्त वाले व्यक्ति (अपने कार्य को) बन्द नहीं कर देते।

अ० वा० ८—सन्तानवाहीनि (उत्त० ४)—लगातार चलते रहने वाले विराम रहित कार्य करने वाले।

(.) स्रोत सहस्रैरिव सम्भवन्ते—मानो हजारों धाराओं में होकर बहते हैं अर्थात् हजारों नए-नए मार्गों से प्रकट होते हैं।

अ० वा० ९—पचभि (हित० ४)—पाँच तत्त्व (क्षिति, जल, पावक, गगन समीरा)। पचत्व गते—मर जाने पर।

पृ० ६३ अ० वा० ११—(रघु० १६। ७८)। तस्मिन्—अस्त्रे। अपना वलय पुन प्राप्त करने के लिए कुश ने वासुकि के ऊपर जो बाण चलाया था।

(.) तस्मिन् ह्रद सहितमात्रएव क्षोभात् समाविद्धतरङ्गहस्तः—क्षोभ (उथल-पुथल) के कारण तरगरूपी हाथों को ऊपर उछालते हुए।

(..) रोधासि निघ्नन्—तटों को धक्का मारते हुए।

अ० वा० १३—त्वय्युत्कृष्टबलेऽभियोक्तरि (मुद्रा० ४)—राक्षस मलयकेतु से कहता है कि कार्य सम्पादन की प्रत्येक वस्तु तैयार है और परिस्थितियाँ भी उसके अनुकूल हैं। त्वद्वाञ्छान्तरितानि—आपकी इच्छाओं से रोक दी गई हैं अर्थात् आप केवल आगे धावा बोलने की इच्छा कीजिए, शेष सब चीज तैयार हैं। अनेक भाव-सम्पन्न-पद परिस्थितियों की अनुकूलता सूचित करते हैं। चलिताधिकारविमुखे—अपने पद से हटा दिए जाने के कारण नाराज। मार्गमात्रव्यपनव्यापारयोगोद्यमे—जिसका काम केवल यह है कि मार्ग बतला दे। "और" शब्द अनावश्यक है।

अ० ५—कार्यवशात (उत्त० १)—अपने काम के लिए। ताकि म उस समय की घटनाओं को जान जाऊँ और समझ जाऊँ।

पृ० १०४ अ० ६—जातनिर्विशेषा. (उत्त० ३)—'साक्षात् अपने लड़कों के समान' सीता जी ने कहा है।

अ० ७—आयुष्मन्नेष वाग्विषयीभूतः (उत्त० ५)—जो हमारे वार्तालाप का विषय था।

अ० ११—(का० २३७)। सन्दिशन्ति—प्रणय-सन्देश भेजते हैं। समुपसर्पति—अपने प्यारों के पास जाते है।

अ० १२—(रघु० ८। १६)। एक-अपर—अज और रघु। प्रभुशक्ति-सम्पदा—उसकी प्रभुशक्ति के ऐश्वर्य से। प्रभुशक्ति—कोष, दण्ड और बल से होती है। प्रणिधानयोग्यया—ध्यान के अभ्यास से। शरीरगोचरान्—शरीर में भरे हुए (व्याप्त)।

अ० १३—कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञाना (श्रीमद्० ७। २०)। श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं "विभिन्न इच्छाओं के कारण भोगों की लालसा से जिनकी विवेक-बुद्धि नष्ट हो गई है, वे अपने स्वभाव से प्रेरित होकर दूसरे देवताओं को विभिन्न नियमों द्वारा पूजते हैं।

अ० वा० २—लक्ष्म्योन्मादिता व्यसनशतशरव्यतामुपगता (काद० १०७)—जो लोग धन पा जाने के कारण फूल कर कुप्पा हो जाते हैं, उनकी दशा का वर्णन है। "व्यसनशत" इत्यादि—यद्यपि सैकड़ों विपत्तियों के लक्ष्य बन जाते हैं, तथापि वे यह नहीं समझते कि मारा अध पतन बाँबी के ऊपर उगी हुई घास के अग्रभाग पर स्थित जलबिन्दु के समान सन्निकट है।

अ० वा० ३—तस्य तरुषण्डस्य मध्ये मणिदर्पणम् इव (काद० १२३)—विमल जल के कारण त्रैलोक्य-लक्ष्मी का मुँह देखने के लिए दर्पण का काम करती थी।

पृ० १०५ अ० वा० ५—अर्थोष्मणा विरहित (अर्न० २)—धन की गर्मी से रहित।

अ० वा ११—कोऽप्येष एव पिशुनोग्रमनुष्यधर्म —(पच० ११) पिशुन का यह गुण है कि वह किसी का तो कान भर देता है और किसी को जड़-सहित नष्ट कर डालता है (चुगली खा कर)।

अ० वा० १२—रूप तदोजस्वि (रघु० ५। ३७)—अज के गुणों का वर्णन है। राजकुमार अज अपने कारण (पिता) से भिन्न नहीं थे, जैसे एक दिए से जलाया हुआ दूसरा दिया अपने कारण से भिन्न नहीं होता।

तेरहवाँ पाठ

पृ० १११ अ० ६—ते गतिं ज्ञारयन् (दशकु० २। ७)—तुम्हारी दशा को जानने की इच्छा करता हुआ।

अ० ७—वारितप्रसर (शा० १)—आगे बढ़ने से रोक दिया गया।

अ० ८—श्रुतमृषे (रघु० ११। २)—ऋषि से सीखा गया। यद्यपि राघव अपने पूर्व जन्म (वामनावतार) के कार्यों से अनभिज्ञ थे, तथापि उत्तेजित हो गए।

अ० वा० १—(काद० १४८)। जब कामदेव द्वारा महाश्वेता का मन पुण्डरीक नाम के ऋषि की ओर आकर्षित हुआ, तो महाश्वेता ने कहा।

चौदहवाँ पाठ

पृ० ११८, अ० १ अत्रभवतो —(मालवि० १)। गणदास और हरदत्त का। ज्ञानसंघर्षः—शास्त्रार्थ, शास्त्र-सम्बन्धी विवाद।

अ० २ (मालवि० ४)। जब विदूषक ने अग्निमित्र से कहा कि मालविका और वकुलाविका को किस प्रकार उसने माधविका से दो लड़कियों को छुड़वाया तो अग्निमित्र ने कहा।

अ० ७ (काद० १५८) अवश्यकर्तव्यतामापतितम्—अत्यन्त आवश्यक कर्तव्य हो गया है।

पृ० ११८, अ० ८ दक्षिणाक्षि (मुद्रा० १)—दाहिनी आँख को सिकोड़ कर दिए हुए संकेत को समझने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। तुम उन लोगों पर इस प्रकार से आँख का इशारा करो कि वे तुरन्त समझ जायँ कि तुम्हारा क्या मतलब है।

पृ० ११६—अ० १० (पंच० २।१५)। म उसको सबसे उत्तम मनुष्य समझता हूँ जो विपत्ति में सहायता करने वाले की तो भलाई करता है और विपत्ति मे हँसने वाले से बदला चुकाता है।

अ० वा० १ (शकु० ३)—राजा को पीड़ित तथा अपने राज्य मे रहने वाले व्यक्तियों के कष्टों को दूर करना चाहिए।

अ० वा० २ उत्क्रान्तमिवासुभि (काद० ३३)—मानो उनके प्राणों ने उन्हें त्याग दिया।

अ० वा० ४ (मुद्रा० २)। राक्षस ने कहा जब उससे यह बताया गया कि किसी आवश्यक कार्य से एक व्यक्ति उससे मिलना चाहता था।

अ० वा० ५ (वेणी० १)—जब इस प्रकार तुम अपने पाप के पलड़े को बिल्कुल भर लोगे तो तुम को बरबादी अथवा मृत्यु की ओर ले जाने में पाण्डव केवल एक छोटा कारण-मात्र होंगे।

अ० वा० ८ पृष्ठत कृत्वा (हित० १)—पीछे की तरफ करके।

अ० वा० (रघु० ६। ७७)। अनुबन्धि—सदा-निरन्तर, शाश्वत। इयत्तया परिछेत्तु नालम्—सीमा के अन्दर नहीं रक्खा जा सकता, जिसकी सीमा है ही नहीं।

अ० वा० १० हसित मुदा प्रसितम् (भट्टि० १० । ६)—हँसी प्रसन्नतापूर्वक जारी रही। विलसितम्—प्रेम से उज्जीवित प्रसन्नता से भरे खेल बन्द घट गए। हतसमदा —जिनकी उत्तेजना नष्ट हो गई है। पुरहितम्—जो चीज नगर के लिए हितकारी थी और नगर को वाञ्छिता थी, वह नहीं की गई।

अ० वा० ११ संयमधनान् (शाकु० ४)—संयम ही जिनका धन है। कथमप्यगान्धर्वकृताम्—किसी भी प्रकार से गान्धर्वों द्वारा पैदा नहीं की गई। सामान्य सम्मान-पूर्वक उसको अपनी स्त्री करके मानना। इसके आगे तो फिर भाग्य की बात है। बहू के घर वालों को यह बात न कहनी चाहिए।

पन्द्रहवाँ पाठ

पृ० १२८ अ० १ मिथ्यावार्तासन्देशकै (पंच १ । ७)—झूठे समाचारों और सन्देशों से।

अ० ५ इष्टिपशुमार मारित. (शा० ६)—यज्ञ-पशु के समान मार डाला गया। स —मातलि।

अ० ६ चित्रलेखाद्वितीया (विक्रमो० १)—चित्रलेखा के साथ।

पृ० १२६ अ० १०। क्रोधविह्वला—शूर्पणखा। भ्रातरौ—खरदूषणौ।

अ० वा० १ लतानुपातम् (भट्टि० २।१३)—बारबार लताओं के [illegible] कर। नद्यम्बस्कन्द—नदी के जल को उथल-पुथल करता हुआ पानी [illegible] था। चारुशिलापवेशम्—किसी सुन्दर शिला पर बैठना हुआ।

पृ० १२६ अ० वा० ३ विश्वासप्रतिपन्नानाम् (हित० ४)—विश्वास [illegible] लोगों का।

अ० वा० ४—[illegible]परविवेकम् (मालवो० १ —विवेक करने में मन्द।

अ० वा० ५ —[illegible]मन्दलीलया (दश० १।५)—सुन्दर लीला से।

अ० वा० ८—[illegible]पते अर्धरात्रे (दश० १।४)—[illegible] होते हुए।

अ० वा० ६ —[illegible]-यना (भट्टि० ३।१५)—[illegible] [illegible]। [illegible]दावेदम् भास्वरान्त्र —[illegible] [illegible]।

अ० वा० १० (भट्टि० ३।१५)—जो कठिन वस्तुओं के मामले में अपने बड़ों की आज्ञा का अनुसरण नहीं करता है, उसका मर जाना या मूख जाना आदि ही अच्छा है।

अ० वा ११ (मुद्रा० ६)—राक्षस मलयकेतु की निन्दा इस कारण से करता है कि उसने बिना किसी आधार के उसके चरित्र पर सदेह किया है।

सोलहवाँ पाठ

पृ० १३५ अ० १—नौ गुणदोषत परिच्छेत्तुम् (मालवि० १)—हम लोगों के गुण तथा दोषों की परीक्षा करने के लिये।

अ० २—समयपूर्वम् (शा० ५)—प्रतिज्ञा (इकरारनामा) पूर्वक।

अ० ३—(विक्र० ५)—जब अपने पिता (पुरुरवा) के द्वारा राज्य का शासन करने की भारी जिम्मेदारी को पाने ही वाला था, तब पुरुरवा के पुत्र ने यह कहा।

पृ० १३६—अ० ५। का गणना (काद० १५)—क्या गिनती, कहने की कोई आवश्यकता नहीं।

अ० ६—अचिराधिष्ठितराज्य. (मालवि० १)—जो अभी हाल ही मे राज्य पर (राजगद्दी पर) बैठा है। आरूढमूलत्वात्—चूँकि अभी अपनी प्रजा के मन मे गहरी जड़ नहीं जमा पाई है, इसी कारण वह उस वृक्ष के तुल्य है जो अभी नया नया लगाये जाने के कारण ढीला-ढाला है।

अ० ९—(रघु० १५।६४)—जीवन-चरित रामचद्र का वर्णित किया गया, कीर्ति वाल्मीकि की थी और उनकी वाणी स्वय किन्नरों की वाणी जैसी थी। अत. वहाँ कौन ऐसी बात थी जो कि सुनने वालो के मस्तिष्क को नहीं मुग्ध करती थी।

पृ० १३६—अ० वा० १ अनुभवसमा वेदनाम् (काद० १६८)—अनुभव की हुई वेदना के समान वेदना। स्मरण—कृपया अपने जीवन को उस शोकाग्नि का इन्धन न बनाइये जो अग्नि घटनाओ के स्मरण से पैदा होती है।

अ० वा० ४—(विक्र० ५)। वेगोदग्रम्—वेग (के साथ चक्कर करने के कारण भयानक। अयभर—यह उत्कर्ष उनमे प्रकृत्या (जाया) विद्यमान है।

पृ० १३७ अ० वा० ५—(कुमा० ५।४०)। ब्रह्मचारी के वेषमें शिवजी ने कहा। बहुक्षमा—विपुल क्षमा-शक्ति को धारण करने वाली।

अ० वा० ७—शुचो वशं गन्तुं नार्हसि (रघु० ८।९०)—कृपया शोक के वशीभूत न हूजिये।

अ० वा० ८—(वेणी० २)। यमौ—'जुड़वाँ'। अर्थात् नकुल और सहदेव। कथैव नास्ति—कोई हिसाब लेने की आवश्यकता नहीं, कोई चर्चा ही करने की आवश्यकता नहीं। विस्फुरित—जिसने अपना गोल धनुष तान लिया है। अथवा जिसने अपना धनुष तथा चक्र दोनों तान लिया है (निकाल लिया है)।

सत्रहवाँ पाठ

पृ० १४६ अ० ४—(शा० ४)। "भर्तुः" शब्द "प्रतीपम्" से सम्बन्धित है। "युवतियाँ इसी प्रकार "गृहिणी" की पदवी पाती हैं, इसके विपरीत आचरण वाली स्त्रियाँ अपने कुल का अभिशाप हैं।

अ० वा० २—(कुमा० ३।६३)। अनन्यभाजम्—जो किसी भी अन्य व्यक्ति के प्रति अनुरक्त न हो। तथ्यमेव—"हर" जो पीछे से उसे पति मिले वस्तुतः इसी प्रकार के थे। महान् पुरुषों की बातें इस संसार में विपरीत नहीं हुआ करती हैं अर्थात् झूठ नहीं सिद्ध होती हैं।

अ० वा० ३—(शिशु० १।५१)। यहाँ रावण की शक्ति का वर्णन किया गया है। जिसने दिन रात नमुचि के शत्रु (इन्द्र) के साथ झगड़ा कर करके स्वर्ग [illegible] पुरी—अमरावती।

अ० वा० ४—(मालवी० १०)। घनबद्ध—लोग अपने मित्रों और [illegible] करके आनन्द का अनुभव करते हुये खुशियाँ मनावें।

अ० वा० ५—नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण (मेघ० ११३)—पहिए का [illegible] जिस प्रकार ऊँचे-नीचे आना जाना है, उसी प्रकार [illegible]

अठारहवाँ पाठ

अ० ५ (शा० ३)—जो श्री (लक्ष्मी) को प्राप्त करने की इच्छा करता है वह उसको पावे या न पावे परन्तु जिसको श्री स्वयं चाहती है, भला वह उसके लिए कैसे अप्राप्य हो सकता है ?

पृ० १५३ अ० ६—कार्यहन्तारम् (चाण० १८)—कार्य को नष्ट करने वाले को।

यहाँ कृष्ण धार्मिक कार्यों के महत्व का वर्णन कर रहे हैं।

अ० ६—(वेणी० ३)। कथ भवेत्—उसकी क्या दशा होगी ? तत्तुल्य—भीष्मद्रोण तुल्य।

अ० वा० १—(विक्र० ३)। राजा उन सभी चीजों का नाम रखता है जिन्हें वह आशा करता है कि उर्वशी करेगी। गढा—स्वय अदृश्य होने के कारण। वलाद्दानीयेत पदात् पदम्—धीरे-धीरे जबर्दस्ती करके लाई जा सकती है। डर के मारे, आगे बढ़ने से वह इतना डरती है।

अ० वा० २—(कुमा० ५।५)। ध्रुवेच्छाम्—दृढ इच्छा वाली। इति ध्रुवेच्छामनुशासती सुता शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात्—इस प्रकार उपदेश देती हुई मेना स्थिर इच्छा वाली (अपनी) पुत्री को (उसके) निश्चय से न हटा सकी। चाही हुई वस्तु के लिए जो मन दृढ़ निश्चय कर लेता है, उस मन को और नीचे की ओर जाने वाले जल को कौन पलट सकता है।

पृ० १५४ अ० वा० ५—(रघु० १४।६५)। सीता जी ने कहा, 'मुझे अपने इस दैन्य जीवन के प्रति अवश्य ही असावधान होना चाहिये, (यह मेरा जीवन) आपसे सदैव के लिए बिछुड़ा होने के कारण निष्फल है। (अर्थात् सहप इस जीवन से मुक्ति पा जाती) यदि आपके कारण यह मेरा गर्भ जिसकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये मेरे मार्ग मे रुकावट नहीं पैदा करता।

अ० वा० ६—दंष्ट्रांकुरात् (नृ० २।४)—तेज दाँतो से।

अ० वा० ८—मुद्रा० १)। 'भूतये" का अन्वय "नृपते" के साथ होगा।

वे राजा के सच्चे सेवक हैं। दूसरे तो स्त्री-तुल्य है जो कि अपनी ही भलाई के लिये अपने पतियो का अनुसरण करती है।

अ० वा० ८—(रघु० ८।४६)। जीवितापहा—प्राणो का अपहरण करने वाली।

उन्नीसवाँ पाठ

पृ० १५६—अ० ४—आविर्भूतज्योतिषाम् (उत्त० ४)—जिसको सर्वश्रेष्ठ ज्योति दिखाई पड़ गई है।

अ० वा० १—(दश० २।१)। प्राणौ आदि—उसका प्राण नहीं लिया।

अ० वा० २—(रघु० ३।१४)। प्रसेदु—प्रसन्न हो गई, चमकने लगी। प्रदक्षिणार्चि हविरग्निराददे—अपनी लपट को दाहिनी ओर घुमा करके अग्निदेव ने पूजा स्वीकार किया।

पृ० १५६—अ० वा० ३—परिमेयपुरःसरो (रघु० १।३७)—बहुत थोड़े से नौकर-चाकरों को लेकर। अनुभावविशेषात्—अपनी उत्कृष्ट ज्योति के कारण।

अ० वा० ४—अत्यगादाश्रमम् (रघु० १५।३८)—आश्रम के पास से होकर निकल गए। "कहीं मुनि की तपस्या में बाधा न पहुँचे" इस डर के मारे वहाँ नहीं रुके।

बीसवाँ पाठ

अ० वा० ३—(कुमा० ७।३५)। स्पृहणीयशोभम्—जिसकी शोभा स्पृहणीय थी (ईर्ष्या करने योग्य थी)। "परस्परेण" का अन्वय "द्वन्द्वम्" के साथ होगा। 'इन दोनों को जोड़ा बनाने की इच्छा नहीं की थी'।

अ० वा० ४—(गीता २।५२)। मोहकलिलम्—अज्ञान के कारण पैदा हुई घबराहट। तदा गन्तासि निर्वेद श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च—जो कुछ तुमने सुना है अथवा सुनोगे, उस सब की तरफ से तटस्थ (विरक्त) हो जाओगे। श्रुतिविप्रतिपन्ना—जो कुछ तुमने सुना है, उसी से घबड़ाई हुई (व्याकुल हो गई हुई)।

पृ० १७३ अ० वा० ५—(गीता २।३५)। बड़े-बड़े योद्धा तथा रथ पर चढ़ कर युद्ध करने वाले यह समझेंगे कि डर के कारण तुमने लड़ना बन्द कर दिया। और तब उनकी निगाहों में जो तुम बहुत बढे हुए थे, गिर जाओगे।

इक्कीसवाँ पाठ

पृ० १७९—अ० २—(शा० २)। कान्तमात्मीयम् पश्यति—अपनी चीज को सुन्दर समझती है।

पृ० १८०—अ० ६ (उत्त० ५)। द्वन्द्वसम्प्रहारम्—आपसी संघर्ष। प्रत्युपस्थिते—जब ऐसी नौबत आ पड़ी।

अ० ७—(काद० ३६)। अलमप्रभु—बिल्कुल शक्तिहीन। अन्धकारतामुपयाति—धुँधली पड़ जाती है।

अ० १२ (उत्त० ४)। उत्कर्षनिकष—बड़प्पन अथवा श्रविस्ता की कसौटी।

पृ० १८० अ० वा० १ (मालविका० ५)। सभाजनाक्षराणि पातयिष्यामि—बधाई (प्रशंसा) के कुछ शब्द कहलाऊँगा।

पृ० १८२—अ० वा० ५ (मुद्रा० १) अगृहीते राक्षसे—जब तक राक्षस पकड़ नहीं लिया जाता। तथा त्वमसि=जारिणी।

अ० वा० ९ (कुमा० ५।३३)। क्रियार्थम्—धार्मिक क्रियाओं के लिए।

अ० वा० १०—(गीता २।२६)। एनम्—आत्मानम्। नित्यजात-नित्य-मृतम्—सदैव पैदा हुआ, सदैव मरा हुआ।

अ० वा ११—(शा० १)। लक्ष्मीं तनोति—लक्ष्मी (शोभा) को बढ़ाता है।

बाईसवाँ पाठ

पृ० १८६—अ० १—(मालविका० ५)। स्वरसंयोग—स्वरों का संयोग।

अ० ४—(उत्तर०१)। अतिभूमिं गतेन—उच्चतम शिखर पर पहुँचे हुए।

अ० ७—(उत्त०)। अहो जाने—मैं बहुत ही पसन्द करता हूँ।

अ० ६—(हितो० १)। चिन्ताविषघ्न—चिन्ता को नाश करने वाला।

पृ० १६० अ० वा० २—(काद० ३१२)। न वेद्मि इत्यादि—वह पृथ्वी पर गिर पड़ा, चाहे प्रेम के वेग के कारण, चाहे . . , सो मैं नहीं जानता।

सद्योविपाकस्य—जिनसे तुरन्त फल पाया।

अ० वा० ३—(मालविका० १)। पात्रविशेषन्यस्तम्—उत्तम पात्र में रक्खा हुई, अथवा उत्तम पात्र को दी हुई। गुणान्तरम्—उच्चतर गुण।

अ० वा० ६—(कुमार० ४।३०)। स सखा—तुम्हारा मित्र, कामदेव। "मानो मैं इस भयङ्कर विपत्ति-रूपी धूप से ढकी हुई दीप-बत्ती हूँ।"

अ० वा० ७—(रघु० ८।८८)। स्वशरीरशरीरिणावपि श्रुतसंयोगविपर्ययौ— जब मनुष्य का शरीर और उसकी आत्मा का संयोग तथा वियोगवान् होते हैं तो भला बताओ बाह्य पदार्थों (पुत्र, कलत्र आदि) का वियोग विद्वान् पुरुष को कैसे दुःख पहुँचा सकता है?

तेईसवाँ अध्याय

पृ० १९६ अ० ३ (शा० ४)। भर्तृगतया—अपने पति के बारे में। गतया—संबंधिन्या।

अ० ४ (मालविका० ३)। उन्नमितोपदेश गणदास—गणदास के उपदेश अधिक उत्तम पाए गए।

पृ० १९७ अ० ६ (शा० ५)। दैवस्य—दुष्यन्तस्य। उपरोधकारि—बाधा पैदा करने वाला।

अ० ११ (कुमा० ५।३८)। स्फुरितोत्तराधर—स्फुरणभूयिष्ठ. अधरो यस्य स,-अर्थात् जिसका ओठ बड़े जोरों से फड़क रहा था, बोलने के लिये चेष्टा कर रहा था। अथवा इससे भी बढ़िया अनुवाद यह होगा "जिसके नीचे का ओठ तथा ऊपर का ओठ—दोनो ओठ फड़क रहे थे।

तस्मात्—महतोऽपभाषमाणात्।

अ० १५ (शा० २)। परोक्षमन्मथ—जिसको कामदेव (अथवा प्रेम) का अनुभव न हो, जो प्रेम की पहुँच के बाहर हो। 'ऐ मित्र, जो बात केवल हँसी मे कही गई है उनको सत्य न मान लो।'

पृ० १९८ अ० वा० ३ (शा० ५)। शाठ्यमशिक्षित—जिसने शठता नही सीखी है। अप्रमाणम्—प्रमाण नहीं माना जाता, विश्वास-पात्र नहीं समझा जाता। विद्या इति—इसे विद्या की सुनियमित तथा सुव्यवस्थित शास्त्र मानकर।

पृ० १९८-अ० वा० ४ (विक्र० १)। त्व यस्य नेत्रयो पथि स्थिता—तुम जिसकी आँखो के विषय मे सयोगवशात् खड़ी थी, और जिसकी आँखे इसी कारण से अवन्ध्य हो गई। (अन्वर्थ हुई क्योंकि उन्होंने अपना फल पाया)। रूढसौहृद—गहरी मित्रता वाला।

अ० वा० ५ (कुमा० ६।६० । रजसोऽपि परम्—हिमालय ने तेजस्वी सप्तर्षियो से कहा है। 'रजोगुण के भी परे'।

अ० वा० ७ (रघु० ३।३१)। सुखश्रव—सुनने मे सुखदायक। दिवौकसा पथि—आकाशे।

अ० वा० ९ (मेघ०)। अन्यथावृत्ति—विकृत, क्षुब्ध, आन्दोलित। कण्ठाश्लेषप्रणयिनि—कण्ठ का प्रगाढ़ आलिंगन चाहने वाले।

अ० वा० ११ (शा० ५)। अशिक्षितपटुत्वम्—बिना सिखाई-पढ़ाई हुई चातुरी (छल, कपट)।

अ० वा० १२ (मुद्रा० ३)। अग्निमित्र के कहने का अभिप्राय यह है कि कामदेव-जनित घोर पीड़ा उसके प्रत्यक्ष रूप से इतने अहानिकर हथियार के सानुकूल मुश्किल से ही अर्थात् नहीं है। चूँकि कामदेव का हथियार केवल फूलों से बना है। अत यह कहावत कि जितना ही मुलायम है उतना ही (सहन करने के लिये) कठिन है, कामदेव के सम्बन्ध में सिद्ध होती है।

अ० वा० १३ (शा० २)। काम प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनाश्वासि—उसके (शकुन्तला के) प्रेम को देखकर आश्वासन पाने वाला। रतिमुभयप्रार्थना कुरुते—हम दोनों की इच्छा तृप्ति (सन्तोष) पैदा करती है। "हम दोनों एक दूसरे से प्रेम करते हैं" इस बात के विचार-मात्र से ही हम लोग सुख का अनुभव करते हैं।

चौबीसवाँ पाठ

पृ० २०६-अ० ६ (काद० ३०४)। तिष्ठतु पुरस्तात्—सामने ठहरे।

अ० १० (विक्र० ४)। नवधारिधरोदयादहोभिर्भवितव्यं च निरातपवरम्यैः—गर्मी के अभाव के कारण दिन अवश्य रमणीक होंगे।

अ० ११ (कुमा० ३।६६)। प्रतिग्रहीतुं प्रणयिप्रियत्वात्—अपने भक्तों के ऊपर कृपा या प्रेम रखने के कारण। तान्=मालान्

जोरों से बन्द कर दिया गया था, तब कुश ने उस देवी से कहा है। लब्धान्तरा—प्रवेश प्राप्त करके।

अ० वा० ६ (शा० ५)। सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि वाला वाहूत्क्षेप—यहाँ "वाहूत्क्षेपम्" का अर्थ है "अपनी भुजाओ को ऊपर की ओर फेंकती हुई।" स्त्रीसस्थानम् ज्योति —स्त्री के स्वरूप में ज्योति (प्रकाश), स्त्री-रूपधारणी ज्योति। अप्सरस्तीर्थम्—एक पवित्र-स्थान का नाम है।

अ० वा० ६ (शा० १)। निशितनिपाता —तेज या पैने गिरने वाले।

अ० वा० १० (मालती० ६)। च-च—प्रत्येक पक्ति मे च-च का अर्थ है—"ऐसी बात हो न पाई थी कि इतने ही में।" घनाघन —खूब घना और सक्षिप्त।

पचीसवॉ पाठ

पृ० २१३-अ० १ (मालवि० २) ज्ञानवृद्धभाव —ज्ञान में बड़े होने के कारण, अर्थात् यद्यपि दो के दोनो एक समान विद्वान् हैं। पुरस्कारमर्हति—पुरस्कार का पात्र है, आगे किए जाने (रक्खे जाने) का पात्र है।

अ० ३ (शा० ६)। अनियन्त्रणानुयोग —विना किसी रुकावट के यानी स्वतन्त्रतापूर्वक पूँछा जा सकता है।

अ० ६ (दश० २।७)। तत्पाटवात्—उसकी चातुरी के कारण।

अ० ७ (दश० २।४)। वद्धकलकले—जिसने बड़े जोरो का कोलाहल करना आरम्भ कर दिया था। प्रदीप्तशिरसम्—अपना फन फैला कर। भीतोनाम—भयभीत होने का बहाना करके, अर्थात् भयभीत व्यक्ति के समान।

अ० ८ (दश० १।५)। इम ललनाजनं · ···घुणाक्षरन्यायेन—लकड़ी में अथवा पुस्तक के पृष्ठों में कीड़े द्वारा बनाया गया हुआ कटान जो अक्षरों के आकार से मिलता जुलता है। कीड़े लकड़ी को अथवा पुस्तक के पृष्ठों को इस प्रकार से काट देते हैं कि उसमें मानों अक्षर बन जाते हैं। घुणाक्षरन्यायेन—संयोगवशात्, अकस्मात्।

पृ० २१४-अ० १० (उत्त० ३)। जब सीता जी के करों के शान्तिदायक स्पर्श का श्रीरामचन्द्र जी ने अनुभव किया, तब उन्होंने कहा।

अ० वा० १ (शा० १)। प्रयोगेणाधिक्रियताम्—प्रयोग (प्रदर्शन) का विषय बनाया जाय, अर्थात् रंगमंच पर लाया जाय।

अ० वा० ४ (उत्त० १)। तातपरिजनस्य—मेरे पिता जी के नौकर। यथाभ्यस्तम्—जैसे तुम्हारा अभ्यास पड़ गया है, वैसे ही।

अ० वा० ५ (दश० २।६)। अष्टादशवर्षदेशीय—लगभग अठारह वर्ष का।

अ० वा० ६ (कुमा० ५।३२)। अनुज्झितक्रम—मर्यादा (औचित्य) की सीमा को बिना त्यागे हुये, अर्थात् मर्य्यादा का पालन करते हुये।

अ० वा० ७ (शा० ५)। आत्तदण्डः—दण्ड को ग्रहण कर। अतनुषु आदि—ऐश्वर्य के दिनों में (अर्थात् जब रूपये पैसे की अधिकता रहती है) तो बहुत से साथी-सम्बन्धी होते ही हैं परन्तु तुम तो ऐसे साथी हो जिसमें हित के सभी कर्त्तव्य या गुण सन्निहित है। अर्थात् सौभाग्य के दिनों में पेटू या खाऊ साथी अनेक मिलते हैं परन्तु तुम तो प्रजा के सच्चे हितैषी हो—अच्छे एवं बुरे दोनों ही दिनों में।

अ० वा० ८ (रघु० ८।३८)। करणोज्झितेन—स्पर्श आदि इन्द्रियों से त्यक्त। तैलनिषेकबिन्दुना—टप् टप् चूते हुये तेल की बूँद से।

अ० वा० ९ (विक्र० १)। कान्तिप्रद—कान्ति (ज्योति, शोभा) का देने वाला। मासो इत्यादि—वैशाख का महीना, वसन्त ऋतु जब कि वृक्ष फूलों से लदे रहते हैं।

छब्बीसवाँ पाठ

अ० ८ (मालवि० १)। अलमन्यथागृहीत्वा—मेरे विषय में गलत धारणा मत बनाइए।

साधारणतः ऐसे लोग जो समान पढ़े लिखे होते हैं, एक दूसरे की ख्याति के प्रति स्पर्धा करते हैं।

अ० १० (मुद्रा० १)। चीयते—फल से युक्त होता है, सफल होता है।

पृ० २१२-अ० वा० ५ (रघु० १।८७)। कल्याणी—पवित्र गाय।

अ० वा० ६ (रघु० ८।४७)। अथवा मम भाग्यविप्लवात्—अज का उक्ति है। जब इन्दुमती के वक्षःस्थल पर गिरते ही स्वर्गीय माला ने उसके प्राण हर लिये और अज को तनिक भी हानि न पहुँचाई, तब अज ने कहा है।

सत्ताईसवाँ पाठ

पृ० २२५ अ० १ (शा० १)। अभिनिवेश्य—मन को पदार्थों या विषयों में लगाकर।

कालान्तरक्षमो न भवति—विलम्ब को सहन करने में असमर्थ है, विलम्ब नहीं सहन कर सकता।

पृ० २२६, अ० ७ (उत्त० ४)। ईदृशा आदि—तुम्हारे पैदा किये जाने की यह दशा हो गई है।

अ० ५ (काद० १०५)। अर्थ यह है कि सम्पत्ति की जितनी ही अभिलाषा की जाती है, उतना ही ऐसी इच्छा वाला व्यक्ति बुरे कामों को करने की ओर प्रवृत्त होता है। यहाँ उपमा एक दीपक से दी गयी है जो कि जितनी उसकी लव तेज होती जाती है, उतना ही कालिख फेंकता जाता है।

अ० १२ कुमा० ३।७२)। भस्मावशेष चकार—राख कर दिया।

अ० १३ (कुमा० ६।७०)। उच्छ्रिरसा—जिसका सिर (शिखर) आकाश में ऊपर को गया हुआ है।

पृ० २२७-अ० १६ (रघु० १०।१७)। अभिषेकान्ते—राज्याभिषेक के अन्त में।

अ० वा० १ (विक्रमो० २)। विरलजनसम्पाते—जहाँ बहुत कम लोगों का आना जाना हुआ करता है।

त्रिमानोत्सग—किसी राजा के महल का नाम।

अ० वा० ५ (वेणी० ३)। लोकयात्रा शिक्षा—इस प्रकार की जीवनयात्रा निश्चित है।

अ० वा० ११ (रघु० १५।६८)। उभयो —कुशलवयो। लोग उनके संगीत नैपुण्य पर उतना आश्चर्य नहीं करते थे, जितना कि इस पर कि वे राजा द्वारा स्वेच्छापूर्वक दिये हुए उपहारों को बड़े तिरस्कार पूर्वक ठुकरा देते थे।

अ० वा० १२-(भर्तृ० ३।८८)। यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृह—यह उन लोगों के लिये बड़ी लाभकारी शिक्षा है, जिनकी आदत ऐन मौके पर काम करने की होती है। ऐन मौके पर तैयारी करने से कार्य सिद्ध नहीं होता। पहिले हो से मन ्रबन्ध करना चाहिए।

अट्ठाईसवाँ पाठ

पृ० २३४-अ० ७ (काद० १०३)। सुख विशन्ति—आसानी से प्रवेश पात कर लेते हैं।

अ० ८ (शा० ५)। सर्वतोमुखी—प्रत्येक बात में अपरिमित, पूर्ण।

अ० ६ (कुमा० १।१)। यस्य—हिमालय की ओर सङ्केत है।

पृ० २३५-अ० वा० २ (शा० १)। असशय क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्य-मस्यामभिलाषि मे मन

सज्जनो के हृदय की आन्तरिक प्रेरणा उनके लिये बहुत ही शुभ पथप्रदर्शक होती है जिसकी राय उन्हें माननी चाहिये। क्योंकि उनका हृदय किसी अन्याय्य बात को सोच ही नहीं सकता।

अ० वा० ४ (विक्र० १)। एवमादिभि —अर्थात उनाने। ता= उर्वशी।

अ० वा० १० (मालवि० ४)। इयम्—मालविका। प्रेष्यभावेन-नौकर की हैसियत से। वा--समान।

अ० वा० ११ (रघु० १।७४)। पंक्तिरथ —दशरथः। पक्ति—दम नियमों का उल्लघन करके जो दशरथ ने किया था, वह वस्तुत. उन्हें मना किया गया था। [तब बुद्धिमान् राजा होकर उन्होंने इस कार्य को कैसे कर डाला] क्योंकि अन्धकार (मद) से अन्धे होकर विद्वान् लोग भी गलत रास्ते पर चले जाते हैं।

अ० वा० १६ (मुद्रा० ५)। शकटेन—शकटदासेन।

अ० वा० १८ (मालवि० ३)। खण्डनहेतव —उसको 'निराश करने के बहाने।

उन्तीसवाँ पाठ

पृ० २४६-अ० १ (दशकु० २।८)। शक्ति—राजा की शक्ति, जिसमे तीन अङ्ग होते हैं। प्रभाव—स्वय राजा का ऐश्वर्य। मत्र—अच्छी राय की शक्ति। उत्साह—शौर्य-शक्ति।

पृ० २४७-अ० ६ (भट्टि० २।३६)। ये पक्तियाँ विष्णु से सम्बन्धित है। कल्पान्तदुःस्था—कल्प के अन्त में विपद्ग्रस्त दशा मे। कल्प—अखिल विश्व के प्रलय का समय। ऊहे—उठा लिया गया अथवा खींच लिया गया।

अ० १० (शिशु० २।१०)। परः—शत्रु। बढ़ते हुए शत्रु तथा रोग को विद्वान् लोग एक समान मानते है अर्थात् यदि उनका बढ़ना ठीक समय पर नही रोक दिया जाता तो वे घातक सिद्ध हो जाते हैं।

अ० ११ (रघु० ५।७३)। त्वत्प्रबोधप्रयुक्ताम्—आप को जगाने मे प्रयुक्त की हुई।

अ० १३ (कुमा० २।३)। सर्वतोमुखम्—जिसके मुख सभी दिशाओं में हो।

अ० १४ (कुमा० २।१८)। स—हिमालय.। पितृणा मानसी कन्याम्—वह कन्या पितरों के मन से पैदा हुई थी।

अ० १५ (उत्त० ४)। नव इव चिरेणापि—यद्यपि चिरकाल व्यतीत हो गया, तथापि मेरा शोक मानों नया हो गया है।

अ० १७ (भट्टि० ८।२८)। असौ—हनुमान्।

अ० वा० २ (काद०२८६)। स्फुटन्निव—मानों आन्तरिक उद्गार के कारण फूट रही थी।

पृ० २४८-अ० वा० ३ (रघु० १५।६७)। वयो—राम तथा लवकुश में जो समानता थी वह केवल अवस्था और वस्त्र में भिन्न थी, अन्यथा और सभी बातों में मिलती जुलती थी, अर्थात् लव कुश तथा राम अवस्था और वेष के अतिरिक्त अन्य सभी बातों में मिलते जुलते थे।

(रघु० १५।६७)। नाक्षिकम्प व्यतिष्ठत—बिना आँख झँपाये खड़ा था, उनकी ओर टकटकी लगाकर खड़ा था।

अ० वा० ५ (किरा० २।२५)। मरुत सुत—भीम। दर्शितविक्रियम्—जिसने अपने मन का विकार दिखा दिया था।

अ० वा० ७ (रघु० ४।६५)। तद्योधा—उसके योधा लोग।

अ० वा० ८ (किरा० २।४१)। अन्तर्मायिगम्य—अन्दर ज्ञान प्राप्त करके। शरीरजन्मान रिपून्—काम क्रोध, लोभ, इत्यादि छः विकार।

(किरा० २।४१)। वे शीघ्र लक्ष्मी (सम्पत्ति) पर चञ्चल होने का दोष आरोपित करते हैं। अर्थात् सम्पत्ति ऐसे व्यक्तियों को छोड़ देती है और चपल कहलाने लगती है।

अ० वा० ९ (उत्त० २)। प्रियप्राया—प्राय दया से भरी हुई। जिसका स्वाद पहिले रखना पीछे कभी भी विकृत नहीं होता अर्थात् जो सर्वदा एक समान रूप से रहती है।

श्र० चा० १६ (भट्टि० ७।१०१२)। मोपयध्वम् भयम्—भय मत करो महेन्द्र—एक पर्वत का नाम है। धैर्यमाधिषत—उनके हृदयों ने हिम्मत धारण की।

तीसवाँ पाठ

पृ० २५७-प० १ (काद० १० । नरपतिप्रबोधनार्थम्—राजकुमार की जो आँखें राजा के ऊपर लगी हुई थीं, उन्हें चाण्डालकन्या की तरफ फेरने के लिए।

अ० ५ (दश० ७।२ । अनाश्रयासीत्—परवाह नहीं किया। ममगि-रेताम्—प्रण किया।

अ० ८ दश० ७।४)। प्रतिविधाय तिष्ठतु—राजा के जो मनसूबे सम्भव थे, उनके विरुद्ध कार्रवाई करके।

अ० ६ किरा० २।१८)। वर्तयते—अपना भरण करता है। स्वत मारे हुए हाथियों पर जीविका निर्वाह करता है। जो महान् पुरुष अपनी ही शक्ति से स सार को नीचा दिखा देता है, वह अपने भरण-पोषण के लिए दूसरों से इच्छा नहीं रखता।

अ० १० किरा० १६।१६)। अस्तसंख्यम्—अनगिनती। अत्र—इस युद्ध में।

अ० १२ (शिशु० २।८८)। शक्ति—बल और तीनों राज-शक्तियाँ। षाड्गुण्यम्—छः उपाय। अगानि—शरीर के अवयव तथा किसी राज्य के अंगभूत भाग।

पृ० २५८-अ० १४ (भट्टि० ८।१६)। मा कस्यचिदुपस्कृथा—मेरे लिये भोजन की बहुत सी सामग्रियाँ मत तैयार करो (दृश्यपेयभोज्यादिकं किमपि मा कुरु)।

अ० १६ (भट्टि० ८ २७)। वदमान—चमकता हुआ (भासमान)।

अ० चा० १ (दश० ७।२)। व्यवहर्तुमभियोदयते—अदालत में जाने के लिए प्रयत्न करेगा। कौपीनावशेषम्—उसे एक दम दरिद्र बना देंगे।

अ० वा० ७ (रघु० ७।१)। कृतपूर्वसविद्—जिन्होंने अपने मनसूबे की पूर्ति के लिए पहिले षड्यन्त्र रचा था। समयोपलभ्यम्—अज के प्रस्थान के समय मिलने वाला।

अ० वा० ८ (किरा० १८।४२)। सविदामीश—शक्तियों के स्वामी। विरोध्य—जो मूर्खता के कारण शत्रुता कर लेते हैं परन्तु बाद में नम्र हो जाते हैं, उन लोगों का।

अ० वा० ६ (रघु० ११।६२)। शान्तिमधिकृत्य—शान्ति के विषय में। स्वन्तम्- शोभन अन्त परिणाम यस्य स, तथोक्तम्।

पृ० ३५६ अ० वा० ११ (शिशु० १६।३४)। भूपति—चेदिराज। यह सम्भव नहीं है कि सिंह (कृष्ण) आक्रमण के डर के मारे आसानी से दुबक जायेंगे।

अ० वा० १३ (शा० २)। उदधिश्यामसीमाम्—जिसकी काली-काली सीमा समुद्र है, अर्थात् समुद्र तक। नगर पुर द्वार की अर्गला के समान लम्बी भुजाओं वाला अर्थात् विपुल शक्ति वाला।

अ० वा० १५ (भट्टि० ८।६१)। लता नर्तयमानयन्—मानो हवा के झोंके के साथ लता को नचाता हुआ। सन्त्रस्ता—रावण से डरे हुए। नावामनयन्—हस्तक्षेप नहीं किया, कुछ भी प्रभाव नहीं डाला। स्मरात्—काम-पीड़ित होने के कारण।

परिशिष्ट—१

सूक्तियाँ तथा मुहाविरे

स दैवाधीनः कृतः, यद्भावि तद्भवतु इत्युक्त्वा परित्यक्त —वह अपनी भाग्य पर छोड़ दिया गया।

तव निर्णये स्थास्यामि, तवा निर्णय. प्रमाण—आप का निर्णय मुझे मान्य होगा । प्रतिज्ञाम्—अभिसधां पालयति—अपनी प्रतिज्ञा का पालन करता है।

यथाशक्ति, यावच्छक्य—अपने भरसक, जहाँ तक हो सके।

वहुकौतुक स देश —वह देश कौतुको से भरा हुआ है।

पचवर्ष देशीयः—लगभग पॉच वर्ष का। मध्याह्नप्राय -कल्प समय —लगभग दोपहर है। कि कर्तु मुद्यतोसि, किकार्यव्यग्रोसि, किमारभस्त्वम्—किस फेर फार मे हो।

स सर्वेषा मूर्ध्नि तिष्ठति—वह सब के ऊपर हे. अदत्तावकाशो मत्सरस्य—जलन या डाहसे परे।

सा दारुणा प्रतिज्ञा लोके प्रकाशता गता-प्रकाशीभूता—वह भयकर प्रतिज्ञा ससार में ज्ञात हो गई।

शून्यमनस्क, शून्यहृदय, हृदयेनासन्निहित, विगतचेतन—अन्यमनस्क। कृतमेतादृशेन असगतेन प्रलापेन—इस तरह की असगत बातें न करो। मनोरथानामगतिर्न विद्यते—इच्छा के लिए कोई चीज अगम्य नहीं। मरण प्रकृति. विकृतिर्जीवितमुच्यते—मृत्यु प्राकृतिक चीज है, जीवन तो केवल विकारमात्र है।

भावमनुप्रविश्—अपने आप को किसी की इच्छा के अनुकूल बनाना।

एकचित्तीभूय—एक होकर। यदृच्छया, स्वय, स्वेच्छात.—अपनी इच्छा से । तद्वचनानुसारेण-अनुरोधेन—उसके कहने के अनुसार। अनुज्येष्ठम्—ज्येष्ठता के अनुसार।

राजेति का मात्रा-गणना मम—मेरे लिए राजा किस लेखा में है, मैं राजा की कुछ भी परवाह नहीं करता।

दैवहतकम्, दग्धदैवम्, हतदैवम्—अभाग्य, दुर्भाग्य।

बलवती शिरोवेदना मां बाधते—मुझे बहुत जबर्दस्त सरदर्द है।

भवतोऽविनयमन्तरेण परिगृहीतार्था कृता देवी—रानी को तुम्हारी धृष्टता के विषय में अवगत करा दिया गया।

ते स्वकर्म साधु निरवाहयन्-आचरन्—उन लोगों ने भली भाँति व्यवहार किया।

शासने तिष्ठ भर्तुः—अपने पति की आज्ञा के अनुसार कार्य करो। लक्ष्मीभूमिकायां वर्तमाना—लक्ष्मी का अभिनय करने वाली। कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने—अपनी सौतों के प्रति प्रियसखी का सा व्यवहार करना। मनो-वाक्-काय-कर्मभिः—मनसा, वाचा, कर्मणा।

कुशाग्रबुद्धिः—तेज बुद्धि वाला।

'यथाकालं व्यवहर—परिस्थितियों के अनुसार अपना आचरण बनाओ। तस्यैकदेशः अभिनेयार्थः कृतः—इसका एक अंश अभिनय के योग्य बना दिया गया है।

लक्ष्मीं तनोति—शोभा को बढ़ाती है। गण्डस्योपरि पिटिका संवृत्ता, अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोटः—पहिले अनर्थ के ऊपर यह एक और नया अनर्थ आकर उपस्थित हो गया (फोड़ा के ऊपर फुंसी)।

मधुरालापः प्रियंवदः—मीठी वाणी बोलने वाला। अदत्तबाह्यनामा लेखः—ऐसा पत्र जिस पर कोई भी पता न लिखा हो। दत्त-लिखितमद्बाह्य-नाम पत्रं प्रेषय—पत्र को मेरे पते से भेज देना।

वसन्तसमयावतार, मधुप्रवृत्ति.—वसन्त का आगमन।

क्लेशलेशैरभिन्न.—जरा सा भी थकावट से प्रभावित न होकर। वेतालोपहत—पिशाच (भूत) से ग्रस्त। अनेकव्याध्युपसृष्ट—अनेक रोगों से ग्रस्त। न नः किञ्चिद् छिद्यते—इससे हमारी स्थिति पर जरा भी प्रभाव नहीं पड़ता। कृतककलहं कृत्वा—नकली झगड़ा करके। मम वचसा तस्य हृदयं द्रवीभूतम्, मम वचस्तस्य हृदये दृढं पदं लेभे—मेरी बातों का उसके हृदय पर बड़ा असर पड़ा। पण्डितम्मन्योऽसौ—वह अपने को पंडित लगाता है।

द्वौ नञौ प्रकृतार्थं गमयत.—दो निषेधवाचक शब्दों से एक विधि-वाचक अर्थ निकलता है।

इति वार्ता प्रसृता— ऐसी अफवाह फैली थी।

अनुपूर्वश.—एक के बाद दूसरा। वृक्षं वृक्षं सिंचति—एक वृक्ष के बाद दूसरे को सींचता है। स पितामहनाम्नाऽभिधीयते आहूयते उसका नाम उसके पितामह के नाम पर रक्खा गया है। प्राप्तव्यवहारदशा—बड़ा हो जाने पर। षोडशवर्षवयोवस्थामस्पृशत्—वह सोलह वर्ष का हो गया।

अस्मिन्विषये सर्वेषां तेषामैकमत्यम्—इस बात पर वे सब एकमत हैं।

शरसंधानं कुर्वन्—बाण का निशाना लेकर। क्वानिर्दिष्टकारणं गम्यते—बिना किसी निश्चित लक्ष्य के कहाँ जा रहे हो।

वातमासेवि—हवा खाने के लिए। प्रकाशतां गम्—खुल जाना। अवक्षेपमुद्रा—अभिमान का रुख। निकृतामिवात्मानं संदर्श्य—क्रुद्ध व्यक्ति का सा आकार बना कर। गगनकुसुमानि-खपुष्पाणि चि, मनोराज्यविजृम्भणं कृ—मन के लड्डू खाना।

अकस्मात्, सहसा, एकपदे—यकायक। एतावान्मे विभवो भवन्तं सेवितुम्—आप की सेवा करने के लिये इतना ही कर सकता हूँ। जीवितसर्वस्व—किसी के जीवन के सर्वस्व।

एवं पिंडीकृत्य मह्यं विंशतिं रूपकान्देहि—सब मिलाकर मुझे बीस रुपए दीजिए। सर्वे मिलित्वा सप्त वयं—सब मिलकर हमलोग सात हैं।

इयं कथा मामेव लक्षीकरोति—यह कहानी मेरे ही विषय में है। क्षीण-भूयिष्ठायां क्षपायां—जब रात लगभग समाप्त हो चुकी थी। अधुना प्रभात-प्राया-कल्पा रजनी—इस समय लगभग प्रातःकाल हो गया है। मृतप्राय—कल्प—लगभग मरा हुआ। अन्या गतिर्नास्ति, अन्यच्छरणं नालोक्यते—दूसरा कोई चारा नहीं है।

एष तव वचसो निष्कर्ष-पिंडितोऽर्थः—आपके भाषण का सारांश यह है।

अराजके जनपदे—ऐसे देश में जिसमें राजा न हो, जहाँ अराजकता हो।

जन्मदिवस—जन्म-दिन। मृततिथि—निधन-तिथि।

भवतु-तथा-इति स प्रत्युवाच—उसने उत्तर दिया "बहुत अच्छा"।

इदं मे इष्टसिद्धये कल्पेत—इससे मेरा काम चल जायगा।

चिन्ताविषघ्नोऽगद—चिन्ता को मिटाने वाली दवा। विषवैद्य, जाङ्गुलिक—जहरीली दवाइयां बेचने वाला।

आपातस्तुति—ऊपर से देखने में प्रशस्त।

अस्मिन्नर्थेऽत्रभवन्तं प्रमाणीकरोमि, अत्र भवान् प्रमाणम्—इस विषय में मैं आप को प्रमाण करता हूँ।

साक्षी नोपतस्थौ—गवाह उपस्थित नहीं हुआ। शोभनाकृति, सुभगाकृति, चारुदर्शन प्रेक्षणीय—सुन्दर आकार वाला। तव कथा सत्येव प्रतिभाति-अवभासते--तुम्हारी कथा सच्ची सी मालूम पड़ती है।

न ते वचोऽभिनन्दामि—मैं तुम्हारे वचनों का अनुमोदन नहीं करता। युवानो विस्मरणशीला—नौजवान लोग भुलक्कड़ हुआ करते हैं (चीजों को भूल जाया करते हैं)। अतिस्नेह पापशंका—अतिस्नेह से पाप की शंका होने लगती है।

लोके गुरुत्वं विपरीततां वा स्वचेष्टितान्येव नरं नयन्ति—मनुष्यों को अपने ही कार्य उन्हें बड़ा अथवा छोटा बना देते हैं।

बध्नाति मे चक्षुश्चित्रकूटः—चित्रकूट मेरे नेत्रों को आकृष्ट करता है।

अव्याजमनोहरम्-अकृत्रिमलावण्य निसर्गरमणीय वपु.—प्रकृत्या सुन्दर शरीर।

गुणास्तावत्तस्य नैव विद्यन्ते—गुण तो उसमें एक भी नहीं हैं।

शीघ्रमिति सुकरं—रही शीघ्रता करने की, सो तो सरल है। पितेति मा स मानयति—यह पिता हैं, ऐसा समझकर मुझे मानता है।

वेलोपलक्षणार्थम्—समय मालूम करने के लिए।

कस्मिन् दोषं निक्षिपामि, कं दोषपक्षे स्थापयामि—किसके मत्थे दोष मढ़ूँ।

भस्मीकृ, भस्मसात्कृ—राख कर डालना। भस्मीभू—राख हो जाना।

तस्य वदनं हर्षोत्फुल्लं बभौ—उसका मुखड़ा हर्ष से खिल उठा। सर्वं विपर्यासं यातं—सभी चीजें बदली हुई थीं।

उदगभिमुखं मे गृहम्—मेरे घर में उत्तरी झलक है।

दूरारूढाः-दूराधिरोहिणः-उत्सर्पिणः खलु एते मनोरथाः—वस्तुतः ये बड़ी उच्चाकांक्षाएँ हैं।

मृगा मृगैः संगमनुव्रजन्ति—हिरन हिरनों के साथ रहते हैं।

कृतकं मौनम्, मिथ्या मौनं—दिखावटी मौन।

इति मे निश्चयः, दृढं मन्ये—मुझे पूरा विश्वास है।

उपचारातिक्रम-प्रणिपातलङ्घन प्रमार्ष्टुं मयमारम्भ—दण्डवत् प्रणाम का तिरस्कार करने का प्रायश्चित्त करने के लिए यह कार्य है।

लोकापवादो बलवान्मतो मे—मैं लोकनिन्दा को बहुत महत्त्वशाली चीज मानता हूँ। नृपे सुदृढमनुरक्ता प्रजा—प्रजाएँ राजा में बहुत जबर्दस्त अनुराग रखती हैं।

युवतयो गृहिणीपद याति —युवती स्त्रियाँ गृहिणी की पदवी पाती हैं।

उदार-आर्य-नेपथ्यभृत्—बडी सजधज के साथ वस्त्र पहने हुए।

वैरभाव, विपक्षवृत्ति —शत्रुता का रुख।

आत्मन्यारोपितालीकाभिमाना —अपने में मिथ्या गौरव समझने (मानने) वाले।

राजदर्शन लेभे—राजा से मुलाकात की। दर्शनानुग्रहमिच्छामि—दर्शन पाकर अनुगृहीत होना चाहता हूँ।

विपदुत्पत्तिमतामुपस्थिता, जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु —जो पैदा होता है, वह अवश्य मरता है।

चकित नृपस्य पार्श्वमुपेमि—मैं राजा के पास भयभीत होता हुआ जाता हूँ।

परोक्षे. परोक्षम्—पीठ पीछे। उर्वशी प्रत्यादेश श्रिय.—उर्वशी लक्ष्मी को मात कर देती है।

सकलवचनानामविषय-वर्णनविषयातिक्रात-मोघवर्णनप्रयत्न तत्स्थानम्—वह स्थान वर्णनातीत है।

ते कुलस्याधय —वे कुल के अभिशाप हैं।

इति समय कृत —ऐसा सौदा (शर्त) ठहरा था।

अपि च. अपर च—अतिरिक्त।

तस्मिन्नवसरे तेन धीर विक्रात—उस अवसर पर उसने वीरतापूर्वक व्यवहार किया। चित्ते अवधृ, मनसि कृ. अनुस्मृ—मन में धारण करना। शोकवशा मा गम —शोक मत कीजिए।

सीतादेव्या कि वृत्त—महारानी सीता का क्या हुआ?

फलागमे —फलों के बोझ से वृक्ष झुक जाते हैं। कृतनिश्चय, दृढनिश्चय, कृतसकल्प, विहितप्रतिज्ञ—तुला हुआ, कटिबद्ध। परस्परवधोद्यतौ—एक दूसरे को मारने पर तुले हुए।

आनदपरवश, आनन्देन विगतचेतन इव भूत्वा—आनन्द के मारे अपने आपे मे नहीं रह गया; अप्रास्ताविक, अप्रस्तुत, अप्रासगिक- अप्रकृतम् एतत्—यह तो प्रस्तुत विषय के बाहर है।

अस्ति मे विशेषोऽद्य—आज मेरी तबियत अच्छी है। अभिभू-अति रिच्—मात कर देना।

दुर्गम, दुर्ज्ञेय, दुर्बोध—जो समझ मे न आवे। आयाधिक व्यय करोति—वह अपनी आय से अधिक खर्च करता है। स श्रुतिपथम् अति- क्रात.-व्यतीत —जहाँ तक सुनाई पड़ सकता था, उसके आगे चला गया। गर्भेश्वर —जन्म से ही धनवान्।

न मनागपि, न स्तोकाशेनापि—जरा भी नहीं।

मृत्पिडबुद्धि —काठ का उल्लू।

समेत, सहत—एक साथ। आमन्नपरिचारक —अगरक्षक।

भिन्नोऽष्टधा विप्रसमार वश — कुटुम्ब आठ भागो मे विभक्त हो गया।

साहसे श्री. प्रतिवसति—लक्ष्मी वीर पुरुष के ऊपर कृपा करती है।

प्रभाता रजनी—दिन निकल आया। विच्छेदमाप कथाप्रबध — कथा में भङ्ग हो गया। सभ्या स्व स्व स्थान प्रतिजग्मु.—सभा विसर्जित हो गई। तस्यादृणो. प्रभातमासीत्—उसके नेत्रो के सामने ही दिन निकल आया।

किं बहुना—सक्षेप मे, बहुत कहने से क्या।

हर्ष रोमाचित, पुलकित, कटकित-तनु —प्रसन्नता के मारे उसके शरीर पर रोगटे खड़े हो गए।

तस्या सहसा प्रावर्तताश्रुधारा—वह फूट-फूटकर रोने लगी। सभूय प्रशसागिर उदतिष्ठन्—(लोगो के मुँहों से) प्रशसा फाट पड़ी।

अप्रस्तुत किमिति अनुमवीयते—क्यों गोलमोल बातें करते हो। ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवनिषेवण नेष्टम्, अध्रुवाद् ध्रुव वर, वरमद्य

कपोतो न श्वो मयूरः, वर तत्कालोपनता तित्तरी न पुनर्दिवसांतरिता मयूरी—नौ नकद न तेरह उधार।

अनुदिवस-दिन, दिने दिने—प्रतिदिन। शतश.—सैकड़ों। एकैकशः, आनुपूर्व्येण—एक एक करके।

प्रयत्नसवर्धित —बड़ी देखभाल से पाला पोसा हुआ। निपुणमन्विष्य—सावधानी के साथ खोजकर। अधुनाह वीतचित.—अब मुझे चिता नहीं। न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते—स्वेच्छाचारी पुरुष कलक की परवाह नहीं करता। प्रतिपात्रमाधीयता यत्न.—प्रत्येक पात्र की देखरेख की जाय।

प्रस्तुतविषये, प्रकृते—इस मामले में, वर्तमान मामले मे। तेन—यदि ऐसी बात है तो।

कि मिष्टमन्न खरसूकराणाम्—भैंस के आगे बीन बजावे, भैंस खड़ी पगुराय।

ज्वलनमुपगत-अग्निदीप्त-गृहम्—घर में आग लग गई। कर्मगृहीत, रूपाभिग्राहित, लोप्त्रेण गृहीत—कार्य करते हुए पकड़ा गया।

किन्नरमिथुन यदृच्छयाद्राक्षीत्—संयोगवशात् दो किन्नरो को देखा। घुणाक्षरन्यायेन—अकस्मात्, अनायास। स मया समापत्तिदृष्ट—मेरी उससे अकस्मात् भेट हो गई।

स्वभावो दुरतिक्रम —स्वभाव नहीं बदल सकता। क्षीर दधिभावेन परिणमते अथवा दधिभावमापद्यते—दूध दही मे परिणत हो जाता है।

हस्ते निक्षिप् या समर्पय्—सौंपना। अय जन कस्य हस्ते समर्पित - निक्षिप्त —यह पुरुष (मैं) किसके हाथ में सौंपा गया है?

समाश्वसिहि, धैर्य निधेहि हृदये—धैर्य धारण करो।

इत्थम् अथवा एव गते-सति—ऐसी परिस्थिति में। दुर्गत, दुर्दशापन्न, दुःस्थित—विपत्ति मे पड़ा हुआ। येन केनापि प्रकारेण—चाहे जिस [illegible] हो। यथावसर, यथाकाल—अवसर अथवा परिस्थितियों के अनुसार।

अतिभूमि गतो रणरणकोऽस्या —[illegible] को पहुँच गई है।

[illegible]—[illegible] है। [illegible] —[illegible] है।

६।

फलागमै—फलों के बोझ से वृक्ष झुक जाते हैं। कृतनिश्चय, दृढनिश्चय, कृतसंकल्प, विहितप्रतिज्ञ—तुला हुआ, कटिबद्ध। परस्परवधोद्यतौ—एक दूसरे को मारने पर तुले हुए।

आनन्दपरवश, आनन्देन विगतचेतन इव भूत्वा—आनन्द के मारे अपने आपे में नहीं रह गया; अप्रास्ताविक, अप्रस्तुत, अप्रासंगिक, अप्रकृतम् एतत्—यह तो प्रस्तुत विषय के बाहर है।

अस्ति मे विशेषोऽद्य—आज मेरी तबियत अच्छी है। अभिभू-अतिरिच्—मात कर देना।

दुर्गम, दुर्ज्ञेय, दुर्बोध—जो समझ में न आवे। आयाधिक व्यय करोति—वह अपनी आय से अधिक खर्च करता है। स श्रुतिपथम् अतिक्रांत-व्यतीत—जहाँ तक सुनाई पड़ सकता था, उसके आगे चला गया। गर्भेश्वर—जन्म से ही धनवान्।

न मनागपि, न स्तोकांशेनापि—जरा भी नहीं।

मृत्पिण्डबुद्धि—काठ का उल्लू।

समेत, सहित—एक साथ। आमन्नपरिचारक—अंगरक्षक।

भिन्नोऽष्टधा विप्रससार वंश—कुटुम्ब आठ भागों में विभक्त हो गया।

साहसे श्री· प्रतिवसति—लक्ष्मी वीर पुरुष के ऊपर कृपा करती है।

प्रभाता रजनी—दिन निकल आया। विच्छेदमाप कथाप्रबंध—कथा में भङ्ग हो गया। सभ्या स्व स्व स्थान प्रतिजग्मु·—सभा विसर्जित हो गई। तस्यादृशो· प्रभातमासीत्—उसके नेत्रों के सामने ही दिन निकल आया।

किं बहुना—संक्षेप में, बहुत कहने से क्या।

हर्षरोमांचित, पुलकित, कंटकित-तनु·—प्रसन्नता के मारे उसके शरीर पर रोंगटे खड़े हो गए।

तस्या सहसा प्रावर्तताश्रुधारा—वह फूट-फूटकर रोने लगा। सभूय प्रशंसागिर उदतिष्ठन्—(लोगों के मुँहों से) प्रशंसा फूट पड़ी।

अप्रस्तुत किमिति अनुमवीयते—क्यों गोलमोल बातें करते हो। ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवनिषेवणं नेष्टम्, अध्रुवाद् ध्रुव वर, वरमद्य

कपोतो न श्वो मयूर.. वर तत्कालोपनता तित्तरी न पुनर्दिवसांतरिता मयूरी—नौ नकद न तेरह उधार।

अनुदिवस-दिन, दिने दिने—प्रतिदिन। शतश.—सैकड़ों। एकैकशः, आनुपूर्व्येण—एक एक करके।

प्रयत्नसवर्धित.—बड़ी देखभाल से पाला पोसा हुआ। निपुणमन्विष्य—सावधानी के साथ खोजकर। अधुनाहं वीतचिंत.—अब मुझे चिंता नहीं। न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते—स्वेच्छाचारी पुरुष कलक की परवाह नहीं करता। प्रतिपात्रमाधीयता यत्न —प्रत्येक पात्र की देखरेख की जाय।

प्रस्तुतविषये, प्रकृते—इस मामले में, वर्तमान मामले में। तेन—यदि ऐसी बात है तो।

किं मिष्टमन्नं खरसूकराणाम्—भैंस के आगे बीन बजावे, भैंस खड़ी पगुराय।

ज्वलनमुपगत-अग्निदीप्त-गृहम्—घर में आग लग गई। कर्मगृहीत, रूपाभिगृहीत, लोप्त्रेण गृहीत—कार्य करते हुए पकड़ा गया।

किन्नरमिथुन यदृच्छयाद्राक्षीत्—संयोगवशात् दो किन्नरों को देखा। घुणाक्षरन्यायेन—अकस्मात्, अनायास। स मया समापत्तिदृष्ट —मेरी उससे अकस्मात् भेंट हो गई।

स्वभावो दुरतिक्रम —स्वभाव नहीं बदल सकता। क्षीर दधिभावेन परिणमते अथवा दधिभावमापद्यते—दूध दही में परिणत हो जाता है।

हस्ते निक्षिप् या समर्पय्—सौंपना। अय जन कस्य हस्ते समर्पित - निक्षिप्त —यह पुरुष (मैं) किसके हाथ में सौंपा गया है?

समाश्वसिहि, धैर्यं निधेहि हृदये—धैर्य धारण करो।

इत्थम् अथवा एवं गते-सति—ऐसी परिस्थिति में। दुर्गत, दुर्दशापन्न, दुःस्थित—विपत्ति में पड़ा हुआ। येन केनापि प्रकारेण—चाहे जिस तरह से भी हो। यथावसर, यथाकाल—अवसर अथवा परिस्थितियों के अनुसार।

अतिभूमिं गतो रणरणकोऽस्या —इस स्त्री की चिंता पराकाष्ठा को पहुँच गई है।

निमीलितं नरोत्तमप्रिया—राजा की प्यारी ने आँखें बन्द कर लीं। अद्य निर्वातं नभः—आज हवा बन्द है।

मृत्युमुखान्मुक्त—काल के गाल से बचा हुआ।

यद्भावि तद्भवतु—जो होना हो सो हो। यद्भावि तद्भवतु शुभमशुभं वा—चाहे अच्छा हो चाहे बुरा, जो होना हो सो हो। प्रकृतिमापद्, सञ्ज्ञां-चेतनां-लभ्-प्रतिपद्, प्रकृतौ स्था—होश में आना। आगामिनि सोमवासरे—आगामी सोमवार को।

तां सुखशयितं पृच्छ—उससे पूँछो कि नींद अच्छी आई या नहीं। रात्रावपि निकामं शयितव्यं नास्ति—रात को भी मैं आराम से नहीं सो सकता।

दीर्घिकावलोकनगवाक्षगता—एक ऐसी खिडकी पर बैठकर जहाँ से एक कुआँ दिखाई पड़ रहा था। आकृतिविशेषेष्वादरः पदं करोति—सुन्दर स्वरूप का आदर होता ही है। पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते—गुणों से सभी जगह लोग आकृष्ट हो जाते हैं। तनुवाग्विभवोऽपि सन्—यद्यपि मेरे पास भाषा-सम्पत्ति नहीं है। तं वाग्वश्येवानुवर्तते—उसको भाषा पर पूर्ण अधिकार है।

इदं वृत्तं लेख्य-पत्रं आरोपय, पत्रे निवेशय—इसको लेखबद्ध कर दो।

अस्माभिः सहैककार्याणां—जिन्होंने हमारा सहयोग दिया है।

सहाध्यायिन्—सहपाठी। समदुःखसुखः—सुख तथा दुःख का साथी।

अहमहमिकया प्रणामलालसाः—प्रणाम करने की लालसा मे एक दूसरे के साथ होड़ लगाते हुए।

अभिनन्द्य वक्ति—अभिनन्दन करके कहता है। च्यवनाय मां प्रणिपातय, मदीयो नमस्कारो वाच्यः—च्यवन जी से मेरा प्रणाम कहना। उपचारपद—लोकाचार (शिष्टाचार) के वाक्य।

स नाद्यापि पर्यवस्थापयति-सस्तभयति आत्मानम्—वह अब भी अपने होश में नहीं आ रहा है।

महदपि राज्यं न मे सौख्यमावहति—मेरा बड़ा राज्य भी मुझे सुख नहीं पहुँचाता।

अपि रक्ष्यते त्वया रहस्यनिक्षेपः—क्या आप ने गुप्त बात को सुरक्षित रक्खा है। विश्वास-विश्रम्भ-भूमिः स मम—वह मेरा विश्वास-पात्र है। विश्रम्भस्थाने मन्—गुप्त मामलों में विश्वास करना।

प्रसवकाल, प्रसवावस्था—किसी स्त्री का प्रसवकाल (बच्चा जनने का वक्त)। प्रसूता या प्राप्तप्रसवा तद्भार्या—उसकी स्त्री सोहर में है।

दिष्ट्या सुतमुखदर्शनेन आयुष्मान्वर्धते—अपने पुत्र का मुख देखने पर आप को बधाई देता हूँ।

प्रसन्न -उपपन्न -ते तर्क—आप का अनुमान ठीक है।

अग्निसात्कुरु, ज्वलनाय समर्पय—अग्निदेव को सौंप दो।

तस्याचरणं वचसा न विसंवदति—उसका आचरण उसकी बातों के विरुद्ध नहीं है। स्वार्थाविरोधेन—अपने मतलब का पूरा पूरा ध्यान रखते हुए। अभिरूपभूयिष्ठा परिषद्—ऐसी परिषद् जिसमें अधिकतर विद्वान् लोग हों।

तस्य वचसि दुराशयं मा कल्पय-आरोपय—उसके वचनों में बुरी भावनाओं का आरोप न कीजिए।

तत्परतयैव वेदान्तवाक्यानि योजयति—वेदान्त-वाक्यों को उसी से सम्बन्धित बताते हैं।

जनहितमपि तावत् त्वया चिन्तनीय-मनसि कार्यमेव-अवेक्षणीय—आपको जनता के हित का भी ध्यान रखना चाहिए। स्वहितपरायणो मा भू—केवल अपना ही हित मत देखिए। सांवत्सरिकै सवाद्यताम्—ज्योतिषियों से परामर्श ले ली जाय।

आ-समा-श्वस्—धैर्य धारण करना । धैर्य आस्था, धैर्य अवलम्ब् अवष्टभ् , धैर्यविष्टभं कृ—साहस धारण करना ।

कथाप्रसंगेन, कथायोगेन—वार्तालाप के सिलसिले मे । कालक्रमेण, गच्छता कालेन, दिनेषु गच्छत्सु, गच्छति काले—कुछ समय में । गत्यतराभावात्, अनन्यगतिकत्वात्—दूसरा कोई चारा न होने से ।

स त्वत्तो लब्धोदयः—उसका अभ्युदय आप ही की बदौलत है ।

एते सकल्पा मम प्रादुरासन् अथवा आसीत्-समभून् मे मनसि—मेरे मन में ये विचार आए । मम दर्शनपथमागत , नयन-विषयमवतीर्ण —वह मुझे दिखाई पडा । व्यत्यस्तभुज —भुजाओ को एक दूसरे पर तिरछा रख कर । व्यत्यस्तपादः—टाँगों को टाँगों पर तिरछा रख कर ।

सर्वेऽस्य प्रयत्ना. सफलता ययु -फलिता —उसके सारे प्रयत्न सफल हो गए ।

आचारपुष्पग्रहणार्थम्—लोकाचारानुसार फूलों को लेने के लिए । आचार प्रतिपद्यस्व—लोकाचारानुसार प्रणाम करो ।

मर्मच्छिद्, मर्माणि कृतत्—हृदय का भेदना । मद्वचनमाक्षिप्य—मेरी वात को वीच ही मे काटकर ।

तस्योत्साहभग मा कृथा.—उनके उत्साह को भङ्ग मत करो ।

आतुरो जीवितसशये वर्तते—रोगी की हालत बहुत खतरनाक है ।

अध तम , सूचिभेद्य तम.—घना अंधकार । सतमस—सब तरफ छाया हुआ अन्धकार ।

हाहानिनादेन दिशो वधिरयत:—"हा हा' की आवाज से दिशाओ को वहिरा करने वाले ।

स्वासुभिर्भर्तुरानृण्य गतः—प्राण देकर स्वामी से उऋण हो गया ।

पश्चिमे वयसि, परिणतवयसि—वृद्धावस्था मे ।

दूरगतमन्मथा सा, अतिभूमिं गतोऽस्या अनुराग.—उसका बहुत गहरा प्रेम हो गया है ।

मम विकारः परिच्छेदातीत.—मेरी मनोव्यथा वर्णनातीत है ।

एकस्य मूल्येन व्यय. शुध्यति, सर्वा व्ययशुद्धि सपद्यते—एक के मूल्य से प्राप्त आय से सारा खर्च चलता है ।

वैद्ययत्नपरिभावी गदः—वैद्यों के प्रयत्नों को विफल करने वाला रोग।

दीर्घसूत्री विनश्यति—बहुत देर लगाने वाला नाश को प्राप्त होता है।

वसुधा तस्य हस्तगामिनीमकरोत्—पृथ्वी उसके हाथों में सौंप दी। लेख तस्य हस्त प्रापयिष्यामि—पत्र को उसके हाथ में दूँगा।

सर्व दैवाधीन-आयत्त—सब कुछ भाग्याधीन हुआ करता है। मया प्रायोपवेशन कृतं विद्धि—निश्चय समझिए मैं अनशन करके मर जाऊँगा। असशय, नियत, नून, खलु—अवश्यमेव। निमित्तसव्यपेक्ष—किसी कारण के ऊपर निर्भर करने वाला।

विषण्ण, मुक्तावयव—खिन्न, दुःखित, उदास।

सर्वजनस्योपहास्यतामुपयाति—सभी लोगों से हँसे जाते हैं।

तस्य श्रीर्वचनानामविषया—उसका सौन्दर्य वर्णनातीत है।

सविस्तर, विस्तरेण, विस्तरतः-शः, सुविस्तर—विस्तारपूर्वक।

सा पुपोष लावण्यमयान् विशेषान् अथवा मनोहर वपुः, प्रचीयमानावयवा—उसके सुन्दर सुन्दर अंग बढ़ते गए।

क्षुण्णाद्वर्त्मनो रेखामात्रमपि न व्यतीयु—पीटी हुई लकीर से बाल भर भी बाहर नहीं गए।

नाहमात्मविनाशाय वेतालोत्थापन करिष्यामि—अपने ही नाश के लिए मैं पिशाच को नहीं उठाऊँगा।

पुत्रसङ्क्रान्तलक्ष्मीका, गुणवत्सुतरोपितश्रिय—पुत्रों को सम्पत्ति का सारा भार देकर।

लुप्तार्थवचन— ऐसी बात जिसका नाम-निशान न रह गया हो। अग्राम्य वैर—गहरी शत्रुता। स लोष्टघात हत—ढेला मार-मार कर वह मार डाला गया।

अव्यतिरिक्तेयमस्मच्छरीरात्—यह मेरे शरीर से भिन्न नहीं है।

विषमपदविमर्शिनी टीका—कठिन-कठिन पदों को स्पष्ट करने वाली टीका।

नास्त्यत्र प्रत्यय मे—इसके बारे में विश्वास नहीं है।

अलमप्रासगिकेन अप्रसगेन वा, प्रकृतमेवानुसंधीयतां—असम्बद्ध बातें न करो।

चक्षुर्विपयातिक्रांतेपु-नयनपथातीतेपु-अतरितेपु-अदृष्टिगोचरेपु- अत-र्हितेपु-कपोतेपु—कबूतरों के गायब हो जाने पर।

कर्तव्यानि दु.खितैर्दु ःखनिर्वापणानि—दुःखित व्यक्तियों को चाहिए कि अपने दुःखों की शान्ति कर लें।

शिष्य उपदेशं मलिनयति—शिष्य उपदेश की बदनामी कराता है।

प्रकृत-प्रस्तुत अनुसृ अथवा अनुसधा—विचाराधीन विपय के तरफ आना।

प्रस्ताव., प्रस्तुत प्रकृत-विपय., प्रस्तुत, प्रकृत—विचाराधीन विपय।

तपस्विव्यजनोपेता, तापसच्छद्मना, तापसरूपधारिण—तपस्वी का वेप धारण कर।

निष्कारणो वधु—निष्प्रयोजन मित्र।

मम द्रव्यस्य कथ त्वया विनियोग. कृत.—मेरे द्रव्य को आप ने किस प्रकार व्यय किया।

अह त्वदधीनोऽस्मि—मैं आपके अधीन हूँ। अयमर्थस्त्वदायत्त, अत्र भवान् प्रभवति—यह मामला आपके अधीन है। कलहशील, कलहकाम—झगड़ा करने वाला।

किं वो विवादवस्तु—आप लोगों का झगड़ा किस बात पर है। वादग्रस्तोर्थ.—झगड़े वाला विपय।

अतिथिविशेप:—सम्माननीय अतिथि।

एव तावदाक्षिपामि, अन्यतः सचारयामि—मैं इस प्रकार उसके विचारों को दूसरी तरफ लगाऊँगा।

अतर्भेदाकुल गृह—अपने में ही फूटा हुआ घर।

अपि कुशल-शिव भवत.—आप का कुशल तो है? त्वा सुख-कुशल पृच्छति—आपका कुशल पूछता है। देवीं सुख प्रष्टुमागता—वह रानी का कुशल-समाचार पूछने आई हैं। अल निर्बंधेन—हठ मत करो। किमस्माक स्वामिचेष्टानिरूपणेन—स्वामी की चेष्टाओं की देखरेख करने से हमें क्या प्रयोजन!

मनो मे सशयमेव गाहते अथवा आशंकते—मेरा मन अब भी शका में पडा है।

नतोन्नतभूमिभाग, उत्खातिनी भूमि—ऊँची-नीची जमीन। पातोत्पात—उत्थान-पतन। नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण—जिस प्रकार गाडी का पहिया ऊँचे और नीचे को जाता-आता रहता है, उसी प्रकार मनुष्य के जीवन में उत्थान-पतन हुआ करते हैं। निपात्यतां-उच्छेद्यताम्—असौ प्रजापीडकः—अत्याचारी का नाश हो।

परिणतप्रायमहः—दिन ढल रहा है, सूर्यास्त होने वाला है।

त्वया स्वहस्तेनागारा कर्षिता—तुमने तो अपने हाथों ही सत्यानाश कर डाला।

द्वीपिचर्मपरिच्छन्न गर्दभ—व्याघ्र की खाल से ढका हुआ गदहा।

चापलाय प्रचोदितः—चपलता करने के लिये प्रेरित होकर। अविरलावारिधारासपातः, पटुर्धारासार—निरन्तर जल-धारा। किमुद्दिश्य भवान्भाषते—आप किस बात की तरफ लक्ष्य करके कह रहे हैं।

मा भवानगानि मुचतु—निराश मत होइए। मुक्तैरवयवैरशयिपि—अग-अंग शिथिल हो जाने पर मैं सो गया। स्रसते देहवध—सारा शरीर शिथिल हो रहा है।

जलबिंदुनिपातेन क्रमश. पूर्यते घट—बूँद-बूँद सो घट भरै। कन-कन जोरे मन जुरै।

सह्यितामिय कथा—इस विषय को छोडिए। अवसन्नप्रायाणि मे गात्राणि, सीदति अगानि—मेरे अग-प्रत्यंग शिथिलप्राय हो रहे हैं।

शिखी केकाभिस्तिरयति मे वचन—मोर अपनी बोली से मेरी आवाज को दबा देता है।

श्रवणगोचरे तिष्ठ—ऐसे स्थान पर खडे होओ (रहो) जहाँ बात सुनाई पड सके।

महति प्रत्यूषे—बडे प्रात काल।

न परिहसामि, नायं परिहासस्य समयः—हँसी नहीं कर रहा हूँ। परमार्थेन ग्रह् —सच्चा मानना।

लब्धं स्वास्थ्यं मया, अहं निर्वृतः, वीतचिंतः—मैं स्वस्थ-चित्त हूँ। जातो ममाय विशदः प्रकामं अन्तरात्मा—मेरी आत्मा पूर्णतया स्वस्थ है। यथाकाम, पर्याप्त, प्रकामं—स्वेच्छानुसार। सुखसुप्त—सुख-पूर्वक सोया हुआ।

फल्, मूर्च्छ्—प्रभाव करना। मारुतस्य रहः शिलोच्चये न मूर्च्छति-वायु का वेग पर्वत के ऊपर कुछ भी प्रभाव नहीं कर सकता। मूर्च्छन्त्यमी विकारा ऐश्वर्यमत्तेषु—प्रभुता से मतवाले पुरुषों के ऊपर ये विकार बड़ा प्रभाव करते हैं। निशि मूर्च्छिता तमसा—रात्रि में घना होने वाला अंधकार। वज्र तपोवीर्यमहत्सु कुण्ठम्—घोर तपस्या करने वालों पर वज्र कुछ भी प्रभाव नहीं डालता। इति, एतदभिप्रायः अर्थत, वस्तुतः—असल मे।

नृपस्तस्यां बद्धभाव, कृतानुराग, प्रीतिं-भाव वबध—राजा उससे प्रेम करने लगा।

शृणु मे सावशेष वच.—मेरी बात अन्त तक सुनो। कल्याणोदर्क-स्वत-भविष्यति—इसका परिणाम अच्छा होगा।

अलमतिविस्तरेण—बहुत विस्तार मत करो। अलं-कृतं-परिहासेन—हँसी न करो।

कुतूहलेन तस्य चेतसि पद कृत—उसके हृदय में उत्सुकता पैदा हो गई।

मानमर्हति, मान्य., पूज्य:—वह सम्माननीय है। स पुरस्कारमर्हति—वह प्रथम पूजे जाने योग्य है।

परसुखासहिष्णु—दूसरों के सुख से ईर्ष्या करने वाला। ते परस्परयश.-पुरोभागा:—वे एक दूसरे की कीर्ति से ईर्ष्या करते हैं।

तुलया धृ—बराबर समझना। तत्कार्यं साधयितुमल स:—वह इस कार्य को करने में समर्थ है।

प्रतिशासनम्—संदेशा लेकर भेजना।

बधनभ्रष्टो गृहकपोतश्चिल्लाया मुखे पतित—कुआँ से बचकर वह खाई में जा गिरा। कथ कथमपि मुक्त—बाल बाल बच गया।

सुरक्षिता तां प्रेषय—उसको सुरक्षित करके भेजो।

अत्यतविलुप्तदर्शनः—सर्वदा के लिए अगोचर या लुप्त हो गया। एकातनष्ट—सदा के लिए नष्ट हो गया।

असन्निवृत्त्यै गतः, अत्यतग·—सदा के लिए चला गया। अप्रबोधाय सा सुष्वाप—वह सदा के लिए सो गई।

अब्रह्मण्य, अत्याहित—महान् अनर्थ हो गया।

स सत्कारो मम मनोरथानामप्यभूमिः—स्वागत आशातीत हुआ। मेरी आशाओं से भी बढ़कर सत्कार हुआ।

उत्सर्गा सापवाद —नियमों में अपवाद हुआ करते हैं। अपवादैरिवोत्सर्गा कृतव्यावृत्तय —सामान्य नियम अपवादों से नियमित रहते हैं। अव्यभिचारि तद्वच , इति लोकवाद. न विसवादमासादयति—इस उक्ति में अपवाद नहीं है। प्रतिप्रसवः—अपवाद का भी अपवाद।

शिर.शूलस्पर्शनमपदिशन्—सिर-दर्द का बहाना करता हुआ। अनामयापदेशेन—बीमारी का बहाना करके।

स्वनियोगमशून्यं कुरु, अनुतिष्ठात्मनो नियोग—अपना काम करो।

असौ क्रमाद्यौवनभिन्नशैशव·—उसका शैशव धीरे-धीरे युवावस्था को प्राप्त हो गया। हर्षोत्फुल्लनयन—हर्ष के कारण उत्फुल्ल नेत्रों वाला।

भवतात्मा क्लेशस्य पदमुपनीतः—आपने अपने को क्लेश में डाल दिया। स कातर इति वाच्यता गत — 'वह कायर है'' ऐसी बदनामी हुई। सा तण्डुलान् सूर्यातपे दत्तवती, आतपायोज्झितवती—उसने चावलों को घाम में फैला दिया।

कियताप्यशेन, ईषत्, मनाक्—कुछ अंश तक। सर्वथा—सब प्रकार से।

लोकदृष्ट्या—सर्व साधारण जनता की दृष्टि से। अक्षिगतोऽह तस्य—मै उनकी आँखों की किरकिरी हूँ।

मुखामुखि. सम्मुख—आमने सामने। पूर्वाभिमुख गृह—ऐसा घर जिसका मुँह पूर्व की ओर हो। पूर्व की ओर द्वार हो जिस घर का।

वस्तुत.. तत्त्वत —असल में। वस्तुवृत्तेन, परमार्थत , तत्त्वत —असल में।

सकटेष्वविषण्णधीः—सकट के समय जिसकी बुद्धि व्यथित न हो। फले विसवदति—फल देने में असमर्थ है। रमणीयोऽवधिर्विधिना विसवादित — भाग्य ने सुन्दर अवधि को असफल, क्षीण कर दिया।

तस्य धैर्यं न हीयते, न स्खलति—उसका धैर्य क्षीण नहीं होता। पुत्राभावे—पुत्र के अभाव में। तस्य स्मृतिलोप सजात —उसकी स्मरण-शक्ति लुप्त हो गई। सन्ततिविच्छेदः,-लोप·—सन्तान का न होना।

अनिर्वेदः श्रियो मूल—दुःखी न होना लक्ष्मी का मूल है।

सुदिन—अच्छा दिन !

पातोत्पातौ, व्यसनोदयौ—उत्थान तथा पतन। म लक्ष्यच्युत-सायकोऽभूत्—उसका बाण निशाने से चूक गया। तव महिमानमुत्कीर्त्य वचः सह्रियते—आप की महिमा वर्णन करने में वाणी असफल हो जाती है।

लुप्तप्रतिज्ञ, असत्यसन्ध, भग्नप्रतिज्ञ—अपनी प्रतिज्ञा को न पालन करने वाला।

अतिपरिचयादवज्ञा—अत्यन्त घनिष्ठता होने से अपमान होने लगता है।

को वृत्तातस्तत्रभवत्या.—श्रीमती जी का क्या हाल है !

नात्र मुनिर्दोप ग्रहीष्यति—मुनि जी इसमें दोष न निकालेंगे।

दृष्टदोपा मृगया—शिकार के दोष विदित हैं।

सहृदय., सचेताः—सहृदय, भावुक चित्त वाला। सचेतस कस्य मनो न दूयते—किस कोमल-हृदय व्यक्ति का मन दु खी नहीं होता।

आत्मान मृतवत्सदर्शयामास—अपने को मारा हुआ सा दिखला दिया। कृतककोप कृत्वा—झूठा गुस्सा करके, गुस्से का बहाना करके। प्रसुप्तलक्षण, व्याजसुप्त, लक्षसुप्त—सोने का बहाना करके।

पर्याप्तमाचामति—पेट भर पीता है।

तै. सोऽपराधी स्थापित.—उन लोगों ने उसे अपराधी ठहराया।

उदार.-प्रथमः-कल्पः—अच्छा (सुन्दर) प्रस्ताव।

सुश्लिष्टमेतत्—यह ठीक जँचता है।

मन्मुखासक्तदृष्टि.—मेरे मुह की तरफ दृष्टि लगा कर। आसक्त-बद्ध-दृष्टिः—टकटकी लगाकर । स्तिमित-अनिमेष-लोचन—निश्चल दृष्टि से। मनो निष्ठाशून्य भ्रमति—चञ्चल मन भ्रमता रहता है।

रध्रान्वेषिन्, छिद्रान्वेषिन्—दोष ढूँढने वाला।

सप्तभमिक प्रासाद.—सात मजिल वाला महल।

हस्तौ समानीय, अंजलिं बद्ध्वा, कृताजलि., सां (प्रा) जलि—हाथ जोड कर। भुजाभ्या तामापीड्य—दोनों भुजाओं से आलिंगन करके।

महता पदमनुविधेयम्—बड़ों के मार्ग का अनुसरण कीजिये। पदवी प्रतिपद्य—मार्ग का अनुसरण करता हुआ। पुरस्कृतमध्यमक्रम —बीच के मार्ग का अनुसरण करके। दु ख दु खानुबधि,विपद् विपदमनुबध्नाति—विपत्ति एक के बाद दूसरा आती जाती है। अत किं प्राप्नोति—इससे क्या निष्कर्ष निकलता है। परस्तादवगम्यते—जो इसके बाद आवेगा, वह समझ लिया गया। ततस्तत —आगे कहिए। तद्यथा—वह इस प्रकार है।

शात पापम्, प्रतिहतम् अमगलम्—ईश्वर न करे।

स्वनामत्याग करोमि—अपना नाम कहाना त्याग दूँगा।

तीर्ण-पूर्ण-प्रतिज्ञ, पालितसगर, सत्यप्रतिज्ञ, सत्यव्रत, सत्य-सध —प्रतिज्ञा पालन कर चुका हुआ।

अधुना मु च शय्याम्—अब बिस्तर छोड दीजिये।

युद्धाय सनद्धा अथवा बद्धपरिकरास्ते—उन लोगों ने युद्ध के लिए कमर कस ली है।

शुचो वश मा गम, शोकाधीन मा भू, वैक्लव्य मावलम्बस्व—शोक मत करो।

ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा—ब्रह्ममय तेज से चमकता हुआ सा।

इति ख्यात , श्रुतनामधेय , दत्तसज्ञ —वह इस नाम से प्रसिद्ध है। उमाख्या सा जगाम—वह उमा नाम से प्रसिद्ध हुई।

कि तस्या दृष्टया—लाल रग सफेद कर- उसका दर्शन करने से क्या लाभ। [illegible] आदि—सब साधारण जनता से भी।

अनन्तर चेतसि नोपदेश, अपलब्धपदो हि—वह मृत्यु के मुख में उपदेश का कुछ भी ध्यान न रहा।

प्रात कर लेने की

यह सामर्थ्य। ममाशय सम्यग्गृहीतवानसि—आपने मेरा अभिप्राय पूर्ण रूप से समझ लिया है।

आनन्दस्य परा कोटि-काष्ठाम्-अधिगत —वह बहुत प्रसन्न हुआ।

रोषात् दन्तैर्दन्तान्निष्पिष्य—क्रोध के मारे दाँतों को पीसता हुआ।

यौवनपदवीमारूढ., प्राप्तयौवन., यौवनदशामापेदे—वह युवावस्था को प्राप्त हो गया। वत्सतर. महोक्षता स्पृशति, महोक्षभाव श्रयति—बछवा बड़ा बैल हो जाता है।

तस्या आबद्धधारमश्रु प्रावर्तत, उद्वाष्पे नयने जाते—उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली।

चौर्यवृत्ति—चोरी की आदत। ज्ञातदु.ख, दु खशील, परिचितक्लेश—विपति भोगने में अभ्यस्त।

रेखामात्रमपि—बाल भर भी।

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पडितः—सर्वस जाता देखि करि आधा लेय बँटाय।

नियुद्ध, बाहुयुद्ध—मल्ल-युद्ध। एकत.-अन्यत., एक-अपर च-एक तरफ तो यह दूसरी तरफ। तु, तावत्—इसके विपरीत। सर्वथा, सर्वत्र—सवत्र। दत्तहस्तावलव—हाथ बँटा कर। पर परया आगम्—परपरा से चला आना।

त्रिशङ्कुरिवान्तरा तिष्ठ—त्रिशंकु की तरह बीच ही में लटके रहो।

आवेदयंति प्रत्यासन्नमानद, अग्रजातानि शुभानि निमित्तानि—होनहार बिरवान के होत चीकने पात।

अहो दारुणो दैवदुर्विपाक.—हाय रे दुर्भाग्य। प्रबलक्षुधावसन्न—भूख से खूब व्याकुल।

तव मुखं कमल श्रयमुद्वहति-आहरति-कलयति—तुम्हारे मुख में कमल की शोभा है। ने वाला।

सशयितजीवित —अपने पीता है।

धुरि कीर्तनीय, नत.—उन लोगों ने उसे अपराधी ठहराया जाना। म ता.

सर्वेषां धुरि-मूर्ध्नि-कल्प.—अच्छा (सुन्दर) प्रस्ताव।

वसिष्ठपुर.सरा:-प्यह ठीक जँचता है।

व्रणविरोपणं तैलम्—फोड़े को अच्छा करने वाला तेल।

सुस्थोऽसौ, कुशलमस्य—वह कुशल-पूर्वक है। पूर्ववत्-प्रकृतिस्थः समजायत—पहले की तरह स्वस्थ हो गया।

किमस्मान् संभृतदोषैरधिक्षिपथ—हम लोगों के ऊपर लाञ्छन क्यों लगाते हो?

इति कर्णपरम्परया श्रुतमस्माभिः—हम ने लोगों के मुँहों से यह बात सुनी है।

सोत्साहं, सर्वात्मना—पूरे दिल से। सर्वात्मना तस्मिन्कर्मणि स व्यापृतः—वह तन-मन से इस काम में लगा है। यथेच्छं, पर्याप्तं, प्रकामं, निकामं—अपनी इच्छा भर।

दीर्घ-स्थूलस्थूलं निश्वस्य—बड़ी गहरी साँस लेकर।

भूस्वर्गायमानमेतत्स्थलं, भूलोकगतः स्वर्गः—यह पृथ्वी पर स्वर्ग है।

अहमनुपदमागत एव—मैं तुम्हारे पीछे-पीछे अभी आता हूँ। उद्दामवल्गु—नौ दो ग्यारह हो जाना।

विना पुरुषकारेण दैवं न सिध्यति—परमात्मा उनकी सहायता करता है, जो अपने आप अपनी सहायता करते हैं। का गतिः, किमन्यच्छरणम्—दूसरा क्या चारा है।

इदं बीभत्समेवाग्रतो वर्तते—यह सामने बड़ा बीभत्स दृश्य है।

स त्वां बहुमन्यते—वह आप को बहुत मानते हैं।

इषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले—बाण हिलते-डुलते हुए लक्ष्य को वेध देते हैं।

का अथवा कियती मात्रा तेषां मम, तानहं तृणाय मन्ये अथवा तृणीकरोमि—मैं उन्हें तृण बराबर समझता हूँ। वाचंयमो भव, वाचं नियच्छ, तूष्णीं-जोषम् आस्स्व—जबान सम्भालो। सर्वगामी-अव्यभिचारी अयं नियमः—यह नियम सर्वत्र लग जाता है। मुञ्चन्—छोड़ देते हुए। रागः शुक्लपटे स्थायीभवति—लाल रंग सफेद वस्त्र पर खूब पक्का पड़ जाता है। स लोकस्य मन आदत्—सब साधारण जनता के मन पर उसका पूरा प्रभाव था। तस्मिन्नेतर चेतसि नोपदेशः अपलब्धपदो हृदि—उसके ... उपदेश का कुछ भी प्रभाव न पड़ा।

तद्वच. तस्य हृदयमर्मास्पृशत्—वह बात उसके अन्त.करण पर असर कर गई।

चतुरः शशकान् विश्वासस्थाने वृत्वा—चार खरगोशों को जमानत के तौर पर रख कर।

मानुषीं गिरमुदीरयामास—मनुष्य की सी बोली बोला।

इति राज्ञां शिरसि वामपादमाधाय—इस प्रकार राजाओं को नीचा दिखा कर।

ब्रह्मसायुज्य प्राप्त., ब्रह्मलीन, ब्रह्मभूय गतः—ब्रह्म में लीन हो गया।

दुर्दैव, दुर्भाग्य, मन्दभाग्य, दैवविपर्यास., दुर्विपाकः—दुर्भाग्य।

अस्मार्तकालात्—युगों से, बहुत प्राचीन काल से।

स महति जीवितसंशये अवर्तत—वह बड़े भारी मौत के खतरे में था।

अलं सेवया (स्नेहभणितेन), मध्यस्थतां गृहीत्वा भण—चापलूसी न करो, न्यायपूर्वक बोलो।

उन्नमत्यकालदुर्दिनं—असमय का तूफान आ रहा है। अनावृष्टिः संपद्यते लग्ना—अकाल (सूखा) पड़ने वाला है।

निर्बन्धपृष्ट अथवा पुन· पुनश्चानुबध्यमान स जगाद सर्वं—हठ-पूर्वक पूछे जाने पर उसने सब कुछ बता दिया।

जानकी करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव—जानकी करुण रस की साक्षात् अवतार है।

वाच्यता याति, दोषभाजन-दोषभाक्-दोषपात्रं-भवति—वह कलङ्क का पात्र बन रहा है।

किं कथ्यते श्रीरुभयस्य तस्य—उस दम्पती की शोभा अवर्णनीय है।

संभावनीयानुभावास्याकृति.—उसके स्वरूप से उसके प्रताप का अनुमान लगाया जा सकता है। आकृतिरेवानुमापयत्यमानुषता—उसका स्वरूप ही बता देता है कि वह मनुष्य-योनि से परे है।

अधरोत्तरव्यक्तिर्भविष्यति—स्पष्ट हो जायगा कि कौन बड़ा है, कौन छोटा है। ओजस्वितया सा न परिहीयते शच्या—तेज में वह शची से कम नहीं है। न प्रतिच्छन्दात्परिहीयते मधुरता—उसकी शोभा चित्र में कम नहीं है।

अमी विनोदनोपाया. सन्दीपना एव दुःखस्य —ये विनोद तो दुःख को और भी बढ़ाते हैं।

दर्पाध्मात, मदोद्धत, उत्सिक्त—घमड से मतवाला।

निद्रावश, निद्रा-विधेय—नीद के वशीभूत। मूढः परप्रत्ययनेय-बुद्धि —मूढ़ पुरुष के मन पर दूसरों के विश्वासों का प्रभाव जम जाता है।

पुरुषोत्तमे इति भाणितव्ये—पुरुषोत्तम ऐसा कहने के बजाय। अध्ययने आरब्धव्ये किमिति क्रीडसि—अध्ययन आरम्भ करने के बजाय तुम खेलते क्यों हो। हर्षस्थाने अल विषादेन—प्रसन्न होने के बजाय दुखी न हो।

परोपकरणीकृत-भूत—दूसरों का सधान बन कर। उपकरणीभावमायात्येवविधो जन —इस प्रकार के लोग सहायक साधन बन जाते हैं।

चक्रवृद्धि —ब्याज दर ब्याज। सरला वृद्धि.—साधारण ब्याज। पचकेन शतेन, पचोत्तर शत—पाँच रुपया सैकड़ा दर से। दृष्टं युष्माभि. कथारसस्याक्षेपसामर्थ्यम्—आपने देख लिया कि कथा के रस ने किस प्रकार तुमसे विषयान्तर करा दिया। स्वार्थपर, स्वार्थदृष्टि—स्वार्थ को देखने वाला। अतिरमणीय कथावस्तु—कथा का विषय अत्यन्त रमणीक है। पक्षपातिनौ आवामनयो·—हम दोनों इन दोनों में पक्षपात रखते हैं।

न चेदन्यकार्यातिपात —यदि इस कार्य से अन्य कर्तव्यों में बाधा न पड़े। अव्यापारेषु व्यापार स करोति—वह उन मामलों में हस्तक्षेप करता है जिनसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं।

मैनमतरा प्रतिबध्नीत—उसे मत टोको।

काले काले, अतरा अतरा—समय समय पर।

श्रमसहिष्णु, जितश्रम—थकावट सहने का अभ्यासी।

नायमेकान्तो नियम —यह ऐसा नियम नहीं है जो बदलता न हो।

रामस्य दैवदुर्नियोग कोपि—यह राम का दुर्भाग्य था।

परिहासविजल्पित, नर्मभाषित —हँसी में कहा गया हुआ।

अध्वसजातखेदात्—राह की थकावट के कारण। उत्थाय पुनरवगन्—उठ के फिर राह आरम्भ की। समाहृतान्योऽध्वा—यह केवल एक हस्ते की राह है।

स्वगृहनिर्विशेषमत्र वस—यहाँ अपने घर के समान रहो।
स्वपुत्रनिर्विशेषं सम्वर्धित—साक्षात् अपने पुत्र के समान पाला हुआ।
जानुभ्यां अवनौ गम् अथवा पत्— घुटने टेकना। जानुदघ्नद्वयम-
मात्र—घुटने तक गहरा।
भ्रकुटिं बन्ध या रच्, भ्रुवौ स कुच् या भिद्—भौं सिकोड़ना।
बुद्धिर्यस्य बल तस्य—बुद्धि ही बल है। तदाख्यया भुवि पप्रथे,
तदाख्या जगाम —उस नाम से विख्यात हुआ।
चिंताशतैर्बाध्यमान-अभिभूत—सैकड़ो चिन्ताओं से पीड़ित।
प्रतस्थे स्थलमार्गेण अथवा स्थलवर्त्मना—स्थल से रवाना हो गया।
अलसेक्षण—अलसाई हुई आँखों वाला।
एष ते जीवितावधि. प्रसाद —यह वार्ता तुम्हारी जिन्दगी भर चलेगी।
कतिपयदिवसस्थायिनी यौवनश्री —युवावस्था की शोभा केवल थोड़े
दिनों रहती है। कालांतरक्षमा माला—बहुत देर तक टिकने वाली माला।
अर्गलानिरुद्ध पक्षद्वार—पक्षद्वार अर्गला से निरुद्ध था।
किमिति चिरायित त्वया, वेलातिक्रम कृत —तुमने देरी क्यों की।
मुहूर्त तत् आस्तां, तिष्ठतु तावत्—थोड़ी देर इसे रहने दो।
विषयसुखनिरतो जीवितमत्यवाहयन्—विषय-वासनाओं से रहित
जीवन बिताया। चित्रकूटयायिनि वर्त्मनि—चित्रकूट जाने वाले मार्ग में।
अय पथा नदीमुपतिष्ठते—यह रास्ता नदी को जाता है।
अनुदिवम परिहीयसेऽङ्गै —तुम प्रतिदिन दुबले होते जा रहे हो।
मदलेखया दत्तहस्तावलवा—मदलेखा की भुजाओं पर टेक लगा कर।
वामहस्तोपहितवदना—अपना मुँह अपने बाएँ हाथ पर रख कर।
त्र्यवरा. साक्षिणो ज्ञेयाः—कम से कम तीन गवाह होने चाहिए।
अस्मास्ववहीनेषु—हम लोगों के पिछड़ जाने पर। शान्ते पानीयवर्षे—
वृष्टि शान्त हो जाने पर।
सुखमुपदिश्यते परस्य—दूसरे को उपदेश देना बड़ा सरल है।
लब्धावकाश, प्राप्तावकाश, निर्व्यापार, लब्धक्षण—फुरसत में।
परित्रायस्वैनां, मा कस्यापि तपस्विनो हस्ते पतिष्यति—इसकी
रक्षा करो। कहीं ऐसा न हो कि यह किसी तपस्वी के हाथ में पड़ जाय।

भूमिसात्कृ—जमीन के बराबर कर देना। दरिद्रसमानतां नीत-गमित—गरीबों के समान कर दिया गया।

मनुष्या. स्खलनशीला.—मनुष्य से गलती होती ही है।

यदत्रावसरप्राप्त तत्र प्रभवति भवती—श्रीमती जी को पूर्ण स्वतंत्रता है कि अवसर के उपयुक्त जो चाहें करें। वधे मोचे चाधुना सा ते प्रभवति—वह आप को रोकने अथवा छोड देने में पूर्णत स्वतन्त्र है।

सर्वथा त्वमेवात्र दोषभाक्—इस में आप ही सब प्रकार से दोषी हैं। सखीगामी अय दोष —यह दोष मेरी सखी का है।

प्राणयात्रा-धारण-रक्षण—जीवन का अवलम्ब। साधुवृत्त—सदाचारी। दशांतराणि—भिन्न-भिन्न दशाएँ।

अनया दृष्ट्या—इस विचार से गौर करने पर।

एवमादि—इसी प्रकार की। यस्ते छन्द, यद्भवते रोचते—जैसा आप को पसन्द आवे। कामचार, स्वच्छन्द, स्वैरिन्, कामवृत्ति—स्वेच्छानुसार व्यवहार करना। कामरूप—इच्छानुसार रूप करने वाला। यथाभिलषित क्रियताम्—जैसा तुम्हारा मन हो वैसा करो। स न तस्या रुचये बभूव—वह उसकी रुचि का नहीं था।

अल्पविषय—छोटे दायरे का, सकुचित। तस्य यश इयत्तया परिच्छेत्तु नालम्—उसके यश की कोई सीमा नहीं। न गुणानामियत्तया—गुणों की सीमितता के कारण नहीं।

यावदह म्रिये—जब तक मैं जीवित हूँ। वन्यफलै शरीरवृत्ति निर्वर्तयति—जगली फलों पर जीवन निर्वाह करता है। स्मार्ते काले—जहाँ तक स्मरण शक्ति जाती है।

राजकुले-राज्ञे-निवद्—मुकदमा दायर करना। नयनै-दृष्टिभि पा, निध्यै—किसी की तरफ बड़े गौर से ताकना। जनन्या मे योगक्षेम वहस्व, जननीमवेक्षस्व-चिंतय—मेरी माता की देखभाल करना। विगतासुर्बभूव, प्राणैर्रहित—वह मर गया। मित्रैर्वियुज्यते—वह मित्र से वियुक्त होता है। उन्मार्गगामी अभूत्—वह रास्ता भूल गया। च्युताधिकार, अधिकार—अधिकार से च्युत हो गया हुआ।

किंकर्तव्यता-प्रतिपत्तिमूढ—क्या करूँ, क्या न करूँ—ऐसा सोचकर चकराया हुआ।

उपनम्, उपस्था—भाग्य में बदा होना। तव दुःखमुपनमेत्—तुम्हारे भाग्य में दुःख ही बदा होगा। कस्यात्यन्तं सुखमुपनत—निरन्तर सुख किसके भाग्य में बदा है।

दोषमपि गुणत्वमुपपादयितु—बुरी परिस्थिति में पड़कर जहाँ तक हो सके लाभ उठाना। लक्ष्यभेदः—लक्ष्य को बींधना।

अप्रभुरस्मि आत्मन., न प्रभवाम्यात्मनः, गात्राणामनीशोस्मि संवृत्तः—मैं अपने आप का प्रभु नहीं रह गया। सकलशास्त्रपारगत.' शास्त्रपारदृश्वा—जो सारी विद्याओं का पडित हो चुका है। गतोऽसि सर्वास्वायुधविद्यासु परां प्रतिष्ठाम्—आप ने सारी अस्त्रविद्याओं पर पूर्ण पाडित्य प्राप्त कर लिया है।

आवां प्रतिद्वन्द्विनौ भवाव—आओ हम दोनों होड़ बद लें। दैत्येभ्यो हरिरलं—हरि दैत्यों के लिए काफी हैं। अतीत्य-अतिक्रम्य वृत्—उससे बहुत बढ़कर है। तुल्यप्रतिद्वन्द्वि बभूव युद्ध—बराबर का युद्ध था।

यत्किंचित्करमेतत्—कोई हर्ज नहीं। किं तस्या वृत्त, कस्तस्या वृत्तान्तः—उसका क्या मामला है। किं मम तेन कार्य-कोऽर्थ.—मुझसे इससे क्या प्रयोजन। सन्निधानस्य अकिंचित्करत्वात्—सन्निधान से कोई मतलब नहीं।

परिणतप्रज्ञ, कठोरधी—पक्की बुद्धि वाला। साकूतं मां निर्वर्ण्य—मेरी तरफ इशारा-पूर्वक देखते हुए।

प्रत्युद् या-व्रज्-गम-इ—मिलने के लिए जाना। प्रत्युत्था, अभ्युत्था—मिलने के लिए उठना।

आप सं प्लवते-सं भिद्यन्ते—जल मिलते हैं।

तस्य हृदय स्नेहार्द्रीभूत, स्नेहेनाभ्यष्यंदत—उसका हृदय स्नेह से पिघल गया।

मेधाविन्, धारणावत्—अच्छी स्मरण-शक्ति वाला। स्मृतिविपयतां-स्मृतिपथ-स्मर्तव्यशेष-कथावशेष गम् अथवा नी—केवल स्मरण में रह जाना।

एको दोषो गुणसन्निपाते निमज्जति—अच्छे गुणो के समूह में एक दोष विलीन हो जाता है।

चित्त-मनो-व्यापारः-वृत्तिः—मन का व्यापार। मनसि उत्-इ, उद्भू, बुद्धौ स जन्—मन में आना। आस्ता-तिष्ठतु तावत् प्रथमः प्रश्नः—पहिली बात की कोई परवाह नहीं।

उत्कण्ठासाधारण परितोषमनुभवामि—मुझे पश्चात्ताप-मिश्रित प्रसन्नता होती है।

मार्गात् भ्रष्ट —रास्ता भूल गया।

गोत्रस्खलित—नाम लेने में गलती। तस्माद् गर्दभात् व्याघ्रधिया-बुद्ध्या पशव. पलायते—पशु गदहे को बाघ समझकर भागे जाते है।

अलमन्यथा गृहीत्वा—मेरे विषय में गलत धारणा न करो।

आपातरमणीय—इस समय अच्छा मालूम पड़ने वाला।

खल· सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति। आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति—अपना ढेंढर न देखना दूसरों की फूली देखना। पर का अवगुन देखियत अपनो देखत नाहिं।

तिले ताल पश्यवि, अणु पर्वतीकरोति—वह राई का पर्वत बना देता है।

अस्मात्स्थानात्पदात्पदमपि न गतव्यम्—एक पग भी आगे न बढो।

कर्मणो गहना गति —भाग्य की अद्भुत गति है।

अपि ज्ञायते ते नामधेयत.—क्या उनके नाम जानते हो।

अस्य मातर नामत. पृच्छेयम्—मैं उसकी माता का नाम पूछूँगा।

नामग्राह मामाह्वयति—वह मेरा नाम लेकर मुझे पुकारता है। वचनेन, वचनात्—किसी की ओर से, तरफ से।

वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा—मेरी तरफ से राजा से कह देना।

मामुद्दिश्य तस्मै सभाजनाक्षराणि पातय—मेरी तरफ से नमस्कार कह देना।

मानुषतासुलभो लघिमा—ऐसी लघुता जो मनुष्य-मात्र में स्वाभाविक होती है।

दुर्जातवधुः—विपत्ति में मित्र। स सुहृद् व्यसने यः स्यात्—जो विपत्ति में मित्रता बनाए रक्खे, वही मित्र है।

मालती मूर्धानं चालयति—मालती अपना सिर हिलाती है।

ननु शब्दपतिः क्षितेरहं—मैं पृथ्वी का नाम-मात्र का स्वामी हूँ।

बहुलीभूतमेतत् वृत्तं—यह मामला सब को मालूम हो गया है।

यत्नादुपचर्यतामसौ—खूब ध्यानपूर्वक उसकी देख-भाल होने दो।

स्नेहस्यैकायनीभूता—प्रेम का एक-मात्र पात्र।

किमुद्दिश्य, किंनिमित्तं, किमपेक्ष्य फलं—किस उद्देश्य से।

प्रत्यर्थिभूता सा समाधेः—समाधि करने में वह एक बाधा थी।

श्लाघ्ये गृहिणीपदे स्थिता—गृहिणी के सम्माननीय पद पर आरूढ़।

इति तस्य बुद्धौ न सजात, इति तस्य हृदये नापतितम्—यह बात उसके मन में नहीं सूझी।

स्मृत्युपस्थितौ इमौ द्वौ श्लोकौ—ये दोनों श्लोक हमें स्मरण हो आये।

कस्मिन्नपि पूजार्हे अपराद्धा शकुन्तला—शकुन्तला ने किसी पूज्य पुरुष का अपराध कर दिया है। तव न कदापि मया विप्रियं कृतं, प्रतिकूलमाचरितं—मैंने कभी एक बार भी तुम्हारा अपराध नहीं किया है।

शीघ्रकोपिन्, सुलभकोप—जल्दी क्रुद्ध हो जाने वाला।

च्युत-भ्रष्ट-अधिकार—पद से गिरा हुआ।

प्रकाशं निर्गतं—खुल जाने पर, प्रकाशित हो जाने पर।

तवोपालभे पतितास्मि, उपालभपात्रं जाता—मैं तुम्हारे व्यंग्यों का पात्र हो गई।

गृहीतावसर, लब्धावकाश—अवसर पाकर।

लोकाचारविरुद्ध, लोकविद्विष्ट—संसार की रीति के विरुद्ध।

अत्र स्वरुच्या वर्तताम् भवान्, यथाभिलाषं क्रियताम्—इस मामले में जैसा आप को रुचे, वैसा कीजिए।

यथाज्ञापयति देवः—श्रीमान् की आज्ञा का पालन किया जायगा।

आनुलोम्य—स्वाभाविक क्रम। प्रातिलोम्य, व्युत्क्रम, विपर्यय, व्यत्यास—उलटा क्रम।

अपह्रिये परिश्रमजनितया निद्रया—थकावट से पैदा हुई नींद से अभिभूत हूं।

आनन्दपरिवाहिणा चक्षुषा—हर्ष-भरी आँख से। प्रथमकुतूहलं सपरिवाहमासीत्—पहिले तो मेरी उत्सुकता बढ़ चली।

विवर्णभाव प्रपेदे—पीली पड़ गई।

शरीरभूता मे शकुन्तला—शकुन्तला मेरे शरीर का अंग हो गई है।

भूमिकाकल्पनम्—पार्ट-निर्वाचन।

तस्य नरस्य विशेष ब्रूहि—उस व्यक्ति का पूरा-पूरा विवरण दो।

तेनाष्टौ परिगमिता. समा. कथंचित्—बड़ी कठिनता से उसने आठ वर्ष बिताए।

इद धिय पथि न वर्तते—यह बात समझ के बाहर है।

आस्ता, तिष्ठतु तदधुना, यातु किमनेन—अब इसे हटाओ।

किमर्थमगृहीतमुद्र कटकान्निष्क्रामसि—बिना टिकट लिये क्यों शिविर से बाहर जाते हो।

अमुद्रालाञ्छित—पास (टिकट) के बिना।

तया हृदयवल्लभोऽभिलिख्य कामदेवव्यपदेशेन सखीपुरतोऽपहृत.—उसने अपने प्रियतम का चित्र यह कह कर अपनी सखी को दे दिया कि यह कामदेव का चित्र है। मध्यमामातृवृत्तान्तोऽन्तरित आर्येण—श्रीमान् जी मध्यम माता का हाल छिपा गए।

जालान्तरप्रेषितदृष्टिरन्या—जंगले में से झाँकती हुई दूसरी।

आज्ञा गुरूणा ह्यविचारणीया—बड़ों की आज्ञा पर विचार नहीं किया जाता, उसका पालन करना अनिवार्य है।

नाटक न प्रयोगतो दृष्टम्, प्रयोगेणाधिकृत न दृष्टं—नाटक को रंग-मंच पर अभिनय किया हुआ नहीं देखा है।

स्थिरप्रतिबन्धो भव—विरोध करने में दृढ़ रहो।

आसन्न-शरीर-परिचारक—अंग-रक्षक। स्वानुभव—निजी अनुभव।

यौवनमंगेषु सन्नद्ध—अंगों में यौवनावस्था व्याप्त हो गई है।

ज्ञायता क कार्यार्थीति—पता लगाओ कौन-कौन प्रार्थी हैं।

विरहोत्कण्ठ हृदय—विरह (अनुपस्थिति) में उत्कण्ठित रहने

स गृह गंतुमुदताम्यत्—वह घर जाने के लिए उत्कंठित था।

अन्तःपुरविरहपर्युत्सुको राजर्षि—राजर्षि अपनी रानियों के विरह के कारण क्षीण होते जा रहे हैं।

पितृस्थाने, पितृभूमौ—पिता के स्थान पर। प्रथम,प्रथमत, प्रथम तावत्—पहिले तो।अपर च,पुनः,पुनश्च—दूसरे।

अर्थिन्, वादिन्, अभियोक्तृ—मुद्दई।

प्रत्यर्थिन्, अभियुक्तः, प्रतिवादिन—मुद्दालेह।

द्वित्रीण्यहान्यर्हसि सोढुमर्हन्—ऐ पूज्य, दो-तीन दिन प्रतीक्षा कीजिए।

यदभिरोचते वयस्याय—मेरे मित्र को जो अच्छा लगे।

हृदयगम परिहासः—आनन्ददायी मजाक। सुखश्रव, श्रुतिसुख, श्रवणसुभग, मजुलस्वन—कानों को सुखद।

विहितप्रतिज्ञ,-गृहीतक्षणः- अह—मैंने प्रतीज्ञा कर ली है।

तव विरूपकरणे तेन सुकृतमतरे धृत—उसने अपने,पुण्यकर्मों की शपथ लेरक कहा है कि तुम्हे हानि न पहुँचावेगा।

मरणोन्मुख, आसन्नमृत्यु, मुमूर्षु—मरने के करीब। प्रसवोन्मुखी, आसन्नप्रसवा—बच्चा देने वाली।

दासी महिषीपद ग्राहिता, देवीभाव गमिता—दासी को रानी की पदवी दे दी गई।

तदुभयथापि घटते—यह दोनो प्रकार से सम्भव है।

चिरप्रवृत्त—बहुत दिनो से चालू। सदाचार, सद्वृत्त, साधुवृत्त—सदाचारी। कां वृत्तिमुपजीवत्यार्य.—आपका क्या व्यवसाय हे? प्रयोग—क्रिया। शास्त्र- आगमः—सिद्धान्त, मत।

शासनात् करण श्रेय, वाचः कर्मातिरिच्यते—कहने से करना अच्छा होता हे।

स कथयत्यागमिनमप्यर्थं—वह तो भविष्य की घटनाओ को भी बता देता है।

वर मृत्यु. न पुनरपमान—मृत्यु अच्छी है पर अपमान नहीं।

दौर्हृदलक्षण दधौ—उसकी गर्भावस्था के लक्षण दिखाई पड़े। कठोरगर्भा—बढे हुए गर्भ वाली।

त्वयोपस्थातव्यं, सन्निहितेन भाव्यं—आपको उपस्थित रहना चाहिये।

समतीत च भवच्च भावि च—भूत वर्तमान तथा भविष्य। अग्नि साक्ष्ये आधाय—अग्नि को साक्षी बनाकर।

त वक्षसा परिरभ्य क्रोडीकृत्य—उसको छाती से लगाकर।

भावितविषवेगः—विष से प्रभावित होने का बहाना करके। अश्रु तिमभिनयति—न सुनने का बहाना करता है।

आर्यध्वजिन्-लिंगिन्—न्याय-शील होने का बहाना करता हुआ।

साक्षी वाक्यभेदान् बहूनकथयत्—साक्षी ने बहुत सी विरुद्ध बातें की।

प्रक्षालिनाद्धि पकस्य दूरादस्पर्शन वर—कीचड को धोने की अपेक्षा उसे न छूना ही अच्छा है।

द्विषामामिषतां ययौ—शत्रुओं का शिकार बन गया।

प्रथमवय, नव-अक्षत-यौवन—नई जवानी।

ततस्तत, तत पर कथय—आगे कहो। प्रस्तूयतां विवादवस्तु—झगड़े वाला मामला बताओ। प्रवर्त्यता भगवतो ब्राह्मणानुद्दिश्य पाक—पूज्य ब्राह्मणों के स्वार्गतार्थ भोजन की तैयारी करो। किन्निमित्त ते सताप—तुम्हारे दु ख का क्या कारण है?

क्षुद्बोधित—क्षुधा से प्रेरित।

परमार्थत प्रेम—सच्चा प्रेम। स सदा प्रत्युपन्नमतिः, प्रबोधननिरपेक्ष—उसे प्रेरणा देने (सिखाने) की आवश्यकता नहीं।

एष सनिकार नगरान्निर्वास्यते—यह पुरुष अपमान-पूर्वक नगर से निकाला जाता है।

ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु कठेन निजोपयोगिता—सज्जन लोग अपनी उपयोगिता कार्यों से सिद्ध कर देते हैं, मुँह से कहते नहीं।

अनागतविधातृ—भविष्य के लिये व्यवस्था करने वाला। आपदर्थे धन रक्षेत्—आपत्ति के दिनों के लिए धन को बचा रखना चाहिये।

स्तूयमाना नोत्सिच्यन्ते अथवा अनुद्धता—प्रशसा किये जाने पर फूल कर कुप्पा नहीं हो जाते। दर्पाध्मात, उत्सिक्त, अवलिप्त, उद्धत—अभिमान से फूले हुए।

चौरदंडेन दण्डयेत्—अपराधी को चोर की सी सजा देनी चाहिए।

अनियन्त्रणानुयोगस्तपस्विजन —तपस्वियो से बिना किसी सकोच के प्रश्न करना चाहिये।

मदोऽप्यविरतोद्योग. सदा विजयभाग्भवेत्—धीमे धीमे परन्तु निरंतर कार्य करने वाला विजयी होता है।

तद्वचो मम हृदये शल्य जात —वे बातें मेरे हृदय मे कॉटे के समान लगती हैं।

स प्रहार. करालता गत —घाव भयानक हो गया।

वृत्तातेन श्रवणविपयप्रापिणा—जब यह वृत्तात उसके कानो में में पहुँचा।

इद प्रायेण तव कर्णपथमायात, श्रुतिविपयमापतितमेव—सम्भवतः यह आप के कानों में पड़ा होगा।

प्रत्युत्पन्नमति—हाजिर जवाब।

धनी उपगत दद्यात् (धन) स्वहस्तपरिचिह्नित—महाजन को चाहिये कि अपने हाथ से लिखी हुई रसीद दे।

दर्शनप्रतिभुव ददौ—उसने पहचान की जमानत दी।

तदह विदधे तव स्तवं दमयत्या. सविधे—इसलिये म दमयन्ती के पास तुम्हारी प्रशसा करूँगा।

नाद्यापि प्रसाद गृह्णासि, प्रसन्ना न भवसि—आप अभी तक प्रसन्न नहीं हो रहीं है। वाक्यानि प्रतिममादधाति—कथनों (वक्तव्यों) का समाधान करता है।

कृतकालोपनेयः आधिः—निश्चित समय पर पूरी की जाने वाली प्रतिज्ञा।

आत्मवश नी, वशीकृ—अपने अधीन कर लेना। अस्थिमात्रावशेप, कंकालशेप—जिसकी केवल हड्डियाँ ही हड्डियाँ रह गई हो।

अत्र पुरावृत्तकथा अनुसधेया—यहाँ पौराणिक कथा का हवाला दिया गया है।

भर्तु: प्रतीप मास्म गमः—पति के विरुद्ध न होना।

नार्हसि मे प्रणय विहन्तुम्—कृपया मेरी प्रार्थना को न ठुकराना।

तस्य मनो मार्दवमभजत, कठिनतामजहात्—उसका हृदय कोमल पड़ गया।

स चानुनीतो मृदुतामगच्छत्—अनुनय-विनय करने पर उसका हृदय कोमल पड गया। किमपि सानुक्रोशः कृत.—वह कुछ कुछ कोमल पडा।

दु खविश्राम ददाति—दु ख में आराम देता है।

हृदि एना भारतीं उपधातुमर्हसि—कृपया इस वाणी को खूब अच्छी तरह याद रखना।

पाताल मामद्य संस्मरयतीव भुजगलोक—शूरो का यह समूह मानों मुझे पाताल की याद दिलाता है।

अये सम्यगनुबोधितोऽस्मि—ओहो, मुझे अच्छी याद आई।

इति जनप्रवाद किंवदती-श्रूयते, इति प्रवाद—ऐसी अफवाह है।

विश्वासप्रतिपन्न—विश्वास में आया हुआ।

दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयति, गुणपक्षे स्थापयति—दोषों को भी गुण करके बताते है।

सवद त्यक्षराणि—अक्षर एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं।

सागरे नद्यो विलीयते—नदियाँ सागर में विलीन हो जाती है।

वामहस्तापहितवदना—बाएँ हाथ पर मुंह रखकर।

खुरत्रये भर कृत्वा—तीन खुरों पर खड़ा होकर।

भाग्यायत्तमत परम्—इसके आगे तो भाग्य पर निर्भर है।

सकलरिपुजयाशा यत्र बद्धा सुतैस्ते—जिस पर तुम्हारे पुत्रों ने शत्रुओं को जीतने की सारी आशा लगा रक्खी है।

हर स्मर स्वेन वपुषा नियोजयिष्यति—हर कामदेव को उसका शरीर पुन दे देंगे।

एव सर्वतो निरुद्धचेष्टाप्रसरस्य मे—इस प्रकार जब सभी तरफ मेरे कार्य बन्द हो जायेंगे।

अपवाद उत्सर्ग व्यावर्तयितुमीश्वर—अपवाद किसी भी नियम के क्षेत्र को सीमित कर सकता है।

अतः पर पुन. कथयिष्यामि—इसके आगे फिर कहूँगा।

तस्य चार्थस्य सतत मनसि विपरिवर्तमानत्वात्—यह मामला निरन्तर उसके मस्तिष्क में नाच रहा था।

गमिष्याम्युपहास्यताम्—मैं हँसी का पात्र बनूँगा।

अवितथमाह प्रियव दा—प्रियवदा ठीक कहती है। न स्त्री स्वातत्र्य-मर्हति—स्त्री को स्वतन्त्रता नहीं मिलनी चाहिए।

तत् देवीहस्ते निक्षिपता मया युक्तमेवानुष्टित—तो मैंने उसे महारानी के हाथों में देकर उचित ही किया।

ते नाभ्युपतिष्ठन्ति गुरून्—वे अपने गुरुजनो को आगे से लेने के लिए नहीं उठते। उत्तिष्ठमान शत्रुः—उभडता हुआ शत्रु।

स्थाने खलु सज्यते दृष्टि.—ठीक ही है जो नेत्रो ने टकटकी बाँध रक्खी है।

प्रथमं गुणितमिव तवोत्तरं—तुम्हारा उत्तर मानो रटा हुआ सा है।

प्रजाः प्रजा. स्वा इव तंत्रयित्वा—प्रजाओ के ऊपर अपनी सन्तान सा शासन करके।

कियदवशिष्ट रजन्याः—कितनी रात बाकी रह गई है?

सफलीकृतभर्तृपिंडः—नमक हलाल करके।

का कथा-गणना (सप्तमी के साथ), कथैव नास्ति (प्रति के साथ)—क्या कहना है। जनप्रवादः—लोक-निन्दा। तथा च लौकिकानामा-भाणकः—लोकोक्ति इस प्रकार है, जैसी कहावत है।

मुद्रां परिपालयन् उद्घाट्य दर्शय—मुहर को बचाकर इसे लोलिए और मुझे देखाइये।

प्रत्यक्षीकृ—अपनी आँखों देखना।

क्रय्य, क्रयार्थं प्रसारित—बिक्री के लिये, बिकाऊ।

कृतज्ञता, कृतवेदित्व—एहसान मानना। जरालुप्तमानावमानचित.—वृद्धावस्था के कारण मानापमान का विचार बिल्कुल त्याग कर। यौगिकार्थ——शब्दार्थ। रूढार्थ—प्रचलितार्थ।

अन्वर्थ, यथार्थ, परमार्थतः—सच्चा अर्थ। अन्यथा एषा वीप्सा न चरितार्था भवति—वर्ना यह पुनरुक्ति कोई अर्थ नही रखती।

एकैक, व्यस्त—एक एक करके (सर्वाविनयानामेकैकमप्येषामायतन, तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने)

कोपोद्दीपनाय अल अथवा पर्याप्तमिद—उसके क्रोध को भड़काने के लिये यह काफी होगा। उपयोग व्रज्, स्थाने-भूमौ भू—किसी चीज के तौर पर काम आना।

मरुत परिवेष्टार आसन—देवता लोग भोजन परसने वाले थे।

इद पादोदक भविष्यति—यह पाँव धोने के लिए जल का काम देगा।

सार्वांगिका आभरणसयोगा—शरीर के अग प्रत्यग में अच्छे लगने वाले आभूषण। रत्नानुविद्ध, मणिप्रत्युप्त, रत्नखचित—जवाहरात से जड़ा हुआ। पद कृ—स्थान कर लेना।

मन—धिय-चित्त बध् अथवा आ + धा अथवा सन्निविश (प्रेरणार्थक) या युज् (प्रेरणार्थक)—हृदय को किसी चीज पर लगाना।

अनेन समयेन परिणतो दिवस—इस समय तक सूर्य डूब गया था।

आधीयता धर्मे धी—धर्म में बुद्धि लगाओ। विनाशधर्मसु विषयेषु मनो मा सन्निवेशय—नश्वर पदार्थों में मन को मत लगाओ। अचिरप्रवृत्तो ग्रीष्म-समय—अभी ही शुरू होने वाला ग्रीष्म। गुणा विनयेन शोभते—गुणों की शोभा नम्रता से होती है।

व्यवस्थापितवाक्, वाच व्यवस्थाप्य—"क्या कहना है", इस बात का निश्चय करके।

इति प्रतिपादितमाकुलीभवेत्—यह स्थिति डगमग हो जायगी।

स्निग्धजनसविभक्त दुःख—प्रिय मित्रों द्वारा बँटाया गया हुआ शोक।

केन वान्येन सह साधारणीकरोमि दुःख—किस दूसरे पुरुष के साथ अपना शोक बँटाऊं।

चर्मिन्, फलकपाणि—ढाल से सुसज्जित। खड्गचर्मधर—ढाल और तलवार लिए हुए।

नयनोपांतविलोकित, साचिवीक्षण, अपांगदृष्टिः, कटाक्षः—तिरछी चितवन।

विदूषकं संज्ञां लभयति—विदूषक को संकेत करता है। अर्थवत्, सार्थ, चरितार्थ, अर्थयुक्त, अन्वर्थ—अर्थ से भरा हुआ।

सीदति मे हृदय—मेरा हृदय बैठा जाता है। प्रबलपिपासावसन्नानि अंगकानि—प्रबल प्यास के कारण अंग अंग शिथिल पड़ रहे हैं।

तस्य धैर्यमहीयत, स लुप्तस्खलित-धैर्य.—उसका धैर्य टूट गया।

मया रथस्य मंदीकृतो वेगः—मैंने रथ के वेग को धीमा कर दिया है।

शिथिलितप्रयत्ना., श्लथोद्यमा.—जिन्होंने अपने प्रयत्नों को शिथिल कर दिया है।

मंथरविवेक चेतः—वह चित्त जो विवेक करने में मन्द हो।

प्रत्यभिज्ञानमंथर—पहिचानने में मन्द।

पराभवो मम हृदि प्रत्युप्त शल्यमिव, न्यक्कारो हृदि वज्रकील इव मे तीव्र परिस्पंदते—हार के कारण मैं व्यथित हो रहा हूँ।

वविरान्मदकर्णः श्रेयान्—जहाँ कुछ न मिल रहा हो, वहाँ थोड़ा मिल जाना अच्छा है।

वक्तु सुकरमिदमध्यवसितु तु दुष्कर—करने से कहना सरल होता है

ततुनाभः स्वत एव ततून् सृजति—मकड़ी स्वयं अपने जाले को तानती है।

सोल्लास, प्रमुदितचित्त—प्रसन्नचित्त।

मिषता न' आमिष आच्छिनत्ति—हम लोगों के देखते-देखते शिकार छीन लेता है।

चारचक्षुर्महीपाल —राजा गुप्तचरों के द्वारा देखता है।

उपक्रोशमलीमसै प्राणैः किम्—अपकीर्ति से कलङ्कित प्राणों को रखकर क्या लाभ ?

सशयस्थ जीवित तस्य, स सशयितजीवित आसीत्, जीवित सशय-दोलाधिरूढ—उसके प्राण सकट में थे।

वचनीयमिद व्यवस्थित—यह मेरे ऊपर एक चिरस्थायी दाग लग जायगा।

कुठित-प्रतिहत-रुद्ध-गति—ठप्प, शात।

इद सोपपत्तिक न भाति—यह युक्ति-सगत अथवा तर्क-सगत नही मालूम पडता। लब्धप्रतिष्ठ—जिसने प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है। पुलकित, रोमाचित—रोंगटे खड़े हो गए।

यात्राभिमुख प्रवृत्—यात्रा के लिए प्रस्थान करना।

अभिन्नगतय शब्द सहते मृगा—सहज गति को न छोडते हुए मृग शब्द सुन लेते हैं। सचकित—चौंककर।

अविदितगतयामा रात्रि—वह रात जिसके पहर अज्ञात बीत गए।

शनैर्निद्रा निमीलितलोचन मामकार्षीत्—निद्रा ने धीरे-धीरे मेरी आँखे बन्द कर दीं।

ज्वलति चलितेंधनोऽग्नि—जब इंधन में खोद खाद कर दी जाती है, तब आग जल पडती है।

नैतावता पीडा निष्क्रामति—अनर्थ की इति यहीं नहीं हो जाती।

मुखे चपेटा दा—मुँह पर चाटा मारना। चित्ते भय जनयति—मन मे भय पैदा करता है।

बद्ध-प्ररूढ-मूल—जिसकी जड गहरे गई हो। तस्य हृदय पस्पर्श विस्मय—वह आश्चर्य से चकित हो गया।

तद्धि प्रसिद्धतरेण प्रयोगेण शीघ्र बुद्धिमारोहति, प्रसिद्धबलेन प्रथमतर प्रतीयते—चूंकि यह अत्यन्त सामान्य अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, इसलिए यह सरलता से चित्त में बैठ जाता है।

जर्जरितकर्णविवर-जर्जरीकृतकर्णपुट-नाद—कान के पर्दे को फाड़ देने वाली आवाज।

सा देवीशब्देनोपचर्यते—वह 'रानी' कह कर पुकारी जाती है।

विदूरगतमुत्तरकोशलान्समधिगम्य—उत्तर-कोशल प्रदेश को [illegible] करके।

यदि नावसीदति गुरु प्रयोजन—यदि किसी बड़े कार्य की हानि न हो। खल करोति दुर्वृत्तं तद्धि फलति साधुषु—दुष्ट पुरुष अपराध करता है और सज्जन उसका फल भोगता है।

आतपलघनात्—लू लगने के कारण।

पुनरुक्ततां नी—व्यर्थ बना देना, व्यर्थ कर देना।

अभिव्यक्तायां चन्द्रिकायां किं दीपिकापौनरुक्त्येन—जब स्पष्ट चाँदनी विद्यमान है तो मशाल व्यर्थ है।

अश्वमेधसहस्रेभ्यः सत्यमेवातिरिच्यते-विशिष्यते—सत्य हजारों अश्वमेध यज्ञों से कहीं बढ़कर है।

कथ जीवित धारयिष्यामि—मैं कैसे जिऊँगा? न ह्यय मन्त्र स्वातन्त्र्येण कंचिदपि वाद समर्थयितुमुत्सहते—यह मन्त्र स्वत. किसी भी सिद्धान्त का समर्थन नहीं कर सकता।

नियम्य शोकावेगं—शोक की तेजी को रोक कर।

विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता—मैं तो विकार से प्रभावित होने वाली बना दी गई। विकारि यौवन—जवानी पर बड़ी जल्दी प्रभाव पड़ जाता है।

धृतद्वैधीभावकातर मे मन—मेरा मन दुविधा में पड़ा है, इसी से चिन्तित है।

विहगाः समदुःखा इव चुक्रुशु—पक्षी मानो समवेदना के कारण चीख पड़े।

भिन्नरुचिर्हि लोक—लोगों की पसन्द भिन्न-भिन्न होती है।

निर्गंतु सहसा न वेतसगृहाच्छक्तोऽस्मि—बेंत के घर में से निकलने में असमर्थ हूँ। विललाप विकीर्णमूर्धजा—बालों को बिखेर-बिखेर कर रोई।

गमयति रजनीं विषाददीर्घतरा—शोक के कारण बहुत बड़ी लगने वाली रात्रि को बिताता है।

शास्त्रे प्रयोगे च मा विमृश—शास्त्र में तथा प्रयोग में मेरी परीक्षा ले ।

अनुगृहीतोऽस्मि, महानय प्रमाद.—मैं अनुगृहीत हो गया। मेरे ऊपर यह बड़ी कृपा हुई।

द्वावप्यागमिनौ प्रयोगनिपुणौ च—दोनों शास्त्र-सम्पन्न तथा प्रयोग में निपुण हैं।

नगरगमनाय मतिं न करोति—वह राजधानी में जाने की इच्छा नहीं करता।

सखीमुखेनोचे—सखी के द्वारा बोली।

अपत्यमन्योन्यसश्लेषणं पित्रोः—सन्तान माँ-बाप का पारस्परिक बन्धन है।

अतिपिनद्धेन वल्कलेन नियन्त्रितास्मि—मैं इस कसे हुए वल्कल-वस्त्र से जकड़ी हुई हूँ।

समय· स्नानभोजन सेवितु—स्नान और भोजन करने का समय है।

कालानुवर्तिन्—समय देख कर काम करने वाला। नैव वारातरं विधास्यामि—अब दूसरी बार ऐसा न करूँगा।

अनवसरग्रस्तोऽर्थिभाव·—अब भीख माँगने की प्रथा नहीं रह गई।

अकालक्षेपेण, अविलंबित, अकाल-हीन—बिना समय खोए हुए।

अमुष्य विद्या रसनाग्रनर्तकी, समस्ता एव विद्या जिह्वाग्रेऽभवन्—विद्या तो उसकी जिह्वा के अग्र भाग पर नाचती थी।

धारासारैर्महती वृष्टिर्वभूव—मूसलाधार पानी बरसा।

शतसंख्या मामिय स्पृशति—१०० की संख्या मुझे स्पर्श करती है।

हृदय संस्पृष्टमुत्कंठया—हृदय उत्कंठा से प्रभावित हो गया।

मित्राणा तत्त्वनिकषभावा विपत्—विपत्ति मित्रता की कसौटी है।

पादचैर्गृह्यते चौर पदेन—चोर अपने पाँव के निशानों से पकड़ा जाता है। ब्रह्मशब्दस्य व्युत्पाद्यमानस्य—जब ब्रह्म शब्द की व्युत्पत्ति की जाती है।

क्षुण्णाद्वर्त्मन—पीटी हुई लकीर से।

परंतपो नाम यथार्थनामा—वस्तुत यथार्थ नाम वाला परन्तप।

ध्रुवसिद्धेरपि यथार्थनाम्न—सार्थक नाम वाले ध्रुवसिद्धि का।

उपकार प्रत्युपकारेण निर्यातयितव्य—उपकार का बदला उपकार से दिया जाना चाहिए।

असमर्पित, अतर्कित, अतर्कितोपनत—अप्रत्याशित।

समवायो हि दुस्तर., संहतिः कार्यसाधिका—मेल मे शक्ति है।

ज्योतिःशब्दस्तेजसि प्रयुज्यते—"ज्योति." शब्द "प्रकाश" के अर्थ में आता है।

ज्योति.शब्दो ज्वलन एव रूढ़-"ज्योति." शब्द रूढ़ि से "अग्नि" के लिए प्रयुक्त होता है।

अनुपभुक्तभूषण—आभूषण पहिनने मे अनभ्यस्त।

रणधुरा वह., समरशिरसि वृत्—सेना का अग्रणी होना।

वाचिक, वाचनिक शब्दाख्येय—मौखिक सन्देश।

वाग्व्यवहार —मौखिक वाद-विवाद।

लोकव्यवहार-दृष्ट्या—सासारिक व्यवहार की दृष्टि से।

निर्व्यूढस्तेऽपत्यस्नेह.—तेरा अपत्य-स्नेह पूर्ण रूप से प्रकट हो गया।

कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यता—थोड़ी देर तक प्रतीक्षा कीजिए।

सहस्व मासद्वय—दो महिने तक प्रतीक्षा कीजिए।

स्फुलिंगावस्थया वह्निरेधापेक्ष इव स्थित:—चिनगारी की दशा मे स्थित आग ईंधन की प्रतीक्षा कर रही है।

त्वत्तो न किमपि परिहास्यते—आप को किसी बात की कमी न रहेगी।

न कामचारो मयि शंकनीयः—यह शका न कीजिएगा कि मैने स्वच्छन्दता से आचरण किया है।

सूर्यातप सेव्—घाम लेना, धूप का सेवन करना। अग्न्यातपं सेव्—आग तापना।

वृद्धिक्षयौ—बढ़ना घटना।

अतरा—रास्ते मे। परिपथीभू—विघ्न डालना। किं स्वातन्त्र्यमवलम्बसे—क्या तुम मनमानी कर रहे हो?

सर्वत्र नो वार्तमवेहि—हमारा सब प्रकार से कुशल जानो।

युज्यते, बाढ, तथा, इत्युक्त्वा—"बहुत अच्छा" कह कर।

छन्दोऽनुवृत्तिः—दूसरे की इच्छा के अनुकूल आचरण करना।

ईश्वरेच्छा बलीयसी, प्रभवति भगवान् विधिः—ईश्वर की इच्छा बली होती है।

बलात्, हठात्, अकामतः—अनिच्छया, जबर्दस्ती।

अयशः प्रमृष्टम्—कलंक धुल गया।

कुण्ठितमति आसीत्, निरुत्तरीकृतः—वह निरुत्तर हो गया।

कष्टमभ्यापन्न.—विपदवस्था में पड़ा हुआ।

नैतच्चित्र, किमत्र चित्रम्—इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। आश्चर्य ही क्या है?

सत्य-पलित-सगर.-सध —प्रतिज्ञा पालन करने वाला।

लघुसन्देशपदा सरस्वता—सक्षिप्त सदेश। सम्यग्ग्रथित-साधुविन्यस्त-पद—जिसमें खूब अच्छी तरह से सोच सोच कर शब्द रक्खे गए हों।

करुणार्थग्रथित—करुणा-जनक शब्दों से भरी हुई।

त्व मम जीवितसर्वस्वीभूत —तुम मेरे जीवन के सर्वस्व हो।

लौकिकज्ञ—ससार की रीति को जानने वाला।

न तर्हि प्रागवस्थाया परिहीयसे—तो आप पहिले से बुरी दशा में नहीं हैं।

अनुरूपभर्तृगामिनी—अपने अनुरूप पति वाली।

वैरसाधनं-निर्यातन—बदला लेना।

बाढम्, अथकिम्—हाँ। तथेति उक्त्वा—हाँ कह कर।

वैतसी वृत्तिम् आश्रि—बलवान् शत्रु के सामने झुक जाना।

परिशिष्ट — २

शुद्ध करने के लिए वाक्य

१—अरण्येऽधिवस्तु यतय इच्छन्ति ।

२—सन्यासी वह्वो दिनान्येकस्थाने नावसेत् ।

३—यद्ग्रामादृतरेणायोध्या शून्या दृश्यते तत्कैकेयीवचनस्य परिणामः ।

४—अस्य गिरेरभितो वह्वोऽश्मान. सन्ति ।

५—अस्य वर्त्मन परित. पलाशवृक्षा दृश्य ते ।

६—हा धिङ् मेऽन्यायाचरण कुर्वते ।

७—स एवं विचारयन् सकला रात्रिर्व्यतीयाय ।

८—दुर्योधनः पाण्डवान्नास्निहृयत् ।

९—शत्रवे वाणानह क्षिपामि स तु मह्य दृशदो मुचति ।

१०—मम वचन स न विश्वमिति ।

११—सर्वेभ्यः पुत्रेभ्यो गोपाल. पितु श्रेष्ठ. ।

१२—सर्वाभ्यो नदीभ्यो भागीरथी द्राधिष्ठा ।

१३—स भोजनादनु वहिरगच्छत् ।

१४—संसारसुखानि केवल दु खस्थानमस्तीति साधारतरेण को जानाति ।

१५—इय नगरी त्रय क्रोशा आयता ।

१६—धनिन द्रव्य याचित भिक्षुकैः ।

१७—अभोनिधिं सुधा ममथे देवैः

१८—तेषा मे च सख्यमस्ति ।

१९—अय वित्तसचयस्त एव ।

२०—ता वात्रानय मा वा, तत्र नय ।

२१—हे जगन्नाथ मे सर्वाणि पापानि क्षमस्व ।

२२—ताः स्त्रियं आत्मनो निंदति ।

२३—सा युवतिरात्मान हतप्रायाममन्यत ।

२४—क्रुद्ध' पुरुष. शिलायामप्यधिशेते ।

२५—गोपालो वा रामोऽहं वा त्व तत्कार्यं करिष्यथेति मां भाति ।

२६—पथिक उत्थिते सति तस्य सार्धमहमगच्छम् ।

२७—समागतेपु वालेषु तान्फलानि दातुमारभस्व ।

२८—तस्मिन् राजनि वसुधामीशाने न कोऽपि सामतस्तमभिभवितु येते ।

२९—अजासु क्षेत्र नीयमानासु ता शस्यमखादयत् ।

३०—भार्याया आक्रोशत्या ना भर्त्रा प्रतिषिद्धा ।

३१—दम्भश्च पैशुन्य च सदा गर्हणीयो ।

३२—रूपवती भार्या सदा प्रीतिपात्रा भवति ।

३३—पिता च माता च वार्द्धक्ये परिपालनीयः ।

३४—यत्स एवमुवाच तत्तस्य दोष एव ।

३५—यत्क्रौर्यमित्याचक्षते तत्प्रकृतिरेव खलानाम् ।

३६—अन्येषा पुत्राणा राम एव पितु प्रेयानासीत् ।

३७—त्व मम प्राणानामपि प्रियतरा अतस्त्वा सर्वं कथयामि ।

३८—अहं तत्र गतु न शक्नोमि हि म ये नद्यायातवती ।

३९—वर भिक्षा याचितु न तु परसेवाविधिम् ।

४०—अहं वा त्व वा तच्चकार ।

४१—न गृहं प्रत्यागतो वा नेति मा सत्वर निवेदय ।

४२—राजापराधिन शता रूपका दण्ड्याः ।

४३—इन्द्र स्वयश किन्नरमिथुनैर्गापयामास ।

४४—प्रासादस्य परितोऽमात्य भिक्षुकान् स्थापयति राजा ।

४५—क्षुधितेन वत्सेन पय पायय तमन्न वा खादन ।

४६—राज्ञी वनात्पुष्पाणि दासीरानाययत् ।

४७—अहं मम मित्र मा पारितोषिकमदापयम् ।

४८—गुणिषु पूजास्थान गुणा स्वास्ति न लिंग वा न वय ।

४९—तस्या नार्या स्वर्लोकनरस्य पात्र वे नरा वभूव ।

५०—अत्र विषये ईश्वरो न दोषास्पद. ।
५१—सा तपस्विनी मत्कृपापात्र जातम् ।
५२—गोविंदस्तस्य भार्या च स्तुत्यचरिते स्त ।
५३—तपो दमो निःस्पृहता च सर्वे अमी यतिषु प्रशस्या ।
५४—ऋते राम जनक. कमपि नृप शिवधनुर्भंजयितु न शशाक ।

५५—अय पर्वतोऽस्य ग्रामस्योत्तर ।
५६—रामस्य पूर्व गोविंद आगच्छत् ।
५७—त दिवसमारभ्य मम मन पर्याकुल जातम् ।
५८—पुत्रविवाहस्यानन्तर पिता ग्रामस्य बहिरावसथेऽन्वुवास
५९—स शिष्येणोपनिषद वेदयामास ।
६०—स्वामिना भृत्येन धेनु पयो दोह्यते ।
६१—भिक्षुकं श्रेष्ठिनं धन याचयति ।
६२—स नर पादस्य खंजः अय तु नयनस्य काण. ।
६३—स ज बुद्वीप नावि गत. शकटे च प्रत्यागत ।
६४—यज्ञदत्त कुडिनपुराय प्रेपित स मासद्वये प्रत्यागमिष्यति ।

६५—रथस्य एव बहु शोभसे तत्कृतमत्यादरस्य ।
६६—हिरण्यकश्चित्रग्रीवस्य प्राणा आसन् ।
६७—गोविंदो यूय चैतदकुरुताम ।
६८—अह ते वीराश्च शत्रून् पराजयन् ।
६९—त्वमह गोपालसूनवश्च तत्कृत्य कुर्यु ।
७०—अय वटुस्ते ब्राह्मणा वा ग्राम गच्छतु ।
७१—यूय वय वा नदीं गमिष्यथ ।
७२—अतस्त्वां दूरादेव नम ।
७३—इमां वार्तामिह वयस्य कथयामि ।
७४—यदि स त्वया पाठ नाध्यापयति तर्हि मा तन्निवेदन
७५—देवाः स्वभयकारण ब्रह्माणमाचख्यु ।

७६—तस्मै अहं दूतं प्रहितवान्, किंतु पाटलिपुत्राय न कोऽप्यद्यापि विसृष्टः।

७७—अयं नरश्चौराणामतीव बिभेति।

७८—समागमनस्य प्रागेव स गतः

७९—[illegible]ल तं बहु ताडयितुं सोऽत्यशक्तः।

८०—अस्य पुस्तकस्य रामाय प्रयोजनं नास्ति।

८१—ये यतयोऽरण्येऽधिवसति तेभ्यो नृपानुग्रहस्य क उपयोगः।

८२—भक्ति देवो रोचते।

८३—अहं देवदत्तस्य शतं रूपकं धारयामि।

८४—न मयि द्रुह्यति नाहं तस्मा अभिद्रुह्यामि।

८५—न किमपि त्वामधुना प्रत्याशृणोमि।

८६—राजस्योपरि चण्डवर्मा शास्ति।

८७—अहं शत्रुं हत्वा स प्रत्याजगाम।

८८—रामो रावणं हत्वा विभीषणो लंकाराज्ये स्थापितः।

८९—त्वया प्रातरेव गां पयो दोग्धव्यमिति तमादिशन् रामोऽत्रागतवान्।

९० गोतमीवर्जं सर्वे निष्काताः।

९१—[illegible]मभिघात स शत्रुभिर्हन।

९२—रामाय द्वौ पुत्रावास्ताम्।

९३—[illegible]ति निजाय कन्यकाजनाय महाराज।

९४—[illegible]भूवि पातालतलस्येष्टे।

९५—[illegible]नमे किं तिष्ठसि।

९६—अस्य पर्वतस्य पूर्वं महावापी वर्तते।

९७—अस्मादुत्तरतस्तु रौद्रं श्मशानम्।

९८—दिवसे [illegible]पासीत।

९९—[illegible]

१००—[illegible]

१०१—अधुना सुवृष्टिर्भवति चेत्सुभिक्ष सर्वत्राजनिष्ट ।
१०२—अपि नाम स राजास्मत्समीहित सपादयिता ।
१०३—अह ।ह्यः पथि महात भुजग ददर्श ।
१०४—अत्र विषये तव सदेहो माऽभूत ।
१०५—मा चौरानभैष्ट ।
१०६—यद्यह, तत्र वभूव तदा त्व भ्रातु सार्धं मा कलहमकृथा इति तमख्यम् ।
१०७—स्वपुत्र यथा अन्येषा पुत्रेभ्योऽपि प्रीति कर्तव्या ।
१०८—अशीतिदिवसा यावत्स भृत्यो मामसेविष्ट ।
१०९—यावद्धनमीश्वरेणास्मान् दीयते तस्मिन्स तोषो मान्य. ।
११०—ते रथे कुसुमपुराय यातव त' ।
१११—सा मृतवतीत्याकर्ण्याह दु खितो जातवान् ।
११२—शिशुना भापित स्मित च पित्रोरानंदोत्पादकम् ।
११३—अयं मम चिर तनो वयस्यो भवितव्य ।
११४—त्वय्यस्मान् शासति कथमस्माभिरभिभूत भाव्यम् ।
११५—कुमात्रिणा नृपसभा न प्रवेष्टव्यम् ।
११६—गोपालो नाम वयस्येन सहागच्छम् ।
११७—जितोऽसौ मया पोडशसहस्राणा रूपकाणाम् ।
११८—कांची नाम नगर्या धर्ममित्रनाम वणिगवसत् ।
११९—सुवर्णपुर नाम नगरे द्वौ कौलिकौ वयस्यभावेन आवसत
१२०—चदनमिव शीतले कदलीगृहेऽपि सा निर्वृति नालभत ।
१२१—रामेतिनामा दशरथस्य पुत्र आसीत् ।
१२२—उपला इव शत्रुष्वस्मानवरकदस्तु वयं किं कुर्यामिति न जज्ञिम ।
१२३—सुरगुरुमिव प्रज्ञस्यास्य ब्राह्मणस्य दक्षिणा कि न दत्से ।
१२४—तव च मे च सख्यमस्ति ।
१२५—चेत्त्व मम कार्यं करोपि त्वामहं मुद्रिकाशत दास्यामि ।
१२६—सा नारी रविरिव भ्राजमानं सुतमलब्ध तु इयं बहु-कुरूपम् ।

१२७—अश्वमारोढु मे रोचते ।

१२८—त्वामावस्थातु कथमहमनुमस्ये ।

१२९—अह त्वामेतत्कर्तुमिच्छामि ।

१३०—इम ग्रथ वाचयितु न शक्यते ।

१३१—इममाम्रवृक्षमध पातयितु न साम्रतम् ।

१३२—वर देशमपि त्यक्तु न तु नीचसेवां विधातुम् ।

१३३—दशरथाय त्रिभार्याभ्य. पुत्रचतुष्टयमुदपादि ।

१३४—विजयतु भवान् य एव जनानानन्दय ।

१३५—एनां भवतेऽनुरक्ता किं निष्कारणेन त्यजसि ।

१३६—इम दिवसमारभ्य मासाद्विजया दशमी भवति ।

परिशिष्ट ३

शब्दकोष

अ

अंशुमालिन्—(पु) सूर्य ।
अकलित—(वि) दुर्बोध ।
अकिंचनत्व —निर्धनता ।
अक्षयत्व —विनाश-हीनता ।
अगुण.—बुरा गुण ।
अगृध्नु—(वि०) लालची नहीं ।
अग्निसात्कृ—जला देना ।
अग्रजन्मन्—(पु ०) ब्राह्मण ।
अग्रणी —नेता ।
अग्र (वि०)—सर्वोत्तम ।
अघ—पाप ।
अंक.—धब्बा, दाग ।
अंकुर.—अंकुर ।
अंगम्—हिस्सा ।
अंगराग —सुगंधित लेप ।
अंगुलि (स्त्री०)—उँगली ।
अंगुलीयक -कं—अँगूठी ।
अचिंतनीय (वि०)—जो सोचा न जा सके ।
अज (वि०)—जन्म न लेने वाला ।
अंजन—अंजन ।
अतिक्रांत—बीता हुआ ।
अतिगर्हित—अत्यन्त निन्दनीय ।
अतिप्रसंग —अत्यन्त जंगलीपन ।
अतिभूमि —पराकाष्ठा ।
अतिमात्र—बहुत ज्यादा ।
अतिमुक्तलता—माधवी लता
अतियन्त्रणा—बहुत दुःख ।
अतिलोल—अत्यन्त कमजोर ।
अतिलोहित— बहुत लाल ।
अतिह्रेपण—अत्यन्त लज्जाजनक ।
अत्यादर —बहुत ज्यादा आदर ।
अत्रान्तरे—इसी बीच में ।
अदूरवर्तिन्—दूर नहीं ।
अधिक्षिप्त—झिड़का गया हुआ, फटकारा हुआ ।
अधिज्य—डोरी चढ़ा हुआ ।
अधिराज —महान राजा ।
अध्वर —यज्ञ ।
अनङ्ग —कामदेव ।
अनतिपातन—देरी न करने योग्य ।
अननुदार—उपयुक्त पत्नी जिसके न हो ।
अनंतर —लगातार

अनपायिन्—अनश्वर।
अनम्र—जो नम्र न हो, अभिमानी।
अनर्घत्व—अमूल्य होना।
अनवगीत—आनन्दित।
अनातप—ठंडा, धूप से सुरक्षित।
अनातुर—जो बीमार न हो।
अनात्मज्ञ—बेवकूफ।
अनादि—जिसका आदि न हो।
अनायास—सरल।
अनामय—नीरोगता।
अनिर्वृत—दुखी।
अनीश—जिसका प्रभुत्व या अधिकार न हो।
अनुचर—सेवक, पीछे पीछे चलने वाला।
अनुज—छोटा भाई।
अनुत्तम—जिससे बढ़कर कोई न हो।
अनुत्सेक—अभिमानहीनता।
अनुत्सेकिन्—जो फूलकर कुप्पा न हो।
अनुबंध—परम्परा, धारा।
अनुपक्रम्य—जो अच्छा न किया जा सके।
अनुपधि—[illegible]।
अनुमित—अनुमान किया गया हुआ।
[illegible]—[illegible] पला हुआ।
अनुभूति—[illegible] का अनुभव।
अनृत—मिथ्या।
अन्तरात्मन्—अन्तरात्मा।

अंतराय—विघ्न
अंतरिक्ष—आकाश।
अंतरित—गायब हो गया।
अंतर्लीन—छिपा हुआ।
अन्तर्वेदि—यमुना और गंगा के बीच का प्रदेश।
अपकारिन्—अपकार करने वाला।
अपचार—अनुचित आचरण।
अपदेश—बहाना।
अपयशस्—कलंक।
अपरिसमाप्त—जो कभी समाप्त न हो।
अपवाद—बदनामी, निन्दा।
अपहृरतत—व्यक्त
अपुनरुक्त—जो पुनरुक्त न हो। प्रतिदिन नया नया।
अपूर्व—जिसकी समता का पहिले कभी न था।
अपोहन—तर्क-शक्ति।
अप्रतिभट—जिसकी जोड़ का कोई न हो।
अप्रतिविधेय—जिसका कोई उपाय न हो।
अप्रतिहत—पूरा पूरा।
अप्रत्यय—जिसको अपने ऊपर विश्वास न हो।
अप्रमेय—असंख्य।
अबला—स्त्री।
अब्जभू—ब्रह्मा।
अभिख्या—शोभा।

अभिगमन—रति, मैथुन ।
अभिजनः—उच्च कुल में जन्म ।
अभिज्ञान.—पहिचान, चिन्हानी ।
अभिनव—नई, ताजी ।
अभिनिवेश.—लागू होना, श्रद्धा, रुचि ।
अभियुक्तः—विद्वान् ।
अभियोक्तृ—आक्रमणकारी ।
अभिरमणीय—अत्यन्त सुन्दर ।
अभिलापः—इच्छा ।
अभिव्यक्त—स्पष्ट ।
अभिषेणय—सेना से मुठभेड़ करना
अभि (ति) सधान—धोखा देना, ठगना ।
अभ्यवहार्य—भोजन ।
अभ्यागत— अतिथि ।
अभ्युपेत—हाथ में लिया हुआ ।
अमगल—अनर्थ, नीच विचार ।
अमर्पित—क्रुद्ध ।
अमल—निर्मल, शुभ ।
अमानुप —मनुष्यातीत ।
अमानुपी—निर्बुद्धि स्त्री ।
अमोघ—अचूक, अव्यर्थ ।
अम्बुवाहः—बादल ।
अयस्—लोहा ।
अरुण.—सूर्य का सारथी
अरुन्धती—वशिष्ठ जी की पत्नी ।
अर्जन—प्राप्ति, कामना ।
अर्थ्—(सम् पूर्वक) चुरादि आत्मने० । विचारना, कल्पना करना ।
(प्रपूर्वक) पीछा करना ।
अर्थ्य—अर्थयुक्त ।
अर्हन्—योग्य ।
अल्पमेधस्—मूर्ख ।
अवकल्प्य—विचारने योग्य ।
अवक्षय —नाश ।
अवकाश —गुंजाइश, कारण ।
अवताडन—पेरना ।
अवपात —शिकार पकड़ने के लिए गड्ढा ।
अवद्य—निन्द्य ।
अवधूत—घृणित ।
अवमानिन्—अपमान करने वाला ।
अवयवः—अंग ।
अवलोकिता—एक नौकरानी का नाम ।
अवसन्न—समाप्त ।
अवसान—अन्त ।
अवस्थित—टिका हुआ ।
अविक्षत—जो घायल न हुआ हो, कुशली ।
अविधवा—वह स्त्री जो विधवा न हो ।
अविनीत—उजड्ड ।
अव्यापन्न—न मरा हुआ जिन्दा ।
अव्याहत—बिना रोक टोक ।
अशनि —वज्र ।
अशन—भोजन ।
अशरण—निस्सहाय ।
अशुभ— दुर्घटना ।

अशेषत.—पूर्णतया ।
अश्वमुख.—घोड़मुहा जन्तु ।
अश्वमेध —एक प्रकार का यज्ञ जिसमे घोड़े का वध किया जाता है ।
अस् (उत् पूर्वक)—कर्मवाच्य-पलट जाना, (विपरि पूर्वक) बदल जाना ।
असंविदान—अनभिज्ञ ।
असक्त—जो राग न रखता हो, बे लगाव वाला ।
असदृश—अनुचित, अशोभन ।
असार—कमजोर, अयोग्य ।
असारता—कमजोरी, क्षणभंगुरता, अस्थिरता ।
असित—काला ।
असिपत्र—तलवार की धार ।
अस्ताचल —वह पर्वत जिसके पीछे सूर्य छिप जाते है ।
अहंकार —घमंड ।
अहाय—तुरन्त, शीघ्र ।
आकर —खाना ।
आकार —स्वरूप ।
आकुल—भरा हुआ,परिपूर्ण, व्यथित पीड़ित ।
आक्रंदित—रोना ।
आखण्डल —इन्द्र ।
आखु —चूहा ।
आख्यात—कहा हुआ, घोषित किया हुआ ।
आगंतुक —अतिथि, अनजान ।
आगम —आना-वेद ।
आगमिन्—सिद्धान्तों मे पारंगत ।
आशु—शीघ्र ।
आश्रम.—जीवन की एक मंजिल ।
आस्—(अनु पूर्वक—अदाद—आत्मने०)—सेवा करना ।
आसक्त—लगा हुआ ।
आसक्ति—राग, लगाव ।
आस्तरण—बिछौना ।
आस्थान—परिषद् ।
आस्थान-मण्डप—परिषद्-भवन, सभाभवन ।
आहव —युद्ध ।
आहार —भोजन ।
आहितुंडिक —बाजीगर ।

इ

इ (प्रति पूर्वक)—प्रेरणार्थक-विश्वास करना (अप पूर्वक) अलग कर देना, हट जाना ।
इक्ष्वाकु —एक सूर्यवंशी राजा, रघु के पुरखा ।
इन्द्रिय—इन्द्रिय ।
इंधन—ईंधन, जलाने की सामग्री ।
इरावती—एक नदी का नाम है ।

ई

ईक्ष् (अनुपूर्वक) भ्वादि—आ मने देख भाल करना।
ईक्षण —नेत्र
ईप्सित—चाहा हुआ।
ईश —मालिक, अधिपति, शिव।
ईश्वर (विशे०)— योग्य।
ईश्वर —स्वामी।
ईह् —भ्वादि० आत्मने०—इच्छा करना।

उ

उचित—साधारण, सामान्य, प्रथागत।
उच्छ्रित—ऊँचा, उठा हुआ।
उत्कर्ष—ऊँचाई, अच्छाई।
उत्कुल—कुल में धब्बा लगाने वाला।
उत्क्रुष्ट—जोर की आवाज।
उत्खात—उखाड़ दिया गया हुआ, नष्ट किया हुआ।
उत्खातिन्—गड्ढों से भरा हुआ, ऊँचे नीचे स्थलों से भरा हुआ।
उत्तंसय—बाँधना, अलङ्कृत करना।
उत्तर (विशे०)—बाद वाला, पिछला।
उत्तरा—अभिमन्यु की पत्नी।
उत्तरोत्तर—सर्वदा बढ़ने वाला, आगे आगे, दिना दिन।
उत्तान (विशे०)—शुद्ध: कपट रहित।
उत्तानित—खुला हुआ, फैला हुआ का अवसर।
उत्पलिनी—कमलिनी
उत्पीड—माला, अलक।
उत्सव:—जलसा, प्रसन्नता या आनन्द
उदन्त —वृत्तान्त, इतिहास।
उदय —दर्शन।
उद्दाम—(क्रियाविशे०)—बे रोक, बड़ जोर से।
उद्यत—तुला हुआ, कमर कसे हुये, लगा हुआ, तत्पर।
उद्यम—इरादा, संकल्प।
उद्धत (विशे०)—घमंडी, ऊँचा।
उद्बाष्प (विशे०)—आँसू बहाता हुआ
उन्नतत्व—श्रेष्ठता, उत्तमता।
उन्नति स्त्री० —बड़प्पन, उदारता, उच्चता, श्रेष्ठता।
उन्मुख (विशे०)—तैयार।
उपकंठ —सान्निध्य, सामीप्य, पड़ोस।
उपकार —भलाई, नेकी।
उपकारिन्—उपकार करने वाला।
उपकार्या—राजा का शिविर।
उपघात—नाश, क्षति।
उपचार —गाम्य प्रदर्शन, ऊपरी लोकाचार

उपदेश —शिक्षा, राय, सलाह।
उपद्रव —हानि
उपनत—आया हुआ, प्राप्त हुआ, पड़ गया हुआ।
उपनिपात —घटना, होना।
उपपन्न(विशे०)—योग्य, उचित।
उपमा—तुलना।
उपरत—मरा हुआ।
उपराग —ग्रहण।
उपरोध —बाधा, क्षति।
उपलक्षण—लाक्षणिक चिह्न।
उपलभ —पता लगाना।
उपवास —भोजन न करना, भूखा रहना।
उपहत—मरा हुआ, बरबाद किया हुआ।
उपस्थित—जो समीप में आ गया है, जो पड़ गया है।
उपहास्यता—हँसी का पात्र।
उपाधिः—दशा, परिस्थिति।
उपाध्याय —आचार्य।
उपालभ —ताना, व्यंग्य।
उपांशु—(क्रियाविशे०)—एकान्त में।
उपाश्रय —आश्रय, शरण।
उषस्—(स्त्री०) प्रात काल।
ऊष्मन् (पुँ०)—गर्मी।
उष्णिमन् (पुं०)—गर्मी।

ऊ

ऊरीकृत —हाथ में ले लिया हुआ।
ऊरु —जंघा।
ऊर्जस्व (विशे०)—बड़ा शक्तिशाली।
ऊर्मि (स्त्री०)—लहर।
ऊह् (अप पूर्वक) भ्वादि—परस्मै—हटाना, नष्ट करना।

ऋ

ऋजु(विशे०)—जो टेढ़ा न हो, सीधा मल रहित, स्वच्छ।
ऋषिकल्प(विशे०)—ऋषितुल्य।
ऋषिकुमार —ऋषि का पुत्र।
ऋष्यशृङ्ग —महाराज दशरथ के दामाद।

ऐ

ऐक्ष्वाक —इक्ष्वाकु का वंशज ।

ऐरावत.—इन्द्र का हाथी ।

ओ

ओजस्विन्—प्रतापी, तेजस्वी ।

औ

औदरिकः—भुक्खड़, पेटू ।

औदासीन्य—उदासीनता, तटस्थता ।

क

ककुद्—कूबड, (अलंकार) प्रधान, सर्वश्रेष्ठ ।

कचः—बाल, केश ।

कज्जल—काजल ।

कठ् (उत्पूर्वक)-भ्वादि—आत्मने—उत्सुक होना, उत्कंठित होना ।

कतिपय—कुछ, थोड़े से ।

कथमपि—(क्रियाविशेषण)—बड़ी कठिनाई से ।

कदली—केले का वृक्ष ।

कनक—सुवर्ण ।

कन्दरम्—गुफा ।

कदम्ब.—समूह, पुञ्ज, राशि ।

कमलयोनि—ब्रह्मा ।

कम्प् (अनुपूर्वक)—तरस खाना, दया करना ।

कर्ण्—(आपूर्वक चुरादि-उभयपदी) सुनाना ।

कर्णधारः—मल्लाह ।

कलकल.—शोर ।

कलहंस—हंस

कलभ—हाथी का बच्चा ।

कला—चन्द्रमा की कला ।

कलिका—कली ।

कलेवरम्—शरीर ।

कल्प—विधि, प्रकार ।

कल्पान्त—सृष्टि का अन्त या नाश ।

कल्य—(विशे०) बड़े सवेरे ।

कल्याण (विशे०)—श्रेष्ठ, उत्तम, धन्य, भाग्यवान् ।

कल्याणिन् (विशे०)—धन्य, भाग्यवान् ।

कष्ट (विशे०)—कठिन ।

काकपक्ष-क.—घुंघराले बाल ।

काञ्चन—सुवर्ण ।

काम.—इच्छा, कामदेव ।

कामगम—स्वेच्छानुसार चलने वाला ।

कामत. (क्रियाविशे०)—कामना से अभिभूत

कामसू (विशे०)—इच्छाओं को पूरा करने वाली ।

कामिन् (पु०)—प्रेमी।
कार्तांतिकः—ज्योतिषी, भाग्य बताने वाला।
काषाय—गेरुआ वस्त्र।
किन्नर—स्वर्गीय गवैयों का एक वर्ग
किंवदन्ती—अफवाह।
किरीटी (न)—अर्जुन।
कुटिल—(विशे०) टेढ़ा, मक्कार।
कुट्टिम—फर्श।
कुटुंबिन्—(पु०) रहस्य।
कुतूहल—उत्सुकता।
कुधी—मूढ़, मन्द-बुद्धि।
कुमुद—कमल।
कुमुदिनी—कमल का पौधा।
कुशलम्—कुशल, कल्याण
कुशलिन्—(विशे०)—कुशल-पूर्वक
कुशाग्रबुद्धि—तेज बुद्धि वाला।
कुसरित्—नाला।
कृ—(पुर् पूर्वक) तनादि उभयपदी—
आगे रखना, अगुआ बनाना।
(अपा पूर्वक) हटाना, रोकना।
(उप पूर्वक) उपकार करना।
(वि पूर्वक) कर्मवाच्य बदल जाना
[illegible] हो जाना, (विप्र पूर्वक)
[illegible] हानि पहुँ-
चाना। विप्रकृत—जिसके साथ
[illegible] हो जिसके
[illegible]
[illegible] हानि पहुँचाया गया हुआ।
कृतधी (विशे०)—बुद्धिमान विचार-शील।
कृत्स्न (विशे०)—सम्पूर्ण, अखिल।
कृपण (विशे०)—अधम हृदय वाला।
कृश—(विशे०)-दुबला पतला।
कृष्—भ्वादि-परस्मै-(वि पूर्वक) झुकाना।
कृषि (स्त्री)—खेती।
क्लृप्-(परि पूर्वक) प्रेरणार्थक लगाना, बनाना, (सम् पूर्वक प्रेरणार्थक) संकल्प करना, तै करना, लक्ष्य करना।
कृष्णवर्त्मन्—(पु०)—अग्नि।
केतन—घर, निवास-स्थान।
केशिन् (पुं०)—एक राक्षसका नाम।
केसरिन् (पुं०)—सिंह।
कोटर-र—खोखला, गड्ढा।
कोटि (स्त्री०)—शिखर, अन्त, चोटी, अग्रभाग।
पराकोटि—उच्चतम शिखर।
कोश-ष—कली।
कौतूहल—उत्सुकता, उत्कण्ठा।
कौपीन—लँगोटी।
कौबेरी—उत्तर दिशा।
कौरव्य—कुरु का वंश।
कौलीन—बदनामी, अपयश।
[illegible] (विशे०)—[illegible]।
कौशिक—[illegible] ([illegible])
[illegible]।

ऐ

ऐक्ष्वाक —इक्ष्वाकु का वंशज ।

ऐरावतः —इन्द्र का हाथी ।

ओ

ओजस्विन—प्रतापी, तेजस्वी ।

औ

औदरिकः—भुक्खड़, पेटू ।

औदासीन्यं—उदासीनता, तटस्थता ।

क

ककुद —कूबड़, (अलंकार) प्रधान, सर्वश्रेष्ठ ।

कच.—बाल, केश ।

कज्जल—काजल ।

कठ् (उत्पूर्वक)—भ्वादि—आत्मने—उत्सुक होना, उत्कंठित होना ।

कतिपय—कुछ, थोड़े से ।

कथमपि—(क्रियाविशेषण)—बड़ी कठिनाई से ।

कदली—केले का वृक्ष ।

कनक—सुवर्ण ।

कन्दरम्—गुफा ।

कदम्ब —समूह, पुञ्ज, राशि ।

कमलयोनि —ब्रह्मा ।

कम्प् (अनुपूर्वक)—तरस खाना, दया करना ।

कर्ण—(आपूर्वक चुरादि-उभयपदी) सुनाना ।

कर्णधार.—मल्लाह ।

कलकल —शोर ।

कलहंस —हंस

कलभ —हाथी का बच्चा ।

कला—चन्द्रमा की कला ।

कलिका—कली ।

कलेवरम्—शरीर ।

कल्प —विधि, प्रकार ।

कल्पांत —सृष्टि का अन्त या नाश ।

कल्य—(विशे०) बड़े सवेरे ।

कल्याण (विशे०)—श्रेष्ठ, उत्तम, धन्य, भाग्यवान् ।

कल्याणिन् (विशे०)—धन्य, भाग्यवान् ।

कष्ट (विशे०)—कठिन ।

काकपक्ष.-क्षक —घुंघराले बाल ।

काञ्चन—सुवर्ण ।

काम —इच्छा, कामदेव ।

कामगम—स्वेच्छानुसार चलने वाला ।

कामत. (क्रियाविशे०)—वासना से अभिभूत

कामसू (विशे०)—इच्छाओं को पूरी करने वाली ।

कामिन् (पु०)—प्रेमी ।
कार्तांतिक—ज्योतिषी, भाग्य बताने वाला ।
काषाय—गेरुआ वस्त्र ।
किन्नर—स्वर्गीय गवैयों का एक वर्ग
किंवदन्ती—अफवाह ।
किरीटी (न)—अर्जुन ।
कुटिल—(विशे०) टेढ़ा, मक्कार ।
कुट्टिम—फर्श ।
कुट्टयिन्—(पु०) रहस्य ।
कुतूहल—उत्सुकता ।
कुधी—मूढ़, मन्द-बुद्धि ।
कुमुद—कमल ।
कुमुदिनी—कमल का पौधा ।
कुशलम्—कुशल, कल्याण
कुशलिन्—(विशे०)—कुशल-पूर्वक
कुशाग्रबुद्धि—तेज बुद्धि वाला ।
कुसरित्—नाला ।
कृ—(परि पूर्वक) तनादि उभयपदी—

गया हुआ ।
कृतधी (विशे०)—बुद्धिमान् विचारशील ।
कृत्स्न (विशे०)—सम्पूर्ण, अखिल ।
कृपण (विशे०)—अधम हृदय वाला ।
कृश—(विशे०)-दुबला पतला ।
कृष्—भ्वादि-परस्मै-(वि पूर्वक) झुकाना ।
कृषि (स्त्री)—खेती ।
क्लृप्-(परि पूर्वक) प्रेरणार्थक लगाना, बनाना, (सम् पूर्वक प्रेरणार्थक) संकल्प करना, तै करना, लक्ष्य करना ।
कृष्णवर्त्मन्—(पु०)—अग्नि ।
केतन—घर, निवास-स्थान ।
केशिन् (पुं०)—एक राक्षस का नाम ।
केसरिन् (पुं०)—सिंह ।
कोटर-र—खोखला, गड्ढा ।
कोटि (स्त्री०)—शिखर, अन्त, चोटी, अग्रभाग ।

कौशिकी—एक स्त्री का नाम।

क्रकचः—आरी।

क्रम् (आपूर्वक)— आक्रमण करना, छीन लेना, झपट्टा मारना।

क्रिया—काम।

क्रीडनीय—खिलौना।

क्लैव्य—कमजोरी, नपुंसकता, डरपोकपन, नामर्दों का सा व्यवहार (आचरण)।

क्षणिक—क्षण भर कायम रहने वाला, थोड़ी देर तक रहने वाला।

क्षत्र—क्षत्रिय, योद्धाओं का वर्ग।

क्षपित—नष्ट।

क्षपा—रात्रि।

क्षम (विशे०)—योग्य, समर्थ, उचित।

क्षय—घटना, नाश, कम होना।

क्षात्र (विशे)—क्षत्रिय वर्ण से सम्बन्ध रखने वाला।

क्षारांबुधि—खारा सागर

क्षितिप } —राजा, पृथ्वीका स्वामी।
क्षितीश्वर }

क्षिप् (आपूर्वक) तुदादि-परस्मै—पटकना, भट काना, प्रलोभित करना, (निपूर्वक) समर्पण करना, लगाना।

क्षुद्र (विशे०)—तुच्छाशय, अधम, अयोग्य।

क्षेत्र—खेत।

क्षोभ—बड़े जोर का धक्का।

ख

खम्—आकाश।

खंड—टुकडा, तोडना।

खल्वाट—गंजा।

खिन्न(विशे०)-थका हुआ, परिश्रान्त।

ग

गणक—ज्योतिषी।

गणिका—वेश्या।

गति (स्त्री)-आश्रय, चारा, अवलम्ब।

गद्गद (क्रिया-वि०)—गला रुँधा हुआ।

गंधः—महक।

गंधद्विप—सर्वोत्तम जाति का हाथी, जिसके गण्डस्थल से एक प्रकार की खुशबू निकलती रहती है।

गभस्तिः—किरण।

गम् (प्रत्युद् पूर्वक)—स्वागत करने के लिए जाना।

गर्भेश्वरत्व—धनी घर में पैदा होना, उत्तराधिकार में धन प्राप्त करना।

गाम्भीर्य—गहराई।

गाह्—(भ्वादि आत्मने०)घुसना,धँसना

गिरीश—शिवजी।

गुण—अच्छा परिणाम, लाभ, प्रभाव

गुरु (विशे०)—प्रधान, सर्वाग्रणी (पु०)-पिता, गुरवः—बड़े लोग

गृहमेधिन्(पु०)—गृहस्थ।
गृहिणी—स्त्री, गृहस्थ की स्त्री।
गोत्र—कुल, वंश।
गोमायु —सियार।
गौरव—बड़प्पन।
ग्रह.—पकड़
ग्राम्य (विशे०)—देहाती, उजड्ड, गंवारू।

घ

घट् (सम् पूर्वक प्रेरणार्थक)—जोड़ना, मिलाना।
घर्मांशु —सूर्य
घातक.—जल्लाद

च

चक्रवर्तिन्—चक्रवर्ती राजा
चक्रवाल—क्षितिज।
चक्ष् (प्रत्या पूर्वक) अदादि आत्मने- त्याग देना, इनकार कर देना।
चचत् (विशे०)—हिलता हुआ।
चञ्चू —चोंच।
चद्रकांत —चन्द्रकान्तमणि।
चपल (विशे०)—विचारहीन, चंचल अस्थिर।
चमू (स्त्री)—सेना।
चय —राशि, पुञ्ज।
चर्—भ्वादि-परस्मै-(वि पूर्वक)— घूमना फिरना, टहलना।
चर —गुप्तचर, खोफिया।
चल—(विशे०)—चञ्चल।
चलचित्तता—चित्त की चञ्चलता
चलित—एक प्रकार का नृत्य।
चातक —चातक पक्षी।
चापलम्—चपलता।
चामर—चँवरी
चारित्र्य—शुद्धाचरण, सदाचार।
चारुता—सुन्दरता।
चि—(प्र पूर्वक)-कर्मवाच्य-बढ़ना, उन्नति करना (परिपूर्वक)-प्राप्त- करना।
चिकीर्षा - करने की इच्छा।
चित्र—(विशे०) आश्चर्य, विचित्र।
चित्रार्पित—चित्र मे खिंचा हुआ।
चूडा—शिखर, चोटी।
चूडामणि—सिर का मणि।
चूत —आम का वृक्ष।
चेष्टा—कार्य।
चेष्टित —आचरण।
च्युतात्मन्—गिरी हुई अथवा भ्रष्ट आत्मा वाला।

छ

छद्मन्—(नपुं०)—कपट, बहाना।

ज

जड—(विशे०)-मूढ़ ।
जनता—जन-समूह ।
जतु—जानवर, प्राणी ।
जन्मभूमि (स्त्री०)—जहाँ किसी का जन्म हुआ हो, वह देश ।
जयंत—इन्द्र का पुत्र ।
जलचरः—जल में रहने वाला जानवर ।
जलदः, जलमुच्—बादल ।
जलयंत्र—पानी का कल, कृत्रिम जलाशय ।
जलाशय—जल का स्थान, तालाब ।
जात—बच्चा, समूह, बच्चों का समूह ।
जाति (स्त्री०)—जाति ।
जाल्म—बदमाश, शठ, धूर्त ।
जीव्—(अनुपूर्वक) भ्वादि—परस्मै- जीते रहना, किसी के बाद में भी जिन्दा रहना ।
जीवन—जीवन, जिन्दगी ।
जीवलोक—संसार, विश्व ।
जृम्भ्—(समुत् पूर्वक) भ्वादि- आत्मने—प्रयत्न या चेष्टा करना । (वि पूर्वक)—दिखाई पड़ना, व्याप्त करना ।
ज्या—धनुष की डोरी ।
ज्ञाति – जाति-बिरादरी वाले ।
ज्ञापय (ज्ञा का प्रेरणार्थक) विपूर्वक —सम्मान पूर्वक कहना, प्रार्थना करना । आ—पूर्वक आज्ञा देना ।
ज्योति शास्त्र—ज्योतिष ।
ज्योतिष्मत्—(विशे०) चमचमाता हुआ, दीप्तिमान् ।

ट

टिट्टिभी—टिटिहरी ।

ढ

ढौक्—(भ्वादि-आत्मने) समीप में आना ।

त

तटिनी—नदी ।
तनु (विशे०)—दुबला-पतला ।
तपन—सूर्य ।
तप्त—घाम से पीड़ित ।
तदानींतन—समकालीन, एक ही समय में रहने वाला ।
तमसा—एक नदी-विशेष ।
तमिस्रा—अन्धकार ।
तरंग—लहर ।
तरलता—चचलता, आन्दोलन,

इन्द्रियों का क्षोभ।
तातः—पिता, प्रेम-सूचक शब्द।
तापस—तपस्वी।
ताल—ताड़ का वृक्ष।
तितिक्ष्—भ्वादि-आत्मने०-(तिज् की सन्नन्त धातु)-क्षमा करना।
तिमिर-र—अन्धकार।
तीक्ष्ण (विशे०)—तेज, कठिन, अति कठोर।
तीर्थ—तीर्थ स्थान, पुण्य स्थान, योग्य व्यक्ति, योग्य पदार्थ।
तीर्थोदक—तीर्थ का जल, पवित्र जल।
तुषार (विशे०)—ठंडा, ठंडक।
तुषार—हल्की बौछार।
तूर्य-र्य—वाद्य-यन्त्र, नगाड़ा
तूल—रुई।
तूष्णीम्—(क्रिया वि०)—चुपचाप।
तॄ—भ्वादि-परस्मै (अव पूर्वक) यात्रा को समाप्त कर देना, गर्भस्थ चीजों को निकाल देना। (प्र पूर्वक-प्रेरणार्थक)—धोखा देना, (वि पूर्वक) देना।
तेजस्विन्—(विशे०)—वीरों की सी श्री से युक्त, (संज्ञा) योद्धा।
त्वच्—(स्त्री०)-चमड़ा, छाल।
त्रय—तीन का समूह।
त्रिपुरहर—तीनों पुरों को नष्ट करने वाले (शिवजी)।
त्रिमूर्ति—(विशे०)-तीन स्वरूप वाला

द

दक्ष (विशे०)—समझदार, चतुर।
दक्षिण (विशे०)—सभ्य शिष्ट।
दण्ड—डंठल (कमल का)।
दम—(प्र पूर्वक प्रेरणार्थक)—दबाना, कुचलना।
दमन—नियन्त्रण, बन्धन।
दम्य—जवान बैल जो अभी पालतू नहीं बन पाया है, जो अभी जोता नहीं गया है।
दयित—(विशे० बनता स०)—प्रिय स्वामी।
दरी—घाटी।
दर्प—घमण्ड।
दर्पण—आईना।
दर्भ—कुश।
दल—भाग, टुकड़ा, छोटा सा अङ्कुर, पत्ता।
दवाग्नि—जंगल की आग।
दशन—दाँत।
दार—(पु०-नित्यबहुवचनान्त)—पत्नी, भार्या।
दारुण—(विशे०)—दुःखद।
दिवसेश्वर—दिनपति, सूर्य।
दिव्य—(विशे०)—स्वर्गीय, अलौकिक

दीक्षित—दीक्षा द्वारा तैयार किया हुआ।

दीन—(विशे०)-करुणापात्र, अभागा, दुःखी।

दीप्—(दिवादि-आत्मने)—चमकना, जलना।

दीपकः—दिया,चिराग।

दीप्तिमत्—(विशे०)-चमक वाला, चमचमाता हुआ।

दु स्मर—(विशे०)—जिसका स्मरण करके दु.ख हो।

दुराराध्य—(विशे०)-जो आसानी से सन्तुष्ट न किया जा सके।

दुरित—पाप।

दुर्ग—(विशे०)-जिसके पास तक पहुँ-चना कठिन हो (सज्ञा), कठिनाई।

दुर्जनत्वम्—दुष्टता।

दुर्जय (विशे०)—जिसको जीतना मुश्किल हो।

दुर्धर्ष—(विशे०) भयानक, जिस पर आक्रमण करना कठिन हो।

दुर्निवार—(विशे०)—जिसको रोकना कठिन हो।

दुर्भिक्ष—अकाल, अन्नाभाव।

दुर्लंघ्य—(विशे०)-जिसको लंघन करना मुश्किल हो।

दुर्ललित—(विशे०) प्यार करके बिगाड़ दिया गया हुआ।

'दुश्चर—(विशे०)-कठिन घोर,जिसका आचरण करना कठिन हो।

दुष्कर—(विशे०)—जिसको करना कठिन हो।

दुष्कृत्—(पु ०)-पापी, दुष्ट।

दुष्कृत—बुरा कर्म।

दुष्टाशय, दुरात्मन्—(विशे०)-दुष्ट हृदय वाला।

दूरीकृ—(तनादि उभयपदी)-मात कर देना।

दूषण—अपराध, ऐब,अवगुण, त्रुटि।

देवरात.—(व्यक्तिवाचक)-माधव का पिता।

देवी—रानी।

देहभृज, देहिन्—(पु ०) देहधारी।

दैवदुर्विपाक.—दुर्भाग्य।

द्युति—(स्त्री०-चमक, शोभा, छवि।

द्रढय—दृढ़ करना।

द्रव्य—भौतिक पदार्थ।

(द्रु)भ्वादि-परस्मै-द्रवीभूत होना,भागना।

द्रुम —वृक्ष।

द्विगुणितः—(विशे०)—दुगुना।

द्विज.—पक्षी, ब्राह्मण।

द्विजाति —ब्राह्मण।

द्विप.—हाथी।

द्विरद—हाथी।

द्विरेफ —भौंरा।

द्वीप —टापू।

ध

धनंजय—अर्जुन का नाम है।
धनेश—धन के स्वामी अर्थात् कुबेर।
धन्य (विशे०)—भाग्यवान्।
धन्विन् (पुं०)—धनुर्धारी।
धर्म—कर्त्तव्य, धार्मिक कृत्य, आचरण की औचिति।
धर्मक्रिया—धार्मिक कार्य।
धर्मपत्नी, धर्मदारा—धर्म-पूर्वक व्याही हुई स्त्री।
धर्मारण्य—तपोवन।
धर्मासन—न्यायासन, अदालत।
धा—जुहोत्यादि-उभयपदी (अतिसम् पूर्वक)—ठगना। (अन्तर् पूर्वक) अपने को छिपाना। (अभिपूर्वक) कहना, बोलना। (सम् पूर्वक) सन्धि करना, बर्ताव करना। जैसे बाण ठीक किया जाता है, उस तरह ठीक करना।
धातृ—(पुं०)—सृष्टिकर्ता।
धामन्—(नपुं०)—शोभा, द्युति।
धारणा—मन की दृढ़ एकाग्रता।
धारावाहिन्—निरन्तर।
धारिणी—एक रानी का नाम।
धीर—दृढ़ चित्त वाला, साहसी, अध्यवसायी।
धीरता—धैर्य, मन की मजबूती।
धुर्य—नेता, प्रधान।
धुक्ष्—(सम् पूर्वक) भ्वादि-आत्मने—सुलगाना।
धू—(उत पूर्वक) भ्वादि-उभयपदी—हिलना, फड़फड़ाहट त्यागदेना।
धूर्त—बदमाश।
धृ—भ्वादि तथा चुरादि-परस्मै—धारण करना, थाँभना, (उत् पूर्वक अथवा समुत् पूर्वक) रक्षा करना, उखाड़ फेंकना, उठाना, निकाल लेना।
ध्याम (विशे०—गन्दा, मलिन।
ध्वनत्—गर्जता हुआ, कड़कता हुआ।

न

नकुल—नेवला।
नक्षत्र—तारा।
नग—पर्वत।
नद्—भ्वादि-परस्मै—प्रसन्न होना, आनंद मनाना, (अभिपूर्वक)—स्वागत करना बधाई देना।
नन्दन—इन्द्र का बगीचा।
नलिनिका—एक नौकरानी का नाम।
नलिनी—कमल का पौधा।
नवीकृ—तनादि-उभयपदी—नया कर देना, पुनर्जीवित कर देना।
नह् (सम् पूर्वक)—दिवादि-आत्मने—

तैयार हो जाना ।
नाट्य—नाच, नाटक ।
नामग्रहण—नाम लेना ।
निःश्रेयस—महत्तम आनन्द, सर्वश्रेष्ठ सुख ।
निःसत्यता—झूठ ।
निःस्नेह—निर्दय, हृदयहीन ।
निकाम—(विशे०)-खूब प्रचुर, अत्यधिक ।
निकष (ग्रावन्)—कसौटी ।
निखिल (विशे०)—सम्पूर्ण ।
निगाद्य—कहे जाने योग्य, चर्चा किए जाने योग्य ।
निग्रह—दण्ड ।
निचुलः—निचुल नामक एक वृक्ष ।
निज—अपना ।
नितरा—(क्रिया विशे०)—अत्यन्त ।
नितात—अत्यधिक ।
निदाघ—ग्रीष्म ऋतु ।
निदान—मौलिक कारण ।
निधन—मृत्यु ।
निबंधन—जोड़ने वाली लडी ।
निमित्त—शुभ लक्षण, कारण, लक्षण ।
निमिष—पलक गिरना ।
नियम—धार्मिक कृत्य ।
नियमेन—(क्रिया विशे०) जैसा कि नियम है ।
नियोगः—आज्ञा, कर्त्तव्य ।
निरतिशय—जिसको किसी ने मात न किया हो ।
निरत—लगा हुआ ।
निरपेक्ष, निरभिलाप } (विशे०) तटस्थ, उदासीन ।
निरस्त—निकाला हुआ ।
निराकरण—काट देना, फेंक देना ।
निर्गम—निकास, निकलने का द्वार ।
निर्गुण—(विशे०)—गुणरहित, अयोग्य ।
निर्झर—झरना, सोता ।
निर्बंध—हठ ।
निर्वाण—पूर्ण सन्तोष अथवा आनन्द-गर्मी को कम करना ।
निर्वात—जहाँ हवा न हो (हवा एक दम शान्त हो) ।
निर्वाद—बदनामी ।
निर्वापण—हल्का करना, कम करना ।
निर्वृत्ति—(स्त्री०)—सन्तोष, सुख ।
निर्वृत्त—हो गया हुआ ।
निशाचर—राक्षस ।
निषेवित—भरा हुआ ।
निष्कप—निश्चल, स्थिर ।
निष्पीडित—निचोड़ा हुआ, दबाया हुआ ।
निष्प्रतीकार—(विशे०)—जिसका कोई इलाज न हो ।
निसर्ग—प्रकृति ।
निसृष्ट—दत्त ।
निस्वन—ध्वनि ।

निस्त्रिंश—निर्दय, पैनी।

निष्पन्द—निश्चल।

नी—भ्वादि-परस्मै-(अनु पूर्वक) स्नेह करना, (उप पूर्वक) यज्ञोपवीत संस्कार करना, (समा पूर्वक) इकट्ठा करना, जुटा देना।

नीरध्र—घना।

नील—नील।

नुद्—(वि पूर्वक-प्रेरणार्थक) मन बहलाना, मनोरंजन करना।

नूपुर—पायजेब।

नैमित्तिक—प्रभाव, परिणाम।

नैषध—महाराज नल का नाम है जो निषधदेश के राजा थे।

नैष्ठुर्य—निष्ठुरता, प्रकृति की उग्रता।

नैसर्गिक—प्राकृतिक, औत्पत्तिक।

प

पक्कण—चाण्डाल की झोपड़ी।

पक्ष—पक्ष, एक तरफ।

पङ्कच्छिद्—गन्दगी को हटाने वाला।

पञ्चाल—पञ्चाल देश के राजा।

पञ्जर—पिंजड़ा।

पटु—निपुण।

पठ—(परि पूर्वक प्रेरणार्थक)-पढ़ाना।

पत्—(भ्वादि-परस्मै०- परि पूर्वक)-मँडराना, चक्कर काटना। (प्रणि-पूर्वक) प्रणाम करना।

पतङ्ग—मकोड़ा, पतिंगा, सूर्य।

पतिंवरा—पति का वरण करने वाली।

पत्रपुट पत्तों का पात्र (दोना)।

पत्र[illegible] [illegible]ति-[illegible] स[illegible]।

पत्रोर्ण [illegible] का वस्त्र।

प[illegible]—कल्याण हितकारी भोजन।

पद्—([illegible] पूर्वक प्रेरणार्थक) मार डालना। (प्रति पूर्वक) कबूल करना, स्वीकार करना, दिखाना-हार मानना, प्राप्त करना। (उप-पूर्वक प्रेरणार्थक) अस्तित्व में लाना, करना।

पन्नग—साँप।

पयस्विनी—गाय।

पयोद—बादल।

परभृत—कोयल।

परमप्रखर—बड़ी कीर्ति वाला।

परमार्थ—सर्वोच्च सत्य

परमार्थत—वस्तुत, वास्तव में।

परतप—शत्रुओं का नाश करने वाला, दुख देने वाला।

परपरा—सिलसिला।

पराक्रम—वीरता, शूरता।

परागत—लौटा हुआ।

परावृत्त—[illegible] [illegible] हुआ लौटा हुआ।

परिगृहीत—जिसके ऊपर कृपा दिखाई गई हो।
परिग्रहः—विवाह।
परितर्पण—सन्तुष्ट करने वाला।
परिदेवना—रोना धोना।
परिपथिन्—विघ्नकारी, बाधक।
परिभवः—तिरस्कार।
परिभाविन्—तिरस्कार करने वाला, नीचा दिखाने वाला।
परिवार, परिजनः } नौकर-चाकर।
परि (री) वाह—जलमार्ग, नाली, पानी के निकलने का मार्ग।
परिव्राज्जका—सन्यासिनी।
परिषद्—सभा।
परीक्षित्—एक राजा का नाम।
परीत—अभिभूत
परोक्षे—पीठ पीछे।
पर्यटन—टहलना, घूमना।
पर्याप्त—योग्य, समर्थ।
पर्याय—नियमित पारी या क्रम।
पल्लव—डाली, टहनी।
पल्लविका—एक नौकरानी का नाम।
पल्लवित—जिसमें पत्ते आ गए हों।
पवन—हवा।
पांसुल—धब्बा या दाग लगाने वाला।
पांडु—पीला, सफेद।
पाणिग्रहः—विवाह।
पाताल-ल—पाताल।
पात्रं—पात्र।
पानीय—जल।
पापभाज्—पापी।
पारक्य—शत्रुपक्षीय।
पारग्रामिक—शत्रुपक्षीय।
पारसीका—फारस देश वाले।
पार्श्व—पास, बगल।
पावक—आग।
पावन—पवित्र करने वाला।
पिंगल—पीला, लाल, भूरा।
पिटः—टोकरी।
पिठर—बर्तन, कड़ाही।
पिपासु—प्यासा।
पिशुन—चुगलखोर।
पिशुनता—चुगलखोरी।
पीठ—आसन, सिंहासन।
पीडित—दुखित।
पीवर—मोटा।
पुङ्गवः—बैल, समासों के अन्त में आने पर इसका अर्थ होता है "सर्वश्रेष्ठ"।
पुण्य—पवित्र।
पुण्यभाज्—पुण्यात्मा।
पुरन्दरः—इन्द्र।
पुरस्कृत—जो आगे आगे चलता हो।
पुराण—पुराना।
पुष्—दिवादि-परस्मै—प्रदर्शित करना।
पुष्पित—फूला हुआ।
पुष्पेषुः—कामदेव।

प्रोत्पीड—जल की प्रचुरता
पूर्ववत—पहिले की तरह।
पृथग्जन—तुच्छ मनुष्य, गँवार, अपढ़।
पृष्ठ—सतह, पीठ।
पेशल—चतुर, निपुण।
पोत—जहाज।
वीरपोत—जवानी से भरा हुआ, योद्धा।
पौरव—पुरु का वंशज।
पौरुष—पराक्रम, सामर्थ्य।
पौरुहूत—इन्द्र-सम्बन्धी।
प्रकीर्ति—नाम की चर्चा।
प्रकीर्तित—कहा गया हुआ।
प्रकृति—मन्त्रि-समूह।
प्रकोप—क्रोध।
प्रकोष्ठ—घर के अन्दर का आगन।
प्रक्रांत—पराक्रम।
प्रक्षीण—नष्ट।
प्रगल्भ—ढीठ।
प्रजागर—रात की जगाई, रात को जागते रहना।
प्रजापति—सृष्टिकर्ता।
प्रणय—प्रेम।
प्रणयिता—प्रेम।
प्रणयिनी—प्रियसखी।
प्रणिधि—गुप्तचर
प्रतनु—बहुत छोटा।
प्रताप—शक्ति, पराक्रम, गर्मी।
प्रतिनिविष्ट—हठी।
प्रतिपादित—दिया हुआ।
प्रतिबधवत्—कठिनाइयों अथवा विघ्न-बाधाओं से युक्त।
प्रतिबुद्ध—जगा हुआ।
प्रतिबोधवत्—बुद्धि-शक्ति वाला, तर्क-शक्ति वाला।
प्रतिम—समान।
प्रतिवाच—उत्तर, जवाब।
प्रतिष्ठा—स्थिरता, स्थिति की दृढता, दृढ स्थिति।
प्रतिसक्त—लगा हुआ, गढ़ा हुआ।
प्रतीकार } इलाज, उपाय।
प्रतिक्रिया }
प्रतीत—विश्वास करने वाला।
प्रतीप—विरुद्ध, विपक्ष।
प्रत्यग्र—नया, ताजा।
प्रत्यर्थिन्—शात्रव, विरुद्ध, अड़चन डालने वाला।
प्रत्यादेश—ढक लेने वाला प्रतिद्वन्द्वी, पछाड़ देने वाला, आच्छादित कर लेने वाला।
प्रथित—प्रसिद्ध।
प्रत्यक्—पश्चिम की तरफ।
प्रत्युत्पन्नमति—हाजिर जवाब।
प्रदान—विवाह में देना।
प्रदोष—सन्ध्याकाल।
प्रद्रुत—भाग गया हुआ।
प्रबन्ध—निबन्ध।

प्रभव.—उत्पत्ति स्थान ।
प्रभाव —शक्ति, बल ।
प्रभुत्व—शक्ति, अधिकार ।
प्रमदवन—आमोद-प्रमोद का बगीचा ।
प्रमाण—सीमा, तुलादण्ड, अधिकारी ।
प्रमाणीकृ—अधिकारी मानना, प्रमाण मानना ।
प्रमाथिन्—व्यथा पहुँचाने वाला ।
प्रयत—पवित्र, तपस्या से विशुद्ध किया गया हुआ ।
प्रयाण—आगे को चलना ।
प्रयुक्त—लगाया हुआ, इस्तेमाल किया हुआ ।
प्रयोग —प्रयोग, क्रिया, व्यवहार ।
प्रलाप —रोना धोना ।
प्रवणीकृ—झुका हुआ, खींचा हुआ ।
प्रवयस्—बुड्ढा ।
प्रवात—हवा का वेग, झञ्झावात, आँधी-तूफान से युक्त दिन ।
प्रवातशयनम्—वह बिस्तरा जो झञ्झावात के बीच में लगाया गया हो ।
प्रवृत्ति—प्रारम्भ
प्रव्रज्या—सन्यास ।
प्रशमित—ठीक कर दिया हुआ ।
प्रश्चोतन—छिड़काव ।
प्रसन्न—खुश ।
प्रसगत —यों ही, बात की चलन में, बात के सिलसिले में ।
प्रसह्य—जबरदस्ती ।
प्रस्ताव —चर्चा, हवाला ।
प्रस्तुत—इस समय छिड़ा हुआ विषय ।
प्रसूति—सन्तान ।
प्रसून —फूल ।
प्रस्थ —एक बटखरे को कहते हैं
प्रहरण—अस्त्र ।
प्रहसन—हँसी-मजाक ।
प्राक्—पूर्व की तरफ ।
प्राकार—चहार दीवारी ।
प्राग्रसर—प्रथम, सब से आगे ।
प्राङ् मुख—अपना मुँह पूर्व की [त]रफ करके ।
प्राणायाम -साँस रोकना, श्वासाव[रोध]
प्रातराश —कलेवा, प्रात काल [का] भोजन ।
प्रात —अन्त, सिरा, किनारा ।
प्राप्तप्रसव—बच्चा दे चुकी हुई ।
प्रार्थना—इच्छा, प्रणय-याचना ।
प्रावृष्—वर्षा ऋतु ।
प्राश्निक —निर्णायक, पंचायत ।
प्रिय—प्यारा ।
प्रेषित—भेजा हुआ, खारिज, बरखा[स्त]
प्रोद्दीप्त—आग लगाया हुआ ।
प्लवग (व)—बन्दर ।

फ

फण णा—फन (साँप का) ।
फल—फल, परिणाम ।
फलेग्रहि—फलयुक्त, सफल, समय पर फल धारण करने वाला ।

ब

वक—बगुला।

वटु—युवक लड़का।

वद्री—कढ़ी।

वधुल—वेश्या के घर का नौकर।

वल—सेना।

वलि—पूजा।

वलीवर्द—बैल।

बांधव—रिश्तेदार, भाई बिरादरी।

बालिश—मूर्ख।

बिम्ब—परछाई।

बीभत्समान—डरता हुआ, दुःखित होता हुआ।

बुद्धिजीविन्—बुद्धि लगाने वाला।

ब्रह्मर्षि—ब्राह्मण ऋषि।

भ

भग्नोद्यम—जिसके प्रयत्न विफल हो गये हो, हार गया हुआ।

भज—भ्वादि उभयपदी-मनोरंजन करना, आशा करना अभ्यास करना।

भक्तिमत्—भक्तिवाला।

भद्र—सम्बोधन करने का एक ढंग है, महाशय जी श्रीमान् जी।

भद्रा—सभ्य वा शिष्ट स्त्री।

भरण—पोषण।

भरतर्षभ—भरतवंशियों में सर्वश्रेष्ठ।

भर्तृदारिका—राजकुमारी।

भव—उत्पत्ति शंकर जी।

भवन—घर।

भवितव्यता—होनहार, होनी, भाग्य।

भागधेय—भाग्य तकदीर।

भाग्य—समृद्धि, ऐश्वर्य सुख के दिन।

भाजन—पात्र।

भाष्—अपपूर्वक-भ्वादि-आत्मने- निन्दा करना, गाली देना।

भाव—भावना, प्रेम प्रकाश होना, विद्वान् व्यक्ति, सम्माननीय महोदय।

भासुर—चमचमाता हुआ, चमकीला।

भास्वत्—चमकता हुआ, सूर्य।

भिक्षाशित्व—भीख माँगकर जीवन निर्वाह करना।

भीष्म—भयंकर, भयानक।

भुजग—साँप।

भुवन—संसार।

भू—(विपूर्वक-प्रेरणार्थक) सोचना, सिद्ध करना, निर्णय करना, देखना, अभिज्ञ होना, जानना (सम् पूर्वक) पैदा होना।

भूत—प्राणी।

भूतधारिणी—पृथ्वी।

भूमिका—पार्ट नाटक का पात्र।

भूमिदेव—ब्राह्मण।

भूय·—फिर।
भूयिष्ठ—खूब।
भूरिवसु —व्यक्ति-वाचक संज्ञा, मालती का पिता।
भैक्ष्य—भीख माँगना।
भोग.—भोग, विलास।
भ्रंश·—हानि।
भ्रांतिमत्—घूमता हुआ, चक्कर काटता हुआ।

म

मंगल—शुभ, शुभ कृत्य, (समासों में) शुभ, जैसे, मंगलतूर्यः—शुभ नगाड़ा, मंगलस्नानम्—शुभ-स्नान।
मंजु—मीठा।
मंजुल.—एक प्रकार की लता।
मंडन—आभूषण, सजावट।
मद्—(उद् पूर्वक-प्रेरणार्थक) पागल कर देना, मतवाला कर देना।
मद·—नशा, प्रबल इच्छा, चूता हुआ रस।
मदमुच्—मद बहाने वाला।
मधु—शराब।
मधुर—सुन्दर, मीठा।
मधुमास —बसन्त समय।
मधुसूदनः—कृष्ण, मधुनामक राक्षस को मारने वाले।
मध्यस्थ—निर्णायक।
मनस्विन्—बुद्धिमान्, दृढ़चित्त,
मनस्विनी—बुद्धिमती स्त्री।
मनीषिन्—बुद्धिमान् पुरुष, ऋषि।
मनोभू } कामदेव।
मनसिजः }
मंत्र्—(आ पूर्वक-चुरादि-आत्मने०) विदा होना।
मंत्रकृत्—मंत्र बनाने वाला।
मंत्रवत्—मंत्रों से युक्त, मंत्र वाला।
मंथर—मन्द, धीमा।
मंद—कुन्द, कुण्ठित।
मंदभाग्य—मन्द भाग्य वाला, अभागा।
मंदायमान—पिछड़ा हुआ।
मंदीकृत—धीमा किया हुआ।
मंदौत्सुक्य—जिसका दिल दुःखी हो, निकाल दिया हुआ।
मन्मथ·—कामदेव।
मन्यु—शोक, दुःख, क्रोध।
मरिच.—मिर्च।
मरीचि.—किरण।
मर्त्य —मनुष्य, मरणशील।
मलयज —चन्दन का रस।
महाजन —भीड़, जनता।
महाभाग —भाग्यवान पुरुष।
महातेजस् —बड़ा तेजस्वी।
महार्घ —महँगा, कीमती।
महीपाल —राजा।

महेन्द्र—बड़े इन्द्र।
महेश्वर—बड़ा ईश्वर (पति)।
महोक्ष—बैल।
महौषधि—बड़ी दवा।
मागधी—सुदक्षिणा, मगधदेश के राजा की लड़की।
मात—प्यार का शब्द।
मान—घमंड।
मानिनी—घमंडी स्त्री।
मानुष्यक—मनुष्य प्रकृति।
मारुत—हवा।
मालाकार—माली।
माल्यम्—माला।
मिश्र—प्रतिष्ठा-सूचक प्रत्यय जिसका अर्थ होता है, "सम्माननीय, योग्य"।
मुक्ताफल—मोती।
मुग्ध—कपट-रहित, निरपराध।
मुद्—(अनुपूर्वक-भ्वादि आत्मने०) अनुमोदन करना, समर्थन करना।
मुद्रा—मुहर।
मुरारि—विष्णु।
मूर्छ्—(भ्वादि परस्मै०) प्रभाव डालना, बल दिखलाना, बल पाना, मोटा पड़ना, घना पड़ना।
मुसल—मूसर या मूसल जिससे ओखली में अनाज काँड़ा जाता है।
मुहु—बारम्बार।
मूर्तिमत्—मूर्तिमान्।
मूर्धजः—केश, बाल।
मृगतृष्णिका—मृगतृष्णा, झूठी आशा।
मृणाल—कमल का रेशा।
मृणालिनी—कमल।
मृद्—मिट्टी।
मृदु—कोमल चित्त वाला, कमजोर।
मृष्—(चुरादि-परस्मै०) सहन करना
मृषा—व्यर्थ, गलती से।
मृषोद्य—झूठ।
मेखला—करधनी पेटी।
मेघनाद—व्यक्ति-वाचक संज्ञा। रावण के पुत्र का नाम।
मेधा—बुद्धि, गुण।
मेध्य—पवित्र।
मैथिलेय—मैथिली के पुत्र, कुश।
मोक्ष—छुटकारा।
मौल—पुराना नौकर, बाप-दादों के जमाने से चला आया हुआ नौकर।
म्लेच्छ—बहिष्कृत जाति का व्यक्ति जङ्गली, असभ्य।

य

यजन—यज्ञ।
यतिचनचारिता—नीच काम करना।
यथार्थ—अर्थ के अनुसार, ठीक-ठीक।

यथावत्—(क्रिया-विशे०) उचित विधि के अनुसार, उचित रीति से।

यदृच्छया—(क्रिया विशे०) स्वेच्छानुसार। अकस्मात्।

यम (निपूर्वक)—(भ्वादि-परस्मै) हटाना।

यम—जुड़वाँ।

यष्टि (स्त्री)—माला, हार।

यस् (आ पूर्वक-प्रेरणार्थक)—दुःख देना, व्यथित करना।

या (प्रपूर्वक) अदादि-परस्मै--प्रस्थान करना, रवाना होना।

याच्ञा—दीन होकर माँगना।

यातुधान —राक्षस।

याहच्छिक—(विशे०) आकस्मिक।

यावदर्थं —(क्रियाविशे०) हर माने में।

युज् —(रुधादि-उभयपदी) इरादा करना, भाग्य में बदा होना। (निपूर्वक प्रेरणार्थक) नाधना, जोतना, जोड़ देना, मेल कराना। (प्रपूर्वक आत्मने) कार्य करना, नाटक-रूप में प्रदर्शित करना।

युध् —युद्ध।

युवराज —युवराज।

योग —मन को एकाग्र करने की विद्या।

योजन—आठ मील की दूरी।

योनि —उद्‌गम-स्थान, मूल कारण।

र

रहस्—(नपु) वेग, चाल।

रजनिचर—राक्षस।

रणरणक—चिन्ता।

रज्—(अपपूर्वक-कर्मवाच्य) असंतुष्ट हो जाना।

रणधुरा—समर का अग्रभाग।

रणशिक्षा—युद्ध-शास्त्र, युद्धकला

रत्नाकरः—समुद्र।

रंध्र —विवर, गड्ढा, छेद, सूराख।

रभ् (परि पूर्वक)—भ्वादि आत्मने —गले लगाना, आलिंगन करना।

रय. —धारा, प्रवाह, वेग।

रश्मि —लगाम।

रस्—भ्वादि-परस्मै—गरजना।

रस —रस (शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स अद्भुत।

रसवत्तर—अधिक स्वादिष्ट।

रसातल—पाताल।

रसाल —आम्रवृक्ष।

रसिक(विशे०)—शोभायुक्त, रमणीक, रस को समझने वाला।

रहस्य—भेद, गुप्त बात।

रहस्यभेद—गुप्त बात का खुल जाना।

राक्षस —नन्द-वंशीय राजाओं के मंत्री का नाम "राक्षस" था।

राग —वासना, उत्कट इच्छा।

राजन्वत्—(विशे०)--न्यायशील अथवा सज्जन राजा द्वारा शासित।

राजर्षि—क्षत्रिय ऋषि।

राजतंत्र—शासन-विद्या, शासन-शास्त्र।

रात्रिचरी—राक्षसी।

राध्—(आ पूर्वक-प्रेरणार्थक) प्रसन्न करना, किसी की इच्छा के अनुसार व्यवहार करना।

रामगिरि —एक पर्वत का नाम।

रुजा-ज्—(स्त्री०) पीडा, आधि, मनोव्यथा।

रुधिर—रक्त।

रोगिन्—(विशे०)—रोगी, बीमार।

रोषण—(विशे०) क्रोधी।

रोषणता—क्रोधी प्रकृति।

रौरव—(विशे०)—रुरु नामक मृग की छाल से बना हुआ।

ल

लक्ष्मन्—(नपुं०)--धब्बा, दाग।

लक्ष्मी —शोभा, द्युति।

लघय्—कम करना, घटाना।

लभ्—(उपा पूर्वक) भ्वादि-आत्मने—व्यंग्य बोलना, ताना मारना, कलंक लगाना। (प्रपूर्वक)-भ्वादि परस्मै—गड़बड़ाना, जलना।

ललामन् (नपुं०)—एक आभूषण।

ललामम्—एक आभूषण।

लवंगिका—मालती की सौतेली बहिन।

लवणाम्भस्—(पु०)-समुद्र (खारे पानी वाला)।

लाघव—गौरव, हीनता बेइज्जती, नीचा देखना।

लाञ्छन—निशानी। कठपद-लांछन-"श्रीकण्ठ" शब्द से प्रसिद्ध।

लिख्—(वि पूर्वक) तुदादि-परस्मै—गाड़ देना, लगा देना, बींध देना।

लिखित—लेख, दस्तावेज।

लुभ्—(प्र पूर्वक प्रेरणार्थक) प्रलोभित करना, उसकाना (वि०पूर्वक-प्रेरणार्थक) किसी के चित्त को उभाड़ना या प्रलोभित करना।

लोध्र लोध्रम्—लोध्र नाम का वृक्ष, अथवा लोध्र वृक्ष का फूल।

लोल—(विशे०) उत्सुक।

व

वय —[illegible]।

वयस्थान—[illegible]

वत्स —बछड़ा।

वत्सतरी—बछिया।

वनज्योत्स्ना —माधवी लता ।
वनदेवता—वन की देवता ।
वनस्पति —वृक्ष ।
वन्य—जंगली ।
वप्—(निर् पूर्वक-भ्वादि-परस्मै)-देना, उपहार देना ।
वप्तृ—(पु०) बोने वाला ।
वम्—(उत् पूर्वक-भ्वादि-परस्मै)-कै करना, उँडेलना, निकालना ।
वयस्—(नपुं०) कौआ, पक्षी ।
वर—(विशे०)-सर्व-श्रेष्ठ, सर्व-प्रथम
वर —दूल्हा ।
वराक—(विशे०) बेचारा, दयनीय ।
वरीयस्—(विशे०) अच्छा, बड़ा ।
वर्ण —जाति ।
वर्ग्य.—किसी गुट्ट का, किसी वर्ग का ।
वर्ग्या —नाटकीय पात्रों का समुदाय ।
वर्णिन्—ब्रह्मचारी ।
वल्कल —पेड की छाल का वस्त्र ।
वल्गित—उछाल, कुदाव ।
वल्मीक.-क—बाँबी, बिमौटा ।
वल्लभ—प्रिय, इष्ट । वल्लभा—पत्नी
वश.—अधीनता ।
वशिन्—(विशे०) ऋषि, जिसने इन्द्रियों को जीत लिया हो ।
वश्या—आज्ञाकारिणी पत्नी ।
वस्—(अध्यापूर्वक-भ्वादि-परस्मै०) । आबाद करना, बसाना, प्रवेश करना ।
वसति (स्त्री०)—निवास-स्थान ।
वसतोत्सव.—वसन्त ऋतु का उत्सव ।
वह्—(प्रेरणार्थक) जाना, भ्रमण करना (निर् पूर्वक प्रेरणार्थक) करना, व्यवस्था करना ।
वाच्य —कलंक ।
वाजिन्—घोड़ा ।
वाद.—अफवाह, बातचीत ।
वाम—उलटे आचरण वाला, विरुद्ध आचरण वाला ।
वायस —कौआ ।
वारण —हाथी ।
वारयोषित्—वेश्या ।
वाराणसी—बनारस, काशी ।
वारिधर —बादल ।
वारियन्त्र—जल-चक्र (जल को ऊँचा उठाने वाली एक घूमती हुई पहिया ।
वार्त—कुशल, कल्याण ।
वार्धक—वृद्धावस्था ।
वासगृह —मकान का भीतरी हिस्सा ।
विकसित—बढ़ा हुआ, फैला हुआ ।
विकार —रोग, बीमारी ।
विकारहेतु.—प्रलोभन ।
विक्रम.—पराक्रम, वीरता ।
विक्लव—डरा हुआ, दुःखित, चकराया हुआ ।
विगुण—बुरा, अयोग्य ।

विग्रह—शरीर, झगड़ा, शत्रुता।
विघात—विघ्न, रुकावट, अड़चन।
विचक्षण—विद्वान्, निपुण, चतुर।
विजया—(और जया)—एक प्रकार का मन्त्र जिससे भूख-प्यास की व्यथा दूर हो जाती है और अद्भुत शक्ति मिलती है।
विजिह्म—टेढ़ा, कुटिल।
विज्ञापना—प्रार्थना।
विटप—शाखा, डाली।
विडम्ब्—(चुरादि-परस्मै) नकल करना।
वितथ—झूठा।
वितीर्ण—पैदा हुआ, उतरा हुआ, दिया हुआ।
विदग्धता—चतुरता।
विदेश—विदेश, पराया देश।
विद्युत्वन्—बादल।
विद्विष्—शत्रु।
विधातृ—सृष्टि-कर्ता।
विधृत—रक्षित।
विधेय—नौकर।
विधेयज्ञ—जो अपना कर्तव्य जानता है, आज्ञाकारी।
विनशन—दिल्ली के उत्तर पश्चिम में एक देश।
विनिमय—बदला-बदली।
[illegible]
विपश्चित्—बुद्धिमान्, विद्वान् पुरुष।
[illegible]

२८

विप्रलब्ध—धोखा खाया हुआ, ठगा हुआ।
विप्लवः—उलट-फेर, विरुद्धता।
विभवः—जायदाद, ऐश्वर्य, धन।
विभावरी—रात्रि।
विभुः—स्वामी, अधिपति।
विभ्रमः—घबराहट, हानि।
विमनस्—रंजीदा, दुखी, खिन्न।
विमानित—अपमानित।
विमार्ग—गलत रास्ता, अनुचित मार्ग।
वियुक्त—अलग हो गया हुआ।
विरत—समाप्त, बन्द।
विराग—असन्तोष।
विराम—बन्द हो जाना, समाप्ति।
विरोध—वैर।
शाश्वत-विरोध—सहज वैर।
विलासः—भोग शृंगार-पूर्ण मनोविनोद।
विवृत—खुला हुआ।
विवेक—विचार, बुरा-भला पहिचानने की सामर्थ्य, निर्णय।
विश्—(अभिनि पूर्वक) तुदादि-आत्मने—घुसना। (सम् पूर्वक)—सोना।
विशुद्धि—शुद्धता, पवित्रता।
विशेषः—अन्तर।
विश्रब्ध—(क्रिया विशे०) विश्वास-पूर्वक।
विश्रंभः—विश्वास।

विश्रम्भस्थानम्—विश्वास का पात्र।
विश्राम.—आराम।
विश्वंभरा—पृथ्वी।
विश्वसनीयता—विश्वास पैदा कर देने की शक्ति।
विषण्ण—खिन्न।
विषम—उलटा, कठिन।
विषय:—क्षेत्र, प्रान्त, इन्द्रियों के भोग्य पदार्थ, इन्द्रिय-सुख।
विषाण:-णं—सींग।
विषाद:—शोक, भय, दुःख।
विष्टर:—आसन।
विसर:—राशि,
विसृष्ट—विदा किया हुआ, भेज दिया गया हुआ।
विस्तीर्ण—चौड़ा, फैला हुआ।
विस्फारित—फैला हुआ।
विहित—डिगरी, आज्ञा।
विह्वल—व्याकुल, दुखित, शोकाभिभूत।
विह्वलता—व्यथा।
वीरसू:—वीर पुत्र पैदा करने वाली।
वृ—चुरादि, परस्मै,—माँगना।
वृकोदर.—भीम।
वृज्—(चुरादि-परस्मै,-निकालना, (आपूर्वक) झुकाना, (वि पूर्वक)-रहित होना, हीन होना।
वृत—(निर् पूर्वक प्रेरणार्थक) खतम करना। (परि पूर्वक) चक्कर काटना, (प्र पूर्वक) पैदा होना-उठना, शुरू होना, (व्यपपूर्वक) पीछे को घूम जाना।
वृत्ति.—(स्त्री०)जीविका, व्यवहार आचरण।
वृद्धि—(स्त्री०) बढ़ती, बढ़ना।
वृषल.—शूद्र, चन्द्रगुप्त की पदवी।
वृषाक—शिवजी (जिनके ध्वज पर बैल का चिह्न है।
वृष्टि—वर्षा।
वेग.—तेजी।
वेगानिल:—तेज हवा का झोंका।
वेणुलता—बाँस की छड़ी।
वेतस.—बेंत, नरकुल।
वेदि-दी—वेदी, यज्ञ की वेदी, होम करने की वेदी।
वेधस्—ब्रह्मा।
वेशवनिता—वेश्या।
वेश्मन्—घर।
वेष्टन—पगड़ी।
वैकृत—अशुभ लक्षण।
वैतान—यज्ञ-सम्बन्धी, पवित्र।
वैतानिक—पवित्र, यज्ञ में अर्पित
वैतालिका.—भाट।
वैदेही—सीता।
वैद्युतानल—बिजली की आग।
वैरिन्—शत्रु।
वैहायस—हवा में स्थित, हवाई।
व्रत—आचरण-पद्धति।

व्रीडित—लज्जित।
व्यक्ति—(स्त्री०)—प्राकट्य, आविर्भाव,
व्यक्त—(क्रियाविशे०) स्पष्ट ही है।
व्यग्रत्व—किसी चीज में लगा होना।
व्यजन—पंखा।
व्यतिकर—घटना।
व्यपदेश—कुल, नाम, जाति।
व्यय—खर्च, विघ्न, रुकावट, हानि।
व्यलीक—दु.ख, शोक।
व्यवहार—अदालती तरीका।
व्यवहारासन—न्यायालय।
व्यवहित—अलग किया हुआ।
व्यसन—दु ख, आवश्यकता, कठिनता, खूब दृढ़ता-पूर्वक लगन।
व्याकुल—गहरे से अथवा ध्यान पूर्वक लगा हुआ।
व्याल—साँप।
व्याध—बहेलिया, शिकारी।
व्याहार— } शब्द, वाणी।
व्याहृति }

श

शकल—टुकड़ा।
शक्ति—एक अद्भुत अस्त्र।
शक्र—इन्द्र।
शची—इन्द्र की पत्नी।
शङ्कु—काँटा, बाण।
शप्—(भ्वादि-उभयपदी)-निन्दा करना।
शबर—पहाड़ी जाति का व्यक्ति।
शब्द—शब्द, पदवी।
शम्—(नि पूर्वक) दिवादि-परस्मै—सुनना, पाना। (प्रेरणार्थक) हटाना दबाना, दमन करना, (प्र पूर्वक-प्रेरणार्थक) तै करना ठीक करना।
शमयितृ—नाश-कर्ता।
शरजन्मन्—कार्त्तिकेय, षडानन।
शरण—घर।
शरणागत—शरण में आया हुआ, रक्षार्थ आया हुआ।
शरद्—(स्त्री) वर्ष, साल।
शरव्य—निशाना, लक्ष्य।
शर्मन्—सुख।
शर्वरी - रात्रि।
शरासन—धनुष।
शरीरिन्—शरीर धारी, प्राणी।
शल्य—बाण।
शश—खरगोश।
शश्वत्—(क्रिया विशे०) हमेशा के लिए।
शस्त्रभृत्—शस्त्रधारी, योद्धा।
शाखामृग—बन्दर।
शात—हल्का हो गया हुआ, घट गया हुआ, हटा हुआ।
शांति—नाश हटाव।
शालि—एक प्रकार का धान।

शालिन्—युक्त ।
शावः-शावकः—बच्चा ।
शास्—(अनुपूर्वक) अदादि-परस्मै—राय देना ।
शाश्वत—चिरस्थायी, नित्य ।
शासन—आज्ञा ।
शिक्षा—राय, उपदेश ।
शिखा—लपक, ज्वाला ।
शिखिन्—मयूर ।
शिथिलय्—ठंढा कर देना, शिथिल कर देना, ढील कर देना, कम-जोर कर देना ।
शिरोधर.—गर्दन ।
शिल्प—कला, चातुरी ।
शिलापट्ट.—पत्थर की पटिया ।
शिलोच्चयः—पहाड़, पत्थरों का समूह ।
शिव—कल्याण, भलाई ।
शिष्—वि पूर्वक (प्रेरणार्थक) मात कर देना, बढ जाना ।
शुक्ति.—सीप ।
शुच्—(स्त्री०) शोक, दु.ख ।
शुद्धात.—राजा का रनिवास, रनिवास के निवासी अर्थात् रानी अथवा रानियाँ ।
शुश्रूष्—सेवा करना ।
शुभशंसिन्—शुभ-सूचक ।
शूलिन्—(पु०)-शिवजी ।
शृणि—(स्त्री०)-चाबुक, अंकुश ।
शैलः—पहाड़ ।
शैवल—काई ।
शोण—(विशे०)—लाल ।
शोणित—खून ।
शोभा—छवि, सुन्दरता ।
श्रीशः—विष्णु ।
श्रुत—प्रसिद्ध, ख्यात ।
श्रुति—कान ।
श्रेयस्—सुख, सौभाग्य, कल्याण, (विशे०) अच्छा, अधिक, प्रशंसा-पात्र ।
श्रेष्ठिन्—(पु०)-सेट, सौदागर ।
श्रोत्रिय—विद्वान् ब्राह्मण ।
श्वापदः—शिकारी जानवर, जङ्गली जानवर ।
श्वेतमान—(विशे०) सफेद ।

ष

षड.—समूह ।

स

संयमन—रोकना, खंचना ।
संयोग—मेल, जोड़ ।
संरभ.—क्रोध, उग्र प्रकृति ।
संवाद.—होलिया ।
संव्यवहार—सौदागरी, व्यापार, तिजारत ।

संविभक्त—हिस्सा बाँटा हुआ, अलगाया हुआ।
सश्रय —अवलम्ब, सहारा।
ससग —सम्पर्क, लगाव, सम्बन्ध।
ससार —ससार।
सस्तीर्ण—बिखेरा हुआ।
सस्थापन—नींव जमाना।
सस्थित—मरा हुआ, खतम हो गया हुआ।
सहार —ससार का विनाश, प्रलय।
सकल—सम्पूर्ण, अक्षत।
सकाम—जिसकी इच्छाएँ पूरी हो गई हों, सन्तुष्ट।
सक्त—जारी, शुरू किया हुआ।
सकर —जातियों का गडबड सड़बड मिल जाना।
सकल्प—विचार।
सकल्पयोनि -कामदेव।
सकुल—भरा हुआ।
सकोच —अगों को सिकोड़ लेना।
सग —लगाव, सम्बन्ध, आसक्ति।
सघ —समूह।
सचकित—(विशे०) चौंका हुआ।
सज्ज—(विशे०) तैयार।
सज्—(प्र पूर्वक)-भ्वादि-परस्मै—आसक्त होना। (व्यति पूर्वक) जोड़ना।
सञ्जीवनौषधि—(स्त्री) पुनरुज्जीवित करने वाली जड़ी।
सत्केतुः—अच्छा ध्वज।
सत्क्रिया—गुण, भलाई, नेकी, सत्कार।
सत्त्व—जीव, प्राणी।
सद्—भ्वादि-परस्मै—डूबना, गिरना; (वि पूर्वक) खिन्न होना, उदास होना, (उत् पूर्वक) डूबना, विपत्ति में पड जाना।
सदस्या—यज्ञ में सहायक।
सतति-(स्त्री०) सन्तान—औलाद, बाल-बच्चे।
सदिष्ट—आज्ञप्त।
सन्धानम्—ठीक करना, निशान लगाना।
सधि —जोड़।
सन्निकर्ष —पास, पड़ोस, सान्निध्य।
सन्निपात—समूह।
सपत्न —शत्रु।
सपत्नी—सौत।
सफल—(विशे०) फल-युक्त।
सम्राज्—चुरादि-परस्मै-सम्मान करना।
सभाज्—चक्रवर्ती राजा।
समक्ष—(क्रियाविशे०) सामने।
समर—युद्ध।
समवस्था—दशा।
समवाय —समुदाय।
समाधि —मन की एकाग्रता।
समापत्ति—घटना, आकस्मिक अवसर।

समाश्रय—सहारा, अवलम्ब ।
समिति—(स्त्री) युद्ध ।
समिद्धत्—(विशे०)-यज्ञीय इन्धन खिलाया गया हुआ ।
समीप—(क्रिया विशे०) नजदीक ।
समुन्नति—(स्त्री) ऊँचाई ।
समुच्चय —समूह, समुदाय ।
समुत्सुक—(विशे०) बेहद उत्सुक, बेचैन ।
समृद्धि—बढ़ा चढ़ा हुआ
समृद्धि—(स्त्री) उन्नति, अभिवृद्धि ।
सपत्ति—(स्त्री) गुणो का उत्कर्ष ।
संपन्न—युक्त, तैयार किया हुआ, बना हुआ, हो गया हुआ ।
संप्रतिपत्ति—(स्त्री) कबूलना, मानना ।
संबंध:—सम्बन्ध ।
सबंधिन्—सम्बन्धी, रिश्तेदार ।
सभृत—इकट्ठा किया हुआ ।
सभोग —आनन्द उड़ाना ।
संभ्रम.—डर, घबराहट ।
समोह:—अज्ञान ।
सरणि—विधि, प्रकार, ढग ।
सरसिज —कमल ।
सरोषम्—(क्रियाविशे०) क्रोध-पूर्वक ।
सर्ग.—सृष्टि ।
सर्वथा–(क्रियाविशे०) सब प्रकार से ।
सर्वदमन.—सब को दमन करने वाला ।
सर्वांगीण—(विशे०) सारे शरीर पर लिपा हुआ ।
सलिल—जल ।
सशब्द —(क्रियाविशे०)—शब्द (आवाज)करता हुआ ।
सस्यं—फसल ।
सह्—(उत् पूर्वक) भ्वादि-आत्मने — हिम्मत करना ।
सहकार —आम्रवृक्ष ।
सहज (विशे०)—प्राकृतिक ।
सहस्रकिरण. } सूर्य (एक हजार
सहस्रधामन् } किरण वाले) ।
सहाय —साथी, मित्र ।
सहोदर —सगा भाई ।
साक्ष्यम् —गवाही ।
सादं—दुबलापन, पतलापन ।
सादृश्य—तुलना, बराबरी, उपमा ।
साध्—(प्रपूर्वक-प्रेरणार्थक) आगे बढ़ाना, और आगे उठा देना ।
साधन —सेना ।
साध्वस—डर ।
सानु—(नपु ०)—शिखर, चोटी ।
सानुमत्—(पु०) पहाड़ ।
सानुराग (विशे०)—भक्त, अनुरक्त ।
साप्रतिक (विशे०)—उचित ।
सार—ताकत, बल, शक्ति ।
सारिका—एक प्रकार का पक्षी, मैना ।
सार्थ.—समूह, समुदाय ।
सार्थवाह —समूह का नेता ।
सावधान (विशे०)--ध्यान देने वाला ।

साहसकारिन् (विशे०)—ढीठ, साहसी, वीर।

साहित्य—साहित्यिक प्रबन्ध।

सित (विशे०)—सफेद।

सिध् (निपूर्वक)—भ्वादि-परस्मै—मना करना, रोकना।

सिद्ध—अर्द्ध देव।

सिंधु—समुद्र।

सीरध्वज—जनक जी को "सीरध्वज" कहते हैं।

सुख (विशे०)—सुखदायी।

सुतीक्ष्ण—एक ऋषि का नाम।

सुधा—अमृत। सुधास्यन्दिन् (विशे०)—अमृत बरसाने वाला या अमृत टपकाता हुआ।

सुभगम्—(क्रियाविशे०) सुन्दरता-पूर्वक।

सुश्लिष्टम्—(विशे०) अच्छी तरह ठीक किया हुआ या रक्खा हुआ।

सुयोधन—दुर्योधन का नाम।

सुरद्विष्—(पु०) देवताओं का शत्रु।

सुहृद्भेद—मित्रों का अलग होना, 'हितोपदेश' नामक ग्रन्थ का द्वितीय भाग।

सूक्त—उत्तम शब्द, मीठे शब्द।

सूत्रधार—[illegible]।

सृ—(भ्वादि-परस्मै-उप पूर्वक) पास जाना।

सृज्—(दि० एवं [illegible]) भेजना, विदा करना।

सेतु—पुल।

सैंह (विशे०)—सिंह का।

सो—(व्यव पूर्वक) दिवादि-परस्मै—प्रयत्न करना, सोचना।

सोदर्यः—सगा भाई।

सौजन्य—उत्तम स्वभाव या प्रकृति।

सौदामिनी—बिजली।

सौभाग्यविलोपिन (विशे०)—शोभा को नष्ट करने वाला।

सौहार्द—मित्रता, मैत्री।

स्कंधावार—सेना का एक विभाग।

स्तबकारिता—रह या समूह बनाना।

स्तनित—बादलों की गड़गड़ाहट, कडकड़ाहट की आवाज।

स्त्रैण—स्त्री जाति।

स्थलवर्त्मन (नपु०)—स्थल-मार्ग।

स्थली—प्रदेश, स्थान।

स्था (आ पूर्वक)—आश्रय लेना।

स्थाणु—शिव जी।

स्थायिन् (विशे०)—स्थायी, नित्य।

स्थिति (स्त्री०)—स्थिरता, स्थायित्व, औचित्य।

स्थिर (विशे०)—दृढ।

स्थिरीकृ (तनादि उभयपदी)—धैर्य धारण करना।

स्थास्नु (विशे०)—दृढ, स्थायी।

स्थैर्य—स्थिरता।

स्नातक—शिक्षाप्राप्त ब्राह्मण गृहस्थ।

स्नानीयं वस्त्रं—नहाने के समय पहिना जाने वाला कपड़ा।
स्निग्ध—प्रिय, स्नेह, मित्रपक्षीय।
स्निग्धदृष्टि (विशे०)—गौर से ताकने वाला, टकटकी लगा कर देखने वाला।
स्फटिकमणि—"स्फटिक मणि" एक विशेष प्रकार का मणि है।
स्फुट (विशे०)—साफ, दृश्य, स्पष्ट।
स्मय —गुस्ताखी, अभिमान।
स्यद्—(अभि पर्वक) भ्वादि-उभय-पदी) वहना, चूना, रिसना, पिघल जाना।
स्रोतोवहा—नदी।
स्वच्छन्दम्—(क्रियाविशे०) स्वेच्छानुसार, मनमानी।
स्वद्—भ्वादि-आत्मने—पसन्द करना।
स्वभावज (विशे०)—प्राकृतिक।
स्वस्थ (विशे०)—नीरोग, तन्दुरुस्त।
स्वाधीन (विशे०)—स्वतन्त्र।
स्वास्थ्य—आराम, शान्ति, चैन।
स्वेच्छया (क्रियाविशे०)—स्वेच्छानुसार, पेट भर।

ह

हतक (विशे०)—अभागा।
हन् (अदादि परस्मै,अप पूर्वक)— नष्ट करना। (प्रति पूर्वक) हटा देना, मार के बदले में मारना।
हरि.—इन्द्र।
हरिचंदन—एक प्रकार का पीला चन्दन।
हरिणीदृश् (विशे०)—हिरन से समान नेत्र वाली।
हव्य—हवन किया जाने वाला पदार्थ।
हस् (भ्वादि परस्मै)—उज्ज्वल कर देना, विमल कर देना
हारीत.—एक प्रकार का कबूतर।
हार्दिक्य.—एक योद्धा का नाम।
हितः—हित चाहने वाला।
हितवादिन्—हितैषी।
हिम—बर्फ।
हिमवत् (पु०)—हिमालय पहाड़।
हिमरश्मिः } —चन्द्रमा(शीतल किरणों वाला)।
हिमांशुः— }
हुंकारः—"हुँ" की आवाज।
हृ—(अभ्यव पूर्वक) भ्वादि-परस्मै—खाना, (उत् पूर्वक) जड़ से उखाड़ना, उन्मूलन करना, (निर् पूर्वक) निकालना, खेंचना, (सम् पूर्वक) गिराना, काट देना, कम कर देना, ह्रस्व कर देना, रोक देना, दमन करना, नियन्त्रित करना, (व्या पूर्वक) बोलना।
हृषीकेश.—कृष्ण।
हेमंत—ठंढा।
हैम—बर्फ से पैदा हुआ।
ह्रदः—जल का गहरा तालाब, झील।

परिशिष्ट ४

शब्दकोष

हिन्दी से संस्कृत

अपकीर्ति—अपयशस् (नपु०), अकीर्ति (स्त्री०)।

अपकीर्ति से मैली—अयशोदूषित, अपमान-मलीमस।

अपना—स्व।

अपने हाथ मे कर लेना—आत्मसात् कृ (तनादि उभय)।

अपमान—निकृतिः (स्त्री) मानभग।

अपराधी—अपराधिन्, दण्ड्य।

अप्सरा—अप्सरस् (स्त्री), अप्सरा, अप्सरसौ अप्सरस।

अभागा—मन्दभाग्य, दैवोपहत।

अभ्यास—प्रयोगः।

असङ्गलकारी—अभद्र।

अवश्य—नियतम्, नूनं खलु।

अवहेलना करना—अवधीर् (चुरादि परस्मै०), अवमन् (दिवादि आत्मने०)।

असम्भव—अशक्य, दुस्साध्य।

असर—प्रभावः।

असल—तात्त्विक।

असहाय—अनाथ, अशरण, दीन।

असाधारण—असाधारण, लोकोत्तर।

आ

आकर्षित करना—वि+लुभ् (प्रेरणा०), हृ (भ्वादि परस्मै०)।

आक्रमण करना—आ+क्रम् (भ्वादि उभय०)।

आगा पीछा करना—आ+शङ्क् (भ्वादि आत्मने०)।

आजकल—सम्प्रति, इदानीम्, एषु दिवसेषु।

आजकल का—अर्वाचीन, आधुनिक।

आनन्द पहुँचाने वाला—आमोदिक, आनन्दन।

परस्मै०), उप+नम् (भ्वादि परस्मै०)।

आश्चर्यजनक—विस्मयावह, आश्चर्यकर।

आश्वासन देना—पर्यवस्था (प्रेरणा०), सस्तम्भ (प्रेरणा०)।

आश्रय लेना—आ+श्रि (भ्वादि उभय०)।

आज्ञाकारिता—आज्ञाधारकत्वम्, अनुविधायित्वम् आज्ञानुरोध।

आना (सञ्ज्ञा)—आगमनम्, उपस्थिति (स्त्री०)।
आना (क्रिया)—आ+गम्।
आ पडना—आ+पत् (भ्वादि
आज्ञा पालन करना, आज्ञा मानना } अनु+रुध् (दिवादि आत्मने)। अनु+सृ (भ्वादि परस्मै०)।

इ

इच्छा के विरुद्ध, इच्छा न होते हुए भी } अनिच्छया अकामत:, बलात्, बलेन, अनिच्छतोऽपितस्य।
इज्जत—प्रतिष्ठा, गौरवम्, आभिजात्यम्।
इज्जत करना—सम्+भू (प्रेरणा०)।
इज्जत के साथ—सगौरवम्, प्रतिपत्तिपूर्वकम्।
इस इस प्रकार—एवमादि।
इन्तजार करना—प्रतिपाल (चुरादि परस्मै०), प्रति+ईक्ष् (भ्वादि आत्मने०)।
इरादा—सङ्कल्प, चिन्ता।
इस प्रकार—इत्थम्।
इसमें कोई आश्चर्य नहीं—नैतत् चित्रम्, किमत्र चित्रम।
इस समय—सम्प्रति, इदानीम्।

ई

ईख—इक्षु।
ईंधन—इन्धनम्।
ईमानदारी—आर्जवम्, निष्कापट्यम।
ईंट—इष्टका।

उ

उचित—युक्त, अनुरूप, योग्य, सदृश।
उचित रीति से—सम्यक्, यथावत्, तत्त्वत.।
उजाड देना—अव+स्कन्द् (भ्वादि परस्मै०)।
उत्तराधिकारी—युवराज।
उत्साह—उत्साह, भक्ति (स्त्री०)।
उदार—वदान्य, त्यागिन्।
उपाय—प्रतिकार:, प्रतीकार., प्रतिपत्ति (स्त्री०)।
उम्दा—शोभनम्।
उलाहना—उपालम्भ।

ऊ

ऊँचा—उन्नत, अभिजात, तुंग, उच्छ्रित, प्रांशु।
ऊँचे साहस वाला—उरुसत्त्व।

ए

एक मन वाले, एक चित्त वाले } एकमनस्।
एकान्त स्थान—विविक्त, विजन।
एक दम—युगपत्, समकालम्।

ऐ

ऐसा सुना जाता है—इति श्रूयते, इति जनप्रवाद, इति किंवदन्ती श्रूयते ।

ओ

ओछा—क्षुद्र, कदर्य ।

ओझल होना—तिरो+धा (जुहोत्यादि उ०), अन्तर्धा (जुहोत्यादि उ०), तिरोभू (भ्वादि प०) ।

ओठ—ओष्ठ ।

ओढ़ना—वेष्ट् (भ्वादि आ०), परिवेष्ट्, आच्छद् (चुरादि प०) ।

ओला—वर्षोपल, करका, करकः; करकम् ।

ओस—नीहार, तुषार, प्रालेयम् ।

अं

अंगूठी—अङ्गुलीयकम्, मुद्रिका ।

क

कक्षा—वर्ग ।

कछुआ—कूर्म, कमठ ।

कठिन—दुष्कर, दुस्साध्य ।

कठिनाई—आपद् (स्त्री०) कृच्छ्रम् ।

कठोरतापूर्वक—परुषम्, बलवत् ।

कड़ाहा—पिठरम् ।

कन्धा—स्कन्ध, अंस ।

कमी—अभाव ।

कमीना—अधम, क्षुद्र, तुच्छ, नीच ।

करना—आ+चर् (भ्वा-परस्मै०), कृ (तनादि उभय०) ।

करुण विलाप—आर्तस्वर, करुण-परिदेवितम्, करुणविलाप ।

कल्याणकारी—श्रेयस्, श्लघ्यतर ।

कसम खाना—शप् (भ्वादि उभय०) ।

कसाईखाना—वधस्थानम्, वधगृहम् ।

कसूर—अपराध ।

कसूरवार—अपराधिन्, दण्ड्य ।

कसौटी—निकषः

कहना—कथ् (चुरादि परस्मै०), आ+चक्ष् (अदादि आत्मने) ।

कान—श्रवणम्, कर्णः ।

कानों तक पहुंचना—कर्णविषयम् या (अदादि परस्मै०), श्रुतिपथम् आगम् (भ्वादि परस्मै) ।

काम—चरितम्, चेष्टितम्।

कारोबार—उद्यम', अध्यवसायः कार्याभियोग।

किफायत से—तिलव्ययेन।

किला—दुर्गः, दुर्गम्।

कीमत—व्यय', मूल्यम्।

कुटुम्बी—कुटुम्बिन्, गृहमेधिन्।

कुशलपूर्वक—क्षेमेण।

कृतज्ञता—कृतज्ञता, कृतवेदित्वम्।

कैदी—बन्दि (स्त्री०), बन्दी (स्त्री०)।

कोपल—पल्लवः, किसलयम्।

कोमल—मृदु।

कामयाबी—साफल्यम्, सिद्धिः।

कोयल—परभृत., कोकिल'।

कोश—कोश.।

क्रीडापर्वत—क्रीडाशैल'।

क्रुद्ध—सामर्ष, प्रकोपित।

क्रोधी स्वभाव वाला—कोपनः, सुलभकोपः।

क्लेश—क्लेश, दुःखम्।

क्या कहना—का कथा, का गणना।

ख

खतम करना—समाप् (प्रेरणा०), अव+सो (दिवादि परस्मै०), अवस्यति अवस्यत. अवस्यन्ति।

खतम न होने वाला—अनन्त, शाश्वत, सनातन।

खतरनाक समय—जीवित-संशयकाल

खतरा—संकटम्, आपद् (स्त्री०), कृच्छ्रम्

खतरे में डालना—सन्देहे पातय् (चुरादि), संशये पातय् (चुरादि)

खबर—उदन्त., वृत्तान्त.

खानदानी देवता—कुलदेवता

खाने योग्य पदार्थ—भक्ष्यम् अभ्यवहार्यम्।

खिलाफ—पराङ्मुख, विरुद्ध।

खिलाना—भुज् (प्रेरणा०)

खेत—क्षेत्रम्।

खेद—निर्वेद।

खेलना—क्रीड्।

खोफिया—चर।

ख्याल—विचार, चिन्ता, सकल्प।

ग

गडरिया—मेषपालः।

गन्दा करना—मलिनीकृ (तनादि उभय०)।

गर्मी—आतप., उष्णम्।

गहरा—अगाध, उत्कट, गाढ, पर, गम्भीर।

गिरना—पत् (भ्वादि परस्मै०)।

गिराना—नि+पत् (प्रेरणा०), अवसद् (प्रेरणा०)।

गिराया हुआ—निपातित।

गुजरा हुआ—अतीत, गत।

गहरे से—गाढम्, निर्भरम्।
गलत समझ लेना—अन्यथा ग्रह् (क्र्यादि परस्मै), मिथ्या सम्भू (प्रेरणा), मिथ्या क्लृप् (प्रेरणा)।
गृहस्थ—कुटुम्बिन्, गृहमेधिन्।
गुजारना—गम् (प्रेरणा०), नी (भ्वादि परस्मै), अति+वह् (प्रेरणा)।
गुंजाइश—अवसरः, अवकाशः।
गुस्साया हुआ—सामर्ष, प्रकोपित।
गोष्ठी—समागमः, सङ्गः।

घ

घमण्ड—दर्पः, अभिमानम्, गर्व, अवलेपः
घमण्ड करना—प्रगल्भ् (भ्वादि-आत्मने०), विकत्थ् (भ्वादि आत्मने)
घमण्डी—उत्सिक्त, अवलिप्त।
घमण्ड से—सदर्पम् उद्धतम्, सावलेपम्।
घर—गृहम्।
घर के कार्य—गृहकार्याणि, कुटुम्बभरः।
घबराहट—सम्भ्रम, क्षोभ।
घबराहट पैदा करने वाला—उद्वेगकारिन्।
घना अन्धकार—सूचिभेद्य तमस्।
घाव—निर्घातः, प्रहारः।
घास—घासः, शष्पम्, तृणम्।
घाटी—द्रोणी।
घिरा हुआ—आच्छन्न, आवृत।
घुटना—जानु (नपु०)।
घुरघुराना—घर्घररव कृ (तनादि उभय०)।
घूमना फिरना—परि+अट् (भ्वादि-परस्मै०), वि+चर् (भ्वादि परस्मै)।
घोड़ा—वाजिन् (पु०), अश्वः, हयः।
घोड़ी—वडवा, वामी

च १

चकवा—चक्रवाक, कोक, रथाङ्ग।
चकोर—चकोर
चखना—स्वद् (भ्वा० आत्मने०), स्वाद् (चुरादि उभय०), आस्वाद् (चुरादि उभय०)
चचेरा भाई—पितृव्यज
चटनी—[illegible], लालनीय।
चटाई—कट, आस्तरणम्।
चढ़ना—रुह्, आरुह्, अधिरुह् (भ्वादि प०)
चढाई—यानम्
चतुर—बुद्धिमत्, पटुमति, दक्ष, निपुण, विदग्ध चतुर, पटु।
चन्दा—प्रदापणम, उद्धारदानम्।
चञ्चल—तरल, चपल।
चद्दर—उत्तरासङ्ग।
चन्दन—मलयजम्, चन्दनम्।

च २

चना—चणकः

चपरासी—प्रतिहार, सन्देशहारक ।

चपाती—पिष्टापूपः ।

चमकना—द्युत् (भ्वादि आत्म०), भा (अदादि प०), दिव् (दिवादि प०), राज् (भ्वादि उभय) ।

चमकीला—भास्वर, भासुर, देदीप्यमान, भ्राजमान ।

चमड़ा—त्वक्, चर्मन् ।

चमार—चर्मकारः ।

चरबी—मेदस् (नपु ०), वसा (स्त्री०), मेदः (पु०)

चरवाहा—गोपाल ।

चाचा—पितृव्य, कनिष्ठतात ।

चाची—पितृव्या ।

चाँदनी—ज्योत्स्ना, कौमुदी, चन्द्रप्रभा, चन्द्रिका ।

चाँदी—कलधौतम्, रजतम् ।

चतकबरा—पिङ्गल ।

चित्र बनाने वाला—चित्रकर, आलेखक ।

चापलूसी करना—चाटुकारै आराध् (प्रेरणा०), उप+स्था (भ्वादि उभय,

च ३

चित्र—चित्रम्, आलेख्यम् ।

चिथड़ा—चीरम् ।

चिथडे पहिने हुए—चीरवासस्, परिहितचीर ।

चिन्तित—आकुल, सचिन्त ।

चिह्न—लक्षणम्, व्यंजनम् ।

चुकता करना—शुध् (प्रेरणा०), निर्यत् (प्रेरणा०) ।

चुगुली—परोक्षनिन्दा, पैशुन्यम् ।

चुगुलखोर—पिशुन, दुःशील ।

चुराना—मुष् (क्र्यादि प०) चुर् (चुरादि उ०) ।

चुप—तूष्णीम्, मौनम्, जोषम ।

चूहा—मूषिक ।

चेतावनी—प्रबोधनम् ।

चेहरा—आकृति ।

चोंच—चञ्चु (स्त्री०) ।

चोट—प्रहार, आघातः ।

चौडा—पृथु, विस्तीर्ण, आयत ।

च ४

चोटी—शिखा ।

चौराहा—शृङ्गाटम्, चतुष्पथम् ।

चौरस जमीन—समभूभाग समस्थली ।

छ

छड़ी—यष्टि, लगुड.।
छाता—आतपत्रम्, छत्रम्।
छिपाना—गूह् (भ्वादि उभय), प्रच्छद् (चुरादि उभय)।
छुट्टी—अनध्याय., अवकाशः।
छूना—स्पृश् (तुदादि प०), आ+मृश् (तुदादि प०)।
छोटा भाई—अनुजः, कनिष्ठसहोदर।
छोडना—परित्यज् (भ्वादि प०), हा (जुहोत्यादि प०), मुच् (तुदादि प०)।
छोटे विचार वाला—कृपणमतिः।

ज

जगाना—प्रतिबुध् (प्रेरणा०)।
जगली—वन्य, मत्त।
जबर्दस्ती—बलात्, बलेन।
जरा भी—स्तोकांशेनापि।
जल्दबाज—सरभस।
जल्दी से—सरभसम्, सत्वरम्।
जलन—मात्सर्य।
जहाज—पोत।
जहाँ तक सम्भव हो—यावच्छक्यम्।
ज्यादा कल्याणकारी—श्रेयस्, श्लाघ्यम्।
जाँच-पड़ताल—व्यवहार.।
जानने वाला—अभिज्ञ, ज्ञ।
जायदाद—रिक्थम्।
जाहिर करना—व्यञ्ज् (प्रेरणा०), द्युत् (प्रेरणा०)।
जीत लेना—वशंनी (भ्वादि प०)।
जीविका निर्वाह करना—वृत्ति कृ (तनादि उभय), जीवित धृ (चुरादि प०)।
जुड जाना—सम्+गम् (भ्वादि आत्मने), संयुज् (कर्मवाच्य)।
जुर्माना—दण्ड।
जोरों से—वेगेन, प्रसह्य, प्रसभम्।

झ

झगडा—विवाद, कलह।
झगडा करना—वि+वद् (भ्वादि आत्मने)।
झण्डा—ध्वज, पताका।
झपट्टा मारना—सहसा अभि+सृ (भ्वादि पर०), आ+क्रम् (भ्वादिपर०)।
झुण्ड—निकर, सङ्घ।
झुलसाने वाली—तिग्म, तीव्र, प्रखर।
झूठ—असत्यम्, अनृतम्, मृषा।
झूला—हिन्दोलम्, आन्दोलिका।

ट

टकटकी लगाकर देखना—स्तिमितदृष्ट्या प्रेक्ष् (भ्वादि आत्मने), दृष्टिभिः अथवा लोचनैः पिब् (भ्वादि परस्मै०)।

टकराना—संघट्ट (भ्वादि आत्म०), सघृष् (भ्वादि परस्मै०)।

टहलना—विहारः, विहरणम्।

टँगा हुआ—अवलम्बित, अवसक्त।

टुकड़ा—शकलम्, खण्डः, खण्डम्।

टेढ़ा—वक्र, विजिह्म।

टोकरा—पिटः।

ठ

ठग—धूर्तः, किनवः, जाल्मः, शठः।

ठगना—वञ्च् (चुरादि परस्मै०), वि+प्र+लभ् (भ्वादि आत्मने०)।

ड

डर—साध्वसम्, शङ्का, भीतिः, भयम्।

डरना—शङ्क् (भ्वादि आत्मने०), भी (जुहोत्यादि पर०)।

डसना—दश् (भ्वादि पर०)।

डराया हुआ—त्रसित।

डाटना—निर्+भर्त्स् (चुरादि आत्मने), उपालभ् (भ्वादि आत्मने)।

डाढ़—दंष्ट्रा, दशनः।

डाह—मात्सर्यम्।

डिक्शनरी—कोशः, शब्दाभिधानम्।

डींग मारना—श्लाघ् (भ्वादि आत्मने०), विकत्थ् (भ्वादि आत्मने०)।

डींग मारने वाला—विकत्थन, आत्मश्लाघिन्।

डूबा रहना—निमज्ज् (तुदादि परस्मै०)।

डूबा हुआ—निमग्न, आकुल।

डेहरी—देहली।

डोरी चढ़ाना—अधिज्य कृ, (तनादि उभय), आतत्य कृ (तनादि उभय)।

ढ

ढकना—पिधानम्, आवरणम्।

ढका हुआ—आच्छन्न, आवृत।

ढीठ—अविनीत।

ढिठाई—अविनय।

ढीला—शिथिल, श्लथ।

त

तदबीर—उपाय।
तरफ—पक्ष.।
तरफदारी करना—पक्ष ग्रह् (क्र्यादि उभय)।
तड़फड़ाना—परितप् (कर्मवाच्य)—परितप्यते। क्षुभ् कर्मवा०—क्षुभ्यते)।
तसवीर—चित्रम्, आलेखः।
तसवीर बनाने वाला—चित्रकरः, आलेखक।
तरह तरह का—नानाविध, बहुविध, विविध।
ताना—उपालम्भ।
तिरस्कार करना—अव+मन् (दिवादि आत्मने)।
तिरस्कार-पूर्वक—सावज्ञम्।
तुरन्त ही—सपद्येव, त्वरितमेव, सत्वरमेव।
तुला हुआ—पर, तत्पर, परायण, (ये सभी शब्द समास में आते है।), विहित-प्रतिज्ञ, कृतसङ्कल्प।
तेज—उद्यत, तत्पर, दक्ष, निशित, तीक्ष्ण।
तेजी—रय., वेग।
तेज बुद्धि वाला—तीक्ष्णमति., कुशाग्रबुद्धि.।
तैयार—सज्जीभूत, सन्नद्ध।
तैयारी—सविधा।
तैश—साहसम्, क्षिप्रकारिता।
तैशवाज—क्षिप्रकारिन्, अविमृश्य-कारिन्।
तोड़ना—सन्धिच्छेदं कृ (तनादि उभय), भञ्ज् (रुधादि परस्मै०)।

थ

थकावट—परिश्रम, खेद., आयास.।
थका हुआ—परिश्रान्त, खिन्न।
थाती रखना—निक्षिप् (तुदादि परस्मै०), न्यासीकृ (तनादि उभय)।

द १

दयनीय—करुण, अनुकम्प्य।
दरबार—सभा।
दाग—कलङ्क।
दानी—वदान्य, त्यागिन्, उदार।
दार्शनिक—तत्त्ववित्, तत्त्वज्ञ।
दाम—[illegible] मूल्यम्।
दुःख—निर्वेद।
दुःखी—पीडित, व्यथित, शोकापन्न, दुःखार्त, निर्विण्ण।
दुःख देना—उपप्लु (भ्वादि आत्मने०), भृश पीड् (चुरादि परस्मै०), वि+प्र+कृ (तनादि उभय)।

दुःखदायी—कष्टप्रद, क्लेशावह।
दृढ चित्त वाला—धीर।
दुष्ट—दुष्ट, दुरात्मन्, दुराशय।
दुष्ट पुरुष—नरापसद, नरहतक।
दूर किया हुआ—निरस्त।
देखने वाला—प्रेक्षकः, द्रष्टृ।
देर करना—चिरायति, विलम्ब् (भ्वादि आत्मने०)।

द २

देर—विलम्बः, कालातिपातः।
देना—दा (जुहोत्यादि, उभय), समर्प् (प्रेरणा०)।
देखना—दृश् (भ्वादि परस्मै०), निरूप् (चुरादि परस्मै), पर्यालोच् (चुरादि परस्मै०)।
देशनिकाला—विवासनम्, निर्वासनम्।
देशनिवासी—स्वदेशजः, देशबन्धुः।
देवता-सम्बन्धी—दिव्य।
दैवमारा—दैवोपहत।
दौडना—द्रु (भ्वादि परस्मै०), पलाय् (भ्वादि आत्मने), धाव् (भ्वादि परस्मै०)।

ध

धन—वित्तम्, विभवः।
धड़—कबन्धः।
धब्बा—कलङ्कः।
धर्मात्मा—धर्मनिष्ठः।
ध्वजा—ध्वजः, पताका।
धार्मिक—धर्म्य।
धार्मिक क्रिया—धर्मक्रिया।
धीरे धीरे—मन्दम् मन्दम्, शनैः शनैः।

ध

धूल—धूलिः (स्त्री०), धूली (स्त्री०), पांशु (पु०) पांसु (नपु०) रजस (नपु०)।
धूप—आतपः, उष्णम्।
धोबी—रजकः।
धोखा देना—वञ्च् (चुरादि परस्मै०), वि+प्र+लभ् (भ्वादि आत्मने०)।
धोखेबाज—जाल्मः, कितवः, शठः,
धूर्तः।
धोना—प्र+क्षल् (चुरादि परस्मै०), प्र+मृज् (अदादि परस्मै०)—प्रमार्ष्टि प्रमृष्ट प्रमृजन्ति-प्रमार्जन्ति, प्रमार्क्षि प्रमृष्ठ, प्रमृष्ठ, प्रमार्ज्मि प्रमृज्वः प्रमृज्म।

न

न खतम होने वाला—अनन्त, शाश्वत, सनातन।
नङ्गा—नग्न।
नपुंसक के समान—क्लीबवत्, नष्टवीर्यवत्।
नरकुल—वेतस।

नष्ट करना—नश (प्रेरणा०)।
नहाना—स्ना (अदादि परस्मै०)
अवगाह (भ्वादि आत्मने)।
नाराज करना—अपराध (दिवादि परस्मै०)।
नारियल—नारिकेल।

न १

नाश—प्रणाश.।
निकल जाना / निकलना — निर्गम् (भ्वादि परस्मै०). निष्क्रम् (भ्वादि परस्मै०): दिवादि परस्मै०)
निकाला हुआ—निरस्त।
निद्राहीन—उन्निद्र।
निपुण—प्रवीण, पारगत, पारदृश्वन्।
निन्दा के योग्य—गर्हणीय, निन्द्य।
निर्दयतापूर्वक—निर्घृणम्, निर्दयम।
निरादर के साथ—सावज्ञम्।
निरादर करना—निराकृ (तनादि उभय), प्रत्यादिश (तुदादि परस्मै०)।
निश्चित—ध्रुव, नियत।
निमग्न होना—नि+मज्ज् (तुदादि परस्मै०)।
निवेदन करना—नि+विद् (प्रेरणा०), वि+ज्ञा (प्रेरणा०)।

न २

निष्फल होना—विफलीभू (भ्वादि परस्मै०). मोघीभू (भ्वादि परस्मै०)।
नीच—अधम, क्षुद्र, तुच्छ, नीच।
नीच पुरुष—नरापसद., नरहतक।
नील का बर्तन—नीलीभाण्डम्।
नौकर—भृत्य, दास॰, परिजन॰, अनुचर., किङ्कर., सेवक.।
नौकर-चाकर—परिजन, परिवार।

प १

पकडना—आ+सद् (प्रेरणा०)
पड़ोस—उपान्त, परिसर।
परिणत होना—भावेन परिणम् (भ्वादि परस्मै०)।
पवित्र करने वाला—पावन।
पलटन—सैन्यम्, अनीकम्. सेना।
परिश्रम-पूर्वक—सोद्यमम्।

प २

परछाईं—प्रतिबिम्बम्, प्रतिफलम्।
परिचित कराना—ज्ञा (प्रेरणा०)।
परिवर्तन—परिवर्त, विपर्यास।
प्रकाण्ड पंडित हो जाना—पार गम् (भ्वादि परस्मै०), पार दृश् (भ्वादि परस्मै०)।

प्रतीक्षा करना—प्रतिपाल् (चुरादि परस्मै०), प्रति+ईक्ष् (भ्वादि आत्मने०)।
प्रशंसनीय—प्रशस्य, श्लाघ्य।
प्रसन्न—प्रमुदित, सानन्द।
प्रसन्न करना—अनुरञ्ज् (प्रेरणा०)।
प्रसिद्ध—विख्यात।
प्रतिष्ठा—प्रतिष्ठा, गौरवम्, आभिजात्यम्।
पानी—जलम्, पानीयम्, वारि, अम्भस्, अप्।
पाने का इच्छुक—लिप्सुः, ईप्सुः।
पार कर ले जाना—उत्+तृ (भ्वादि परस्मै०)।
पारी—पर्याय., वार.।
पाला-पोसा हुआ—संवर्धित, परिपोषित।
पिघलना—द्रु (भ्वादि परस्मै०), मृदुता गम् (भ्वादि परस्मै०), काठिन्य त्यज् (भ्वादि परस्मै०)।
पिघल जाना (दया से)—दयार्द्राभू (भ्वादि परस्मै०), करुणया विद्रु (भ्वादि परस्मै)

प ३

प्राण खो दिया—अपगतासु. बभूव।
प्राण-घातक—अन्तकर, मृत्युजनन, प्राणहर।
प्यारा—प्रिय, कान्त, वल्लभ।
प्यासा—पिपासु, तृषार्त।
पुरखे—पितरः, स्वधाभुज.।
पीठ-पीछे—परोक्षे, असन्निधाने।
पुराना—प्राक्कालीन, पुरातन, प्राचीन।
पूछना—प्रच्छ् (तुदादि परस्मै०)।
पूछताछ—व्यवहार।
पूरा करना—सम्पद् (प्रेरणा०), साध् (स्वादि परस्मै०)।
पूरी—पूर्ण, सफल।
पूरी तौर से—नि.शेषम्, अशेषत., एकान्ततः, सर्वात्मना,।
पेशा—व्यापारः, व्यवसायः।
प्रेम का एक-मात्र पात्र—स्नेहस्यैकायनीभूत।

प ४

पैदा करना—जन् (प्रेरणा०)।
पैदा होना—उद्भू (भ्वादि परस्मै०), उत्पद् (दिवादि आत्मने०)।
पैदा हुआ—उद्भूत, सम्भूत।

फ १

फटकारना—निर+भर्त्स् (चुरादि आत्मने०), उपालभ् (भ्वादि आत्मने०)।

फायदा—लाभ., हितम्।

फिर—पुन:, भूय

फिर से प्राप्त करना—आ+पद् (दिवादि आत्मने०), प्रति+पद् (दिवादि आत्मने०)।

फेंकना—क्षिप् (तुदादि परस्मै०), अस् (दिवादि परस्मै०)।

फ २

फेंका हुआ—क्षिप्त, निपातित।

फैलना—प्र+सृ (भ्वादि परस्मै०)।

फैलाना—प्र+सृ (प्रेरणा०)।

फैलाव—विस्तार:।

फैला हुआ—विस्तीर्ण

फौज—सैन्यम्, अनीकम्, सेना।

फ ३

बचाना—रक्ष् (भ्वादि परस्मै०), त्रै (भ्वादि आ०)।

बचाने वाला—त्रातृ (पु०), रक्षक।

बहुत ज्यादा—भृशम, नितराम्, अतिमात्रम्।

बहेलिया—व्याध।

बपौती—पैतृक।

बर्तन—भाजन्।

बदमाश—शल्म, शठ, धूर्त, किनव।

बदल जाना—विपर्यास या (अदादि परस्मै०)।

बदलाव—परिवर्त:, विपर्यास।

बन्द करना—पिधा (जुहोत्यादि उभय), नि+रुध् (रुधादि उभय)।

बहाना—व्याज:, व्यपदेश।

बहाना करना—अप+दिश् (तुदादि)

बताना—नि+विद् (प्रेरणा०)।

बदला लेना—वैरनिर्यातन कृ (तनादि उभय), वैरसाधन कृ (तनादि उभय)।

ब

बगल—पार्श्व।

बड़बड़ाना—प्रलप् (भ्वादि परस्मै०)।

बड़ा—विशाल, स्थूल।

बड़े सवेरे—प्रगे प्रत्यूषे।

बड़ी मुश्किल से—कथं कथमपि।

बड़े लोग—गुरुजन:, गुरव।

बरखास्त किया हुआ—विसर्जित।

बहुत बढ़िया } —विशिष्ट, उत्कृष्टतम
बहुत अच्छा }

ब १

बगावत करना } —अभिद्रुह् (दिवादि
बलवा करना } परस्मै०) द्वितीया विभक्ति के साथ।

बढ़कर होना (किसी से)—अतिरिच् (कर्मवाच्य), विशिष् (कर्मवाच्य), अतिशी (अदादि आत्मने०)।

बकरा—छाग ।

बनिया—वणिज् (पु), श्रेष्ठिन् (पु०)

बहनोई—आवुत्त , भगिनीपति. ।

बहा ले जाना—अपवह् (प्रेरणा०)।

बहुत हो जाना—बहुलीभू (भ्वादि परस्मै०)।

बर्ताव करना—व्यवह् (भ्वादि परस्म०), आचर् (भ्वादि परस्मै०), भावम् आ पाद् (दिवादि आत्मने)।

बाद मे भी जिन्दा रहना—अतिजीव् (भ्वादि परस्मै०), अनुजीव् (भ्वादि परस्मै०)।

बाजार—आपण , पण्यवीथिका

बिना विघ्न-बाधा के—निर्विघ्नम्।

ब २

बारीक—सूक्ष्म।

बाँटना—विभज् (भ्वादि परस्मै०)।

बिताना—गम् (प्रेरणा०), नी (भ्वादि परस्मै०), अति+वह्।

बिदाई लेना—आमन्त्र् (चुरादि आत्मने०), आ+प्रच्छ् (तुदादि आत्मने०)।

बीता हुआ—अतीत, गत।

बीमार—अस्वस्थ-शरीर।

बीमारी—अस्वास्थ्यम्, विकार ।

बीत जाना—व्यति+इ (अदादि परस्मै०), अति+क्रम् (भ्वादि परस्मै०, दिवादि परस्मै०) ।

बुड्ढा—वृद्ध, स्थविर, प्रवयस् चिरन्तन, पुराण ।

बूचड़खाना—वधस्थानम्, वधगृहम्।

बेंचना—वि+क्री (क्र्यादि आत्मने)।

बेचैन—पर्याकुल, पारिप्लव ।

बेंत—वेतस ।

बेहोश—निःसंज्ञ , अपगतचेतन ।

ब ३

बेइज्जती करना—अव+मन् (दिवादि आत्मने०)।

बेइज्जती के साथ—सावज्ञम्।

भ

भगाना—वि+द्रु (प्रेरणा०), वि+ध्वस् (प्रेरणा०)।

भयानक—भयावह, भयप्रद, उग्र, भीषण।

भरना—पूरय् (चुरादि परस्मै०)।

भरा हुआ—निषेवित, समाश्रित।

भले बुरे का विचार—विवेकः, परिच्छेद.।

भागना—पला+अय् (भ्वादि आत्मने)।

भाग्यहीन—मन्दभाग्य।

भारी—गुरु, स्थूल।

भ्र

भ्रमण करना—परि+अट् (भ्वादि परस्मै०), वि+चर् (भ्वादि परस्मै०)

भाषा-चातुरी—वाक्पटुत्वम्, वाक्-प्रबन्ध।

भिन्न होना—भिद् (कर्मवाच्य)।

भेंट—उपहारः, उपायनम्।

भेड़िया—वृकः।

भेद—रहस्यम्।

भौंचक्का—किंकर्तव्यतामूढ, किंप्रतिपत्तिमूढ।

म

मशहूर—विख्यात, प्रसिद्ध।

महसूल—बलि, कर।

मन्दिर—देवालय, देवतायतनम्।

मन लगाना—मनो निविश् (प्रेरणा०), मनो युज् (प्रेरणा०), मनो बन्ध् (क्र्यादि परस्मै०)।

म १

मर्जी—छन्दस् (नपुं०)।

मन्त्रणा करके—सम्मन्त्र्य, संवाद्य।

मर्म को भेदना—मर्माणि स्पृश् (तुदादि)।

मालिक—स्वामिन्।

मानसिक चिन्ता—आधि।

मालभरी—प्रासाद, निश्चिताशन।

मानना—मन् (दिवादि आत्मने)।

माफिक—अनुरूप, सदृश।

मामला—अर्थ, विषय।

मालकिन—भट्टिनी, भर्तृदारिका।

मिलना—सम्+गम् (भ्वादि आत्मने०), सयुज् (कर्मवाच्य)।

मिहनत से—सोद्यमम्।

मिहनत—परिश्रम, आयास।

मीठा—मधुर, मिष्ट।

श १

शक्ल—स्वरूपम्, रूपम्, दर्शनम्।

शहद भरा हुआ—सुधास्यन्दिन्, मधुमय, मधुमधुर।

शरीरधारी—शरीरिन्, मूर्त।

शानदार—शोभन, चारु, उत्तुङ्ग, विशाल।

श २

शुद्ध करने वाला—पावन।

शुरू से—आमूलात्, आदित.।

शून्य हृदय वाला—शून्यहृदय।

शोर—कलकल'।

स १

सच्चा—तात्त्विक।

सचमुच—वस्तुतः, परमार्थत.।

सङ्गत—सङ्गति., सङ्ग.।

सफलता—सिद्धिः।

समझाना—बोधयति, बोधयतः बोधयन्ति।

समर्थन करना—अभिनन्द् (भ्वादि परस्मै०)।

सहायता करना—साहाय्यं कृ, साहाय्य दा।

समाप्त करना—समाप् (प्रेरणा०), अव+सो (दिवादि परस्मै०), अवस्यति अवस्यतः आदि।

समझना—मन् (दिवादि आत्मने)।

सम्मान-पूर्वक—सगौरवम्, सादरम् प्रतिपत्तिपूर्वकम्।

स २

समाचार—उदन्त., वृत्तान्त।

सम्बन्धी—ज्ञाति, बन्धु'।

समूह—जालम्, पटलम्।

सङ्कीर्ण विचार वाला—कृपाणमति।

सहना—सह् (भ्वादि आत्मने), तितिक्ष् (भ्वादि आत्मने०)।

सहनशीलता—सहिष्णुता, क्षमित्वम्।

सहारा लेना—अगीकृ (तनादि उभय), आ+स्था (भ्वादि उभय)।

संयोग से—दैववशात्, सहसा, दैवात्।

सवार—अश्वारोहः, अश्वसादिन्।

सदाचारी—साधुवृत्त, धर्मशील।

सत्य बोलने की आदत—सत्यवादित्वम्।

समझ में न आने वाला—दुरवगाह, दुर्बोध।

सही सलामत—क्षेमेण।

स्पर्धा करना—स्पर्ध् (भ्वादि आत्मने), तुल् (चुरादि परस्मै)।

स्वाभाविक—सहज, नैसर्गिक।

स ३

स्वागत करना—प्रत्युद्गम् (भ्वादि परस्मै०), प्रत्युद्व्रज् (भ्वादि परस्मै०)।

स्वभावत—अवश्यमेव, नून खलु, प्रकृत्या।

समृद्ध—सम्पन्न।

सावधानी से—प्रयत्नेन, सादरम्।

साफ करना—प्र+क्षल् (चुरादि परस्मै०), प्र+मृज् (अदादि परस्मै०), प्रमार्ष्टि प्रमृष्ट. प्रमार्जन्ति-प्रमृजन्ति, प्रमार्ष्टि प्रमृष्ठ. प्रमृष्ठ, प्रमार्जिम प्रमृज्व. प्रमृज्म।

साहसपूर्ण कार्य—चरितम्, चेष्टितम्।

साथ—समागमः, सङ्गः।

स ४

सान्निध्य—उपान्त., परिसर.

साधारण बढा हुआ—असाधारण, लोकोत्तर।

स्वर्ग सम्बन्धी—दिव्य।

सिंहासन—पीठम्, सिंहासनम्।

सिकुडा हुआ—सङ्कुचित, सम्पिण्डित।

सीधे—सरलमार्गेण, अनानागत्य।

सीमित—परिच्छिन्न, अल्पविषय।

सुखदायक—सुखावह।

सुन्दर—चारुगात्र, कमनीय, मधुराकृति (उद्यानादि के लिए 'रमणीय' 'रम्य' प्रयोग में आता है)।

सूरत—रूपम्, स्वरूपम्, दर्शनम्।

सोचना—चिन्त् (चुरादि परस्मै०, प्र+क्लृप् (प्रेरणा०), युज् (प्रेरणा०)।

सूनसान—निर्जन, घोर।

स ५

सूनसानपन—निर्जनत्वम्, शून्यत्वम्।

सूखा हुआ—उच्छोषित, पीत।

सेठ—श्रेष्ठिन (पु०)।

सौदागर—वणिज् (पु०) श्रेष्ठिन् (पु०)।

सेना—सेना, सैन्यम्, अनीकम्।

ह १

हठपूर्वक कहना—अनुबन्ध् (क्र्यादि परस्मै०), निर्बन्धेन प्रच्छ्।

हथिया लेना—आत्मसात् कृ।

हटाना—अप+नी (भ्वादि उभय) अपवह (भ्वादि परस्मै०)।

हराना—वश नी (भ्वादि परस्मै०), मूर्ध्नि पाद निधा (जुहोत्यादि उभय)।

हराभरा—हरित, शाद्वल।

हरना—हृ (भ्वादि परस्मै) आ+कृष् (भ्वादि परस्मै) वि+लुन् (प्रेरणा०)।

हमला करना—आ+क्रम् (भ्वादि उभय)।

हटाया हुआ—निरस्त।

हाजिर जवाब—प्रत्युत्पन्नमति, प्रतिभानवत्।

हाथ खोले हुए—मुक्तहस्त।

हालत—अवस्था, स्थिति।

होना—भू (भ्वादि परस्मै०), अस् (अदादि परस्मै०)।

ह २

होश—संज्ञा, चेतना।

होश हवास के साथ—बोध-पूर्वम्, सचेतनवत्।

होशियार—बुद्धिमत्, पटुमति।

होशियारी से—प्रयत्नेन, सादरम्।

हिचकिचाना—आ+शङ्क् (भ्वादि आत्मने०)।

हृदय को भेदने वाला—हृदयमर्मभेदिन, अरुन्तुद।

